१०८ उपनिषद

PART - I

१०८ उपनिषद

(मुक्ति का उपनिषद में दिया गया क्रम)

108 upanishads

IN HINDI - PART - I

प्रस्तुतकर्ता : वी.सी.सिंह

परिचय

कैवल्य प्रकार का मोक्ष किससे मिलता है? माण्डूक्य उपनिषद ही काफी है; यदि उससे ज्ञान न मिले तो दस उपनिषदों का अध्ययन करो। शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त करके तुम मेरे धाम को प्राप्त हो जाओगे। यदि तब भी निश्चय न मिले तो ३२ उपनिषदों का अध्ययन करके रुक जाओ। यदि शरीर के बिना मोक्ष की इच्छा हो तो १०८ उपनिषदों का अध्ययन करो। उनका क्रम सुनो। (मुक्तिका १-१-२६-२९)। कैवल्य: मुक्ति; पूर्ण स्वतंत्रता की स्थिति। मोक्ष: मुक्ति।

१०८ उपनिषद (मुक्तिका उपनिषद में दिया गया क्रम) ;

1. ईशा* 2. केन* 3. कथा* 4. प्रश्न* 5. मुण्ड*

6. माण्डूक्य* 7. तैत्तिर* 8. ऐतरेय* 9. छान्दोग्य* 10. बृहदारण्यक*

11. ब्रह्मा 12. कैवल्य 13. जाबाला 14 श्वेताश्व 15. हंस

16. आरुणि 17. गर्भ 18. नारायण 19. परमहंस 20.अमृतबिंदु

21. अमृतानदा 22. अथर्वशिरः 23. अथर्वशिखा 24. मैत्रायिनी 25. कौषीतकिब्राह्मण

26. बृहज्जाबाला 27. नृसिंहतापिनी 28. कालाग्निरुद्र 29। मैत्रेय 30. सुबाला

31. क्षुरिका 32. मांत्रिका 33. सर्वसार 34. निरालंब 35. शुक्रहस्य

36. वज्रसूचिका 37. तेजोबिंदु 38. नादबिंदु 39. ध्यानबिंदु 40. ब्रह्मविद्या

41. योगतत्त्व 42. आत्मबोध 43. नारदपरिव्राजक 44. त्रिसिखी 45. सीता

46. योगचूड़ामणि 47. निर्वाण 48. मंडलब्राह्मण 49. द दक्षिणामूर्ति 50 सराभा

51. स्कंद 52. त्रिपादविभूति-महानारायण 53. अद्वयतारक 54. रामरहस्य

55. रामतापनी

56. वासुदेव 57. मुद्गल 58. शांडिल्य 59. पिंगला 60. भिक्षु

61. महत 62. सारिरका 63. योगशिखा 64। तुरीयातिता 65. संन्यास

66. परमहंसपरिव्राजक 67. अक्षमालिका 68. अव्यक्त 69. एकाक्षर 70. अन्नपूर्णा

71. सूर्य 72. अक्षी * = स्वामी निर्मलानंद गिरि की टिप्पणी के बाद। 73. अध्यात्म 74. कुंडिका 75. सावित्री

76. आत्मा 77. पाशुपत 78. परब्रह्म 79. अवधूतक 80. त्रिपुरतापिनी

81. देवी 82. त्रिपुरा 83. कथारुद्र 84. भावना 85. रुद्रहृदय

86. योग-कुंडली 87. भस्म 88. रुद्राक्ष 89. गणपति 90. दर्शन

91. तारासार 92. महावाक्य 93. पंचब्रह्मा 94. प्राणाग्निहोत्र 95. गोपालतापिनी

96. कृष्ण 97. याज्ञवल्क्य 98. वराह 99. सत्ययानी 100. हयग्रीव

101. दत्तात्रेय 102. गरुड़ 103. कालीसमतरना 104 जा बाली 105. सौभाग्यलक्ष्मी

106. सरस्वतीरहस्य 107. बहवृचा 108. मुक्तिका

001 - ईशावास्य उपनिषद

वह पूर्ण है; यह पूर्ण है, (क्योंकि) पूर्ण से पूर्ण (वास्तव में) उत्पन्न होता है। जब पूर्ण से पूर्ण निकाल लिया जाता है, तो जो शेष रहता है, वह वास्तव में पूर्ण ही है। ॐ! शांति! शांति! शांति!

१. ॐ। पृथ्वी पर जो कुछ भी चलता है, यह सब भगवान द्वारा ढका होना चाहिए। इस तरह के त्याग से (अपने आप को) सुरक्षित रखें। दूसरों के धन का लालच न करें।

२. इस संसार में कर्म करते हुए (जैसा कि शास्त्रों ने कहा है) सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। इस प्रकार कर्म तुम्हें, कर्ता को नहीं बांधता। इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है।

३. असुरों (राक्षसों) के वे लोक अंधेर से आच्छादित हैं। जो आत्मा के हत्यारे हैं, वे मृत्यु के बाद उनके पास जाते हैं।

४. अविचल, यह एक है, मन से भी तेज है। अपनी उपस्थिति के कारण मातर्शव (वायु) प्राणियों के कार्यकलापों का संचालन करता है।

5. वह चलता है; वह नहीं चलता। वह दूर है; वह निकट है। वह सबके भीतर है; वह सबके बाहर है।

6. जो पुरुष सम्पूर्ण प्राणियों को आत्मा में ही और सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा को देखता है, वह उस अनुभूति के कारण किसी से द्वेष नहीं करता।

7. जब कोई मनुष्य यह जान लेता है कि सम्पूर्ण प्राणी आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं, तो उस एकत्वदर्शी को क्या भ्रम, क्या शोक?

8. वह (आत्मा) सर्वव्यापी, तेजोमय, शरीररहित, कष्टरहित, नाड़ियों से रहित, शुद्ध, पाप से रहित, सर्वद्रष्टा, मन का स्वामी, पारलौकिक और

स्वयंभू है। उसी (आत्मा) ने सनातन प्रजापतियों को, जिन्हें संवलसर (वर्ष) कहते हैं, उनके कर्तव्य उचित क्रम से बांटे।

9. जो लोग अविद्या (अज्ञान से उत्पन्न कर्म) की पूजा करते हैं, वे घोर अंधकार में जाते हैं, लेकिन जो लोग विद्या (देवताओं के ज्ञान) की पूजा करते हैं, वे इससे भी बड़े अंधकार में जाते हैं।

10. वे कहते हैं कि विद्या से प्राप्त होने वाला फल अलग होता है और अविद्या से प्राप्त होने वाला फल भी अलग होता है। ऐसा हमने उन बुद्धिमानों से सुना है जिन्होंने हमें यह समझाया था।

11. जो विद्या और अविद्या दोनों को एक साथ जानता है, वह अविद्या के द्वारा मृत्यु से ऊपर उठ जाता है और विद्या के द्वारा अमरता को प्राप्त करता है।

12. जो लोग अव्यक्त (प्रकृति) की पूजा करते हैं, वे घोर अंधकार में जाते हैं। इससे भी बड़े अंधकार में।

13. वे कहते हैं कि व्यक्त की पूजा से जो फल मिलता है, वह भिन्न है और अव्यक्त की पूजा से जो फल मिलता है, वह भी भिन्न है। इस प्रकार हमने उस बुद्धिमान से सुना है, जिसने हमें यह समझाया था।

14. जो अव्यक्त और नाशवान (हिरण्यगर्भ) दोनों को एक साथ जानता है, वह नाशवान की पूजा से मृत्यु को पार कर जाता है और अव्यक्त की पूजा से अमरता प्राप्त करता है।

15. सत्य का मुख (अर्थात् सूर्यमण्डल में पुरुष) एक उज्ज्वल पात्र से ढका हुआ है। हे सूर्य, तुम इसे इस प्रकार से खोल दो, कि मैं, जिसका धर्म सत्य है, इसे देख सकूँ।

16. हे पोषक, एकांत के यात्री, नियंत्रक, (सभी रसों के) अवशोषणकर्ता, प्रजापति की संतान, अपनी किरणों को दूर फेंक दो, उन्हें इकट्ठा करो और अपनी तेजस्विता को त्याग दो। मैं तुम्हारे उस अत्यंत मनोहर रूप को देखूं। वह, पुरुष (सूर्य मंडल में), मैं हूं।

17. (मेरी) प्राणवायु अब अमर वायु (सर्वव्यापी आत्मा) को प्राप्त हो जाए; तब यह शरीर भस्म हो जाए। ॐ, हे मन, स्मरण करो - जो किया गया है उसे स्मरण करो, हे मन, स्मरण करो - जो किया गया है उसे स्मरण करो।

18. हे अग्नि, हे देव, हमारे सभी कार्यों या हमारे सभी ज्ञान के ज्ञाता, हमें कर्मों के फल का आनंद लेने के लिए अच्छे मार्ग पर ले चलो। हमें हमारे छलपूर्ण पापों से मुक्त करो। हम तुम्हें अपनी आराधना के शब्द अधिक से अधिक अर्पित करते हैं।

ॐ! वह पूर्ण है; यह पूर्ण है, (क्योंकि) पूर्ण से पूर्ण (वास्तव में) उत्पन्न होता है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर जो शेष रह जाता है, वह वास्तव में पूर्ण ही है। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ शुक्ल यजुर्वेद में निहित ईशावास्योपनिषद् समाप्त होता है।

002 - केन उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, बल,और सभी इंद्रियाँ पूर्ण विकसित हों।उपनिषदों द्वारा जो कुछ भी प्रकट किया गया है, वह ब्रह्म है।मैं ब्रह्म को कभी अस्वीकार न करूँ:ब्रह्म मुझे कभी अस्वीकार न करे।ब्रह्म से कोई अस्वीकृति न हो;मेरी ओर से कोई विश्वासघात न हो।उपनिषदों द्वारा प्रशंसित सभी धर्म मुझमें प्रकाशित होंजो स्वयं को जानने का इच्छुक है।वे मुझमें प्रकाशित हों!ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

I-1. मन को किसकी इच्छा से (अपने विषयों पर) गिरने के लिए निर्देशित किया जाता है? सबसे प्रमुख प्राण वायु किसके द्वारा निर्देशित होती है? यह वाणी जिसे लोग बोलते हैं, किसकी इच्छा से? वह तेजस्वी प्राणी कौन है जो आँख और कान को (उनके विषयों के साथ) जोड़ता है?

I-2. क्योंकि वह कान का कान, मन का मन, वाणी की वाणी, प्राण की प्राणवायु और आंख की आंख है, बुद्धिमान, अपने आप को (इंद्रियों के साथ पहचान से) मुक्त करते हैं और संसार का त्याग करके अमर हो जाओ।

I-3. न आँख वहाँ पहुँचती है, न वाणी, न मन, न हम (उसकी परिपक्वता) जानते हैं। इसलिए हम (उसके बारे में) शिक्षा देना नहीं जानते। वह ज्ञात से भिन्न है और अज्ञात से भिन्न है। इस प्रकार हमने पूर्वजों से सुना है जिन्होंने हमें इसका प्रतिपादन किया है।

I-4. जो वाणी से नहीं कहा जाता, जिससे शब्द व्यक्त होता है, उसे ही ब्रह्म जानो, न कि यह (गैर-ब्रह्म) जिसकी पूजा की जा रही है।

I-5. जिसे मन से नहीं सोचा जाता, जिसके द्वारा, वे कहते हैं, मन विचार करता है, उसे ही ब्रह्म जानो, न कि यह (गैर-ब्रह्म) जिसकी पूजा की जा रही है।

I-6. जिसे मनुष्य आँख से नहीं देखता, जिससे मनुष्य आँख की क्रियाओं को देखता है, उसे ही ब्रह्म जानो, न कि यह (गैर-ब्रह्म) जिसकी पूजा की जा रही है।

I-7. जिसे मनुष्य कान से नहीं सुनता, जिससे मनुष्य कान की श्रवण शक्ति सुनता है, उसे ही ब्रह्म जानो, न कि यह (गैर-ब्रह्म) जिसकी पूजा की जा रही है।

I-8. जिसे मनुष्य घ्राणेन्द्रिय से नहीं सूंघता, जिससे घ्राणेन्द्रिय अपने विषयों की ओर आकर्षित होती है, उसे ही ब्रह्म जानो, न कि यह (गैर-ब्रह्म) जिसकी पूजा की जा रही है।

II-1. यदि तुम सोचते हो, 'मैं ब्रह्म को ठीक से जानता हूँ', तो तुमने ब्रह्म के (सच्चे) स्वरूप को बहुत कम जाना है। तुम उसके स्वरूप के बारे में जो जानते हो और देवताओं में जो स्वरूप जानते हो (वह भी बहुत कम है)। इसलिए तुम्हें अभी भी ब्रह्म के बारे में पूछताछ करनी है। मैं सोचता हूँ कि ब्रह्म मुझे ज्ञात है।

II-2. मैं नहीं सोचता कि मैं ब्रह्म को ठीक से जानता हूँ, न ही मैं सोचता हूँ कि वह अज्ञात है। मैं जानता हूँ (और मैं नहीं भी जानता हूँ)। हममें से जो जानता है, वह उसे (ब्रह्म को) जानता है; यह नहीं कि वह ज्ञात नहीं है, न ही यह कि वह ज्ञात है।

II-3. जो इसे नहीं जानता, वह इसे जानता है; जो इसे जानता है, वह इसे नहीं जानता। जो जानते हैं, उनके लिए यह अज्ञात है और जो नहीं जानते, उनके लिए भी यह ज्ञात है।

II-4. जब ब्रह्म को प्रत्येक चेतना की अवस्था में अंतरात्मा (ज्ञान की) के रूप में जाना जाता है, तब यह वास्तव में जाना जाता है, क्योंकि इस प्रकार व्यक्ति अमरता प्राप्त करता है। अपने स्वयं के द्वारा शक्ति प्राप्त होती है और ज्ञान के द्वारा अमरता प्राप्त होती है।

II-5. यहाँ यदि किसी ने बोध प्राप्त कर लिया है, तो सिद्धि है। यहाँ यदि किसी ने बोध प्राप्त नहीं किया है, तो घोर विनाश है। सभी प्राणियों में ब्रह्म को जानकर और इस संसार से विमुख होकर, ज्ञानी अमर हो जाता है।

III-1. यह सर्वविदित है कि ब्रह्म ने वास्तव में देवताओं के लिए विजय प्राप्त की। लेकिन उस विजय में जो ब्रह्म की थी, देवता प्रसन्न हुए।

III-2. उन्होंने सोचा, "यह विजय हमारी ही है, यह महिमा हमारी ही है"। ब्रह्म ने उनके इस अभिमान को जान लिया और उनके सामने प्रकट हुए, लेकिन वे नहीं जानते थे कि यह यक्ष (पूज्य प्राणी) कौन है।

III-3. उन्होंने अग्नि से कहा: "हे जातवेद, तुम यह जान लो कि यह यक्ष कौन है"। (उसने कहा:) "ऐसा ही हो।"

III-4. अग्नि उसके पास गया। उसने उससे पूछा, "तुम कौन हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं अग्नि हूँ या जातवेद हूँ"।

III-5. (उसने कहा:) "तुम्हारे अंदर ऐसी कौन सी शक्ति है, जैसी तुम हो?" (अग्नि ने कहा:) "मैं पृथ्वी पर मौजूद यह सब जला सकता हूँ।"

III-6. उसके लिए (उसने) वहाँ घास का एक तिनका रखा और कहा: "इसे जला दो"। (अग्नि) जल्दी-जल्दी उसके पास गया,लेकिन वह उसे जला नहीं सका। वह वहाँ से लौट आया (और कहा:) "मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि वह यक्ष कौन है"।

III-7. तब (देवताओं ने) वायु से कहा: "हे वायु, तुम यह जान लो कि यह यक्ष कौन है"। (उसने कहा:) "ऐसा ही हो"।

III-8. वायु उसके पास गया। उसने उससे पूछा, "तुम कौन हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं वायु हूँ या मैं मातरशिव हूँ"।

III-9. (उसने कहा:) "तुम्हारे अंदर ऐसी कौन सी शक्ति है, जो तुम हो?" (वायु ने कहा:) "मैं पृथ्वी पर मौजूद इस सब को पकड़ सकता हूँ"।

III-10. (उसने) उसके लिए वहाँ एक घास का तिनका रखा और कहा: "इसे उठाओ"। (वायु) जल्दी-जल्दी उसके पास गया, लेकिन वह उसे उठा नहीं सका। वह वहाँ से लौट आया (और कहा:) "मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि वह यक्ष कौन है"

III-11. तब (देवताओं ने) इंद्र से कहा: "हे माघव, तुम यह जान लो कि यह यक्ष कौन है"। (उसने कहा:) "ऐसा ही हो"। वह उसके पास गया, लेकिन वह उससे गायब हो गया।

III-12. उसी स्थान पर (जहाँ यक्ष गायब हो गया था) इंद्र एक अत्यंत आकर्षक महिला के पास गया। सोने से सजी उस उमा (या हिमालय की बेटी) से उसने पूछा: "यह यक्ष कौन है?"

IV-1. उसने कहा: "यह ब्रह्म था। ब्रह्म की जीत में तुम आनंदित हो रहे थे"। तभी इंद्र को निश्चित रूप से पता चला कि यह ब्रह्म था।

IV-2. इसलिए, ये देवता अर्थात अग्नि, वायु और इंद्र अन्य देवताओं से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि उन्होंने ब्रह्म को छुआ था जो बहुत करीब खड़ा था और वास्तव में पहले ही जान गया था कि यह ब्रह्म था।

IV-3. इसलिए इंद्र अन्य देवताओं से अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि उसने ब्रह्म को छुआ था जो बहुत करीब खड़ा था और वास्तव में पहले ही जान गया था कि यह ब्रह्म था।

IV-4. ध्यान के विषय में इसका निर्देश यह है। यह बिजली की चमक या आँख के झपकने के समान है। यह दिव्य पहलू में (ब्रह्म का सादृश्य) है।

IV-5. फिर व्यक्तिगत आत्मा के पहलू पर सादृश्य के माध्यम से निर्देश (अनुसरण करता है)। (यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि) मन उसे प्राप्त करता हुआ प्रतीत होता है, कि वह मन द्वारा निरंतर स्मरण किया जाता है, और मन (उसके संबंध में) विचार रखता है।

IV-6. वह ब्रह्म वास्तव में तद्वन (सभी प्राणियों के लिए पूजनीय या आराध्य) के रूप में जाना जाता है; उसे तद्वन के रूप में पूजा जाना चाहिए। जो उसे इस प्रकार जानता है, उससे सभी प्राणी प्रार्थना करते हैं।

IV-7. (शिष्य:) "आदरणीय महोदय, मुझसे उपनिषद बोलिए।" (गुरु:) "मैंने आपसे उपनिषद कहा है।

ब्रह्म के बारे में वास्तव में वह उपनिषद है जो मैंने कहा है।"

IV-8. इस ज्ञान के तप, संयम और कर्म पैर हैं, वेद सभी अंग हैं और सत्य ही निवास है।

IV -९। जो इस प्रकार जानता है, वह अपने पापों का नाश करके अनंत, आनंदमय और परम ब्रह्म में दृढ़तापूर्वक स्थित हो जाता है। वह (ब्रह्म में) दृढ़तापूर्वक स्थित हो जाता है। ॐ ! मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, बल और सभी इंद्रियाँ पूर्ण विकसित हों। उपनिषदों द्वारा जो कुछ प्रकट किया गया है, वह सब ब्रह्म है। मैं ब्रह्म को कभी अस्वीकार न करूँ: ब्रह्म मुझे कभी अस्वीकार न करे। ब्रह्म से कोई खंडन न हो; मेरी ओर से कोई विश्वासघात न हो। उपनिषदों द्वारा प्रशंसित सभी धर्म मुझमें प्रकाशित हों जो आत्मा को जानने का इच्छुक है। वे मुझमें प्रकाशित हों! ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ सामवेद में निहित केनापनिषद समाप्त होता है।

वे हम दोनों को (ज्ञान के फल को सुनिश्चित करके) बनाए रखें। हम दोनों एक साथ (ज्ञान की) शक्ति प्राप्त करें। हम जो सीखते हैं, उससे हमें ज्ञान मिले। हम एक दूसरे से घृणा न करें। ॐ! शांति! शांति! शांति!

००३ - कठोपनिषद

1-I-1. कथा के अनुसार, वासना के कारण, वाजश्रवा के पुत्र ने अपनी सारी संपत्ति दान कर दी। उनका एक पुत्र था जिसका नाम नचिकेता था।

1-I-2. यद्यपि वह युवा था, लेकिन जब उपहार लाए जा रहे थे, तो उसमें विश्वास था; उसने सोचा:

1-I-3. इन गायों ने (अंतिम बार) पानी पीया है, घास खाई है; उन्होंने अपना सारा दूध दे दिया है, और वे इंद्रियों से रहित हैं। वे लोक वास्तव में आनंदहीन हैं, जहाँ वह जाता है जो इन्हें अर्पित करता है।

1-I-4. फिर उसने अपने माता-पिता से कहा, "पिताजी, आप मुझे किसे देंगे?" दूसरी बार और तीसरी बार उसने ऐसा कहा। उससे (पिता ने) कहा, "मैं तुझे मृत्यु को सौंपता हूँ।"

1-1-5. बहुतों में मैं प्रथम हूँ, बहुतों में मैं मध्य में हूँ। यम का कौन-सा प्रयोजन है जो (मेरे पिता) आज मेरे द्वारा पूरा होगा?

1-1-6. सोचो कि तुम्हारे पूर्वज कैसे आचरण करते थे; देखो कि दूसरे लोग अब कैसे आचरण करते हैं। अनाज की तरह मनुष्य सड़ता है, और अनाज की तरह वह फिर से जन्म लेता है।

1-1-7. वैश्वानर (अग्नि) की तरह ब्राह्मण अतिथि घरों में प्रवेश करता है। लोग उसे प्रसन्न करने के लिए यह अर्पण करते हैं। हे वैश्वता (यम): (उसके लिए) जल लाओ।

1-1-8. आशा, अपेक्षा, (इन दोनों के प्रभाव) के साथ संबंध, सुखद प्रवचन, यज्ञ, धर्मपरायण उदारता के कार्य, पुत्र और पशु - ये सभी अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के मामले में नष्ट हो जाते हैं, जिसके घर में ब्राह्मण बिना भोजन के रहता है।

1-1-9. हे ब्राह्मण! चूँकि तुम एक पूज्य अतिथि हो और तीन रातों तक मेरे घर में बिना भोजन के रहे हो, इसलिए मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। हे ब्राह्मण! मुझे शांति मिले। इसलिए, इसके बदले में तीन वर माँग लो।

1-1-10. हे मृत्यु! गौतम (मेरे पिता) को चिंता से मुक्ति मिले, उनका मन शांत हो और वे क्रोध से मुक्त हो जाएँ, और जब तुम उन्हें मुक्त कर दोगे तो वे मुझे पहचान लें और मुझसे बात करें। तीन वर में से यह पहला है जिसे मैं चुनता हूँ।

1-1-11. अरुण का पुत्र औड्डालकी तुम्हें पहले की तरह पहचान लेगा और मेरी अनुमति से रातों में शांति से सोएगा और तुम्हें मृत्यु के मुँह से मुक्त देखकर क्रोध से मुक्त हो जाएगा।

1-1-12. स्वर्ग में कोई भय नहीं है, न तुम वहाँ हो, न बुढ़ापे का कोई भय है। भूख और प्यास दोनों को पार करके तथा शोक से ऊपर उठकर मनुष्य स्वर्ग में आनन्दित होता है।

1-1-13. हे मृत्यु, तू स्वर्ग की ओर ले जाने वाली अग्नि को जानता है। हे श्रद्धावान मुझको उस (अग्नि) के विषय में बता, जिससे स्वर्ग में रहने वाले अमरत्व प्राप्त करते हैं। इसे मैं अपना दूसरा वरदान मानता हूँ।

1-1-14. मैं तुझे भली-भाँति शिक्षा दूँगा; हे नचिकेता, मेरी बात सुन और समझ, मैं स्वर्ग की ओर ले जाने वाली अग्नि को जानता हूँ। उस अग्नि को जान जो स्वर्ग की प्राप्ति का साधन है, जो (ब्रह्माण्ड का) आधार है तथा गुहा में स्थित है।

1-1-15. मृत्यु ने उसे अग्नि, लोकों का स्रोत, (यज्ञवेदी बनाने के लिए) किस प्रकार की ईंटें, कितनी और कैसे (अग्नि प्रज्वलित करनी हैं) बताई और उसने (नचिकेता ने) भी जैसा कहा था, वैसा ही दोहराया। तब मृत्यु ने प्रसन्न होकर पुनः कहा:

1-1-16. प्रसन्न होकर भगवान ने उससे कहाः "मैं अब तुझे दूसरा वर देता हूँ। तेरे नाम से ही यह अग्नि जानी जाएगी और तू इस नाना रूपों वाली माला को स्वीकार कर।"

1-1-17. जो नचिकेता की अग्नि को तीन बार जलाता है और तीनों से युक्त होकर तीनों कर्म करता है, वह जन्म-मृत्यु से परे हो जाता है। ब्रह्मा से उत्पन्न, तेजस्वी और पूजनीय सर्वज्ञ को जानकर और उसका साक्षात्कार करके वह परम शांति को प्राप्त होता है।

1-1-18. जो इन तीनों (ईंट आदि के रूप) को जानकर इस ज्ञान से नचिकेता की अग्नि को एकत्रित करता है, वह शरीर के गिरने से पहले ही मृत्यु की जंजीरों को तोड़ देता है और शोक से ऊपर उठकर, स्वर्ग में आनन्दित होता है।

1-I-19. हे नचिकेता, यही वह अग्नि है जो स्वर्ग की ओर ले जाती है और जिसे तुमने दूसरे वरदान के रूप में चुना है। इस अग्नि के विषय में लोग तुम्हारे ही समान बोलेंगे। हे नचिकेता, तीसरा वरदान चुनो।

1-I-20. यह संदेह कि मृत्यु के पश्चात मनुष्य का क्या होता है - कुछ लोग कहते हैं कि वह होता है, और कुछ अन्य कहते हैं कि वह नहीं होता - मैं तुम्हारे द्वारा सिखाए जाने पर जानूंगा। वरदानों में से यह तीसरा वरदान है।

1-I-21. प्राचीन काल में देवताओं को भी यह संदेह था। यह विषय सूक्ष्म होने के कारण समझने में आसान नहीं है। हे नचिकेता, कोई दूसरा वरदान मांगो। मुझ पर दबाव मत डालो; मेरे लिए यह (वरदान) छोड़ दो।

1-I-22. (नचिकेता ने कहा:) चूँकि इस विषय में देवताओं को भी संदेह था और हे मृत्यु, तू कहता है कि यह सरलता से समझ में नहीं आता, इसलिए इस विषय में शिक्षा देने के लिए तेरे समान कोई दूसरा गुरु नहीं हो सकता और न ही इसके समान कोई दूसरा वरदान है।

1-1-23. सौ वर्ष तक जीवित रहने वाले पुत्र और पौत्र माँग। गाय-बैल, हाथी-सोना और घोड़े माँग तथा बहुत-सी पृथ्वी माँग और जितने पतझड़ ऋतुओं तक तू चाहे, जीवित रह।

1-1-24. यदि तू इसके समान कोई और वरदान समझता है, तो धन और दीर्घायु माँग। हे नचिकेता, तू एक विशाल देश का शासक बन; मैं तेरी सभी इच्छाओं का भोग करूँगा।

1-1-25. मनुष्य लोक में जो भी वस्तुएँ हैं, जो वांछित हैं, किन्तु जिन्हें पाना कठिन है, उन सभी वांछित वस्तुओं के लिए अपनी इच्छा के अनुसार प्रार्थना कर। यहाँ ये युवतियाँ हैं, जिनके पास रथ और वीणाएँ हैं, जिनके समान मनुष्य कभी नहीं पा सकते।

हे नचिकेता, मेरे द्वारा दी गई इन युवतियों से अपनी सेवा प्राप्त करो, मृत्यु के विषय में मत पूछो। हे मृत्यु! ये सब क्षणभंगुर हैं और मनुष्य की सभी इन्द्रियों की शक्ति को नष्ट कर देते हैं।

वास्तव में सारा जीवन भी छोटा है। रथ तुम्हारे ही हो, नृत्य और संगीत भी तुम्हारे ही हो। धन से मनुष्य संतुष्ट नहीं हो सकता। यदि हमें धन की आवश्यकता है, तो वह हमें केवल तुम्हारे दर्शन से ही मिल जाएगा। जब तक तुम राज्य करोगे, हम जीवित रहेंगे। परंतु (मेरे द्वारा) मांगा जाने वाला वरदान केवल यही है। अविनाशी और अमर का सम्पर्क प्राप्त करके, जो नाशवान नश्वर नीचे पृथ्वी पर निवास करता है, जो उच्चतर लक्ष्य को जानता है, वह सौंदर्य (वरिण) और क्रीड़ा (रति) तथा उसके आनन्द (प्रमोद) को जानकर दीर्घायु में आनन्दित होगा।

1-I-29. हे मृत्यु, हमें उस महान परे के विषय में बता, जिसके विषय में मनुष्य को संदेह है। नचिकेता इसके अतिरिक्त किसी अन्य वरदान की प्रार्थना नहीं करता, जो गुप्त रहस्य में प्रवेश करता है।

1-II-1. श्रेष्ठ (जो) है वह भिन्न है; और सुखदायक भी भिन्न है। ये दोनों भिन्न प्रयोजनों की पूर्ति करते हैं, मनुष्य को अंधा बना देते हैं। जो इन दोनों में से श्रेष्ठ को चुनता है, उसे कल्याण होता है। जो सुखदायक को चुनता है, वह लक्ष्य से गिर जाता है।

1-II-2. श्रेष्ठ और सुखदायक दोनों ही मनुष्य के निकट आते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति दोनों का परीक्षण करता है और उन्हें पृथक करता है। हाँ, बुद्धिमान मनुष्य सुखदायक की अपेक्षा अधिक प्रिय को पसंद करता है,

जबकि अज्ञानी मनुष्य योग (जो पहले से प्राप्त नहीं है उसकी प्राप्ति) और क्षेम (जो पहले से प्राप्त है उसकी रक्षा) के लिए सुखदायक को चुनता है।

1-II-3. हे नचिकेता! तुमने सभी प्रिय और लोभपूर्ण कामनाओं को उनकी व्यर्थता पर विचार करते हुए त्याग दिया है। तुमने धन का मार्ग स्वीकार नहीं किया है, जिसमें अनेक प्राणी नष्ट हो जाते हैं।

1-II-4. जिसे अज्ञान कहते हैं और जिसे ज्ञान कहते हैं, वे दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं और भिन्न-भिन्न मार्गों की ओर ले जाते हैं। मैं नचिकेता को ज्ञान का आकांक्षी मानता हूँ, क्योंकि कामनाएँ, यद्यपि अनेक हों, तुम्हें विमुख नहीं कर सकीं।

1-II-5. अज्ञान के बीच में रहते हुए और अपने को बुद्धिमान और ज्ञानी समझते हुए, अज्ञानी लोग टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर लड़खड़ाते हुए घूमते रहते हैं, जैसे अंधा अंधे के द्वारा चलाया जाता है।

1-II-6. जो व्यक्ति धन के मोह में पड़कर प्रमादी हो गया है, उस विवेकहीन व्यक्ति को परलोक प्राप्ति का साधन प्रकट नहीं होता। जो 'यही संसार है, दूसरा कुछ नहीं' ऐसा सोचता है, वह बार-बार मेरे वध को प्राप्त होता है।

1-II-7. आत्मा के विषय में बहुत से लोग सुन भी नहीं पाते; बहुत से लोग उसे सुनते हुए भी समझ नहीं पाते। आत्मा का व्याख्याता और प्राप्त करने वाला, प्रवीण व्यक्ति अद्भुत है। योग्य गुरु द्वारा सिखाया गया (आत्मा का) ज्ञाता अद्भुत है।

1-II-8. यह (आत्मा) यदि किसी निम्नतर व्यक्ति द्वारा सिखाई जाए, तो आसानी से समझ में नहीं आती, क्योंकि इसके बारे में अनेक प्रकार से विचार किया जाता है। जब तक किसी दूसरे (जो अभेद को समझने वाला है) द्वारा नहीं सिखाया जाता, तब तक इसे समझने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि यह तर्क करने योग्य नहीं है और सूक्ष्मता से भी सूक्ष्म है।

1-II-9. यह (आत्मा का ज्ञान) जो तुम्हें प्राप्त हुआ है, वह तर्क से नहीं मिल सकता। हे प्रियतम, यह सिद्धांत, केवल किसी शिक्षक (तर्कशास्त्री के अलावा) द्वारा सिखाए जाने पर ही सही ज्ञान की ओर ले जाता है। हे, तुम सत्य में निहित हो। हे नचिकेता, प्रश्नकर्ता सदैव तुम्हारे जैसा हो।

1-II-10. मैं जानता हूँ कि खजाना अनित्य है, क्योंकि जो स्थिर है, उसे अस्थाई चीजों से नहीं पाया जा सकता। इसलिए, मैंने अनित्य चीजों से नचिकेता अग्नि को प्रज्वलित किया है, और मैंने शाश्वत को प्राप्त कर लिया है।

1-II-11. समस्त कामनाओं की पूर्ति, जगत का आश्रय, यज्ञ का अनंत फल, अभय का दूसरा किनारा, प्रशंसनीय और महान् मार्ग, तथा अपनी श्रेष्ठ स्थिति - इन सबको देखकर तू बुद्धिमान होकर साहसपूर्वक इनका परित्याग कर दे।

1-2-12. बुद्धिमान पुरुष मन की एकाग्रता से उस आत्मा को, जो अनुभव करने में कठिन है, अंतरतम में स्थित है, बुद्धि में स्थित है, दुखों के बीच में स्थित है, और पुरातन है, जानकर सुख और शोक का परित्याग कर देता है।

1-2-13. यह सुनकर और भलीभाँति समझकर, मर्त्य पुरुष पुण्यात्मा को (शरीर आदि से) पृथक करके, इस सूक्ष्म आत्मा को प्राप्त करके, सुख देने वाली वस्तु को प्राप्त करके आनन्दित होता है। मैं समझता हूँ कि नचिकेता के लिए (ब्रह्म का) निवास खुला हुआ है।

1-2-14. वह जो तुम पुण्य से भिन्न, पाप से भिन्न, कार्य और कारण से भिन्न, भूत और भविष्य से भिन्न देखते हो, मुझे बताओ।

1-II-15. जिस लक्ष्य की सभी वेद व्याख्या करते हैं, जिसकी घोषणा सभी तप करते हैं और जिसकी इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य का आश्रय लेते हैं, वह लक्ष्य मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ: वह यह है - ॐ।

1-II-16. यह अक्षर (ॐ) वास्तव में (निम्न) ब्रह्म है; यह अक्षर वास्तव में उच्चतर ब्रह्म है; जो कोई इस अक्षर को जानता है, वह वास्तव में जो चाहता है उसे प्राप्त करता है।

1-II-17. यह आधार सर्वोत्तम है; यह आधार सर्वोच्च है। इस आधार को जानने वाला ब्रह्म के जगत में महान हो जाता है।

1-II-18. बुद्धिमान आत्मा न तो पैदा होती है, न ही वह मरती है। वह कहीं से नहीं आई है, न ही उससे कुछ आया है। वह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, तथा शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता।

1-II-19. यदि मारनेवाला यह समझे कि मैं उसे मार रहा हूँ और यदि मारा गया व्यक्ति उसे मारा हुआ समझे, तो वे दोनों नहीं जानते, क्योंकि वह न तो मारता है और न ही मारा जाता है।

1-II-20. वह आत्मा जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान है, प्रत्येक प्राणी के हृदय में विराजमान है। जो कामनाओं से मुक्त है, वह मन और इन्द्रियों की शांति से आत्मा की महिमा को देखता है और शोक से मुक्त हो जाता है।

1-II-21. बैठे रहने पर वह दूर चला जाता है, लेटे रहने पर वह सब जगह चला जाता है। उस देवता को जो आनन्दमय और आनन्दरहित है, मेरे सिवा और कौन जान सकता है।

1-II-22. बुद्धिमान पुरुष आत्मा को (सब) शरीरों में अशरीरी, नाशवान वस्तुओं में स्थित, महान् तथा सर्वव्यापक जानकर शोक नहीं करता।

1-2-23. आत्मा को वेदों के अध्ययन से, बुद्धि से या अधिक श्रवण से प्राप्त नहीं किया जा सकता। जो आत्मा को जानने का इच्छुक है, वही उसे प्राप्त कर सकता है। आत्मा उसे अपना स्वरूप प्रकट करती है।

1-2-24. जो व्यक्ति बुरे आचरण से विरत नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ संयम में नहीं हैं, जिसका मन संयमित नहीं है अथवा जो शान्त मन को धारण नहीं करता, वह ज्ञान के द्वारा इस आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

1-2-25. जिस आत्मा के लिए ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही भोजन हैं, और मृत्यु सूप है, वह इस प्रकार कैसे जान सकता है कि वह कहाँ है?

1-3-1. ब्रह्म के ज्ञाता और जो पांच अग्नि को प्रज्वलित करते हैं तथा नचिकेता अग्नि को तीन बार प्रसन्न करते हैं, वे प्रकाश और छाया की बात करते हैं, जो पुण्य कर्मों के फल का भोग करते हैं, तथा शरीर के भीतर, अंतरतम गुहा (हृदय) में, परम धाम (ब्रह्म का) में प्रवेश करते हैं।

1-III-2. हम नचिकेता अग्नि को जानने में सक्षम हों जो यज्ञकर्ताओं के लिए सेतु है, साथ ही वह अग्नि जो यज्ञकर्ताओं के लिए सेतु है।अविनाशी ब्रह्म, निर्भय, तथा पार करने की इच्छा रखने वालों के लिए दूसरा किनारा।

1-III-3. आत्मा को रथ का स्वामी जानो, और शरीर को रथ। बुद्धि को सारथी जानो, और मन को लगाम।

1-III-4. इन्द्रियों को वे घोड़े कहते हैं; उनकी दृष्टि में जो विषय हैं, वे मार्ग हैं। जब आत्मा मन और इन्द्रियों के साथ जुती होती है, तब बुद्धिमान लोग उसे भोक्ता कहते हैं।

1-III-5. किन्तु जो विवेक से रहित है और जिसका मन सदैव असंयत रहता है - उसकी इन्द्रियाँ सारथी के दुष्ट घोड़ों के समान अनियंत्रित होती हैं।

1-III-6. किन्तु जो विवेकशील है और जिसका मन सदैव असंयत रहता है - उसकी इन्द्रियाँ सारथी के अच्छे घोड़ों के समान नियंत्रण में रहती हैं।

1-III-7. परन्तु जो विवेक बुद्धि से रहित है, असंयमी मन वाला है और सदा अशुद्ध है, वह उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं करता, अपितु संसार में जाता है।

1-III-8. परन्तु जो विवेक बुद्धि और संयमित मन वाला है, तथा सदा शुद्ध है, वह उस लक्ष्य को प्राप्त करता है, जिससे उसका पुनः जन्म नहीं होता।

1-III-9. परन्तु जिस मनुष्य का चालक विवेक बुद्धि है, तथा लगाम संयमित मन है, वह मार्ग के अंत को प्राप्त होता है - विष्णु की उस परम अवस्था को।

1-III-10. इन्द्रिय विषय इन्द्रियों से सूक्ष्मतर हैं, तथा इन्द्रिय विषयों से सूक्ष्मतर है मन। परन्तु मन से बुद्धि सूक्ष्मतर है, तथा बुद्धि से सूक्ष्मतर है महत् (हिरण्यगर्भ)।

1-III-11. अव्यक्त (अव्यक्त) महत् (हिरण्यगर्भ) से सूक्ष्मतर है, तथा अव्यक्त से सूक्ष्मतर है पुरुष। पुरुष से अधिक सूक्ष्म कुछ भी नहीं है। वही अन्त है, वही परम लक्ष्य है।

1-III-12. समस्त प्राणियों में छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशित नहीं होता। किन्तु सूक्ष्म तथा तीक्ष्ण बुद्धि वाले द्रष्टाओं द्वारा, जो सूक्ष्म वस्तुओं को देखने में समर्थ हैं, उसे देखा जाता है।

1-III-13. बुद्धिमान पुरुष वाणी को मन में, उस (मन को) को बुद्धिमान आत्मा में तथा बुद्धिमान आत्मा को महात् में विलीन कर दे। (तब) वह महात् को शान्त आत्मा में विलीन कर दे।

1-III-14. उठ, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर सीखो, क्योंकि वह मार्ग छुरे की धार के समान तीक्ष्ण, अगम्य तथा कठिन है, ऐसा बुद्धिमान कहते हैं।

1-III-15. जो ध्वनिरहित, स्पर्शरहित, निराकार, अविनाशी है, तथा स्वादरहित, नित्य, गंधरहित, आदिरहित, अनन्त, महात् से भी सूक्ष्म तथा नित्य है, उसे जानकर मनुष्य मृत्यु के मुँह से मुक्त हो जाता है।

१-३-१६. मृत्यु द्वारा कही गई नचिकेता की इस सनातन कथा को सुनकर बुद्धिमान पुरुष ब्रह्मलोक में यश प्राप्त करता है।

१-३-१७. जो मनुष्य पवित्र होकर ब्राह्मणों की सभा में अथवा श्राद्ध के समय इस परम रहस्य को कहता है, उसे वह (अनुष्ठान) अनंत फल प्रदान करता है।

२-१-१. स्वयंभू ने बहिर्गामी इन्द्रियों को धिक्कार दिया है। इसलिए मनुष्य बाह्य को देखता है, आंतरिक को नहीं। जो बुद्धिमान है, वह अपनी आँखें दूसरी ओर करके अमरता की इच्छा रखता है, वह आंतरिक आत्मा को देखता है।

२-१-२. मूर्ख बाह्य सुखों के पीछे जाते हैं, वे व्यापक मृत्यु के जाल में फँस जाते हैं। परंतु बुद्धिमान पुरुष अमरता को नित्य जानकर कभी भी अस्थिर वस्तुओं की लालसा नहीं करते।

२-१-३. आत्मा के द्वारा ही मनुष्य रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श और काम-सुख को जानता है। यहाँ क्या शेष रह जाता है (आत्मा के लिए अज्ञात)? यही है (तुम खोज रहे हो)।

2-1-4. जिस महान् और सर्वव्यापक आत्मा के द्वारा मनुष्य सुषुप्ति और जाग्रत अवस्था में (विषयों को) देखता है, उसे जानकर बुद्धिमान पुरुष फिर शोक नहीं करता।

2-1-5. जो मधुभक्षक, प्राणों का पोषक और भूत और भविष्य का स्वामी आत्मा को भली-भाँति जानता है, वह फिर अपनी रक्षा नहीं करेगा। यही है (तुम खोज रहे हो)।

2-1-6. जो जल से पहले तपस से उत्पन्न हुए प्रथम पुरुष (ब्रह्म) को देख लेता है, जो हृदयगुहा में प्रविष्ट होकर वहाँ स्थित है, वह उसी ब्रह्म को देख लेता है।

2-1-7. जो इस अदिति को देखता है, जो प्राण के रूप में उत्पन्न होती है, जिसमें सभी देवता समाहित हैं, जो तत्त्वों के साथ प्रकट होती है, तथा जो हृदय के गुहा में प्रविष्ट होकर वहाँ स्थित है, वह उसी ब्रह्म को देखता है।

2-1-8. गर्भिणी स्त्री द्वारा गर्भ को सावधानी से धारण किए जाने के समान ही दोनों अरणियों में स्थित (यज्ञ) अग्नि जागृत और हवियुक्त पुरुषों द्वारा प्रतिदिन पूजने योग्य है।

2-1-9. जिसमें से सूर्य उदय होता है और जिसमें अस्त होता है, उसमें सभी देवता स्थित हैं। उससे आगे कोई नहीं जाता।

2-1-10. जो यहाँ है, वह वहाँ है; जो वहाँ है, वह फिर यहाँ है। जो यहाँ भिन्न देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु में चला जाता है।

2-1-11. यह केवल मन से ही प्राप्त हो सकता है, यहाँ कोई भेद नहीं है। जो यहाँ भिन्न देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु में चला जाता है।

2-1-12. अँगूठे के बराबर पुरुष शरीर में निवास करता है। उसे भूत और भविष्य का स्वामी समझकर मनुष्य अपने को बचाना नहीं चाहता। यही (तुम चाहते हो) है।

2-1-13. अँगूठे के बराबर पुरुष धूमरहित ज्वाला के समान है और भूत और भविष्य का स्वामी है। वह अवश्य ही अभी है और अवश्य ही कल भी रहेगा। यही (तुम चाहते हो) है।

2-1-14. जैसे पर्वत की चोटी पर गिरा हुआ वर्षा का जल चट्टानों से नीचे बहता है, वैसे ही आत्मा को भिन्न रूप में देखने वाला केवल उन्हीं के पीछे भागता है।

2-1-15. हे गौतम, जैसे शुद्ध जल में डाला गया शुद्ध जल एक ही रहता है, वैसे ही विचारक का आत्मा जो ऐसा जानता है, वही हो जाता है।

2-II-1. जिसका ज्ञान सूर्य के प्रकाश के समान है, उस अजन्मे के नगर में ग्यारह द्वार हैं। उसका ध्यान करने से मनुष्य शोक नहीं करता और बंधन से मुक्त होकर मुक्त हो जाता है। यही वास्तव में वही है (जिसे तुम चाहते हो)।

2-II-2. वह गति (सूर्य) के रूप में स्वर्ग में रहता है; (वायु) के रूप में, वह सब में व्याप्त है और अंतरिक्ष में रहता है; अग्नि के रूप में, पृथ्वी पर; अतिथि के रूप में, घरों में; वह मनुष्यों में रहता है; देवताओं में रहता है; सत्य में रहता है और अंतरिक्ष में रहता है। वह सब है जो जल में पैदा होता है, जो पृथ्वी पर पैदा होता है, जो यज्ञों में पैदा होता है और जो पहाड़ों पर पैदा होता है; वह अपरिवर्तनीय और महान है।

2-II-3. (वह) प्राण को ऊपर उठाता है और अपान को नीचे की ओर फेंकता है। जो आराध्य है और मध्य में विराजमान है, उसी की सभी देवता पूजा करते हैं।

2-II-4. जब शरीर में स्थित यह आत्मा शरीर से अलग होकर मुक्त हो जाती है, तब यहाँ क्या शेष रह जाता है?यही (तुम खोज रहे हो)

2-II-5. न तो प्राण से, न अपान से, बल्कि सभी प्राणी किसी अन्य वस्तु से जीवित रहते हैं, जिस पर ये दोनों निर्भर हैं।

2-II-6. हे गौतम! मैं तुम्हें इस गुप्त प्राचीन ब्रह्म का वर्णन करूँगा और यह भी कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है।

2-II-7. कुछ जीव शरीर धारण करने के लिए गर्भ में प्रवेश करते हैं; अन्य अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार अचल में चले जाते हैं।

2-II-8. यह पुरुष जो सभी के सो जाने पर भी जागता है, सभी प्रिय वस्तुओं की रचना करता है, वह निश्चित रूप से शुद्ध है;

वही ब्रह्म है; उसे अमर कहते हैं। सभी लोक उसी पर टिके हुए हैं; कोई भी उससे आगे नहीं जाता।

2-II-9. जिस प्रकार अग्नि एक होने पर भी संसार में प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूप के सम्बन्ध में पृथक रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों में विद्यमान आत्मा भी एक होने पर भी प्रत्येक रूप के सम्बन्ध में पृथक रूप धारण कर लेती है और उससे बाहर रहती है।

2-II-10. जिस प्रकार वायु एक होने पर भी संसार में प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूप के सम्बन्ध में पृथक रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों में विद्यमान आत्मा भी एक होने पर भी प्रत्येक रूप के सम्बन्ध में पृथक रूप धारण कर लेती है और उससे बाहर रहती है।

2-II-11. जिस प्रकार सूर्य जो समस्त संसार का नेत्र है, बाह्य अशुद्धियों से कलंकित नहीं होता।इसी प्रकार, सब प्राणियों में जो अन्तर्यामी आत्मा है, वह

एक होने पर भी बाह्य होने के कारण संसार के दुःखों से कलंकित नहीं होती।

2-II-12. शाश्वत सुख बुद्धिमानों को है - दूसरों को नहीं - जो अपने हृदय में उस एक को, जो सब प्राणियों का नियंत्रक और अन्तर्यामी आत्मा है, तथा जो एक रूप को अनेक रूप में बना देता है, अनुभव करते हैं।

2-II-13. बुद्धिमानों में से जो कोई हृदय के अन्तर्यामी आत्मा को, जो अनित्य में भी अनन्त है, चेतन में भी चैतन्य है, जो एक होने पर भी अनेकों को इच्छित वस्तुएँ प्रदान करता है, शाश्वत शान्ति उन्हीं को है, दूसरों को नहीं।

2-II-14. जिस अवर्णनीय और परम आनन्द को वे 'यह' समझते हैं, उसे मैं कैसे जानूँ? क्या वह स्वयं प्रकाशमान है या वह स्पष्ट रूप से चमकता है, (स्वयं को बुद्धि के लिए बोधगम्य बनाता है), या नहीं?

2-II-15. वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा और तारे चमकते हैं, न ये बिजलियाँ चमकती हैं। फिर यह अग्नि कैसे चमक सकती है? जो चमकता है, उसके पीछे-पीछे सब चमकते हैं। उसी के प्रकाश से यह सब चमकता है।

2-III-1. यह पीपल का वृक्ष जिसकी जड़ ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं, सनातन है। जो इसका मूल है, वह निश्चित रूप से शुद्ध है; वही ब्रह्म है और उसे अमर कहा जाता है। उसी पर सारे लोक बँधे हुए हैं; उससे आगे कोई नहीं जाता। यही वास्तव में वही है (जिसे तुम खोज रहे हो)।

2-III-2. यह सारा जगत् ब्रह्म से उत्पन्न होकर प्राण में (ब्रह्म में) गति करता है; यह अत्यंत भयावह है, जैसे उठा हुआ वज्र। जो इसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

2-III-3. उसी के भय से अग्नि जलती है; उसी के भय से सूर्य चमकता है; उसी के भय से इन्द्र और वायु कार्य करते हैं; उसी के भय से पाँचवाँ मृत्यु पृथ्वी पर घूमता है।

2-III-4. यदि कोई शरीर के गिरने से पहले यहाँ जान सके, (तो वह मुक्त हो जाता है); (यदि नहीं), तो वह प्राणियों के लोकों में देह धारण करने के योग्य हो जाता है।

2-III-5. जैसा दर्पण में होता है, वैसा ही बुद्धि में होता है; जैसा स्वप्न में होता है, वैसा ही पितरों के लोक में होता है; जैसा जल में होता है, वैसा ही गंधर्वों के लोक में होता है; जैसा छाया और प्रकाश में होता है, वैसा ही ब्रह्म के लोक में होता है।

2-III-6. बुद्धिमान मनुष्य इन्द्रियों के भिन्न-भिन्न स्वरूप को (उनके कारणों से) अलग-अलग उत्पन्न होने वाले तथा उनके उदय और अस्त होने को जानकर शोक नहीं करता।

2-III-7. इन्द्रियों से मन सूक्ष्म है; मन से भी सूक्ष्म बुद्धि है; बुद्धि से भी सूक्ष्म महत् (हिरण्यगर्भ) है; महत् से भी सूक्ष्म अव्यक्त है।

2-III-8. परंतु अव्यक्त से भी सूक्ष्म है पुरुष, सर्वव्यापक और लिंग रहित, जिसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है और अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

2-III-9. उसका स्वरूप दर्शन की सीमा में नहीं आता, उसे कोई भी नेत्र से नहीं देख सकता। मन को वश में करने वाली बुद्धि द्वारा और ध्यान के द्वारा वह प्रकट होता है। जो इसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

2-III-10. जब ज्ञान की पाँचों इन्द्रियाँ मन के साथ शान्त हो जाती हैं और बुद्धि क्रियाशील नहीं रहती, उस अवस्था को वे सर्वोच्च कहते हैं।

2-III-11. इन्द्रियों पर उस स्थिर संयम को वे योग कहते हैं। तब मनुष्य सजग हो जाता है, क्योंकि योग उत्पन्न भी हो सकता है और नष्ट भी हो सकता है।

2-III-12. न वाणी से, न मन से, न नेत्र से उसे प्राप्त किया जा सकता है। 'यह है' कहने वाले के अतिरिक्त और कोई इसे कैसे जान सकता है?

2-III-13. आत्मा को विद्यमान रूप में भी समझना चाहिए और जैसा वह वास्तव में है, वैसा भी समझना चाहिए। इन दो (पहलूओं) में से, जो उसे विद्यमान जानता है, उसे उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

2-III-14. जब हृदय में स्थित सभी लालसाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है और यहाँ ब्रह्म को प्राप्त करता है।

2-III-15. जब हृदय की सभी गाँठें यहाँ कट जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है। बस इतना ही निर्देश है।

2-III-16. हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। उनमें से एक सिर को भेदकर बाहर निकल जाती है। उससे ऊपर जाकर मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है, बाकी अन्य विभिन्न मार्गों से प्रस्थान करने का काम करती हैं।

2-III-17. अँगूठे के आकार का पुरुष, आंतरिक आत्मा, सभी जीवों के हृदय में हमेशा विराजमान रहता है।मनुष्य को चाहिए कि वह स्थिर भाव से अपने शरीर से मुंज घास के डंठल की तरह उसे अलग कर दे। उसे शुद्ध और अमर जानना चाहिए; उसे शुद्ध और अमर जानना चाहिए।

2-III-18. तब नचिकेता ने मृत्यु द्वारा दिए गए इस ज्ञान को, तथा योग के उपदेशों को सम्पूर्णता से प्राप्त करके, वैराग्यवान और अमर होकर ब्रह्म को प्राप्त किया। जो कोई भी इस प्रकार अंतरात्मा को जानता है, वह भी ऐसा ही हो जाता है।

ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे (ज्ञान की प्रकृति को प्रकाशित करके)। वह हम दोनों का पालन करे (ज्ञान के फल को सुनिश्चित करके)।

हम दोनों मिलकर (ज्ञान की) शक्ति प्राप्त करें। हम जो सीखें, उससे हमें ज्ञान मिले। हम एक दूसरे से द्वेष न करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद में निहित कठोपनिषद् समाप्त होता है।

००४ - प्रश्न उपनिषद

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ वचन सुनें;यज्ञ करते समय,हम अपनी आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें;स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते समय,हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें।प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों;सर्वधनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता)हम पर कृपा करें;बुराई का नाश करने वाले गरुड़ हम पर कृपा करें;बृहस्पति हमारा कल्याण करें।
ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

I-1: भारद्वाज के पुत्र सुकेश; शिबि के पुत्र सत्यकाम; सूर्य के पौत्र, गर्ग के कुल में जन्मे; अश्वल के पुत्र कौशल्या; विदर्भ में जन्मे भृगु के वंश के वंशज; तथा कात्य की सन्तान कबन्धी - ये सभी, जो (निम्न) ब्रह्म के प्रति समर्पित थे, (निम्न) ब्रह्म को जानने में लगे हुए थे, तथा परम ब्रह्म की खोज में लगे हुए थे, वे हाथ में लकड़ियाँ लेकर पूज्य पिप्पलाद के पास इस विश्वास के साथ पहुँचे कि, "यह हमें अवश्य ही सब कुछ बता देगा।"

1-2: उनसे ऋषि ने कहा, "इन्द्रियों पर संयम रखते हुए, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के साथ, एक वर्ष तक यहाँ फिर से रहो। फिर जो चाहो पूछो। यदि हमें पता चल जाए, तो हम तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर दे देंगे।"

1-3: तत्पश्चात् कात्य की सन्तान कबन्धी ने उनके पास आकर पूछा, "पूज्यवर, ये सभी प्राणी किससे उत्पन्न हुए हैं?"

1-4: उनसे उन्होंने कहा: समस्त प्राणियों के स्वामी को सन्तान की इच्छा हुई। उन्होंने (पूर्व वैदिक) ज्ञान पर विचार किया। उस ज्ञान पर विचार करके उन्होंने अन्न और प्राण की जोड़ी बनाई, इस विचार के साथ कि "ये दोनों मेरे लिए अनेक प्रकार से प्राणियों को उत्पन्न करेंगे।"

1-5: सूर्य प्राण है और अन्न चन्द्रमा है। जो कुछ भी स्थूल या सूक्ष्म है, वह अन्न ही है।स्थूल, सूक्ष्म से भिन्न, निश्चित रूप से सूक्ष्म का भोजन है।

I-6: अब, तथ्य यह है कि सूर्य, उदय होते हुए, पूर्व दिशा में प्रवेश करता है, जिससे वह पूर्व में सभी प्राणियों को अपनी किरणों में अवशोषित कर लेता है। यह कि वह दक्षिण में प्रवेश करता है, यह कि वह पश्चिम में प्रवेश करता है, यह कि वह उत्तर में प्रवेश करता है, यह कि वह नादिर और चरम पर पहुंचता है, यह कि वह राशि चक्र के मध्यवर्ती बिंदुओं में प्रवेश करता है, यह कि वह सभी को प्रकाशित करता है, जिससे वह सभी जीवित चीजों को अपनी किरणों में अवशोषित करता है।

I-7: वही उगता है जो प्राण और अग्नि है, जो सभी प्राणियों के साथ पहचाना जाता है, और जो सभी रूपों से युक्त है। यह वही है, जिसका उल्लेख किया गया है, मंत्र द्वारा कहा गया है:

I-8: (ब्रह्म को जानने वाले) उस एक को जानते थे जो सभी रूपों से युक्त है, किरणों से भरा है, प्रकाश से संपन्न है, सबका आश्रय है, (सबका एक प्रकाश) और गर्मी का रेडिएटर है। सूर्य ही उदय होता है - वह सूर्य जो सहस्र किरणों वाला है, सौ रूपों में स्थित है और समस्त प्राणियों का प्राण है।

1-9: वर्ष वास्तव में प्राणियों का स्वामी है। उसके दो मार्ग हैं - दक्षिण और उत्तर। इस प्रकार जो लोग इस प्रकार कर्म के फलस्वरूप यज्ञ और लोकहित आदि का पालन करते हैं, वे चन्द्रलोक को जीत लेते हैं। वे ही लौटकर आते हैं। (क्योंकि ऐसा है), अतः ये स्वर्ग के ऋषि, जो संतान की इच्छा रखते हैं, दक्षिण मार्ग को प्राप्त करते हैं। जो पितरों का मार्ग है, वही वास्तव में अन्न है।

1-10: फिर वे इन्द्रियों के संयम, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और ध्यान के द्वारा आत्मा की खोज करके उत्तर मार्ग से चलकर सूर्य को जीत लेते हैं। यही सब प्राणियों का आश्रय है; यही अविनाशी है; यही निर्भय है; यही परम लक्ष्य है, क्योंकि यहीं से वे लौटकर नहीं आते। यह बात (अज्ञानी के लिए) अवास्तविक है। इस विषय में यहाँ एक श्लोक है:

1-11: कुछ लोग (सूर्य को) पाँच पैरों वाला, पिता के समान, बारह अंगों वाला, तथा आकाश के ऊपर ऊँचे स्थान में जल से भरा हुआ बताते हैं। लेकिन कुछ लोग उसे सर्वज्ञ कहते हैं और कहते हैं कि सात पहियों और छः तीलियों वाला, उस पर (सारा ब्रह्माण्ड) स्थित है।

1-12: मास ही सब प्राणियों का स्वामी है। कृष्ण पक्ष उसका भोजन है और शुक्ल पक्ष उसका प्राण है। इसलिए ये ऋषिगण शुक्ल पक्ष में यज्ञ करते हैं। अन्य लोग शुक्ल पक्ष में यज्ञ करते हैं।

1-13: दिन और रात सब प्राणियों के स्वामी हैं। दिन ही उसका प्राण है और रात्रि ही उसका भोजन है। जो लोग दिन में काम-वासना में लिप्त रहते हैं, वे प्राण को नष्ट कर देते हैं। जो लोग रात में काम-वासना में लिप्त रहते हैं, वे ब्रह्मचर्य के समान हैं।

1-14: भोजन ही सब प्राणियों का स्वामी है। उसी से मनुष्य बीज उत्पन्न होता है। उसी से ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं।

1-15: ऐसा होने पर जो प्राणीमात्र के स्वामी का सुविख्यात व्रत धारण करते हैं, उनके पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न होती हैं। उन्हीं के लिए यह चन्द्रमा का लोक है, जिसमें व्रत और संयम है, तथा जिसमें मिथ्यात्व का सदा परित्याग है।

1-16: उन्हीं के लिए ब्रह्म का वह निष्कलंक लोक है, जिसमें कोई कुटिलता, कोई मिथ्यात्व और कोई कपट नहीं है।

2-1: इसके पश्चात विदर्भ में जन्मे भृगुवंश के एक वंशज ने उनसे पूछा, "महाराज, वास्तव में कितने देवता हैं जो प्राणी का पालन करते हैं? उनमें से कौन इस महिमा को प्रदर्शित करता है? फिर उनमें कौन प्रमुख है?"

2-2: उन्होंने उससे कहा: वास्तव में आकाश ही यह देवता है, जैसे वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वाणी, मन, आँख और कान। वे अपनी महिमा प्रकट करते हुए कहते हैं, "निःसंदेह हम ही इस शरीर को विघटित न होने देकर इसे एक साथ रखते हैं।"

2-3: उनसे प्राण प्रमुख ने कहा, "भ्रमित न हो। मैं ही हूँ जो अपने को पाँच भागों में बाँटकर इसे विघटित न होने देता हूँ।" वे अविश्वासी बने रहे।

2-4: वे क्रोध के कारण शरीर से ऊपर उठते हुए प्रतीत हुए। जैसे ही वे ऊपर चढ़े, अन्य सभी भी तुरंत ऊपर चढ़ गए; और जब वे शांत हो गए, तो अन्य सभी भी अपनी स्थिति में आ गए। जैसे संसार में मधुमक्खियों के राजा के अनुसार सभी मधुमक्खियाँ उड़ती हैं और उनके ऐसा करते ही वे भी शांत हो जाती हैं, वैसे ही वाणी, मन, आँख, कान आदि भी व्यवहार करते हैं। प्रसन्न होकर वे प्राण की स्तुति करने लगे।

2-5: यह (अर्थात प्राण) अग्नि के समान जलता है, यह सूर्य है, यह बादल है, यह इन्द्र और वायु है, यह पृथ्वी और अन्न है। यह देवता स्थूल और सूक्ष्म है, साथ ही वह भी है जो अमृत है।

2-6: रथ के पहिये की धुरी पर लगे तीलियों के समान प्राण पर सभी चीजें - ऋक्, यजु, समास, यज्ञ, क्षत्रिय और ब्राह्मण - स्थिर हैं।

2-7: यह आप ही हैं जो सृष्टि के स्वामी के रूप में गर्भ में विचरण करते हैं, और आप ही माता-पिता की छवि के अनुसार जन्म लेते हैं। हे प्राण, यह आप ही हैं, जो इंद्रियों के साथ रहते हैं, कि ये सभी प्राणी उपहार ले जाते हैं।

2-8: आप देवताओं को सर्वश्रेष्ठ संचारक (अर्पण) हैं। आप पितरों को अर्पित किए जाने वाले भोजन हैं जो अन्य अर्पण से पहले किया जाता है। आप उन इंद्रियों का सही आचरण हैं जो शरीर का सार हैं और जिन्हें अथर्व के रूप में जाना जाता है।

2-9: हे प्राण, तुम इन्द्र हो। अपने पराक्रम से तुम रुद्र हो, और तुम ही सब ओर के पालनहार हो।तुम आकाश में घूमते हो - तुम सूर्य हो, सब ज्योतियों के स्वामी हो।

2-10: हे प्राण, जब तुम बरसते हो (वर्षा के रूप में), तब तुम्हारे ये प्राणी इस विश्वास के साथ प्रसन्न रहते हैं कि "हमारे हृदय की तृप्ति के लिए भोजन उत्पन्न होगा।"

2-11: हे प्राण, तुम अपवित्र हो, तुम अग्नि हो, तुम भक्षक हो, और तुम ही सबका स्वामी हो। हम (तुम्हारे) अन्नदाता हैं। हे मातरिश्व, तुम हमारे पिता हो।

2-12: अपने उस भाव को शांत करो जो वाणी में स्थित है, जो कान में है, जो आँख में है, और जो मन में व्याप्त है। ऊपर मत उठो।

2-13: यह सब (इस संसार में), और स्वर्ग में जो कुछ भी है, वह सब प्राण के अधीन है। जैसे माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है, वैसे ही आप हमारी रक्षा करें और हमारे लिए तेज और बुद्धि का विधान करें।

तृतीय-१: तब अश्वल के पुत्र कौशल्या ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, यह प्राण कहाँ से उत्पन्न होता है? यह इस शरीर में कैसे आता है? यह फिर किस प्रकार विभाजित होकर निवास करता है? यह किस प्रकार विदा होता है? यह बाह्य वस्तुओं को किस प्रकार धारण करता है और भौतिक वस्तुओं को किस प्रकार धारण करता है?"

तृतीय-२: उन्होंने उनसे कहा: आप असाधारण प्रश्न पूछ रहे हैं, क्योंकि आप सर्वोपरि ब्रह्म के ज्ञाता हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ।

तृतीय-३: यह प्राण आत्मा से उत्पन्न होता है। जैसे मनुष्य के रहने पर छाया पड़ सकती है, वैसे ही यह प्राण आत्मा में स्थित है। यह मन के कर्मों के कारण इस शरीर में आता है।

तृतीय-४: जैसे राजा ही अधिकारियों को यह कहकर नियुक्त करता है कि "इन गाँवों और उन गाँवों पर शासन करो", वैसे ही प्राण अन्य इन्द्रियों को अलग-अलग लगाता है।

3-5: वे अपान को दो निचले छिद्रों में रखते हैं। प्राण स्वयं मुख और नासिका से निकलकर नेत्रों और कानों में रहता है। तथापि, बीच में समान है, क्योंकि यह खाया हुआ सारा भोजन समान रूप से वितरित करता है। उसी से ये सात ज्वालाएँ निकलती हैं।

III-6: यह आत्मा (अर्थात सूक्ष्म शरीर) निश्चित रूप से हृदय में है। एक सौ एक (मुख्य) नाड़ियाँ हैं। उनमें से प्रत्येक में एक सौ (विभाग) हैं। प्रत्येक शाखा बहत्तर हजार उप शाखाओं में विभाजित है। उनमें से व्यान चलता है।

III-7: अब उदान, जब अपनी ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति में होता है, तो पुण्य के फलस्वरूप पुण्य लोक की ओर, पाप के फलस्वरूप पाप लोक की ओर तथा दोनों के फलस्वरूप मनुष्य लोक की ओर ले जाता है।

III-8: सूर्य वास्तव में बाह्य प्राण है। यह नेत्र में इस प्राण को अनुकूल बनाकर ऊपर उठता है। वह देवता, जो पृथ्वी में है, मनुष्य में अपान को आकर्षित करके अनुकूल बनाता है। भीतर जो स्थान (अर्थात वायु) है, वह समान है। (सामान्य) वायु व्यान है।

III-9: जिसे यदि प्रकाश के रूप में जाना जाता है, वह उदान है। इसलिए, जो अपना प्रकाश बुझा लेता है, वह अपने मन में प्रवेश करने वाली इंद्रियों के साथ पुनर्जन्म प्राप्त करता है।

III-10: जो कुछ भी विचार उसके मन में था (मृत्यु के समय), वह प्राण में प्रवेश करता है। प्राण, उदान के साथ और आत्मा के साथ मिलकर उसे उसके इच्छित लोक में ले जाता है।

III-11: जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकार प्राण को जानता है, उसकी संतान की वंशावली कभी नहीं टूटती। वह अमर हो जाता है। इसके संबंध में यह मंत्र है।

III-12: प्राण की उत्पत्ति, आगमन, निवास और पंचविध प्रभुता तथा भौतिक अस्तित्व को जानने के बाद, मनुष्य अमरता को प्राप्त करता है।

चतुर्थ-१: तब गर्ग के कुल में उत्पन्न सूर्य के पौत्र ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, इस व्यक्ति में कौन-कौन सी इन्द्रियाँ सो जाती हैं? इसमें कौन-कौन सी इन्द्रियाँ जागती रहती हैं? स्वप्न देखने वाला देवता कौन है? यह सुख किसको प्राप्त होता है? सब किसमें विलीन हो जाते हैं?"

चतुर्थ-२: उन्होंने उनसे कहा, हे गार्ग्य, जैसे अस्त होते हुए सूर्य की सभी किरणें इस प्रकाश-मंडल में एकाकार हो जाती हैं और जब सूर्य पुनः उदय होता है, तो वे उससे विलीन हो जाती हैं, वैसे ही वह सब उच्च देवता मन में एकाकार हो जाता है। इसलिए यह व्यक्ति न सुनता है, न देखता है, न सूँघता है, न चखता है, न छूता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न भोगता है, न त्यागता है, न हिलता है। लोग कहते हैं, "यह सो रहा है।"

चतुर्थ-३: प्राण की अग्नियाँ (अर्थात् अग्नि के समान कार्य) ही वास्तव में इस शरीर नगर में जागृत रहती हैं। यह अपान जो है, वह वास्तव में गार्हपत्य अग्नि के सदृश है, व्यान अग्नि के सदृश है, अन्वहार्यपचन। चूँकि आहवनीय अग्नि गार्हपत्य से प्राप्त होती है, जो कि पूर्व का निष्कर्षण स्रोत

है, इसलिए प्राण आहवनीय के अनुरूप है (क्योंकि यह अपान से निकलता है)।

IV-4: समान पुजारी है जिसे होता कहा जाता है, क्योंकि यह साँस छोड़ने और साँस लेने के बीच संतुलन बनाता है जो कि दो आहुतियों के समान हैं। मन वास्तव में यज्ञकर्ता है। इच्छित फल उदान, जो इस यज्ञकर्ता को प्रतिदिन ब्रह्म की ओर ले जाता है।

IV-5: इस स्वप्न अवस्था में यह देवता (अर्थात मन) महानता का अनुभव करता है। जो कुछ भी देखा गया था, वह फिर से देखता है; जो कुछ भी सुना गया था, वह फिर से सुनता है; जो कुछ भी विभिन्न स्थानों और दिशाओं में देखा गया था, वह बार-बार अनुभव करता है; जो कुछ भी देखा गया या नहीं देखा गया, सुना गया या नहीं सुना गया, देखा गया या नहीं देखा गया, और जो कुछ भी वास्तविक या अवास्तविक है, वह सब बनकर यह सब देखता है।

चतुर्थ-6: जब वह देवता (मन) पित्त नामक (सूर्य) किरणों से अभिभूत हो जाता है, तब इस अवस्था में देवता स्वप्न नहीं देखता। तब, उस पूरे समय, इस शरीर में इस प्रकार का सुख होता है।

चतुर्थ-7: इस बात को स्पष्ट करने के लिए: जैसे पक्षी, हे सुंदर, निवास करने वाले वृक्ष की ओर बढ़ते हैं, वैसे ही ये सभी पक्षी परम आत्मा की ओर बढ़ते हैं।

चतुर्थ-8: पृथ्वी और पृथ्वी का मूल, जल और जल का मूल, अग्नि और अग्नि का मूल, आकाश और आकाश का मूल, दृष्टि का अंग और विषय, श्रवण का अंग और विषय, गंध का अंग और विषय, स्वाद का अंग और विषय, स्पर्श का अंग और विषय, वाणी का अंग और विषय, हाथ और पकड़ी गई वस्तु, मैथुन और भोग, मलमूत्र का अंग और मल, पैर और कुचला गया स्थान, मन और विचार का विषय, समझ और समझ का विषय, अहंकार और अहंकार का विषय, जागरूकता और जागरूकता का विषय, चमकती हुई त्वचा और उससे प्रकट होने वाला विषय, प्राण और प्राण द्वारा धारण की जाने वाली सभी वस्तुएँ।

चतुर्थ-9: और यह द्रष्टा, अनुभव करने वाला, सुनने वाला, सूंघने वाला, चखने वाला, विचार करने वाला, पता लगाने वाला, कर्ता है - पुरुष (शरीर

और इन्द्रियों में व्याप्त), जो स्वभाव से ज्ञाता है। यह पूर्णतः उस परम अक्षर पुरुष में स्थित हो जाता है।

चतुर्थ-10: जो उस छायारहित, अशरीरी, रंगरहित, शुद्ध, अक्षर पुरुष को जान लेता है, वह उस परम अक्षर पुरुष को प्राप्त हो जाता है। हे मनोहर! जो इस बात को जान लेता है, वह सर्वज्ञ और सर्वज्ञ हो जाता है। इसके लिए यह श्लोक है:

चतुर्थ-11: हे मनोहर! जो उस अचल पुरुष को जान लेता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है और सबमें प्रवेश कर जाता है, जिसमें ज्ञानात्मक आत्मा (स्वाभाविक रूप से जानने वाला पुरुष) विलीन हो जाती है, तथा सभी देवता और इन्द्रियाँ और तत्व भी विलीन हो जाते हैं।

पंचम-1: तत्पश्चात् शिबि के पुत्र सत्यकाम ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर! जो मनुष्यों में से कोई भी व्यक्ति मृत्युपर्यन्त उस अद्भुत विधि से ॐ का ध्यान करता है, वह वास्तव में किस लोक को जीतता है?" उससे उन्होंने कहा:
2: हे सत्यकाम! यह ब्रह्म, जो निम्न और श्रेष्ठ कहलाता है, वह ॐ ही है। अतः प्रकाशित आत्मा केवल इसी एक साधन से दोनों में से किसी एक को प्राप्त कर लेता है।

3: यदि वह ॐ का एक अक्षर के रूप में ध्यान करे, तो वह उससे भी प्रकाशित हो जाता है और पृथ्वी पर मनुष्य जन्म प्राप्त करता है। ऋक् मन्त्र उसे मनुष्य जन्म की ओर ले जाते हैं। वहाँ संयम, संयम और श्रद्धा से युक्त होकर वह महानता का अनुभव करता है।

4: अब फिर, यदि वह दूसरे अक्षर की सहायता से ॐ का ध्यान करता है, तो वह उसी के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।मन। यजुर् मंत्रों द्वारा वह मध्यवर्ती स्थान, चन्द्रलोक में उठा लिया जाता है। चन्द्रलोक में महानता का अनुभव करके वह पुनः भ्रमण करता है।

श्लोक 5: फिर, जो कोई तीन अक्षरों वाले इस ॐ अक्षर की सहायता से परम पुरुष का ध्यान करता है, वह प्रकाश से युक्त सूर्य में एक हो जाता है। जैसे साँप अपने केंचुल से मुक्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार वह पाप से मुक्त हो जाता है, और साम मंत्रों द्वारा वह ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) के लोक में उठा लिया जाता है। प्राणियों के इस समग्र समूह (जो हिरण्यगर्भ है) से वह

उस परम पुरुष को देखता है जो प्रत्येक प्राणी में व्याप्त है और उच्चतर (अर्थात हिरण्यगर्भ) से भी उच्च है। इस पर आधारित, दो श्लोक आते हैं:

श्लोक 6: तीनों अक्षर (अपने आप में) मृत्यु की सीमा के भीतर हैं। किन्तु यदि वे एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हों, भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर भिन्न-भिन्न रूप से लागू न हों, तथा तीनों प्रकार की क्रियाओं - बाह्य, आंतरिक तथा मध्यवर्ती - पर लागू हों, जिनका समुचित रूप से सहारा लिया जाता है, तो आत्मज्ञानी पुरुष विचलित नहीं होता (अर्थात् अविचलित रहता है)। ऋक् मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले इस जगत को, यजुर् मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले मध्यवर्ती स्थान को तथा साम मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले जगत को बुद्धिमान व्यक्ति जानता है। आत्मज्ञानी पुरुष केवल ॐ के द्वारा उस (त्रिविध) जगत को प्राप्त करता है; तथा ॐ के माध्यम से वह उस परम तत्व को भी प्राप्त करता है जो शान्त है तथा बुढ़ापे, मृत्यु और भय से परे है।

6-1: तब भारद्वाज के पुत्र सुकेश ने उनसे पूछा, "पूज्यवर, कोसल के राजकुमार हिरण्यनाभ ने मेरे पास आकर प्रश्न किया, 'भारद्वाज, क्या आप सोलह अंगों वाले पुरुष को जानते हैं?' मैंने उस राजकुमार से कहा, 'मैं उसे नहीं जानता। यदि मैं उसे जानता होता, तो आपको क्यों न बताता? जो कोई मिथ्या वचन बोलता है, वह जड़ सहित सूख जाता है। इसलिए मैं मिथ्या वचन नहीं बोल सकता। वह चुपचाप रथ पर सवार होकर चला गया। उस पुरुष के विषय में मैं आपसे पूछता हूँ, 'वह कहाँ है?'"

6-2: उससे उन्होंने (पिप्पलाद ने) कहा: हे प्रियतम, यहाँ शरीर के अन्दर ही वह पुरुष है, जिससे ये सोलह अंग उत्पन्न होते हैं।

6-3: उन्होंने विचार किया: "किसके चले जाने से मैं उठूँगा? और किसके बने रहने से मैं स्थिर रहूँगा?"

VI-4: उन्होंने प्राण की रचना की; प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रियाँ, मन, अन्न की रचना की; अन्न से तेज, संयम, मन्त्र, कर्म, लोक और लोकों में नाम की रचना की।

VI-5: दृष्टान्त यह है: जैसे समुद्र को लक्ष्य मानकर बहने वाली ये नदियाँ समुद्र में पहुँचकर लीन हो जाती हैं, तथा उनके नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं, और वे केवल समुद्र कहलाती हैं, वैसे ही पुरुष के ये सोलह अंग (अर्थात् अवयव), जिनका लक्ष्य पुरुष ही है, पुरुष के पास पहुँचकर लुप्त हो जाते हैं,

जब उनके नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं और वे केवल पुरुष कहलाते हैं। ऐसा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त पुरुष अंगों से मुक्त हो जाता है और अमर हो जाता है। इस विषय में यह श्लोक आता है:

6-6: तुम उस पुरुष को जानो जो जानने योग्य है और जिसके भीतर रथ के पहिये के नाभि के समान तीलियाँ लगी हुई हैं, ताकि मृत्यु तुम्हें कहीं भी न सताए।

7-8: उसने उनसे कहा, "मैं इस परम ब्रहम को अब तक ही जानता हूँ। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।"

8-9: उसकी पूजा करते हुए उन्होंने कहा, "आप ही हमारे पिता हैं, जिन्होंने हमें अज्ञान से पार उतारकर उस पार पहुँचाया है। महान ऋषियों को नमस्कार है। महान ऋषियों को नमस्कार है।"

ॐ! हे देवताओं, हम कानों से शुभ वचन सुनें; यज्ञ करते हुए, हम आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें; स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते हुए, हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें। प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों; परम धनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हमारे लिए अनुकूल हों; बुराई के नाश करने वाले गरुड़ जी की जय हो।

005 - मुण्डक उपनिषद

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ वचन सुनें;यज्ञ करते समय,हम अपनी आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें;स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते समय,हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें।प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों;सर्वधनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हम पर कृपा करें;बुराई का नाश करने वाले गरुड़,हम पर कृपा करें;बृहस्पति हमारा कल्याण करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

I-i-1: ॐ ! ब्रह्माण्ड के रचयिता और जगत के रक्षक ब्रह्मा, देवताओं में सबसे पहले प्रकट हुए थे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व को ब्रह्म का वह ज्ञान दिया जो सभी ज्ञान का आधार है।

1-1-2: ब्रह्मा ने जो ब्रह्मज्ञान अथर्व को दिया था, अथर्व ने उसे प्राचीन काल में अंगिर को प्रदान किया। उन्होंने (अंगिर ने) इसे भारद्वाज वंश के सत्यवाह को दिया। भारद्वाज वंश के सत्यवाह ने अंगिरस को वह ज्ञान प्रदान किया, जो निम्न लोगों द्वारा उच्चतर से क्रमिक रूप से प्राप्त किया गया था।

1-1-3: महान गृहस्थ के रूप में विख्यात शौनक ने अंगिरस के पास जाकर पूछा, 'हे पूज्यनीय महाराज, वह कौन सी वस्तु है, जिसके ज्ञात हो जाने पर यह सब ज्ञात हो जाता है?'

1-1-4: उन्होंने उससे कहा, '"ज्ञान दो प्रकार का होता है - उच्चतर और निम्नतर"; वेदों के अर्थ के ज्ञाता परम्परागत रूप से यही कहते हैं।'

I-i-5: इनमें से निम्नतर में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उच्चारण आदि का विज्ञान, कर्मकाण्ड, व्याकरण, व्युत्पत्ति, छन्द और ज्योतिष शामिल हैं। फिर उच्चतर (ज्ञान) है जिसके द्वारा उस अविनाशी को प्राप्त किया जाता है।

1-1-6: (उच्चतर ज्ञान के द्वारा) बुद्धिमान व्यक्ति उस वस्तु को सर्वत्र अनुभव करते हैं, जिसे देखा और समझा नहीं जा सकता, जो स्रोत, आकृति, नेत्र और कान से रहित है, जिसके न हाथ हैं, न पैर, जो शाश्वत, अनेकरूपी, सर्वव्यापक, अत्यंत सूक्ष्म और अविनाशी है तथा जो सबका स्रोत है।

1-1-7: जैसे मकड़ी फैलती है और अपना धागा खींच लेती है, जैसे पृथ्वी पर जड़ी-बूटियाँ (और वृक्ष) उगते हैं, और जैसे जीवित मनुष्य से बाल निकलते हैं (सिर और शरीर पर), वैसे ही अविनाशी से यहाँ (इस अभूतपूर्व सृष्टि में) ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है।

1-1-8: ज्ञान से ब्रह्म का आकार बढ़ता है। उससे अन्न (अव्यक्त) उत्पन्न होता है। अन्न से प्राण (हिरण्यगर्भ), मन, पंचतत्व, लोक, कर्म में अमरता उत्पन्न होती है।

I-i-9: जो सर्वज्ञ है, विस्तार से सब कुछ जानता है, तथा जिसकी तपस्या ज्ञान से युक्त है, उससे यह ब्रह्म, नाम, रंग और अन्न उत्पन्न होते हैं।

I-ii-1: जो वस्तु ऐसी है, वही सत्य है। ज्ञानियों ने मन्त्रों में जो कर्म खोजे हैं, वे तीनों वैदिक कर्तव्यों के संयोग से (यज्ञ के प्रसंग में) विविध प्रकार से सम्पन्न होते हैं। तुम सत्य फल की इच्छा से उन्हें सदा करते रहो। यही तुम्हारा मार्ग है, जो तुम्हें अपने द्वारा अर्जित कर्मों के फल की ओर ले जाता है।

I-ii-2: जब अग्नि प्रज्वलित हो जाए, और ज्वाला ऊपर उठे, तब उस भाग में आहुति देनी चाहिए, जो दाएं और बाएं के बीच में है।

I-ii-3: यह (अर्थात अग्निहोत्र) उस मनुष्य के सातों लोकों को नष्ट कर देता है जिसका अग्निहोत्र (यज्ञ) दर्ष और पौर्णमास (अनुष्ठान) से रहित, चातुर्मास्य से रहित, अग्रयान से रहित, अतिथियों से रहित, अकृतज्ञ, वैश्वदेव (अनुष्ठान) से रहित और औपचारिक रूप से किया गया हो।

I-ii-4: काली, कराली, मनोजवा और सुलोहिता तथा जो सुधुम्रवर्णा है, तथा स्फुलिंगिनी और चमकती विश्वरुचि - ये सात ज्वलन्त जिह्वाएँ हैं।

I-ii-5: ये आहुति सूर्य की किरणों में बदल जाती हैं और जो व्यक्ति इन चमकती हुई ज्वालाओं में उचित समय पर अनुष्ठान करता है, उसे ऊपर ले जाती हैं, जहाँ देवताओं का एकमात्र स्वामी सबका अधिपति है।

1-2-6: 'आओ, आओ' कहकर, 'यह तुम्हारा पुण्य पथ है, जो स्वर्ग की ओर ले जाता है', ऐसे मनभावन वचन बोलकर तथा उसे प्रणाम करके, जगमगाती हुई आहुति यज्ञकर्ता को सूर्य की किरणों के साथ ले जाती है।

1-2-7: चूँकि यज्ञ के ये अठारह अवयव, जिन पर निम्न कर्म का वास बताया गया है, अपनी नाज़ुक अवस्था के कारण नाशवान हैं, इसलिए जो

अज्ञानी लोग 'यही आनंद का कारण है', इस विचार से प्रफुल्लित हो जाते हैं, वे बार-बार बुढ़ापे और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

1-2-8: अज्ञान के घेरे में रहकर और 'हम स्वयं ही बुद्धिमान और विद्वान हैं' ऐसा सोचकर मूर्ख लोग बहुत अधिक मार खाते हुए भी, अंधे के द्वारा अकेले चलाए जाने वाले अंधे के समान इधर-उधर भटकते रहते हैं।

1-2-9: अज्ञान के बीच में नाना प्रकार से चलते हुए, अज्ञानी पुरुष यह सोचकर भ्रम करते हैं कि, ‘हमने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।’ क्योंकि कर्म में लगे हुए मनुष्य आसक्ति के वश में होकर (सत्य को) नहीं समझते, इसलिए वे दुःख से पीड़ित होते हैं और कर्म के फल समाप्त होने पर स्वर्ग से वंचित हो जाते हैं।

1-2-10: मोहग्रस्त मूर्ख लोग वेद और स्मृतियों द्वारा बताए गए कर्मों को सर्वोच्च मानकर मोक्ष की दूसरी वस्तु को नहीं समझते। वे स्वर्ग की ऊंचाइयों पर स्थित सुख के धाम में (कर्मों के फलों को) भोगकर इस लोक या निम्न लोक में प्रवेश करते हैं।

1-2-11: जो वन में रहते हैं, वे भिक्षा मांगते हैं - अर्थात। जो वनवासी और तपस्वी अपने-अपने जीवन के कर्तव्यों का पालन करते हुए ध्यान का भी ध्यान करते हैं, तथा जो विद्वान् गृहस्थ अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं, वे मल से मुक्त होकर सूर्य के मार्ग से उस स्थान पर जाते हैं, जहाँ स्वभाव से अविनाशी और अविनाशी पुरुष रहता है।

1-2-12: कर्म से प्राप्त लोकों का परीक्षण करने के पश्चात् ब्राह्मण को त्याग का आश्रय लेना चाहिए, इस उक्ति की सहायता से कि 'यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है जो कर्म का फल न हो, अतः कर्म करने की क्या आवश्यकता है?' उस तत्व को जानने के लिए उसे यज्ञ की लकड़ियाँ हाथ में लेकर केवल वेदों के ज्ञाता और ब्रह्म में लीन गुरु के पास जाना चाहिए।

1-2-13: जो विधिपूर्वक गया है, जिसका हृदय शांत है और जिसकी बाह्य इन्द्रियाँ अविचल हैं, उसके पास जाना चाहिए।

2-1-1: जो वस्तु ऐसी है, वही सत्य है। जैसे पूर्ण रूप से प्रज्वलित अग्नि से अग्नि के समान हजारों चिंगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार हे सुदर्शन! अविनाशी से नाना प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं और पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं।

2-1-2: पुरुष पारलौकिक है, क्योंकि वह निराकार है। और चूँकि वह बाह्य और आन्तरिक सभी के साथ समाया हुआ है और चूँकि वह अजन्मा है, इसलिए वह प्राणशक्ति और मन से रहित है; वह (अन्य) श्रेष्ठ अविनाशी (माया) से शुद्ध और श्रेष्ठ है।

2-1-3: उसी से प्राणशक्ति और मन, सभी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न होती है, जो सबका भरण-पोषण करती है।

II-i-4: सबका अन्तर्यामी आत्मा वही है जिसका सिर आकाश है, चन्द्रमा और सूर्य दो आँखें हैं, दिशाएँ दो कान हैं, प्रकाशित वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हृदय है, तथा जिसके दो पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई है।

II-i-5: उसी से अग्नि (अर्थात् स्वर्ग) उत्पन्न होती है जिसका ईंधन सूर्य है। चन्द्रमा से बादल उत्पन्न होते हैं, तथा बादल से पृथ्वी पर जड़ी-बूटियाँ और अनाज उत्पन्न होते हैं। पुरुष स्त्री में वीर्य डालता है। पुरुष से अनेक जीव उत्पन्न हुए हैं।

II-i-6: उसी से ऋक्, साम और यजुर् मंत्र, दीक्षा, सभी यज्ञ - चाहे यज्ञ के साथ हों या उसके बिना - ब्राह्मणों को अर्पण, वर्ष, यज्ञकर्ता, तथा वे लोक जहाँ चन्द्रमा (सबका) हवन करता है और जहाँ सूर्य (चमकता है) उत्पन्न होते हैं।

II-i-7: और उसी से अनेक समूहों में देवता उत्पन्न हुए, साध्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण, चावल और जौ, साथ ही तप, श्रद्धा, सत्य, संयम और कर्तव्यपरायणता।

II-i-8: उसी से सात ज्ञानेन्द्रियाँ, सात ज्वालाएँ, सात प्रकार के ईंधन, सात हवन और ये सात स्थान उत्पन्न हुए, जहाँ गुहा में सोई हुई इन्द्रियाँ चलती हैं, और जिन्हें (ईश्वर ने) सात के समूहों में जमा किया है।

II-i-9: उसी से सारे समुद्र और सारे पर्वत उत्पन्न हुए। उसी से अनेक रूपों वाली नदियाँ निकलती हैं। उसी से सारे अनाज और रस निकलते हैं, जिसके कारण आंतरिक आत्मा वास्तव में तत्वों के बीच में स्थित है।

II-i-10: पुरुष ही यह सब है - कर्म और ज्ञान सहित। हे सुदर्शन! जो इस परम अविनाशी ब्रह्म को हृदय में स्थित जानता है, वह इस अज्ञानरूपी

ग्रन्थि को नष्ट कर देता है। यह तेजोमय है, समीप है, हृदय में गति करने वाला है, तथा महान् लक्ष्य है। इसमें वे सब स्थित हैं जो चलते हैं, श्वास लेते हैं, पलक झपकाते हैं या नहीं झपकाते। इस एक को जानो, जो स्थूल और सूक्ष्म तीनों से युक्त है, जो प्राणियों के सामान्य ज्ञान से परे है, तथा जो सबसे अधिक वांछनीय और श्रेष्ठ है। यह जो तेजोमय है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, तथा जिसमें समस्त लोक तथा लोकों के निवासी स्थित हैं, वह यह अपरिवर्तनशील ब्रहम है। यह प्राणशक्ति है, यह वाणी और मन भी है। यह जो सत्ता है, वह सत्य है। यह अमर है। हे सुदर्शन! इसे भेदकर इस पर प्रहार करो।

द्वितीय-द्वितीय-3: उपनिषदों में वर्णित महान् अस्त्र धनुष को पकड़कर, उस पर ध्यानपूर्वक धारदार बाण चढ़ाना चाहिए। हे सुदर्शन! उस बाण की डोरी खींचकर, उस अविनाशी लक्ष्य पर मन को उसी के विचार में लगाकर प्रहार करो।

द्वितीय-द्वितीय-4: ॐ धनुष है, आत्मा बाण है, और ब्रहम उसका लक्ष्य है। उसे अचूक पुरुष को ही मारना है। बाण के समान उसी के साथ एक हो जाना चाहिए।

द्वितीय-द्वितीय-5: उस आत्मा को जान लो, जो एक है, जिस पर स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, मन, प्राण तथा अन्य सभी इन्द्रियाँ बंधी हुई हैं, और अन्य सब बातों को छोड़ दो। यही अमरता की ओर ले जाने वाला सेतु है।

द्वितीय-द्वितीय-6: उस हृदय में, जिसमें रथ के पहिये के पोर के समान नाड़ियाँ लगी हुई हैं,इस पूर्वोक्त आत्मा को अनेकरूप धारण करके गतिमान करता है। इस प्रकार ॐ की सहायता से आत्मा का ध्यान करो। अंधकार से परे दूसरे किनारे पर जाने में बाधा से मुक्त हो जाओ।

II-II-7: वह आत्मा जो सामान्य रूप से सर्वज्ञ है और विस्तार से सर्वज्ञ है तथा जिसकी इस संसार में ऐसी महिमा है - वह आत्मा, जो इस प्रकार की है - ब्रहम के प्रकाशमय नगर के भीतर अंतरिक्ष में विराजमान है। यह मन से बद्ध है, यह प्राण और शरीर का वाहक है, यह बुद्धि को (हृदय की गुहा में) स्थापित करके अन्न में विराजमान है। अपने ज्ञान के द्वारा विवेकशील लोग उस आत्मा को सर्वत्र अपनी पूर्णता में विद्यमान अनुभव करते हैं - वह आत्मा जो परमानंद और अमरता के रूप में चमकती है।

II-II-8: जब वह आत्मा, जो उच्च और निम्न दोनों है, का साक्षात्कार हो जाता है, तब हृदय की गांठ जुड़ जाती है, सभी संदेह दूर हो जाते हैं, और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

II-ii-9: परम उज्ज्वल कोश में ब्रह्म है, जो कल्मषों से रहित और अंगों से रहित है। वह शुद्ध है, और ज्योतियों का प्रकाश है। यह वही है जिसे आत्मा के ज्ञाता अनुभव करते हैं।

II-ii-10: वहाँ न सूर्य चमकता है, न चंद्रमा या तारे; न ये बिजली की चमक वहाँ चमकती है। यह अग्नि ऐसा कैसे कर सकती है? सब कुछ उसी के अनुसार चमकता है; उसके प्रकाश से यह सब भिन्न-भिन्न रूप से चमकता है।

II-ii-11: यह जो कुछ सामने है, वह केवल ब्रह्म है, अविनाशी है। ब्रह्म पीछे है, दाएं और बाएं भी है। यह ऊपर और नीचे भी फैला हुआ है। यह जगत् सर्वोच्च ब्रह्म के अलावा और कुछ नहीं है।

III-i-1: दो पक्षी जो सदैव एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं और जिनके नाम समान हैं, एक ही वृक्ष से चिपके रहते हैं। इनमें से एक भिन्न-भिन्न स्वाद वाले फल खाता है, और दूसरा बिना खाए देखता रहता है।

तृतीय-1-2: उसी वृक्ष पर जीवात्मा मानो डूबा हुआ (अथवा अटका हुआ) रहता है, और अपनी नपुंसकता से चिन्तित होकर विलाप करता है। जब वह इस प्रकार दूसरे, पूज्य भगवान् को तथा उनकी महिमा को देखता है, तब वह दुःख से मुक्त हो जाता है।

तृतीय-1-3: जब द्रष्टा पुरुष को - सुवर्णमय, सृष्टिकर्ता, स्वामी तथा अधम ब्रह्म के मूल को - देख लेता है, तब वह ज्ञानी पुरुष पाप-पुण्य से सर्वथा मुक्त हो जाता है, निष्कलंक हो जाता है, तथा परम समता को प्राप्त हो जाता है।

तृतीय-1-4: यह वास्तव में प्राणशक्ति है, जो सभी प्राणियों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकाशित होती है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष को अपनी बात में आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलता। वह आत्मा में रमण करता है, आत्मा में रमण करता है, तथा पुरुषार्थ में लीन रहता है। यह ब्रह्म के जानने वालों में प्रमुख है।

III-i-5: शरीर के भीतर जो उज्ज्वल और शुद्ध आत्मा है, जिसे (आदतन प्रयास और) क्षीण दोषों वाले भिक्षु देखते हैं, वह सत्य, एकाग्रता, पूर्ण ज्ञान और संयम के द्वारा, निरंतर अभ्यास करने से प्राप्त होता है। III-i-6: सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। सत्य के द्वारा ही देवयान नामक मार्ग निर्धारित किया गया है, जिसके द्वारा इच्छा रहित द्रष्टा सत्य के द्वारा प्राप्त होने वाले परम कोष तक पहुँचते हैं।

III-i-7: यह महान और स्वयं प्रकाशमान है; और इसका रूप अकल्पनीय है। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। यह विविध रूप से चमकता है। यह दूर से भी दूर है, और यह इस शरीर में निकट है। चेतन प्राणियों में यह इसी शरीर में, हृदय गुहा में स्थित है।

III-i-8: यह न तो नेत्र से, न वाणी से, न अन्य इन्द्रियों से समझा जा सकता है; न ही यह तप या कर्म से प्राप्त होता है। चूँकि बुद्धि की अनुकूलता से मन शुद्ध हो जाता है, इसलिए ध्यान के द्वारा उस अविभाज्य आत्मा को देखा जा सकता है।
III-i-9: शरीर के भीतर (हृदय में) जहाँ प्राणशक्ति पाँच रूपों में प्रविष्ट हुई है, उस बुद्धि के द्वारा इस सूक्ष्म आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए, जो सम्पूर्ण मन के साथ-साथ सभी प्राणियों के कर्मेन्द्रियों और इन्द्रियों में व्याप्त है। और मन में ही इसे जानना चाहिए, जो शुद्ध हो जाने पर यह आत्मा अपने आप को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है।

III-i-10: शुद्ध मन वाला मनुष्य उन लोकों को जीत लेता है, जिनकी वह मानसिक रूप से कामना करता है और उन भोग्य वस्तुओं को, जिनकी वह अभिलाषा करता है। इसलिए कल्याण की इच्छा रखने वाले को चाहिए कि वह आत्मवेत्ता की आराधना करे।

तृतीय-द्वितीय-१: वह इस परमधाम को, इस ब्रह्म को जानता है, जिसमें यह जगत स्थित है और जो पवित्रता से प्रकाशित होता है। जो बुद्धिमान पुरुष कामनारहित होकर इस (ज्ञानी) पुरुष की आराधना करते हैं, वे इस मनुष्य बीज से पार हो जाते हैं।

तृतीय-द्वितीय-२: जो पुरुष गुणों का चिन्तन करते हुए इच्छित वस्तुओं की अभिलाषा करता है, वह कामनाओं सहित उन्हीं परिवेशों में जन्म लेता है। परन्तु जिसकी कामनाएँ पूर्ण हो गई हैं और जो आत्मस्थ है, उसके लिए यहाँ भी सब कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं।

तृतीय-द्वितीय-३: यह आत्मा न तो अध्ययन से प्राप्त होती है, न बुद्धि से, न बहुत सुनने से। जिस आत्मा को यह साधक खोजता है, वह उसी खोज के द्वारा प्राप्त होने योग्य है; उसका यह आत्मा अपना स्वरूप प्रकट करता है।

तृतीय-द्वितीय-४: यह आत्मा न तो बलहीन को प्राप्त होती है, न मोह से, न संन्यास से असंबद्ध ज्ञान से। परन्तु जो ज्ञाता इन साधनों से प्रयत्न करता है, उसका आत्मा ब्रह्म-धाम में प्रवेश करता है।

तृतीय-द्वितीय-5: इसे प्राप्त करके द्रष्टा अपने ज्ञान से संतुष्ट, आत्मा में स्थित, आसक्ति से मुक्त और शांत हो जाते हैं। सर्वत्र व्याप्त उस एक को जानकर, ये विवेकशील लोग, चिन्तन में लीन होकर, सर्व में प्रवेश करते हैं।

तृतीय-द्वितीय-6: जिनको वेदान्तिक ज्ञान द्वारा प्रस्तुत सत्ता पूर्णतः ज्ञात हो गई है, जो तपस्वी हैं और संन्यास-योग द्वारा मन से शुद्ध हो गए हैं - वे सभी, अन्तिम प्रयाण के परम क्षण में ब्रह्म-रूपी लोकों में परम अमरता से एकाकार हो जाते हैं और सब ओर से मुक्त हो जाते हैं।

तृतीय-द्वितीय-7: (शरीर के) पंद्रह अवयव अपने-अपने मूल में चले जाते हैं और (इन्द्रियों के) सभी देवता अपने-अपने देवताओं में चले जाते हैं। कर्म और आत्मा बुद्धि के समान प्रकट होकर, सभी परम अविनाशी के साथ एक हो जाते हैं।

तृतीय-द्वितीय-८: जैसे नदियाँ बहती हुई समुद्र में पहुँचकर अपने नाम और रूप त्यागकर अविभाज्य हो जाती हैं, वैसे ही प्रकाशवान आत्मा नाम और रूप से मुक्त होकर स्वयं प्रकाशमान पुरुष को प्राप्त हो जाती है, जो परब्रह्म (माया) से भी उच्च है।

तृतीय-द्वितीय-९: जो कोई उस परम ब्रह्म को जान लेता है, वह वास्तव में ब्रह्म ही हो जाता है। उसके वंश में ऐसा कोई उत्पन्न नहीं होता, जो ब्रह्म को न जानता हो। वह शोक पर विजय प्राप्त कर लेता है, विपथनों से ऊपर उठ जाता है, और हृदय की गांठों से मुक्त होकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

तृतीय-द्वितीय-१०: यह (नियम) इस मंत्र द्वारा प्रकट किया गया है (जो इस प्रकार है): 'केवल उन्हीं को इस ज्ञान का वर्णन करना चाहिए जो अनुशासन में लगे हुए हैं, वेदों में पारंगत हैं, और वास्तव में ब्रह्म के प्रति

समर्पित हैं, जो स्वयं एकरसी नामक अग्नि में श्रद्धापूर्वक आहुति देते हैं, और जिन्होंने अग्नि को सिर पर धारण करने का व्रत विधिपूर्वक पूरा किया है।'

तृतीय-द्वितीय-११: ऋषि अंगिरस ने प्राचीन काल में इस सत्य की बात कही थी। जिसने व्रत पूरा नहीं किया है, वह इसे नहीं पढ़ता है। महान ऋषियों को नमस्कार है। महान ऋषियों को नमस्कार है। ॐ ! हे देवताओं, हम कानों से शुभ शब्द सुनें; यज्ञ करते समय, हम आँखों से शुभ चीजें देखें; स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते हुए, हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें। प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों; परम धनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हम पर कृपा करें; बुराई का नाश करने वाले गरुड़ हम पर कृपा करें; बृहस्पति हमारा कल्याण करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में सम्मिलित मुण्डकोपनिषद् समाप्त होता है।

006 - मांडूक्य उपनिषद

विद्यावाचस्पति वी. पनोली द्वारा अनुवादित

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें;हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें;हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों।
महान् इन्द्र हम पर कृपा करें;सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें;दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों;बृहस्पति हम पर सबकी समृद्धि प्रदान करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

1. यह सब ॐ अक्षर है। इसकी विशद व्याख्या (आरंभ) की गई है। भूत, वर्तमान और भविष्य जो कुछ भी है, वह ॐ ही है। जो तीनों काल से परे है, वह भी ॐ ही है।

2. यह सब निश्चय ही ब्रह्म है। यह आत्मा ब्रह्म है। यह आत्मा इस प्रकार चार दिशाओं से युक्त है।

3. जो आत्मा जाग्रत अवस्था में स्थित है और जिसे वैश्वानर कहते हैं, जो बाह्य चेतना, सात अंगों और उन्नीस मुखों से युक्त होकर स्थूल विषयों का भोग करता है, वह प्रथम दिशा है।

4. जो आत्मा स्वप्नावस्था में स्थित है और जिसे तैजस कहते हैं, जो आन्तरिक चेतना, सात अंगों और उन्नीस मुखों से युक्त होकर सूक्ष्म विषयों का भोग करता है, वह द्वितीय दिशा है।

5. जहाँ शयनकर्ता भोग की किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता और कोई स्वप्न नहीं देखता, वह अवस्था सुषुप्ति है।
जो आत्मा सुषुप्ति में स्थित है और जिसे प्रज्ञा कहते हैं, जिसमें सब कुछ एकरूप है, जो चेतना से युक्त है, जो आनन्द से पूर्ण है, जो निश्चय ही आनन्द का भोक्ता है, और जो (पूर्ववर्ती दो अवस्थाओं का) ज्ञान का द्वार है, वह तृतीय दिशा है।
6. यह सबका स्वामी है, यह सर्वज्ञ है; यह सबका नियंत्रक है; यह सभी प्राणियों का स्रोत है, तथा वास्तव में उत्पत्ति और प्रलय भी है।

7. चतुर्थ को वह माना जाता है जो न तो आंतरिक जगत के प्रति सचेत है, न ही बाह्य जगत के प्रति सचेत है, न ही दोनों जगतों के प्रति सचेत है, न ही चेतना से सघन है, न ही केवल चेतना है, न ही अचेतन है, जो अदृश्य, क्रियाहीन, अज्ञेय, अकल्पनीय, अकल्पनीय, अवर्णनीय है, जिसका प्रमाण आत्मा की पहचान (सभी अवस्थाओं में) में निहित है, जिसमें सभी घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं, और जो अपरिवर्तनीय, शुभ और अद्वैत है। वही आत्मा है जिसे जानना है।

8. अक्षर की दृष्टि से वही आत्मा ॐ है और अक्षरों की दृष्टि से देखा जाए तो काल ही अक्षर हैं और काल ही काल हैं। ये अक्षर हैं अ, उ और म।

9. जाग्रत अवस्था में बैठा हुआ वैश्वानर सर्वव्यापक होने के कारण प्रथम अक्षर अ है। जो इस प्रकार जानता है, वह सब कामनाओं को पूर्ण कर लेता है और प्रथम हो जाता है।

10. स्वप्न में बैठा हुआ तैजस श्रेष्ठता की समानता या मध्यवर्ती स्थिति के कारण उ है, जो ॐ का दूसरा अक्षर है। जो इस प्रकार जानता है, वह अपने ज्ञान की सीमा को आगे बढ़ाता है और सबके समान हो जाता है और उसके कुल में कोई भी ब्रह्मज्ञ उत्पन्न नहीं होता।

11. सुषुप्ति अवस्था में बैठा हुआ प्रज्ञा म है, जो ॐ का तीसरा अक्षर है, क्योंकि वह वह माप या इकाई है जिसमें सब लीन हो जाते हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह इन सबको माप लेता है और सबको ग्रहण कर लेता है।

12. जो अक्षर (अंश) रहित है, वह चतुर्थ है, जो सामान्य साधनों से समझ से परे है, वह प्रचंड जगत्, शुभ और अद्वैत का निरोध है। इस प्रकार ॐ निश्चय ही आत्मा है। जो इस प्रकार जानता है, वह आत्मा द्वारा आत्मा में प्रवेश करता है। ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हम अपनी आँखों से शुभ देखें; हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों। महान यश वाले इंद्र हम पर कृपा करें; सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें; दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों; बृहस्पति हमें सभी समृद्धि प्रदान करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में निहित माण्डूक्योपनिषद् समाप्त होता है।
गौड़पाद की माण्डूक्य कारिका I. आगम प्रकरण आह्वान ;

1. मैं उस ब्रह्म को नमन करता हूँ जो समस्त चराचर वस्तुओं में व्याप्त ज्ञान किरणों के प्रसार द्वारा सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है, जो (जाग्रत अवस्था में) समस्त स्थूल भोगों का भोग कर चुका है, तथा जो (स्वप्न अवस्था में) समस्त कामनाजन्य तथा बुद्धि द्वारा प्रकाशित विषयों का भोग कर चुका है, तथा स्वयं आनन्द का अनुभव करते हुए तथा (अपनी) माया द्वारा हम सबको आनन्दित करते हुए विश्राम करता है, तथा जो माया के द्वारा चौथे स्थान पर है, तथा सर्वोच्च, अमर और अजन्मा है।

2. जो जाग्रत अवस्था में पुण्य-पाप से उत्पन्न स्थूल भोगों को भोगकर स्वप्न अवस्था में अपनी ही बुद्धि से उत्पन्न तथा अपनी ही ज्योति से प्रकाशित अन्य सूक्ष्म विषयों को भोगता है, तथा उन सबको धीरे-धीरे

अपने में लीन करके तथा सब भेदों को त्यागकर निर्गुण हो जाता है, वह विश्वात्मा, जो चौथी अवस्था में स्थित है, हमारी रक्षा करे। विश्वा बाह्य चेतना से युक्त होकर सर्वव्यापक है, तैजस अन्तरंग चेतना से युक्त है, तथा प्रज्ञा भी चेतना से युक्त है।

इस प्रकार एक ही को दोनों प्रकार से देखा जाता है। विश्वा दाहिनी आँख में देखा जाता है, जो उसका अनुभव स्थान है, तैजस मन के अन्दर है तथा प्रज्ञा हृदय के अन्दर है।

इन तीनों प्रकार से वह शरीर में रहता है। विश्वा स्थूल का, तैजस सूक्ष्म का तथा प्रज्ञा आनन्द का भोक्ता है। (इसलिए) आनंद को तीन तरीकों से जानो।

१-४. घास विश्व को, सूक्ष्म तैजस को तथा इसी प्रकार प्रसन्नता प्रज्ञा को संतुष्ट करती है। अतः संतुष्टि को तीन प्रकार से जानो।

१-५. जो इन दोनों को जानता है, अर्थात् जो भोगने योग्य बताया गया है तथा जो भोगने वाला बताया गया है, वह तीनों अवस्थाओं में भोगता हुआ भी भोगता हुआ भी ग्रसित नहीं होता।

१-६. यह एक स्थापित तथ्य है कि अस्तित्व में आना केवल सकारात्मक संस्थाओं के लिए ही कहा जा सकता है। प्राण सबका निर्माण करता है; तथा पुरुष चेतन प्राणियों को पृथक रूप से बनाता है।

१-७. जो लोग सृष्टि के बारे में सोचते हैं, वे इसे भगवान की शक्ति का प्रकटीकरण मानते हैं; जबकि अन्य लोग सृष्टि को स्वप्न और भ्रम के समान मानते हैं।

१-८. जिन्होंने सृष्टि की प्रक्रिया को भली-भाँति समझा, वे कहते हैं कि सृष्टि भगवान की इच्छा मात्र है, परन्तु जो लोग काल पर भरोसा करते हैं, वे प्राणियों के जन्म को काल से मानते हैं।

१-९. कुछ लोग कहते हैं कि सृष्टि भगवान के आनंद के लिए है, जबकि कुछ लोग कहते हैं कि यह उनकी लीला के लिए है। लेकिन यह तो तेजोमय पुरुष का स्वभाव है, जिसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गई हैं, उसे क्या इच्छा हो सकती है?

I-10. तुरीय, जो सभी दुखों का निवारण करने वाला, अविनाशी, सभी भूतों का अद्‌वैत भगवान माना जाता है, तथा सर्वव्यापी है।

I-11. विश्व और तैजस को कारण और प्रभाव से बद्‌ध माना जाता है। प्रज्ञा कारण से बद्‌ध है। लेकिन ये दोनों (अर्थात कारण और प्रभाव) तुरीय में नहीं होते।

I-12. प्रज्ञा न स्वयं को जानती है, न दूसरों को, न सत्य को, न असत्य को। लेकिन वह तुरीय सदैव सर्वज्ञ है।

I-13. द्‌वैत का अज्ञान प्रज्ञा और तुरीय दोनों में समान है। प्रज्ञा में कारण स्वरूप की निद्रा होती है, जबकि तुरीय में वह निद्रा नहीं होती।

I-14. प्रथम दो (अर्थात विश्व और तैजस) स्वप्न और सुषुप्ति से सम्बन्धित हैं, किन्तु प्रज्ञा स्वप्न से रहित सुषुप्ति से सम्बन्धित है। ब्रह्म के ज्ञाता तुरीय अवस्था में न तो सुषुप्ति देखते हैं और न स्वप्न।

I-15. स्वप्न उसका है जो गलत देखता है और निद्रा उसका है जो वास्तविकता को नहीं जानता। जब इन दोनों की मिथ्या धारणा समाप्त हो जाती है, तब तुरीय अवस्था प्राप्त होती है।

I-16. जब अनादि माया के प्रभाव में सोया हुआ जीवात्मा जागृत होता है, तब वह (तुरीय अर्थात्) अजन्मा, निद्रारहित, स्वप्नरहित और अद्‌वैत को प्राप्त करता है।

I-17. यदि कोई अद्‌भुत जगत् हो, तो निस्संदेह उसका अस्तित्व समाप्त हो जाना चाहिए। यह द्‌वैत केवल भ्रम है; वास्तव में यह अद्‌वैत है।

I-18. यदि किसी ने इसकी कल्पना की है, तो यह धारणा (जैसे कि शिक्षक, शिक्षाप्राप्त और शास्त्र) लुप्त हो जाएगी। यह धारणा (शिक्षक आदि की) शिक्षा के उद्‌देश्य से है। जब (सत्य का) साक्षात्कार हो जाता है, तब द्‌वैत नहीं रहता।

1-19. जब विश्व का अ अक्षर से तादात्म्य माना जाता है, अर्थात् जब विश्व का अ अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब प्रथम होने का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा सर्वव्यापकता का सामान्य लक्षण भी स्पष्ट दिखाई देता है।

1-20. जब तैजस का उ अक्षर से तादात्म्य माना जाता है, अर्थात् जब तैजस का उ अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब श्रेष्ठता का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा मध्यवर्ती स्थिति भी स्पष्ट दिखाई देती है।

1-21. प्रज्ञा का म से तादात्म्य माना जाने की स्थिति में, अर्थात् जब प्रज्ञा का म अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब माप होने का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा अवशोषण का सामान्य लक्षण भी स्पष्ट दिखाई देता है।

1-22. जो तीनों अवस्थाओं में समानता को निश्चयपूर्वक जान लेता है, वह सब प्राणियों द्वारा पूज्य और पूजनीय हो जाता है, तथा महान ऋषि भी हो जाता है।

I-23.अ अक्षर विश्व की ओर ले जाता है, और उ अक्षर तैजस की ओर ले जाता है।फिर म अक्षर प्रज्ञा की ओर ले जाता है।जो अक्षर से मुक्त है, उसके लिए कोई प्राप्ति नहीं है।

I-24.ओम को एक-एक करके जानना चाहिए।इसमें कोई संदेह नहीं है कि (आत्मा के) ये सभी अक्षर (ओम के) ही हैं।ओम को एक-एक करके जानने के बाद, किसी अन्य विषय पर विचार नहीं करना चाहिए।

I-25.ओम में मन को स्थिर करो, क्योंकि ओम ही ब्रह्म है, निर्भय है।जो व्यक्ति ओम में सदा स्थिर रहता है, उसके लिए यह एक ही बात है। हीं कोई भय नहीं है।

I-26. ॐ वास्तव में निम्न ब्रह्म है; ॐ को उच्चतर (ब्रह्म) भी माना जाता है। ॐ कारण रहित, भीतरी और बाह्य रहित, कार्य रहित और अविनाशी है।

I-27. ॐ वास्तव में सबका आदि, मध्य और अंत है। ॐ को इस प्रकार जानने पर, व्यक्ति तुरन्त आत्मा से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है।

I-28. ॐ को सबके हृदय में निवास करने वाला ईश्वर जानना चाहिए। सर्वव्यापी ॐ को जानने पर बुद्धिमान व्यक्ति शोक नहीं करता।

I-29. जो ॐ को जानता है, जो अपरिमित, अनंत परिमाण वाला और मंगलमय है, क्योंकि उसमें सभी द्वैत समाप्त हो जाते हैं, वह ॐ ही है, अन्य कोई नहीं।

II. वैतथ्य प्रकरण

II-1. बुद्धिमान व्यक्ति स्वप्न में सभी वस्तुओं की असत्यता की घोषणा करता है, क्योंकि वे (शरीर में) स्थित हैं और (इसलिए भी) क्योंकि वे सीमित स्थान में सीमित हैं।

II-2. चूंकि अवधि कम होती है, इसलिए व्यक्ति उस स्थान पर जाकर नहीं देख सकता। साथ ही, प्रत्येक स्वप्नदर्शी, जब जागृत होता है, तो उस स्थान (स्वप्न) में नहीं रहता।

II-3. रथ आदि का अस्तित्व न होना (स्वप्न में देखा गया) तर्क की दृष्टि से (श्रुति में) सुना जाता है। ब्रह्म के ज्ञाता कहते हैं कि इस प्रकार (तर्क के माध्यम से) प्राप्त हुई असत्यता स्वप्न के संदर्भ में (श्रुति द्वारा) प्रकट होती है।

II-4. जाग्रत अवस्था में भी वस्तुओं की असत्यता होती है। जैसे वे स्वप्न में असत्य हैं, वैसे ही जाग्रत अवस्था में भी असत्य हैं। स्थानिक सीमा के कारण शरीर के भीतर स्थान के कारण (स्वप्न में) वस्तुएं भिन्न होती हैं।

II-5. ज्ञानी कहते हैं कि जाग्रत और स्वप्न की अवस्थाएं समान हैं, वस्तुओं की समानता की दृष्टि से (दोनों अवस्थाओं में देखी गई) और अनुमान के सुविदित आधार की दृष्टि से।

II-6. जो आदि और अन्त में असत्य है, वह वर्तमान में (अर्थात् मध्य में) अवश्य है। वस्तुएँ यद्यपि असत्य का चिह्न धारण करती हैं, फिर भी वे सत्य प्रतीत होती हैं।

II-7. स्वप्न में उनकी उपयोगिता विपरीत है। अतः आदि और अन्त होने के आधार पर वे निश्चित रूप से असत्य मानी जाती हैं।

II-8. स्वप्न में असामान्य वस्तुएँ देखना स्वप्नदर्शी का गुण है, जैसा कि स्वर्ग में रहने वालों का है। वह वहाँ जाकर इन्हें देखता है, जैसे कोई भली-भाँति इस लोक में देखता है।

II-9. स्वप्न में भी मन (चित्त) द्वारा भीतर जो कल्पना की जाती है, वह असत्य है, जबकि मन द्वारा बाहर जो ग्रहण किया जाता है, वह सत्य है। परन्तु ये दोनों ही असत्य दिखाई पड़ते हैं।

II-10. जाग्रत अवस्था में भी मन द्वारा भीतर जो कल्पना की जाती है, वह असत्य है, जबकि मन द्वारा बाहर जो ग्रहण किया जाता है, वह सत्य है। इन दोनों को असत्य मानना युक्तिसंगत है।

II-11. यदि दोनों अवस्थाओं के विषय मिथ्या हों, तो इन सबको कौन समझता है और फिर कौन उनकी कल्पना करता है?

II-12. स्वयं प्रकाशमान आत्मा अपनी माया से स्वयं ही अपनी कल्पना करता है और वही सब विषयों को जानता है। यह वेदान्त-ग्रन्थों का एक निश्चित तथ्य है।

II-13. भगवान ने मन में स्थित सांसारिक विषयों की अनेक रूपों में कल्पना की। मन को बाहर की ओर मोड़कर वे अनेक प्रकार के स्थायी विषयों (तथा अनित्य पदार्थों) की कल्पना करते हैं। इस प्रकार भगवान कल्पना करते हैं।

II-14. जो वस्तुएँ विचार के रहने तक भीतर रहती हैं और जो वस्तुएँ बाह्य हैं तथा दो समय-बिन्दुओं के अनुरूप हैं, वे सब केवल कल्पनाएँ हैं। (उनके बीच) भेद किसी और कारण से नहीं है।
II-15. जो वस्तुएँ मन में अप्रकट प्रतीत होती हैं और जो बाहर प्रकट प्रतीत होती हैं, वे सब केवल कल्पनाएँ हैं, उनका भेद इन्द्रियों का भेद है।

II-16. सर्वप्रथम वे जीव की कल्पना करते हैं, फिर बाह्य तथा आन्तरिक विभिन्न पदार्थों की कल्पना करते हैं। जैसा ज्ञान होता है, वैसी ही स्मृति भी होती है।

II-17. जिस प्रकार अंधकार में रस्सी का स्वरूप ज्ञात नहीं होता, उसी प्रकार रस्सी की कल्पना भी की जाती है।साँप, जलरेखा आदि, इसी प्रकार आत्मा की भी कल्पना (विभिन्न वस्तुओं के रूप में) की जाती है।

II-18. जैसे रस्सी का (वास्तविक स्वरूप) ज्ञात हो जाने पर मोह समाप्त हो जाता है और केवल रस्सी ही अपने अद्वैत स्वरूप में रह जाती है, उसी प्रकार आत्मा का भी पता लग जाता है।

II-19. (आत्मा की) कल्पना प्राण आदि अनंत वस्तुओं के रूप में की जाती है। यह प्रकाशमान की माया है, जिससे वह स्वयं मोहित हो जाता है।

II-20. प्राण के ज्ञाता प्राण को (संसार का कारण) मानते हैं, जिसे तत्त्वों के ज्ञाता तत्त्वों को (कारण) मानते हैं। गुण (कारण हैं), गुण के ज्ञाता कहते हैं, जबकि श्रेणी के ज्ञाता श्रेणियों को (ऐसा मानते हैं)।

II-21. दिशाओं के ज्ञाता (जैसे विश्वा) दिशाओं को (कारण) मानते हैं, जबकि इन्द्रिय-विषयों के ज्ञाता इन्द्रिय-विषयों को (कारण) मानते हैं। लोकों के ज्ञाता कहते हैं कि ये लोक (वास्तविक हैं) और देवताओं के ज्ञाता देवताओं को (ऐसा मानते हैं)।

II-22. वैदिक विद्या में पारंगत लोग वेदों को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि यज्ञकर्ता इसे यज्ञ मानते हैं। जो भोक्ता को जानते हैं वे भोक्ता को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि भोग्य वस्तुओं से परिचित लोग उन्हें (वास्तविक) मानते हैं।

II-23. सूक्ष्मता को जानने वाले कहते हैं कि ये सूक्ष्मता (वास्तविक) है, जबकि स्थूल से परिचित लोग इसे (वास्तविक) मानते हैं। (वास्तविकता) साकार है, ऐसा साकार ईश्वर के उपासक कहते हैं, जबकि निराकार के उपासक (वास्तविकता को) निराकार मानते हैं।

II-24. ज्योतिषी काल को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि दिशाओं के ज्ञाता दिशाओं को (ऐसा मानते हैं)। वाद-विवाद में दृढ़ रहने वाले लोग यह कहते हैं कि वाद-विवाद (वास्तविकता की ओर ले जाते हैं), जबकि लोकों की आकांक्षा रखने वाले लोग उन्हें (वास्तविक) मानते हैं।

II-25. मन के ज्ञाता इसे (आत्मा) मानते हैं, जबकि बुद्धि के ज्ञाता इसे (ऐसा) मानते हैं। हृदय के ज्ञाता इसे (वास्तविकता) मानते हैं, जबकि इसे जानने वाले इसे पुण्य और पाप मानते हैं।

II-26. कुछ लोग कहते हैं कि पच्चीस श्रेणियाँ (वास्तविकता का निर्माण करती हैं), जबकि अन्य लोग छब्बीस की बात करते हैं।

फिर, कुछ लोग कहते हैं कि इकतीस श्रेणियाँ (वास्तविकता का निर्माण करती हैं), फिर भी कुछ अन्य मानते हैं कि वे अनंत हैं।

II-27. जो लोग (और उनके सुखों को) जानते हैं, वे सुखों में वास्तविकता पाते हैं। जो लोग जीवन के चरणों से परिचित हैं, वे उन्हें (वास्तविक) मानते हैं। व्याकरणविद पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग के शब्दों को (वास्तविकता) मानते हैं, जबकि अन्य लोग (वास्तविकता को) उच्च और निम्न (ब्रह्म) मानते हैं।

II-28. जो लोग सृष्टि के बारे में सब कुछ जानते हैं, वे कहते हैं कि वास्तविकता सृष्टि में निहित है। (वास्तविकता) प्रलय में है, ऐसा जानने वाले कहते हैं, जबकि जो अस्तित्व को जानते हैं, वे (उसे ही वास्तविकता मानते हैं)। ये सभी विचार हमेशा आत्मा पर ही कल्पित होते हैं।

II-29. जो (गुरु) किसी वस्तु को दिखाता है, वह उसे ही (वास्तविकता के रूप में) देखता है। वह वस्तु भी उसके साथ एक हो जाती है, और उसकी रक्षा करती है। तल्लीन होने की वह स्थिति दिखाई गई वस्तु के साथ उसकी आत्म-तादात्म्य में परिणत होती है।

II-30. इन अविभाज्य वस्तुओं के द्वारा (आत्मा से) यह आत्मा पृथक रूप में प्रकट होती है। जो इसे जानता है, वह बिना किसी संदेह के (वेदों का अर्थ) सही रूप से समझ लेता है।

II-31. जैसे स्वप्न और जादू, तथा आकाश में स्थित नगर, (असत्य प्रतीत होते हैं), वैसे ही यह ब्रह्मांड भी वेदांत-ग्रंथों से (असत्य) दिखाई देता है।

II-32. इस आत्मा में प्रलय नहीं है, उत्पत्ति नहीं है, कोई बंधन में नहीं है, कोई मोक्ष के साधन से युक्त नहीं है, कोई मोक्ष की इच्छा नहीं रखता है, तथा कोई मुक्त नहीं है। यही परम सत्य है।

II-33. यह (आत्मा) मिथ्या वस्तु भी मानी जाती है तथा अद्वैत भी। वस्तुओं की कल्पना भी अद्वैत (आत्मा) पर की जाती है। इसलिए अद्वैत शुभ है।

II-34. आत्मा के आधार पर देखा गया यह (जगत) भिन्न नहीं है। न तो यह कभी अपने आप से स्वतंत्र है, न ही (आत्मा से) कुछ भिन्न या अविभाज्य है। इस प्रकार सत्य के जानने वाले जानते हैं।

II-35. आसक्ति, भय और क्रोध से रहित तथा वेदों में पारंगत ऋषियों द्वारा इस आत्मा का साक्षात्कार किया जाता है, जो सभी कल्पनाओं से परे है, जिसमें प्रचण्ड जगत् का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तथा जो अद्वैत है।

II-36. अतः इस प्रकार जानकर मनुष्य को अद्वैत पर अपनी स्मृति स्थिर करनी चाहिए (अर्थात् उस पर पूरा ध्यान देना चाहिए)। अद्वैत को प्राप्त करके मनुष्य को मूर्ख की तरह आचरण करना चाहिए।

II-37. तपस्वी को स्तुति, वंदना तथा कर्मकाण्ड से मुक्त रहना चाहिए। शरीर और आत्मा ही उसका आधार होना चाहिए तथा उसे जो संयोग मिले, उस पर निर्भर रहना चाहिए।

II-38. सत्य को आन्तरिक रूप से तथा बाह्य रूप से अनुभव करके मनुष्य को सत्य से तादात्म्य कर लेना चाहिए, सत्य से आनन्द प्राप्त करना चाहिए तथा सत्य से कभी विचलित नहीं होना चाहिए।

III. अद्वैत प्रकरण

III-1. साधक भक्ति का आश्रय लेकर बद्ध ब्रह्म में स्थित रहता है। सृष्टि से पूर्व यह सब अजन्मा ब्रह्म का स्वरूप था। अतः (ऐसी दृष्टि से) मनुष्य संकीर्ण दृष्टिकोण वाला माना जाता है।

III-2. अतः मैं उस ब्रह्म का वर्णन करूँगा जो सीमा से रहित है, अजन्मा है और सदा एक ही है। सुनो कि कोई भी वस्तु किस प्रकार जन्मती नहीं है, यद्यपि वह सब प्रकार से जन्मती हुई प्रतीत होती है।
III-3. आत्मा को जीवों के रूप में विद्यमान कहा गया है, जैसे (अनंत) आकाश घड़ों में सीमित आकाश के रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार, उसे शरीरों के समुच्चय के रूप में विद्यमान कहा गया है, जैसे आकाश घड़ों आदि के रूप में विद्यमान है। यह जन्म के संबंध में दृष्टांत है।

III-4. जैसे जब घड़े आदि का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो उनके भीतर सीमित आकाश आदि अनंत आकाश में लीन हो जाते हैं, वैसे ही यहाँ भी जीवात्माएँ आत्मा में लीन हो जाती हैं।

III-5. जैसे जब किसी घड़े में सीमित आकाश में धूल और धुआँ होता है, तो सभी घड़ों में ऐसा नहीं होता, उसी प्रकार सभी जीवात्माएँ सुख आदि से संबंधित नहीं होतीं।

III-6. यद्यपि रूप, कार्य और नाम यहाँ-वहाँ भिन्न-भिन्न हैं (घड़ों आदि में निहित ईथर के सम्बन्ध में), फिर भी इससे ईथर में कोई अंतर नहीं पड़ता। व्यक्तिगत आत्माओं के सम्बन्ध में भी यही निष्कर्ष है।

III-7. जैसे घड़े के अन्दर का ईथर (अनंत) ईथर का रूपान्तरण या अंग नहीं है, वैसे ही व्यक्तिगत आत्मा कभी भी (परम) आत्मा का रूपान्तरण या अंग नहीं है।

III-8. जैसे बच्चों के लिए आकाश मैल से मैला हो जाता है, वैसे ही मूर्खों के लिए आत्मा अशुद्धियों से मैल हो जाती है।

III-9. आत्मा अपनी मृत्यु और जन्म, आने-जाने तथा सभी शरीरों में अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में ईथर से भिन्न नहीं है।

III-10. सभी समुच्चय (जैसे शरीर) आत्मा की माया द्वारा स्वप्न के समान निर्मित होते हैं। चाहे वे श्रेष्ठ हों या समान, उनकी वास्तविकता को सिद्ध करने का कोई आधार नहीं है।

III-11. तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्न से बने कोशों की वैयक्तिक आत्मा का वर्णन किया गया है, जो कि परम आत्मा के समान है, जैसा कि हम पहले ही आकाश के उदाहरण से स्पष्ट कर चुके हैं।

III-12. जिस प्रकार यह कहा गया है कि पृथ्वी और उदर में स्थित आकाश एक ही है, उसी प्रकार मधु-ब्राह्मण (बृहदारण्यक उपनिषद्) में परम ब्रह्म को भी प्रत्येक दो (अर्थात् साकार और पारलौकिक) के संदर्भ में एक ही बताया गया है।

III-13. चूँकि जीव और परम आत्मा में अभेद की प्रशंसा उनकी एकता के आधार पर की गई है, तथा चूँकि विभिन्नता की निन्दा की गई है, इसलिए वह (अद्वैत) ही युक्तिसंगत है।

III-14. सृष्टि के विवेचन (उपनिषदों में) से पहले (श्रुति में) जो जीवात्मा और परमात्मा की पृथकता घोषित की गई है, वह भविष्य के परिणाम की

दृष्टि से गौण अर्थ में है, क्योंकि यदि इसे प्राथमिक अर्थ में माना जाए तो यह (पृथक्ता) उपयुक्त नहीं है।

III-15. पृथ्वी, सोना, चिंगारी आदि (के दृष्टांतों) के माध्यम से जो सृष्टि भिन्न रूप से प्रस्तुत की गई है, वह (केवल) विचार (पहचान) को प्रकट करने का साधन है। परंतु अनेकता किसी भी प्रकार से विद्यमान नहीं है।

III-16. जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं - निम्न, मध्यम और उच्च। यह ध्यान उनके लिए करुणावश कहा गया है।

III-17. द्वैतवादी, अपने-अपने निष्कर्षों से प्राप्त अपने-अपने सिद्धांत में दृढ़ निश्चयी होकर एक-दूसरे का विरोध करते हैं। परंतु यह (अद्वैतवादी का दृष्टिकोण) उनसे किसी प्रकार का विरोध नहीं करता।

III-18. अद्वैत ही वास्तव में परम सत्य है, क्योंकि द्वैत को उसका उत्पाद कहा गया है। उनके लिए द्वैत दोनों (सत्य और अवास्तविक) का निर्माण करता है। इसलिए यह (हमारा दृष्टिकोण) उनके (उनके) विपरीत नहीं है।

III-19. यह अजन्मा (आत्मा) माया के माध्यम से परिवर्तन से गुजरता है, किसी अन्य तरीके से नहीं। क्योंकि, यदि परिवर्तन एक वास्तविकता है, तो अमर नश्वर होने की प्रवृत्ति होगी।

III-20. विवादकर्ता जन्म के संदर्भ में अजन्मा आत्मा के बारे में सोचते हैं। जो आत्मा अजन्मा और अमर है, वह नश्वरता की ओर कैसे प्रवृत्त हो सकती है?

III-21. अमर कभी नश्वर नहीं हो सकता। इसलिए, नश्वर भी कभी अमर नहीं हो सकता। क्योंकि किसी के स्वभाव में परिवर्तन कभी किसी भी तरह से नहीं हो सकता।

III-22. जो अमर है, वह उस व्यक्ति के अनुसार अपरिवर्तित कैसे रह सकता है, जिसके लिए स्वभाव से अमर वस्तु पैदा हो सकती है, क्योंकि वह (उसके विचार में) एक उत्पाद है?

III-23. श्रुति यथार्थ में तथा माया द्वारा सृष्टि को समान रूप से समर्थन देती है। जो श्रुति द्वारा निश्चित किया गया है तथा तर्क द्वारा समर्थित है, वही सत्य है, अन्य कुछ नहीं।

III-24. चूँकि श्रुति कहती है, "यहाँ अनेकता नहीं है", "भगवान माया के कारण (विविध रूप से) देखे जाते हैं", तथा "आत्मा यद्यपि अजन्मा है, (अनेक प्रकार से जन्म लेती हुई प्रतीत होती है)", अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वह माया द्वारा जन्मा है।

III-25. हिरण्यगर्भ की निन्दा करने से सृष्टि का निषेध होता है। "कौन इसे उत्पन्न करेगा?" कहने से कार्य-कारण का निषेध होता है।

III-26. (ब्रह्म की) अज्ञानता के आधार पर, (उसकी समझ के लिए) सभी पूर्ववर्ती निर्देश श्रुति द्वारा अस्वीकृत कर दिए जाते हैं, "यह आत्मा वह है जिसे 'यह नहीं, यह नहीं' कहा गया है"। अतः अजन्मा आत्मा स्वयं ही प्रकट हो जाती है।

III-27. जो विद्यमान है उसका जन्म केवल माया के द्वारा होता है, वास्तविकता में नहीं। जो यह समझता है कि कोई वस्तु वास्तविकता में जन्म लेती है, उसे यह जानना चाहिए कि जो पहले से ही जन्म ले चुका है, वह पुनः जन्म लेता है।

III-28. जो अस्तित्वहीन है उसका जन्म न तो माया से होता है, न ही वास्तविकता में, क्योंकि बांझ स्त्री का पुत्र न तो माया से होता है, न ही वास्तविकता में।

III-29. जैसे स्वप्न में मन माया के द्वारा कंपन करता है, मानो दोहरी भूमिकाएँ निभाता हो, वैसे ही जाग्रत अवस्था में मन माया के द्वारा कंपन करता है, मानो दोहरी भूमिकाएँ निभाता हो।

III-30. इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्वप्न में केवल अद्वैत मन ही दोहरी भूमिकाएँ निभाता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी अद्वैत मन दोहरी भूमिकाएँ निभाता हुआ दिखाई देता है।

III-31. जो कुछ भी चलायमान और अचल है, जो इस द्वैत का निर्माण करता है, वह मन द्वारा देखा जाता है, क्योंकि जब मन मन के रूप में नहीं रहता, तो द्वैत कभी नहीं देखा जाता।

III-32. जब मन सत्य अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार होने पर कल्पना करना छोड़ देता है, तब वह मन न रहने की स्थिति को प्राप्त होता है और बोधगम्य विषयों के अभाव के कारण अबोधगम्य हो जाता है।

III-33. (ब्रह्म के ज्ञाता) कहते हैं कि जो ज्ञान कल्पना से रहित और अजन्मा है, वह ज्ञेय से भिन्न नहीं है। जिस ज्ञान का एकमात्र विषय ब्रह्म है, वह अजन्मा और नित्य है। अजन्मा (आत्मा) अजन्मा (ज्ञान) से जाना जाता है।

III-34. (इस प्रकार) संयमित, जो सब कल्पनाओं से मुक्त और विवेक से युक्त है, उस मन के आचरण पर ध्यान देना चाहिए। सुषुप्ति में मन भिन्न स्वभाव का होता है और संयम में रहने पर ऐसा नहीं होता।

III-35. सुषुप्ति में मन विलीन हो जाता है, परंतु संयम में रहने पर विलीन नहीं होता। वह (मन) ही ब्रह्म बन जाता है, निर्भय हो जाता है, वह सब ओर से चेतना रूपी प्रकाश से युक्त हो जाता है।

III-36. (ब्रह्म) अजन्मा, निद्राहीन, स्वप्नहीन, नामहीन, निराकार, नित्य-दीप्तिमान और सर्वज्ञ है। (उसके सम्बन्ध में) किसी भी प्रकार का कोई नियमित अभ्यास नहीं हो सकता।

III-37. आत्मा सभी (बाह्य) इन्द्रियों से रहित है, तथा सभी आन्तरिक इन्द्रियों से ऊपर है। वह अत्यंत शान्त, नित्य-दीप्तिमान, दिव्य-लीन, अपरिवर्तनशील और निर्भय है।

III-38. जहाँ कोई विचार नहीं है, वहाँ कोई स्वीकार या अस्वीकार नहीं है। तब आत्मा में स्थित ज्ञान अजन्मा और एकरूपता की स्थिति को प्राप्त करता है।
III-39. यह योग, जिसे किसी भी वस्तु से असंबद्ध कहा गया है, किसी भी प्राणी द्वारा अनुभव करना कठिन है।जो योगीजन निर्भयता में भय देखते हैं, वे उससे डरते हैं।

III-40. सभी योगियों के लिए निर्भयता, दुःख का निवारण, जागरूकता और चिरस्थायी शांति, उनके मन के संयम पर निर्भर है।

III-41. कुश की धार से बूंद-बूंद करके समुद्र को खाली करने के समान अथक प्रयास से मन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

III-42. (उचित) साधनों से कामना और भोग के बीच में उलझे हुए मन को संयम में लाना चाहिए। जब मन नींद में भी पूरी तरह से स्थिर हो जाए, तब भी उसे संयम में लाना चाहिए, क्योंकि नींद कामना के समान ही हानिकारक है।

III-43. यह स्मरण रखते हुए कि सब कुछ दुःख उत्पन्न करने वाला है, मनुष्य को कामना के विषयों के भोग से (अपने मन को) हटा लेना चाहिए। (इसी प्रकार) यह स्मरण रखते हुए कि सब कुछ अजन्मा ब्रह्म है, मनुष्य जन्मा (अर्थात् द्वैत) को अवश्य नहीं देखता।

III-44. गहरी नींद में सोये हुए मन को जगाना चाहिए और विचलित मन को पुनः शांत करना चाहिए। मन को काम-युक्त जानना चाहिए और जब वह समावस्था में आ जाए, तो उसे विचलित नहीं करना चाहिए।

III-45. उस अवस्था में सुख का भोग नहीं करना चाहिए, बल्कि विवेक द्वारा अनासक्त हो जाना चाहिए। जब शांत हुआ मन भटकने लगे, तो उसे प्रयत्नपूर्वक आत्मा से एक कर लेना चाहिए।

III-46. जब मन पुनः विलीन या विचलित नहीं होता, जब वह निश्चल हो जाता है और वस्तुओं के रूप में प्रकट नहीं होता, तब वह वास्तव में ब्रह्म हो जाता है।

III-47. वह परम आनन्द स्वयं की आत्मा में ही विद्यमान है। वह शांत है, मोक्ष के समान है, अवर्णनीय है और अजन्मा है। चूँकि यह अजन्मा ज्ञेय (ब्रह्म) से एक है, इसलिए ब्रह्म के ज्ञाता इसे सर्वज्ञ (ब्रह्म) कहते हैं।

III-48. कोई भी जीव (व्यक्तिगत आत्मा), चाहे वह कोई भी हो, पैदा नहीं होता। इसका कोई कारण (जन्म का) नहीं है। (ऐसा होने पर),यह सर्वोच्च सत्य है जहाँ कुछ भी पैदा नहीं होता है।

IV. अलतसंति प्रकरण (अग्नि को बुझाने पर)

IV-1. मैं उस व्यक्ति को नमन करता हूँ जो मनुष्यों में श्रेष्ठ है और जिसने अपने ज्ञान के द्वारा आकाश के समान व्यक्तिगत आत्माओं को महसूस

किया है, जो फिर से आकाश के समान है और ज्ञान की वस्तु से भिन्न नहीं है।

IV-2. मैं उस योग को नमन करता हूँ जो किसी भी चीज़ के साथ स्पर्श से रहित है (जो संबंध को दर्शाता है),जो सभी प्राणियों के सुख में सहायक है और लाभकारी है, और जो विवाद और विरोधाभास से मुक्त है और शास्त्रों द्वारा सिखाया गया है।

IV-3. कुछ विवादी लोग पहले से ही विद्यमान सत्ता के जन्म की कल्पना करते हैं, जबकि कुछ अन्य, अपनी बुद्धि पर गर्व करते हुए, आपस में विरोध करते हुए, जो पहले से ही विद्यमान नहीं है, उसके जन्म की कल्पना करते हैं।

IV-4. जो पहले से ही विद्यमान है, वह जन्म नहीं ले सकता और जो नहीं है, वह भी जन्म नहीं ले सकता।जो लोग इस प्रकार तर्क करते हैं, वे अद्वैतवादी ही हैं और केवल जन्महीनता की घोषणा करते हैं।

IV-5. हम उनके द्वारा प्रकट की गई जन्महीनता का अनुमोदन करते हैं। हम उनसे विवाद नहीं करते। अब, यह सीखो जो सभी विवादों से मुक्त है।

IV-6. विवादी लोग जन्म के आधार पर आत्मा के बारे में सोचते हैं। जो आत्मा अजन्मा और अमर है, वह नश्वरता की ओर कैसे प्रवृत्त हो सकती है?

IV-7. अमर कभी नश्वर नहीं हो सकता। इसी प्रकार, नश्वर कभी अमर नहीं हो सकता। क्योंकि किसी के स्वभाव में परिवर्तन कभी किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता।
IV-8. जो अमर है, वह उस व्यक्ति के अनुसार अपरिवर्तित कैसे रह सकती है, जिसके विचार में स्वभाव से अमर वस्तु का जन्म हो सकता है, क्योंकि वह (उसके विचार में) एक प्रभाव है?

IV-9. प्रकृति शब्द से वह जाना जाता है जो सम्यक सिद्धियों से अस्तित्व में आता है, जो आंतरिक है, जन्मजात है, अजन्मा है, तथा जो अपना स्वरूप नहीं छोड़ता।

IV-10. सभी आत्माएँ स्वभाव से ही क्षय और मृत्यु से मुक्त हैं। परन्तु क्षय और मृत्यु के बारे में सोचने से, तथा

उस विचार में लीन होकर वे (उस स्वभाव से) विचलित हो जाते हैं।

IV-11. जो यह मानता है कि कारण ही परिणाम है, उसके अनुसार कारण का जन्म होना ही चाहिए। जो जन्मा है वह अजन्मा कैसे हो सकता है? जो परिवर्तन के अधीन है वह शाश्वत कैसे हो सकता है?

IV-12. यदि (आपके विचार में) परिणाम कारण से अभिन्न है और यदि, इस कारण से, परिणाम भी अजन्मा है, तो कारण शाश्वत कैसे हो सकता है, क्योंकि वह जन्म लेने वाले परिणाम से अभिन्न है?

IV-13. जो यह मानता है कि परिणाम अजन्मे कारण से जन्मा है, उसके पास कोई उदाहरण (उद्धृत करने के लिए) नहीं है। यदि जन्मा परिणाम किसी अन्य जन्मी वस्तु से जन्मा हुआ माना जाए, तो वह अनंत तक ले जाता है।

IV-14. जो यह मानते हैं कि परिणाम कारण का स्रोत है और कारण परिणाम का स्रोत है, वे कारण और परिणाम के लिए अनादित्व का दावा कैसे कर सकते हैं?

IV-15. जो लोग यह मानते हैं कि कार्य ही कारण का मूल है और कारण ही कार्य का मूल है, उनके अनुसार जन्म संभव है, जैसे पिता पुत्र से जन्म ले सकता है।

IV-16. यदि कारण और कार्य संभव हैं, तो आपको उनके उत्पन्न होने का क्रम ज्ञात करना होगा,क्योंकि यदि वे एक साथ उत्पन्न होते हैं, तो दोनों के बीच कोई संबंध नहीं होता, जैसा कि गाय के सींगों के मामले में होता है।
IV-17. आपका कारण जो कार्य से उत्पन्न होता है, उसे स्थापित नहीं किया जा सकता। जो कारण स्वयं स्थापित नहीं है, वह कार्य कैसे उत्पन्न करेगा?

IV-18. यदि कारण कार्य से उत्पन्न होता है और यदि कार्य कारण से उत्पन्न होता है, तो दोनों में से कौन पहले उत्पन्न हुआ है, जिस पर दूसरे का उद्भव निर्भर करता है?

IV-19. आपकी (उत्तर देने में) असमर्थता अज्ञानता के बराबर है, अन्यथा उत्तराधिकार के क्रम में (आपके द्वारा प्रतिपादित) अंतर होगा। इस प्रकार

वास्तव में जन्म का अभाव सभी प्रकार से बुद्धिमान द्वारा प्रकट किया जाता है।

IV-20. जिसे बीज और अंकुर का दृष्टांत कहा जाता है, वह हमेशा मुख्य पद (अभी सिद्ध होना बाकी है) के बराबर होता है। मध्य पद (अर्थात दृष्टांत) जो अप्रमाणित मुख्य पद के बराबर है, उसे अभी सिद्ध होने बाकी प्रस्ताव को स्थापित करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है।

IV-21. पूर्वता और उत्तराधिकार के बारे में अज्ञान जन्महीनता को प्रकट करता है। जो चीज पैदा होती है, उसका पूर्ववर्ती कारण क्यों नहीं समझा जाता है?

IV-22. कोई भी चीज न तो खुद से पैदा होती है और न ही किसी और चीज से। इसी तरह, कोई भी चीज पैदा नहीं होती है, चाहे वह अस्तित्व में हो या न हो या अस्तित्व में और न होने दोनों में से कोई भी चीज पैदा नहीं होती है।

IV-23. कोई कारण अनादि कार्य से पैदा नहीं होता है, न ही कोई कार्य स्वाभाविक रूप से (अनंत कारण से) जन्म लेता है। क्योंकि जिसका कोई कारण नहीं है, उसका कोई जन्म भी नहीं है।

IV-24. ज्ञान का अपना विषय होता है, क्योंकि अन्यथा यह द्वैत का नाश करता है। इसके अतिरिक्त, पीड़ा के अनुभव से, विरोधियों की विचार प्रणाली द्वारा समर्थित बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

IV-25. ज्ञान के कारण की धारणा के अनुसार, उत्तरार्द्ध को बाह्य वस्तुओं पर आधारित माना जाता है। लेकिन वास्तविकता के दृष्टिकोण से, (बाह्य) कारण को कोई कारण नहीं माना जाता है।
IV-26. चेतना वस्तुओं के संपर्क में नहीं है, न ही यह वस्तुओं की उपस्थिति के संपर्क में है। क्योंकि वस्तु निश्चित रूप से अस्तित्वहीन है और वस्तु की उपस्थिति (विचारों का गठन) चेतना से अलग नहीं हैं।

IV-27. चेतना तीनों समय में कभी भी वस्तुओं के संपर्क में नहीं आती है। बिना किसी कारण (यानी, बाहरी वस्तु) के इसकी झूठी आशंका कैसे हो सकती है?

IV-28. इसलिए चेतना पैदा नहीं होती है, न ही इसके द्वारा देखी जाने वाली चीजें पैदा होती हैं। जो इसे जन्म के रूप में देखते हैं, वे आकाश में पैरों के निशान देख सकते हैं।

IV-29. चूँकि जन्म अजन्मा ही होता है (विवादकर्ताओं के अनुसार), अतः अजन्मापन ही उसका स्वभाव है। अतः इस स्वभाव से विचलन किसी भी प्रकार नहीं हो सकता।

IV-30. यदि देहान्तर का अस्तित्व अनादि हो, तो उसका अन्त नहीं हो सकता। और यदि उसका प्रारम्भ हो, तो मोक्ष शाश्वत नहीं हो सकता।

IV-31. जो प्रारम्भ और अन्त में असत्य है, वह वर्तमान में अवश्य ही असत्य है। वस्तुएँ असत्य के समान होते हुए भी सत्य प्रतीत होती हैं।

IV-32. स्वप्न में उनकी उपयोगिता का विरोध होता है। अतः प्रारम्भ और अन्त होने के कारण वे असत्य ही याद किये जाते हैं।

IV-33. स्वप्न में सभी वस्तुएँ अवास्तविक हैं, क्योंकि वे शरीर के भीतर देखी जाती हैं। इस संकीर्ण स्थान में प्राणियों का दर्शन कैसे संभव है?

IV-34. यह कहना उचित नहीं है कि स्वप्न में वस्तुएँ (वास्तव में) उनके पास जाकर देखी जाती हैं, क्योंकि यह यात्रा के लिए आवश्यक समय के नियम के विपरीत है। इसके अलावा, जागने पर कोई भी वस्तु स्वप्न के स्थान पर नहीं रहती।

IV-35. (स्वप्न में) मित्रों और अन्य लोगों के साथ जो चर्चा की गई है (और तय की गई है) उसे जागने पर नहीं दोहराया जाता। स्वप्न में जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह भी जाग्रत अवस्था में नहीं देखा जाता।

IV-36. और स्वप्न में शरीर मिथ्या हो जाता है, क्योंकि दूसरा शरीर (बिस्तर में) देखा जाता है। जैसा शरीर है, वैसी ही चेतना द्वारा जानी जाने वाली सभी चीजें मिथ्या हैं।

IV-37. चूँकि स्वप्न में (वस्तुओं का) अनुभव जाग्रत अवस्था के समान ही होता है, अतः पूर्व को उत्तरार्द्ध के कारण माना जाता है। ऐसी स्थिति में, जाग्रत अवस्था को केवल स्वप्न देखने वाले के लिए ही वास्तविक माना जाता है।

IV-38. ऐसा जन्म स्थापित नहीं है, सब कुछ अजन्मा कहा जाता है। इसके अलावा, किसी भी तरह से वास्तविक से अवास्तविक का जन्म होना संभव नहीं है।

IV-39. जाग्रत अवस्था में अवास्तविक चीजों को देखकर, मनुष्य बहुत प्रभावित होकर उन्हीं चीजों को स्वप्न में देखता है। इसी तरह, स्वप्न में अवास्तविक वस्तुओं को देखकर, मनुष्य उन्हें जाग्रत अवस्था में नहीं देखता।

IV-40. ऐसा कोई अस्तित्वहीन नहीं है जो अस्तित्वहीन का कारण बनता हो, जिस प्रकार विद्यमान वस्तु असत्य का कारण नहीं बनती। कोई भी वास्तविक सत्ता ऐसी नहीं है जो किसी अन्य वास्तविक सत्ता का कारण बने। असत्य वस्तु किस प्रकार वास्तविक वस्तु की उत्पत्ति हो सकती है?

4-41. जिस प्रकार व्यक्ति विवेक के अभाव में जाग्रत अवस्था में अकल्पनीय वस्तुओं को भी वास्तविक मान लेता है, उसी प्रकार स्वप्न में भी विवेक के अभाव में व्यक्ति केवल उसी अवस्था में वस्तुओं को देखता है।

4-42. जो व्यक्ति अपने अनुभव और सही आचरण से सत्त्व के अस्तित्व को मानते हैं और जो अजन्मा से सदैव डरते हैं, उनके लिए बुद्धिमानों ने जन्म के विषय में शिक्षा दी है।

4-43. जो व्यक्ति अजन्मा के भय से तथा द्वैत के बोध के कारण सही मार्ग से विचलित हो जाते हैं, उनके लिए जन्म (सृष्टि) को स्वीकार करने से उत्पन्न होने वाला पाप नहीं होता। यदि कोई पाप होगा भी, तो वह बहुत कम होगा।

4-44. जिस प्रकार जादू से उत्पन्न हाथी को बोध और सही आचरण के आधार पर हाथी कहा जाता है, उसी प्रकार बोध और सही आचरण के कारण कोई वस्तु विद्यमान कही जाती है।

IV-45. जो जन्म के समान प्रतीत होता है, चलायमान प्रतीत होता है, तथा उसी प्रकार गुणयुक्त वस्तु प्रतीत होता है, वह चेतना है जो जन्मरहित, अचल और जड़, शांत और अद्वैत है।

IV-46. इस प्रकार चेतना अजन्मा है, इस प्रकार आत्मा को अजन्मा माना जाता है। जो इस प्रकार अनुभव करते हैं, वे निश्चित रूप से दुर्भाग्य में नहीं पड़ते।

IV-47. जिस प्रकार गतिमान अग्नि-दाग सीधा, टेढ़ा आदि दिखाई देता है, उसी प्रकार चेतना का स्पंदन द्रष्टा और द्रष्टा के रूप में दिखाई देता है।

IV-48. जिस प्रकार गतिहीन अग्नि-दाग प्रकट और जन्म से रहित है, उसी प्रकार स्पंदन से रहित चेतना प्रकट और जन्म से रहित है।

IV-49. जब अग्नि-दाग गति में होता है, तो दृश्य कहीं और से नहीं आते। न तो वे, जब अग्नि-दाग गति से मुक्त होता है, कहीं और जाते हैं, न ही वे उसमें प्रवेश करते हैं।

IV-50. वे पदार्थ की प्रकृति के न होने के कारण अग्नि-दाग से बाहर नहीं गए। चेतना के मामले में भी, दृश्य एक जैसे होने चाहिए, क्योंकि दृश्य के रूप में कोई भेद नहीं हो सकता।

IV-51. जब चेतना गति में होती है, तो दृश्य कहीं और से नहीं आते। न ही वे, जब चेतना गति से मुक्त होता है, कहीं और जाते हैं, न ही वे फिर से उसमें प्रवेश करते हैं।

IV-52. वे पदार्थ की प्रकृति के न होने के कारण चेतना से बाहर नहीं गए, क्योंकि वे प्रभाव और कारण के संबंध के अभाव के कारण हमेशा समझ से परे रहते हैं।

IV-53. एक पदार्थ किसी पदार्थ का कारण हो सकता है और दूसरा किसी अन्य चीज़ का कारण हो सकता है। परन्तु आत्मा को न तो पदार्थ माना जा सकता है और न ही अन्य सभी से भिन्न कोई अन्य वस्तु।
IV-54. इस प्रकार बाह्य वस्तुएँ चेतना से उत्पन्न नहीं होतीं, न ही चेतना बाह्य वस्तुओं से उत्पन्न होती है। इस प्रकार बुद्धिमानों ने कारण और प्रभाव की अजन्माता को निश्चित किया है।

IV-55. जब तक कारण और प्रभाव के प्रति मोह है, तब तक कारण और प्रभाव अस्तित्व में आते हैं। जब कारण और प्रभाव के प्रति मोह समाप्त हो जाता है, तब कारण और प्रभाव उत्पन्न नहीं होते।

IV-56. जब तक व्यक्ति कारण और प्रभाव में पूर्णतः लीन रहता है, तब तक देहान्तरण जारी रहता है। जब कारण और प्रभाव में लीनता समाप्त हो जाती है, तब व्यक्ति देहान्तरण से नहीं गुजरता।

IV-57. सापेक्षिक स्तर (सोचने के) से सब कुछ जन्मा हुआ प्रतीत होता है, इसलिए शाश्वत नहीं है। निरपेक्ष स्तर (बोध के) से सब कुछ अजन्मा (आत्मा) है, इसलिए विनाश जैसा कुछ नहीं है।

IV-58. इस प्रकार जन्म लेने वाली आत्माएँ वास्तव में जन्म नहीं लेतीं। उनका जन्म माया के माध्यम से वस्तु के जन्म के समान होता है। और वह माया फिर अस्तित्वहीन है।

IV-59. जिस प्रकार एक जादुई बीज से उसी प्रकृति का अंकुर निकलता है जो न तो स्थायी है और न ही विनाशशील, उसी प्रकार वस्तुओं के संबंध में भी तर्क लागू होता है।

IV-60. सभी जन्महीन संस्थाओं के मामले में स्थायी और अस्थाई शब्दों का कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता। जहाँ शब्दों से वर्णन नहीं हो पाता, वहाँ किसी भी संस्था के बारे में विवेकपूर्ण ढंग से बात नहीं की जा सकती।

IV-61. जैसे स्वप्न में चेतना भ्रम के माध्यम से कंपन करती है, मानो स्वभाव से द्वैत हो, वैसे ही जाग्रत अवस्था में चेतना भ्रम के माध्यम से कंपन करती है, मानो द्वैत रूप से युक्त हो।

IV-62. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि अद्वैत चेतना ही स्वप्न में द्वैत के रूप में दिखाई देती है।इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी अद्वैत चेतना निस्संदेह द्वैत के रूप में दिखाई देती है।

IV-63. स्वप्न-भूमि में विचरण करते हुए स्वप्नदर्शी हमेशा अंडों से या नमी से उत्पन्न प्राणियों को दसों दिशाओं में विद्यमान देखता है।

IV-64. स्वप्नदर्शी की चेतना में बोधगम्य इन (प्राणियों) का उसकी चेतना से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार स्वप्नदर्शी की यह चेतना केवल स्वप्नदर्शी के लिए बोध का विषय मानी जाती है।

IV-65. जाग्रत मनुष्य, जाग्रत स्थानों में विचरण करते हुए, सदैव अण्डों से या नमी से उत्पन्न प्राणियों को दसों दिशाओं में विद्यमान देखता है।

IV-66. जाग्रत मनुष्य की चेतना में बोधगम्य इन (प्राणियों) का उसकी चेतना से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार जाग्रत मनुष्य की यह चेतना केवल जाग्रत मनुष्य के लिए बोध का विषय मानी जाती है।

IV-67. ये दोनों एक दूसरे के लिए बोधगम्य हैं। "क्या इसका अस्तित्व है?" (ऐसे प्रश्न के उत्तर में) "नहीं" कहा जाता है। ये दोनों ही वैध प्रमाण से रहित हैं, तथा प्रत्येक को केवल दूसरे के विचार से ही बोधगम्य किया जा सकता है।

IV-68. जिस प्रकार स्वप्न में देखा गया प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-69. जिस प्रकार जादू से उत्पन्न प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-70. जिस प्रकार मन्त्र-मंत्र और औषधि से उत्पन्न कृत्रिम प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-71. कोई भी प्राणी न तो जन्म लेता है और न ही उसका कोई स्रोत होता है। यह वह परम सत्य है, जहाँ कुछ भी उत्पन्न नहीं होता।

IV-72. विषय-वस्तु सम्बन्ध में निहित यह द्वैत चेतना के स्पंदन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पुनः, चेतना विषय-वस्तु रहित है और इसलिए उसे सदैव अनासक्त घोषित किया जाता है।

IV-73. जो कल्पित अनुभवजन्य दृष्टि होने के कारण विद्यमान है, वह वास्तव में विद्यमान नहीं है। फिर, जो अन्य विचारधाराओं द्वारा लाए गए अनुभवजन्य दृष्टिकोण के आधार पर मौजूद है, वह वास्तव में मौजूद नहीं है।

IV-74. चूँकि आत्मा, अन्य विचारधाराओं द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार, एक कल्पित अनुभवजन्य दृष्टिकोण से जन्म लेती है, इसलिए उस अनुभवजन्य दृष्टिकोण के अनुरूप यह कहा जाता है कि आत्मा अजन्मा है; किन्तु परम सत्य की दृष्टि से वह अजन्मा भी नहीं है।

IV-75. अवास्तविक वस्तुओं के प्रति आकर्षण मात्र है, यद्यपि द्वैत नहीं है। द्वैत के अभाव को अनुभव कर लेने पर कारण के अभाव में मनुष्य पुनः जन्म नहीं लेता।

IV-76. जब कोई कारण नहीं होता - श्रेष्ठ, निम्न या मध्यम - तब चेतना जन्म नहीं लेती। जब कारण ही नहीं है तो परिणाम कैसे हो सकता है?

IV-77. कारणों से रहित चेतना की अजन्मापन स्थिर और निरपेक्ष है, क्योंकि यह सब (अर्थात् द्वैत और जन्म) उसके लिए बोध का विषय था, जो (पहले भी) अजन्मा था।

IV-78. अकारण सत्य को अनुभव कर लेने पर तथा किसी भी अन्य कारण को प्राप्त करने से बच जाने पर मनुष्य उस निर्भयता की स्थिति को प्राप्त करता है जो शोक और मोह (काम) से रहित होती है।

IV-79. अवास्तविक वस्तुओं के प्रति मोह के कारण चेतना स्वयं को उन वस्तुओं में लगाती है जो समान रूप से अवास्तविक हैं। वस्तुओं के अस्तित्वहीन होने का बोध होने पर चेतना आसक्ति से मुक्त होकर उनसे विरत हो जाती है।

IV-80. तब निश्चलता की स्थिति आती है, जब चेतना आसक्ति से मुक्त हो जाती है और अवास्तविक वस्तुओं में स्वयं को नहीं लगाती। बुद्धिमानों के लिए यही दर्शन का विषय है। यही अभेद की (परम) स्थिति है, और यही अजन्मा तथा अद्वैत है।

IV-81. यह अजन्मा, निद्राहीन, स्वप्नहीन तथा स्वयं प्रकाशमान है। क्योंकि यह सत्ता (आत्मा) अपने स्वभाव से ही सदैव प्रकाशमान है।
IV-82. भगवान को किसी भी वस्तु से प्रेम होने के कारण वह अनायास ही आच्छादित हो जाता है, तथा हर बार कठोर प्रयास से अनावृत होता है।

IV-83. बचकानी कल्पना वाला मनुष्य आत्मा को निश्चित रूप से इस प्रकार ढक लेता है कि वह "है", "नहीं है", "है और नहीं है", अथवा "नहीं है", "नहीं है", तथा इस प्रकार के विचार रखता है कि वह परिवर्तनशील है और अपरिवर्तनशील है, परिवर्तनशील है और अपरिवर्तनशील है और अस्तित्वहीन है।

IV-84. ये चार वैकल्पिक विचार हैं, जिनके मोह के कारण भगवान सदैव छिपे रहते हैं। वे ही सर्वद्रष्टा हैं, जिनके द्वारा भगवान इनसे अछूते देखे जाते हैं।

IV-85. सम्पूर्ण सर्वज्ञता तथा आदि, मध्य और अन्त से रहित अद्वैत ब्रह्मत्व को प्राप्त करके क्या कोई उसके बाद कुछ चाहता है?

IV-86. यह ब्राह्मणों की विनम्रता है; इसे उनका स्वाभाविक संयम कहा गया है। चूँकि स्वभाव से ही उन्होंने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, इसलिए यही उनका संयम है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष शांति।

IV-87. वह द्वैत जो विषय और (उसकी) अनुभूति दोनों के साथ सह-अस्तित्व में है, उसे सामान्य (जागृत) अवस्था कहते हैं। वह अवस्था जिसमें विषय के (वास्तविक उपस्थिति) बिना केवल अनुभूति होती है, उसे सामान्य (स्वप्न) अवस्था कहते हैं।

IV-88. विषय से रहित और अनुभूति से रहित अवस्था असाधारण मानी जाती है। इस प्रकार बुद्धिमानों ने ज्ञान, विषय और ज्ञेय को सदा के लिए घोषित कर दिया है।

IV-89. (तीनों विषयों का) ज्ञान प्राप्त करने और क्रमशः विषयों को जानने पर, यहाँ महान बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए, सदा के लिए सर्वज्ञता की स्थिति होती है।

IV-90. जो त्यागने योग्य हैं, जो प्राप्त करने योग्य हैं, जो ग्रहण करने योग्य हैं और जो निष्प्रभावी बनाने योग्य हैं, उन्हें पहले जानना चाहिए।इनमें से, जो प्राप्त करने योग्य है, उसे छोड़कर, ये तीनों अज्ञान से उत्पन्न कल्पना मात्र माने जाते हैं।
IV-91. यह जानना चाहिए कि सभी आत्माएँ स्वभाव से आकाश के समान और शाश्वत हैं। उनमें कहीं भी, लेशमात्र भी, अनेकता नहीं है।

IV-92. सभी आत्माएँ स्वभाव से ही प्रारम्भ से ही प्रकाशित हैं और उनके लक्षण भली-भाँति निश्चित हैं। जो इस प्रकार ज्ञानार्जन की आवश्यकता से मुक्त हो जाता है, वह अमरत्व के योग्य माना जाता है।

IV-93. सभी आत्माएँ प्रारम्भ से ही शान्त, अजन्मा और स्वभाव से ही सर्वथा पृथक, समान और अविभेद हैं और चूँकि सत्त्व इस प्रकार अजन्मा,

अद्वितीय और शुद्ध है, (इसलिए आत्मा में शान्तता लाने की कोई आवश्यकता नहीं है)।

IV-94. जो लोग सदैव द्वैत के मार्ग पर चलते हैं, उनके लिए कभी शुद्धि नहीं हो सकती। वे भेद के मार्ग पर चलते हैं और अनेकता की बात करते हैं और इसलिए वे नीच माने जाते हैं।

IV-95. जो लोग अजन्मा और सदा एकरस रहने वाले तत्त्व के विषय में दृढ़ निश्चय रखते हैं, वे इस संसार में महान ज्ञान से युक्त हैं। परंतु सामान्य मनुष्य उसे समझ नहीं सकता।

IV-96. अजन्मा आत्मा में विद्यमान ज्ञान अजन्मा और असंबंधित माना जाता है। क्योंकि उस ज्ञान का अन्य वस्तुओं से कोई संबंध नहीं है, इसलिए उसे अनासक्त कहा गया है।

IV-97. यदि किसी वस्तु का जन्म हो, चाहे वह कितनी ही तुच्छ क्यों न हो, तो अज्ञानी मनुष्य के लिए अनासक्ति कभी संभव नहीं होती। फिर उसके लिए आवरण के नाश की बात ही क्या करें?

IV-98. सभी आत्माएँ आवरण से रहित हैं और स्वभाव से ही शुद्ध हैं। वे प्रारंभ से ही प्रकाशित और मुक्त हैं। इसलिए उन्हें स्वामी कहा गया है, क्योंकि वे जानने में समर्थ हैं।

IV-99. जो ज्ञानवान और सर्वव्यापी है, उसका ज्ञान वस्तुओं में प्रवेश नहीं करता। और इसलिए आत्मा भी वस्तुओं में प्रवेश नहीं करती। इस तथ्य का उल्लेख बुद्ध ने नहीं किया।

IV-100. उस अद्वैत अवस्था को अनुभव करके, जो अनुभव करने में कठिन है, गहन, अजन्मा, एकरूप और शांत है, हम उसे यथाशक्ति नमस्कार करते हैं।

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें; हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों। महान यश वाले इंद्र हम पर कृपा करें; सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें; दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों; बृहस्पति हमें सभी

प्रकार की समृद्धि प्रदान करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में शामिल माण्डूक्योपनिषद् समाप्त होता है।

008 - तैत्तिरीय उपनिषद

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो! मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

शिक्षा वल्ली

I-i-1: मित्र हम पर आनंदित हों। वरुण हम पर आनंदित हों। आर्यमन हम पर आनंदित हों। इंद्र और बृहस्पति हम पर आनंदित हों। लंबी चाल वाले विष्णु हम पर आनंदित हों।

ब्रह्म को नमस्कार। हे वायु, आपको नमस्कार। आप वास्तव में प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। केवल आपको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। मैं आपको धर्म कहूंगा। मैं तुम्हें सत्य कहूंगा। वह मेरी रक्षा करें। वह गुरु की रक्षा करें। वह मेरी रक्षा करें। वह गुरु की रक्षा करें। ॐ, शांति, शांति, शांति!

I-ii-1: हम उच्चारण के विज्ञान की बात करेंगे। (सीखने वाली चीजें हैं) वर्णमाला, उच्चारण, माप, जोर, एकरूपता, समीपता। इस प्रकार उच्चारण पर अध्याय कहा गया है।

I-iii-1: हम दोनों एक साथ प्रसिद्धि प्राप्त करें। हम दोनों को आध्यात्मिक श्रेष्ठता प्रदान की जाए। अब इसलिए, हम पाँच श्रेणियों के माध्यम से समीपता पर ध्यान बताएंगे - दुनिया से संबंधित, चमकदार चीजें, ज्ञान,

संतान और शरीर से संबंधित। इन्हें वे महान समीपता कहते हैं। अब, जहाँ तक दुनिया के ध्यान का संबंध है। पृथ्वी पहला अक्षर है। स्वर्ग अंतिम अक्षर है। आकाश मिलन स्थल है।

I-iii-2-4: वायु कड़ी है। यह दुनिया के संबंध में ध्यान है। इसके बाद चमकती हुई चीज़ों के बारे में ध्यान आता है। अग्नि पहला अक्षर है। सूर्य अंतिम अक्षर है। जल रैली का बिंदु है। बिजली कड़ी है। यह चमकती हुई चीज़ों के बारे में ध्यान है। इसके बाद ज्ञान के बारे में ध्यान आता है। शिक्षक पहला अक्षर है। छात्र अंतिम अक्षर है ज्ञान मिलन-स्थल है। निर्देश कड़ी है। यह ज्ञान के संबंध में ध्यान है। फिर संतान के संबंध में ध्यान है। माँ पहला अक्षर है। पिता अंतिम अक्षर है। संतान केंद्र बिंदु है। पीढ़ी कड़ी है। यह संतान के संबंध में ध्यान है। फिर (व्यक्तिगत) शरीर के संबंध में ध्यान है। निचला जबड़ा पहला अक्षर है।

ऊपरी जबड़ा अंतिम अक्षर है। वाणी मिलन-स्थल है। जीभ कड़ी है। यह (व्यक्तिगत) शरीर के संबंध में ध्यान है। ये महान विरोधाभास हैं। जो कोई भी इन महान विरोधाभासों पर ध्यान करता है, जैसा कि उन्हें समझाया गया है, वह संतान, जानवरों, पवित्रता की महिमा, खाद्य पदार्थ और स्वर्गीय दुनिया के साथ जुड़ जाता है।

I-iv-1-2: वेदों में जो ओम सबसे श्रेष्ठ है, जो सभी लोकों में व्याप्त है, और जो अमर वेदों से उनका सार रूप में प्रकट हुआ है, वह (ओम अर्थात् इंद्र), सर्वोच्च भगवान, मुझे बुद्धि से संतुष्ट करें। हे प्रभु, मैं अमरता का पात्र बनूं। मेरा शरीर स्वस्थ हो; मेरी जीभ अत्यंत मधुर हो; मैं कानों से बहुत कुछ सुनूं। आप ब्रह्म के आवरण हैं: आप (सांसारिक) ज्ञान से आच्छादित हैं। मैंने जो सुना है उसकी रक्षा करें। फिर मुझे जो उसकी (यानी समृद्धि की) अपनी है, वह समृद्धि प्रदान करें जो मेरे लिए हमेशा के लिए कपड़े, मवेशी, भोजन और पेय लाती है, बढ़ती है और जल्दी से पूरा करती है, और जो रोएँदार और अन्य जानवरों से जुड़ी है। स्वाहा। ब्रह्मचारी (यानी छात्र) सभी तरफ से मेरे पास आएं। स्वाहा।

ब्रह्मचारी विभिन्न तरीकों से मेरे पास आएं। स्वाहा। ब्रह्मचारी मेरे पास उचित मार्ग से आएं। स्वाहा। ब्रह्मचारियों में शारीरिक संयम हो। स्वाहा। ब्रह्मचारियों में मानसिक संयम हो। स्वाहा।

I-iv-3: मैं लोगों के बीच प्रसिद्ध हो जाऊं। स्वाहा। मैं धनवानों के बीच प्रशंसनीय बनूं। स्वाहा। हे आराध्य, आप जैसे हैं, वैसे ही मैं आप में प्रवेश

करूं। स्वाहा। हे पूज्य, आप जैसे हैं, वैसे ही मुझ में प्रवेश करें। स्वाहा। हे आराध्य, आप जो बहुत विविधतापूर्ण हैं, मैं आप में अपने पापों का शुद्धिकरण करूं। स्वाहा। जैसे जल ढलान से नीचे बहता है, जैसे महीने एक वर्ष में बदल जाते हैं, वैसे ही हे प्रभु, छात्र सभी दिशाओं से मेरे पास आएं। स्वाहा। आप विश्रामगृह की तरह हैं, इसलिए आप मेरे लिए प्रकट होते हैं, आप मेरे पास हर तरह से पहुंचते हैं।

I-v-1-2: भूः, भुवः, सुवः - ये तीन, वास्तव में, व्याहृतियाँ हैं। उनमें से महाकामस्य ने एक चौथे को जाना - जिसका नाम महा है। यह ब्रह्म है; यह आत्मा है। अन्य देवता अंग हैं। भूः वास्तव में यह जगत है। भुवः मध्यवर्ती स्थान है। सुवः दूसरा जगत है। महा सूर्य है; सूर्य के द्वारा ही समस्त लोक फलते-फूलते हैं। भूः वास्तव में अग्नि है। भुवः वायु है। सुवः सूर्य है। महा चन्द्रमा है; चन्द्रमा के द्वारा ही समस्त प्रकाशमान प्राणी फलते-फूलते हैं। भूः वास्तव में ऋग्वेद है। भुवः सामवेद है। सुवः यजुर्वेद है।

प्रथम-पंचम-3: महा ब्रह्म (अर्थात् ॐ) है, क्योंकि ब्रह्म (ॐ) से ही समस्त वेद पोषित होते हैं। भूः वास्तव में प्राण है; भुवः अपान है; सुवः व्यान है; महा अन्न है; क्योंकि अन्न से ही समस्त प्राणशक्तियाँ पोषित होती हैं। ये चार हैं, ये चार हैं। व्याहृतियाँ चार-चार के चार समूहों में विभक्त हैं। जो इन्हें जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। सभी देवता उसके लिए उपहार लेकर आते हैं।

1-6-1-2: हृदय में जो स्थान है, उसमें यह पुरुष है, जो ज्ञान के द्वारा साक्षात् होने योग्य है, जो अमर और तेजोमय है। यह जो तालुओं के बीच में थन की तरह लटकता है, उसमें से ब्रह्म का मार्ग बहता है और जहाँ बाल अलग होते हैं, वहाँ पहुँचकर खोपड़ियों को अलग करके निकल जाता है। (उस मार्ग से निकलकर मनुष्य) अग्नि में व्याहृति भूः के रूप में स्थित होता है; वह वायु में व्याहृति भुवः के रूप में स्थित होता है; सूर्य में व्याहृति सुवः के रूप में स्थित होता है; ब्रह्म में व्याहृति महाः के रूप में स्थित होता है। वह स्वयं स्वतंत्र प्रभुता प्राप्त करता है; वह मन का स्वामी बन जाता है; वह वाणी का अधिपति, नेत्रों का अधिपति, कानों का अधिपति, ज्ञान का अधिपति बन जाता है। इन सबसे ऊपर वह ब्रह्म बन जाता है जो आकाश में समाया हुआ है, जो स्थूल और सूक्ष्म से पहचाना जाता है और जिसका वास्तविक स्वरूप सत्य है, जो जीवन में प्रकट होता है, जिसके अधीन मन आनंद का स्रोत है, जो शांति से समृद्ध है और अमर है। इस प्रकार, हे प्रचिनायोग, तुम आराधना करो।

I-vii-1: पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, प्राथमिक तिमाही और मध्यवर्ती तिमाही; अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्रमा और तारे; जल, जड़ी-बूटियाँ, वृक्ष, आकाश और विराट - ये प्राकृतिक कारकों से संबंधित हैं। फिर व्यक्तिगत कारकों का पालन करें: प्राण, व्यान, अपान, उदान और समान; आंख, कान, मन, वाणी और स्पर्श की इंद्रिय; त्वचा, मांस, मांसपेशियां, अस्थि और मज्जा। इस प्रकार इनकी कल्पना करके, ऋषि ने कहा, "यह सब पाँच कारकों से बना है; व्यक्ति (बाहरी) पाँच गुना कारकों को (व्यक्तिगत) पाँच गुना कारकों से भरता है।

I-viii-1: ॐ ब्रह्म है। ॐ यह सब है। ॐ अनुकरण (यानी सहमति) के शब्द के रूप में प्रसिद्ध है। इसके अलावा, वे उन्हें (देवताओं को) "ॐ, (देवताओं को) सुनाओ" शब्दों के साथ (देवताओं को) सुनाते हैं। वे ॐ से समास गाना शुरू करते हैं। 'ॐ सोम' शब्द का उच्चारण करते हुए वे शास्त्रों का पाठ करते हैं। ब्रह्मा 'ॐ' शब्द से स्वीकृति देते हैं। अग्निहोत्र यज्ञ करने की अनुमति 'ॐ' शब्द से देते हैं। ब्राह्मण जब वेदों का पाठ करने वाला होता है तो 'मैं ब्रह्म को प्राप्त करूँगा' इस भावना से 'ॐ' का उच्चारण करता है। वह वास्तव में ब्रह्म को प्राप्त करता है।

1-9-1: धर्म, विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। सत्य, विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। तप, विद्या और शिक्षा (का सहारा लेना है)। बाह्य इन्द्रियों का संयम तथा विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। अन्तः इन्द्रियों का संयम तथा विद्या और शिक्षा (का सहारा लेना है)। अग्नि (को जलाना है) तथा विद्या और शिक्षा (का पालन करना है)। अग्निहोत्र (करना है) तथा विद्या और शिक्षा (करना है)। अतिथियों का सत्कार करना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। सामाजिक अच्छा आचरण अपनाना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। संतान उत्पन्न करनी चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए।

संतानोत्पत्ति करनी चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। पौत्र का पालन करना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। सत्य ही सब कुछ है - ऐसा रथीतर वंश के सत्यवचन का विचार है। तप ही सब कुछ है - ऐसा पुरुषिष्टी के पुत्र तपोनित्य का विचार है। विद्या और शिक्षा ही सब कुछ है - ऐसा मुद्गल पुत्र नक का विचार है। यही तपस्या है; यही तपस्या है। मैं इस संसार के वृक्ष को शक्ति प्रदान करने वाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत की चोटी के समान ऊँची है। मेरा मूल शुद्ध (ब्रह्म) है। मैं सूर्य में स्थित उस शुद्ध सत्य (आत्मा) के समान हूँ। मैं

तेजोमय धन हूँ। मैं उत्तम बुद्धि से युक्त हूँ, अमर और अविनाशी हूँ। इस प्रकार त्रिशंकु ने आत्मज्ञान प्राप्ति के पश्चात कहा था।

11-11: वेदों की शिक्षा देने के पश्चात् गुरु शिष्यों को यह उपदेश देते हैं: "सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। अध्ययन में कोई भूल मत करो। गुरु को इच्छित धन अर्पित करने के पश्चात् वंश का नाश मत करो। सत्य के विषय में कोई असावधानी नहीं होनी चाहिए। धर्माचरण से कोई विमुखता नहीं होनी चाहिए। आत्मरक्षा के विषय में कोई भूल नहीं होनी चाहिए। शुभ कर्मों की उपेक्षा मत करो। अध्ययन और शिक्षण में प्रमाद मत करो।

11-2-4: देवताओं और पितरों के प्रति कर्तव्यों में कोई भूल नहीं होनी चाहिए। तुम्हारी माता तुम्हारे लिए देवी हो। तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए देवता हों। तुम्हारा गुरु तुम्हारे लिए देवता हो। तुम्हारा अतिथि तुम्हारे लिए देवता हो। जो काम निन्दनीय नहीं हैं, उन्हें करना चाहिए, पर दूसरे काम नहीं करने चाहिए। हमारे ये जो प्रशंसनीय कार्य हैं, उन्हें तुम्हें करना चाहिए, पर दूसरे नहीं करने चाहिए।

तुम उन ब्राह्मणों को आसन देकर उनकी थकान दूर करो, जो हम में से अधिक प्रशंसनीय हैं। अर्पण आदर के साथ होना चाहिए, अर्पण अनादर के साथ नहीं होना चाहिए। अर्पण प्रचुर मात्रा में होना चाहिए। अर्पण विनय के साथ होना चाहिए। अर्पण भय के साथ होना चाहिए। अर्पण सहानुभूति के साथ होना चाहिए। फिर, यदि तुम्हें कर्तव्यों या रीति-रिवाजों के संबंध में कोई संदेह हो, तो तुम्हें उन मामलों में ब्राह्मणों के समान आचरण करना चाहिए, जो वहाँ उपस्थित हो सकते हैं और जो योग्य विचारक हैं, जो उन कर्तव्यों और रीति-रिवाजों में निपुण हैं, जो दूसरों के द्वारा निर्देशित नहीं होते, जो क्रूर नहीं हैं और जो पुण्य के इच्छुक हैं।

फिर, जहाँ तक आरोपी लोगों का सवाल है, आपको उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा ब्राह्मण करते हैं, जो वहाँ मौजूद हो सकते हैं और जो योग्य विचारक हैं, जो उन कामों में निपुण हैं।

कर्तव्य और रीति-रिवाज, जो दूसरों के द्वारा निर्देशित नहीं हैं, जो क्रूर नहीं हैं, जो पुण्य के इच्छुक हैं। यही आदेश है। यही निर्देश है। यही वेदों का रहस्य है। यही ईश्वरीय आदेश है। इसी प्रकार ध्यान करना चाहिए। इसी प्रकार इसका ध्यान करना चाहिए।

I-xii-1: मित्र हम पर आनंदित हों। वरुण हम पर आनंदित हों। आर्यमन हम पर आनंदित हों। इंद्र और बृहस्पति हम पर आनंदित हों। लंबे कदमों वाले विष्णु हम पर आनंदित हों। ब्रह्म को नमस्कार। हे वायु, आपको नमस्कार है। आप वास्तव में प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। केवल आपको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। मैं आपको धर्म कहूंगा। मैं आपको सत्य कहूंगा। वे मेरी रक्षा करें। वे गुरु की रक्षा करें। वे मेरी रक्षा करें। वे गुरु की रक्षा करें। ॐ, शांति, शांति, शांति! ब्रह्मानंद वल्ली

II-i: वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें। वह हम दोनों का पोषण साथ-साथ करे। हम दोनों मिलकर शक्ति प्राप्त करें। हमारा अध्ययन उत्कृष्ट हो। हम एक-दूसरे पर दोषारोपण न करें। ॐ! शांति! शांति! शांति!

II-i-1: ब्रह्म को जानने वाला सर्वोच्च को प्राप्त करता है। इसी तथ्य को कहने वाला एक श्लोक है: "ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनंत है। जो व्यक्ति उस ब्रह्म को बुद्धि में विद्यमान, हृदय में परम स्थान में स्थित जानता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ एकरूप होकर सभी इच्छित वस्तुओं का एक साथ आनंद लेता है। उस ब्रह्म से, जो आत्मा है, आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु उत्पन्न हुई।

वायु से अग्नि उत्पन्न हुई। अग्नि से जल उत्पन्न हुआ। जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वी से जड़ी-बूटियाँ उत्पन्न हुईं। जड़ी-बूटियों से अन्न उत्पन्न हुआ। अन्न से मनुष्य उत्पन्न हुआ। वह मनुष्य, जैसा वह है, अन्न के सार का उत्पाद है। उसी में से यह सिर है, यह दक्षिण भाग है; यह उत्तर भाग है; यह आत्मा है; यह स्थिर करने वाली पूँछ है।

इसी तथ्य से संबंधित एक श्लोक यहाँ है:

II-ii-1: पृथ्वी पर विश्राम करने वाले सभी प्राणी वस्तुतः अन्न से ही उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, वे अन्न पर ही जीवित रहते हैं और अंत में अन्न में ही लीन हो जाते हैं। अन्न वस्तुतः सभी प्राणियों से पहले उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसे सभी के लिए औषधि कहा गया है, जो लोग अन्न को ब्रह्म के रूप में पूजते हैं, वे सभी अन्न प्राप्त करते हैं। अन्न वस्तुतः सभी प्राणियों से पहले उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसे सभी के लिए औषधि कहा गया है। प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर वे अन्न से बढ़ते हैं। चूँकि इसे खाया जाता है और यह प्राणियों को खाता है, इसलिए इसे अन्न कहा जाता है।

जैसा कि पहले कहा गया है, अन्न के सार से बनी इस आत्मा की तुलना में, एक और आंतरिक आत्मा है जो वायु से बनी है। उसी से यह भरी हुई है। यह आत्मा भी मनुष्य रूप वाली है। इसका मनुष्य रूप उस (पहले वाले) के मनुष्य रूप का ही रूप है। इसमें प्राण सिर है, व्यान दक्षिण भाग है, अपान उत्तर भाग है, आकाश आत्मा है, पृथ्वी स्थिर करने वाली पूँछ है। उससे संबंधित यह (निम्न) श्लोक है:

II-III-1: इन्द्रियाँ मुख में प्राण का अनुसरण करके कार्य करती हैं; वहाँ स्थित सभी मनुष्य और पशु इसी प्रकार कार्य करते हैं; चूँकि प्राण पर ही सभी प्राणियों का जीवन निर्भर है, इसलिए इसे सभी का जीवन कहा जाता है; जो लोग प्राण को ब्रह्म के रूप में पूजते हैं, वे पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं; चूँकि प्राण पर ही सभी का जीवन निर्भर है, इसलिए इसे सभी का जीवन कहा जाता है। पूर्ववर्ती (भौतिक) में से यह वास्तव में देहधारी आत्मा है। इस प्राणमय शरीर की तुलना में मन से निर्मित एक और आंतरिक आत्मा है। उसी से यह आत्मा भरी हुई है।

मन से निर्मित वह आत्मा भी मानव आकार की है। मनस शरीर का मानव आकार प्राण शरीर के मानव आकार का ही अनुसरण करता है। मनस-शरीर में यजुर्-मंत्र सिर हैं। ऋग्-मंत्र दाहिना भाग हैं, साम-मंत्र बायाँ भाग हैं, ब्राह्मण भाग आत्मा (धड़) है, अथर्वंगीरस द्वारा देखे गए मंत्र स्थिर करने वाली पूँछ हैं। इस संबंध में एक श्लोक है:

II-IV-1: यदि कोई उस आनंद को जानता है जो ब्रह्म है, तो उसे कभी भी भय नहीं लगता है, जिसे प्राप्त न करने पर (ब्रह्म, मन द्वारा वातानुकूलित), वाणी मन के साथ पीछे लौट जाती है। उस पूर्ववर्ती (प्राण) में से यह (मानसिक) वास्तव में देहधारी आत्मा है। इसकी तुलना में मानसिक शरीर के अतिरिक्त एक और आंतरिक आत्मा है, जो सत्य ज्ञान से निर्मित है। उसी से यह आत्मा परिपूर्ण है। जैसा कि पूर्वोक्त कहा गया है, इसका आकार वास्तव में मनुष्य जैसा है।

यह पहले वाले के मानव आकार के अनुसार ही मानव रूप में बना है। उसका श्रद्धा ही सिर है, धर्म ही दाहिना भाग है, सत्य ही बायाँ भाग है, एकाग्रता ही आत्मा है, महात् नामक तत्त्व ही स्थिर करने वाली पूँछ है। इस विषय में यहाँ एक श्लोक है: ज्ञान से ही यज्ञ की सिद्धि होती है, तथा वह कर्तव्यों का पालन भी करता है। सभी देवता ज्ञान से युक्त होकर प्रथम ब्रह्म का ध्यान करते हैं।

यदि कोई ज्ञान-ब्रह्म को जान ले, तथा उसमें कोई भूल न करे, तो वह शरीर में सभी पापों का परित्याग कर देता है, तथा सभी सुखों का पूर्ण आनंद उठाता है। उस पहले वाले (मानसिक) ब्रह्म का यह (ज्ञानात्मक) स्वरूप वास्तव में देहधारी आत्मा है। इस ज्ञानात्मक शरीर की अपेक्षा आनन्द से निर्मित एक और अन्तरात्मा है। उसी से यह पूर्ण है। जैसा कि पूर्वोक्त है, इसका भी वास्तव में मनुष्य रूप है। यह पहले वाले के मनुष्य रूप के अनुसार ही मनुष्य रूप में बना है।

आनन्द ही उसका सिर है, भोग दाहिना भाग है, उल्लास बायाँ भाग है; आनन्द ही आत्मा (धड़) है। ब्रह्म ही स्थिर करने वाली पूँछ है। इसी के सम्बन्ध में यहाँ एक श्लोक है:

II-vi-1: यदि कोई ब्रह्म को असत् जानता है, तो वह स्वयं असत् हो जाता है। यदि कोई जानता है कि ब्रह्म है, तो वे उसे उसी (ज्ञान) के कारण विद्यमान मानते हैं। उस पहले वाले (आनन्दमय) का यह देहधारी आत्मा है। अतः आगे ये प्रश्न आते हैं: क्या कोई अज्ञानी मनुष्य यहाँ से विदा होकर परलोक में जाता है (या नहीं जाता)? इसके अलावा, क्या कोई ज्ञानी पुरुष यहाँ से विदा होकर परलोक में पहुँचता है (या नहीं)? उसने (आत्मा ने) चाहा, 'मैं अनेक हो जाऊँ, मैं जन्म लूँ। उसने विचार किया। विचार करके उसने यह सब रचा जो विद्यमान है।

वह (ब्रह्म) रचकर उसी में प्रविष्ट हो गया। और वहाँ प्रविष्ट होकर वह सगुण और निराकार, परिभाषित और अपरिभाषित, धारण करने वाला और अधारण करने वाला, चेतन और अचेतन, सत्य और असत्य बन गया। जो कुछ है वह सब सत्य बन गया। उस ब्रह्म को वे सत्य कहते हैं। इसके विषय में यह श्लोक आता है:

II-vii-1: आरंभ में यह सब अव्यक्त (ब्रह्म) था। उससे व्यक्त उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्म ने स्वयं ही स्वयं को रचा। इसलिए उसे स्वयं रचयिता कहते हैं। जिसे स्वयं रचयिता कहते हैं, वही वास्तव में आनंद का स्रोत है; क्योंकि उस आनन्द के स्रोत के सम्पर्क में आने से ही मनुष्य सुखी हो जाता है। यदि यह आनन्द परम स्थान (हृदय के भीतर) में न हो, तो कौन श्वास लेगा और कौन छोड़ेगा। यह आनन्द ही लोगों को सजीव करता है।

जब भी साधक इस अगोचर, अशरीरी, अवर्णनीय और आधारहीन ब्रह्म में निर्भय होकर स्थित हो जाता है, तो वह निर्भयता की स्थिति को प्राप्त हो

जाता है। जब भी साधक इसमें जरा-सा भी अन्तर उत्पन्न करता है, तो वह भय से ग्रसित हो जाता है। फिर भी, वही ब्रह्म उस तथाकथित विद्वान व्यक्ति के लिए भय का कारण है, जिसमें एकात्मक दृष्टिकोण का अभाव है। इसका उदाहरण यह श्लोक है:

II-viii-1-4: उसके भय से वायु चलती है। भय से ही सूर्य उदय होता है। उसके भय से ही अग्नि, इन्द्र और मृत्यु उत्पन्न होते हैं। तो, यह उस आनंद का मूल्यांकन है: मान लीजिए कि एक युवा व्यक्ति है - जीवन के चरम पर, अच्छा, विद्वान, सबसे तेज, सबसे मजबूत और सबसे ऊर्जावान। मान लीजिए कि उसके लिए यह धरती धन से भरी हुई है। यह मानवीय आनंद की एक इकाई होगी। यदि यह मानवीय आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह मनुष्य-गंधर्वों का एक आनंद है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है।

यदि मनुष्य-गंधर्वों का यह आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह दिव्य-गंधर्वों का एक आनंद है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है। यदि दिव्य-गंधर्वों का आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह उन पितरों का एक आनंद है जिनका संसार शाश्वत है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है।

यदि शाश्वत संसार में रहने वाले पितरों का आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह उन पितरों का एक आनंद है जिनका संसार शाश्वत है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है स्वर्ग में देवताओं के रूप में जन्म लेने वालों का आनंद और इच्छाओं से अछूते वेदों के अनुयायी का भी आनंद।

यदि स्वर्ग में देवताओं के रूप में जन्म लेने वालों का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह कर्म-देवों नामक देवताओं का एक आनंद है, जो वैदिक अनुष्ठानों के माध्यम से देवताओं तक पहुँचते हैं, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है।

यदि कर्म-देवों नामक देवताओं का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह देवताओं का एक आनंद है, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है। यदि देवताओं का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह इंद्र का एक आनंद है, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है। यदि इंद्र का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो

यह बृहस्पति का एक आनंद है और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है।

बृहस्पति का आनन्द यदि सौ गुना बढ़ जाये तो वह विराट का एक आनन्द है, और वेदों के अनुयायी का भी जो कामनाओं से रहित है। विराट का आनन्द यदि सौ गुना बढ़ जाये तो वह हिरण्यगर्भ का एक आनन्द है, और वेदों के अनुयायी का भी जो कामनाओं से रहित है।

II-viii-5: वह जो यहाँ मनुष्य शरीर में है, और वह जो वहाँ सूर्य में है, वे एक हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह इस संसार से विरक्त होकर अन्नमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, प्राणमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, बुद्धिमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, आनन्दमय इस आत्मा को प्राप्त करता है। इसकी अभिव्यक्ति में यह श्लोक आता है:

II-ix-1: ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त करने के बाद प्रबुद्ध व्यक्ति किसी भी चीज़ से नहीं डरता, जिसे प्राप्त न करने पर मन के साथ-साथ वाणी भी लौट जाती है। उसे यह पश्चाताप नहीं सताता कि मैंने अच्छे कर्म क्यों नहीं किए और बुरे कर्म क्यों किए? जो इस प्रकार ज्ञानी हो जाता है, वह उस आत्मा को बल देता है, जो इन दोनों के समान है; क्योंकि जो इस प्रकार जानता है, वही उस आत्मा को बल दे सकता है, जो वास्तव में ये दोनों है। यही गुप्त शिक्षा है।

भृगु वल्ली तृतीय-1: वरुण के सुप्रसिद्ध पुत्र भृगु अपने पिता वरुण के पास यह (औपचारिक) निवेदन लेकर गए कि हे पूज्यवर, मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। उनसे उन्होंने (वरुण ने) यह कहा: "अन्न, प्राण, नेत्र, कान, मन, वाणी - (ये ब्रह्म के ज्ञान के सहायक हैं)"। उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "उसको जानने की लालसा करो, जिससे ये सभी प्राणी जन्म लेते हैं, जिससे जन्म लेने के बाद जीवित रहते हैं, जिसकी ओर वे गति करते हैं और जिसमें विलीन हो जाते हैं। वही ब्रह्म है।" उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास करके,

III-ii-1: उन्होंने अन्न (अर्थात विराट, स्थूल ब्रह्मांडीय व्यक्ति) को ब्रह्म के रूप में जाना। क्योंकि यह वास्तव में अन्न से ही है कि ये सभी प्राणी जन्म लेते हैं, अन्न पर ही जन्म लेने के बाद निर्वाह करते हैं और अन्न की ओर बढ़ते हैं और अन्न में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर, वे फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गए। "हे, पूज्य महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाइए"। उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "एकाग्रता के माध्यम

से ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ब्रह्म है"। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास करके,

III-iii-1: उन्होंने प्राण शक्ति को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि प्राण शक्ति से ही वास्तव में ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; अस्तित्व में आने के बाद, वे प्राण शक्ति के माध्यम से जीवित रहते हैं; वे प्राण शक्ति की ओर बढ़ते हैं और उसमें प्रवेश करते हैं, ऐसा जानकर, वे फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गए। "हे, पूज्य महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाइए"। उससे उसने (वरुण ने) कहा: “एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है”।

उसने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करने के बाद, उसने मन को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि मन से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद, वे मन द्वारा पोषित होते हैं; और वे मन की ओर बढ़ते हैं और मन में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर, वह फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गया। “हे, श्रद्धेय महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाएँ”। उससे उसने (वरुण ने) कहा: “एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है”। उसने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करने के बाद।

तृतीय पंचम-१: उन्होंने ज्ञान को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि ज्ञान से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद वे ज्ञान से पोषित होते हैं; वे ज्ञान की ओर बढ़ते हैं और ज्ञान में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर वे पुनः अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध लेकर गए। "हे पूज्यवर, मुझे ब्रह्म सिखाइए"।

उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की लालसा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है"। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करके उन्होंने आनंद को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि आनंद से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद वे आनंद से पोषित होते हैं; वे आनंद की ओर बढ़ते हैं और आनंद में विलीन हो जाते हैं।

भृगु द्वारा अनुभव किया गया और वरुण द्वारा प्रदान किया गया यह ज्ञान (अन्न-स्व से प्रारंभ होकर) हृदय गुहा में स्थित परम (आनंद) में समाप्त होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह दृढ़ता से स्थित हो जाता है;

वह अन्न का स्वामी और अन्न खानेवाला बन जाता है और वह संतति, पशुधन और पवित्रता की चमक में महान और यश में महान हो जाता है।

III-vii-1: उसका व्रत है कि वह अन्न का तिरस्कार न करे। प्राण ही अन्न है और शरीर भक्षक है; क्योंकि प्राण शरीर में स्थित है। (फिर से, शरीर अन्न है और प्राण ही भक्षक है, क्योंकि) शरीर प्राण पर स्थित है। इस प्रकार (शरीर और प्राण दोनों ही अन्न हैं; और) एक अन्न दूसरे में स्थित है। जो इस प्रकार जानता है कि एक अन्न दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ हो जाता है। वह अन्न का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतति, पशुधन और पवित्रता की चमक में महान और यश में महान हो जाता है।

III-viii-1: उसका व्रत है कि वह अन्न का त्याग न करे। जल ही अन्न है; अग्नि ही भक्षक है; क्योंकि जल अग्नि पर स्थित है। (अग्नि भोजन है और जल भक्षक है, क्योंकि) अग्नि जल में निवास करती है। इस प्रकार एक भोजन दूसरे भोजन में स्थित होता है। जो इस प्रकार जानता है कि एक भोजन दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ रूप से स्थापित हो जाता है। वह भोजन का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतान, पशुधन, पवित्रता की चमक और महिमा में महान हो जाता है।

III-ix-1: उसका व्रत है कि वह भोजन को प्रचुर मात्रा में बनाए। पृथ्वी भोजन है; अंतरिक्ष भक्षक है; क्योंकि पृथ्वी अंतरिक्ष में स्थित है। (अंतरिक्ष भोजन है; और पृथ्वी भक्षक है, क्योंकि) अंतरिक्ष पृथ्वी पर स्थित है। इस प्रकार एक भोजन दूसरे भोजन में स्थित होता है। जो इस प्रकार जानता है कि एक भोजन दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ रूप से स्थापित हो जाता है। वह भोजन का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतान, पशुधन, पवित्रता की चमक और महिमा में महान हो जाता है।

III-x-1-2: उसका व्रत है कि वह किसी को भी आश्रय के लिए आने से मना नहीं करेगा। इसलिए व्यक्ति को किसी भी तरह से प्रचुर मात्रा में भोजन इकट्ठा करना चाहिए। (और भोजन इकट्ठा करना चाहिए क्योंकि) वे कहते हैं, "उसके लिए भोजन तैयार है"। क्योंकि वह अपनी छोटी उम्र में पका हुआ भोजन सम्मान के साथ अर्पित करता है, इसलिए भोजन छोटी उम्र में सम्मान के साथ उसके हिस्से में आता है।

क्योंकि वह अपनी मध्यम आयु में मध्यम शिष्टाचार के साथ भोजन अर्पित करता है, इसलिए भोजन उसकी मध्यम आयु में मध्यम सम्मान के साथ उसके हिस्से में आता है। क्योंकि वह अपनी बुढ़ापे में अल्प सम्मान

के साथ भोजन अर्पित करता है, इसलिए भोजन बुढ़ापे में अल्प विचार के साथ उसके हिस्से में आता है। जो इस प्रकार जानता है (उक्त परिणाम प्राप्त होता है)। (ब्रह्म का ध्यान) वाणी में संरक्षण के रूप में; श्वास लेने और छोड़ने में अधिग्रहण और संरक्षण के रूप में; हाथों में क्रिया के रूप में; पैरों में गति के रूप में; गुदा में उत्सर्जन के रूप में। मानव स्तर पर ध्यान हैं। फिर दिव्य का पालन करें। (ब्रह्म का ध्यान) वर्षा में संतोष के रूप में; बिजली में ऊर्जा के रूप में।

III-x-3-4: ब्रह्म की पूजा जानवरों में प्रसिद्धि के रूप में की जाती है; सितारों में प्रकाश के रूप में; प्रजनन, अमरता और जननेंद्रिय में आनंद के रूप में; अंतरिक्ष में सब कुछ के रूप में। उस ब्रह्म का ध्यान आधार के रूप में करना चाहिए; जिससे वह सहारा पाता है। उस ब्रह्म का ध्यान महान के रूप में करना चाहिए; जिससे वह महान बन जाता है। उस पर विचार के रूप में ध्यान करना चाहिए; जिससे वह सक्षम हो जाता है विचार करो।

उसे नमन के रूप में ध्यान करना चाहिए; इससे आनंददायक चीजें उसके सामने झुक जाती हैं। उसे सबसे श्रेष्ठ मानकर ध्यान करना चाहिए; इससे वह श्रेष्ठ हो जाता है। उसे ब्रह्म के नाश का माध्यम मानकर ध्यान करना चाहिए; इससे ऐसे व्यक्ति से ईर्ष्या करने वाले विरोधी मर जाते हैं, और ऐसे ही शत्रु भी मर जाते हैं जिनसे वह व्यक्ति घृणा करता है। यह जो मनुष्य व्यक्तित्व में है, और वह जो सूर्य में है, वे एक हैं।

III-x-5-6: जो इस प्रकार जानता है, वह इस संसार से विरक्त होकर अन्न से बने इस आत्मा को प्राप्त करता है। फिर अन्न से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर प्राण से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर मन से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर बुद्धि से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर आनंद से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, और इच्छानुसार अन्न पर अधिकार करके और इच्छानुसार सभी रूपों पर अधिकार करके इन लोकों में भ्रमण करता हुआ, वह यह साम गीत गाता रहता है: "हाल्लो ! हाल्लो ! हाल्लो ! मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ; मैं खानेवाला हूँ, मैं खानेवाला हूँ, मैं खानेवाला हूँ; मैं जोड़नेवाला हूँ, मैं जोड़नेवाला हूँ, मैं जोड़नेवाला हूँ; मैं (हिरण्यगर्भ) इस जगत् में सगुण और अगुण से युक्त प्रथम जन्मा हूँ, मैं (विराट के रूप में) देवताओं से भी प्राचीन हूँ।

मैं अमरता की नाभि हूँ। जो मुझे इस प्रकार (भोजन के रूप में) अर्पण करता है, वह मेरी रक्षा करे। जो अर्पण किए बिना अन्न खाता है, उसे मैं अन्न के रूप में खा जाता हूँ। मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को परास्त कर देता हूँ। हमारा तेज

सूर्य के समान है। यह उपनिषद् है। ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन प्रबल और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! कृष्ण-यजुर्वेद में सम्मिलित तैत्तिरीयोपनिषद् यहीं समाप्त होता है।

००८ - ऐतरेय उपनिषद

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित

ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);मेरा मन वाणी पर आधारित हो।हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दो।तुम दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनो।मैंने जो कुछ सुना है, वह सब मुझसे दूर न हो।मैं इस अध्ययनके द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिटा दूँगा) जोड़ूँगा।मैं वही बोलूँगा जो मौखिक रूप से सत्य है;मैं वही बोलूँगा जो मानसिक रूप से सत्य है।वह (ब्रहम) मेरी रक्षा करे;वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करे, वह मेरी रक्षा करे;वह वक्ता की रक्षा करे - वह वक्ता की रक्षा करे।

ॐ ! शांति ! शांति !

I-i-1: आरंभ में यह केवल पूर्ण आत्मा थी। और कुछ भी नहीं था जो पलक झपकाता हो। उसने सोचा, "मैं लोकों की रचना करूँ।"

1-1-2: उसने इन लोकों की रचना की, अर्थात् अम्भस, मरीचि, मर, आपः। जो स्वर्ग से परे है, वह अम्भस है। स्वर्ग उसका आधार है। आकाश मरीचि है। पृथ्वी मर है। नीचे जो लोक हैं, वे आपः हैं।

1-1-3: उसने सोचा, "तो ये लोक हैं। मैं लोकों के रक्षकों की रचना करूँ।" जल से ही मनुष्य रूप का एक पिंड एकत्र करके उसने उसे आकार दिया।

1-1-4: उसने अपने (अर्थात् मानव रूप के विराट) के संबंध में विचार किया। जैसे ही उस (अर्थात् विराट) के बारे में विचार किया जा रहा था, उसका (अर्थात् विराट) मुख अंडे की तरह खुल गया। मुख से वाणी निकली; वाणी से अग्नि निकली। नासिकाएँ खुल गईं; नासिकाओं से घ्राण शक्ति निकली; गंध की इंद्रिय से वायु उत्पन्न हुई। दोनों आंखें अलग हो गईं; आंखों से दृष्टि की इंद्रिय उत्पन्न हुई; दृष्टि की इंद्रिय से सूर्य उत्पन्न हुआ। दोनों कान अलग हो गए; कानों से श्रवण की इंद्रिय उत्पन्न हुई; श्रवण की इंद्रिय से दिशाएं उत्पन्न हुईं। त्वचा उत्पन्न हुई; त्वचा से बाल उत्पन्न हुए (अर्थात बालों से जुड़ी स्पर्श की इंद्रिय); स्पर्श की इंद्रिय से जड़ी-बूटियां और पेड़ उत्पन्न हुए। हृदय ने आकार लिया;

हृदय से अंतःकरण (मन) निकला; अंतःकरण से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। नाभि फट गई; नाभि से उत्सर्जन अंग निकला; उत्सर्जन अंग से मृत्यु निकली। प्रजनन अंग का स्थान फट गया; उससे प्रजनन अंग निकला; प्रजनन अंग से जल निकला।

I-ii-1: ये देवता, जो बनाए गए थे, इस विशाल महासागर में गिर गए। उसने उसे (यानी विराट को) भूख और प्यास के अधीन कर दिया। उन्होंने उससे (यानी सृष्टिकर्ता से) कहा, "हमारे लिए एक निवास प्रदान करें, जहाँ हम भोजन कर सकें।"

I-ii-2: उनके लिए वह (यानी भगवान) एक गाय लाया। उन्होंने कहा, "यह निश्चित रूप से हमारे लिए पर्याप्त नहीं है।" उनके लिए वह एक घोड़ा लाया। उन्होंने कहा, "यह निश्चित रूप से हमारे लिए पर्याप्त नहीं है।"

I-ii-3: उनके लिए वह एक आदमी लाया। उन्होंने कहा "यह अच्छी तरह से बना हुआ है; मनुष्य वास्तव में स्वयं ईश्वर की रचना है। उनसे उन्होंने कहा, "अपने-अपने निवास में प्रवेश करो"।

I-ii-4: अग्नि वाणी के अंग का रूप लेकर मुख में प्रवेश कर गई; वायु घ्राण के अंग का रूप लेकर नासिका में प्रवेश कर गई; सूर्य दृष्टि के अंग के रूप में आंखों में प्रवेश कर गया; दिशाएं श्रवण के अंग बनकर कानों में प्रवेश कर गईं; जड़ी-बूटियां और पेड़ बाल (यानी स्पर्श की इंद्रिय) के रूप में त्वचा में प्रवेश कर गए; चंद्रमा मन के रूप में हृदय में प्रवेश कर गया; मृत्यु

अपान (यानी दबाव डालने वाली महत्वपूर्ण ऊर्जा) के रूप में नाभि में प्रवेश कर गई; जल वीर्य (यानी प्रजनन के अंग) के रूप में पीढ़ी के अंग में प्रवेश कर गया।

I-ii-5: भूख और प्यास ने उनसे कहा, "हमारे लिए (कोई निवास) प्रदान करें।" उनसे उन्होंने कहा, "मैं इन्हीं देवताओं के बीच तुम्हारी आजीविका प्रदान करता हूँ; मैं तुम्हें उनके हिस्से में भागीदार बनाता हूँ। इसलिए जब किसी भी देवता के लिए आहुति दी जाती है, तो भूख और प्यास वास्तव में उस देवता के हिस्सेदार बन जाते हैं।

I-iii-1: उन्होंने सोचा, "तो, ये इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के देवता हैं। मुझे उनके लिए भोजन बनाना चाहिए।

I-iii-2: उन्होंने पानी के संबंध में विचार किया। इस प्रकार विचार करने पर पानी से एक रूप विकसित हुआ। जो रूप उत्पन्न हुआ वह वास्तव में भोजन था।

I-iii-3: यह भोजन, जो बनाया गया था, पीछे मुड़ा और भागने का प्रयास किया। उसने इसे वाणी से लेने की कोशिश की। वह इसे वाणी के माध्यम से लेने में सफल नहीं हुआ। यदि वह इसे वाणी से लेने में सफल हो जाता, तो भोजन की बात करने मात्र से ही व्यक्ति संतुष्ट हो जाता।

I-iii-4: उसने उस भोजन को घ्राणेन्द्रिय से पकड़ने का प्रयास किया। वह उसे सूँघकर पकड़ने में सफल नहीं हुआ। यदि वे सूँघकर उसे ग्रहण करने में सफल हो जाते, तो सभी को केवल सूँघकर ही तृप्त हो जाना चाहिए था।

I-iii-5: वे भोजन को आँख से ग्रहण करना चाहते थे। वे उसे आँख से ग्रहण करने में सफल नहीं हुए। यदि वे उसे आँख से ग्रहण करते, तो भोजन को देखने मात्र से ही तृप्त हो जाते।

I-iii-6: वे भोजन को कान से ग्रहण करना चाहते थे। वे उसे कान से ग्रहण करने में सफल नहीं हुए। यदि वे उसे कान से ग्रहण करते, तो भोजन के सुनने मात्र से ही तृप्त हो जाते।

I-iii-7: वे उसे स्पर्श इन्द्रिय से ग्रहण करना चाहते थे। वे उसे स्पर्श इन्द्रिय से ग्रहण करने में सफल नहीं हुए। यदि वे उसे स्पर्श से ग्रहण करते, तो भोजन को छूने मात्र से ही तृप्त हो जाते।

I-iii-8: वे उसे मन से ग्रहण करना चाहते थे। वे उसे मन से ग्रहण करने में सफल नहीं हुए। यदि वे उसे मन से ग्रहण करते, तो भोजन के बारे में सोचने मात्र से ही तृप्त हो जाते।
I-iii-9: वह इसे प्रजनन इंद्रिय के साथ लेना चाहता था। वह इसे प्रजनन इंद्रिय के साथ लेने में सफल नहीं हुआ। यदि वह इसे प्रजनन इंद्रिय के साथ ले जाता, तो केवल भोजन को बाहर निकालने से ही व्यक्ति तृप्त हो जाता।

I-iii-10: वह इसे अपान के साथ लेना चाहता था। उसने इसे पकड़ लिया। यह भोजन का भक्षक है। वह महत्वपूर्ण ऊर्जा जो अपने निर्वाह के लिए भोजन पर निर्भर के रूप में प्रसिद्ध है, यह महत्वपूर्ण ऊर्जा (अपान कहलाती है) है।

I-iii-11: उसने सोचा, "वास्तव में यह मेरे बिना कैसे हो सकता है?" उसने सोचा, "इन दो में से किस रास्ते से मुझे प्रवेश करना चाहिए?" उसने सोचा, "यदि वाणी से उच्चारण होता है, गंध से सूंघना, आंख से देखना, कान से सुनना, स्पर्श से महसूस करना,मन, अपान द्वारा अन्दर खींचने (या दबाने) की क्रिया, प्रजनन इन्द्रिय द्वारा बाहर निकालने की क्रिया, तो मैं कौन (या क्या) हूँ ?"

I-iii-12: इसी छोर को चीरकर वे इसी द्वार से प्रविष्ट हुए। इस प्रवेश द्वार को विद्दति (मुख्य प्रवेश द्वार) कहते हैं। अतः यह आनन्ददायक है। उनके तीन निवास हैं - स्वप्न की तीन (अवस्थाएँ)। यह एक निवास है, यह एक निवास है। यह एक निवास है।

I-iii-13: जन्म लेकर उन्होंने समस्त प्राणियों को प्रकट किया; क्या उन्होंने इसके अलावा कुछ कहा (या जाना) ? उन्होंने इसी पुरुष को ब्रह्म के रूप में, सबसे व्यापक रूप में, इस प्रकार महसूस किया: "मैंने इसे महसूस किया है"।

I-iii-14: अतः उनका नाम इदन्द्र है। वे वास्तव में इदन्द्र के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि वे इदन्द्र हैं, फिर भी वे उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से इन्द्र कहते हैं; क्योंकि देवताओं को अप्रत्यक्ष नाम बहुत प्रिय हैं, देवताओं को अप्रत्यक्ष नाम बहुत प्रिय हैं।

II-i-1: मनुष्य में सबसे पहले आत्मा का गर्भाधान होता है। जो वीर्य है, वह सभी अंगों से उनकी शक्ति के रूप में निकाला जाता है। वह अपनी उस

आत्मा को अपने भीतर धारण करता है। जब वह उसे अपनी पत्नी में डालता है, तब वह उसे उत्पन्न करता है। वह उसका पहला जन्म है।

II-i-2: वह पत्नी से उतना ही भिन्न हो जाता है, जितना उसका अपना अंग है। इसलिए (भ्रूण) उसे चोट नहीं पहुँचाता। वह अपने इस आत्मा का पोषण करती है, जो यहाँ (उसके गर्भ में) आया है।

II-i-3: वह, पोषण करने वाली, पोषण के योग्य हो जाती है। पत्नी उस भ्रूण को (जन्म से पहले) धारण करती है। वह (पिता) पुत्र की जन्म के तुरंत बाद, शुरुआत में ही रक्षा करता है। वह पुत्र की जन्म के तुरंत बाद ही रक्षा करता है, इस प्रकार वह इन संसारों की निरंतरता के लिए अपनी रक्षा करता है। क्योंकि इस प्रकार इन लोकों का निरन्तर चलना सुनिश्चित है। यही उसका दूसरा जन्म है।

II-i-4: उसका यह स्वरूप (अर्थात् पुत्र) पुण्य कर्मों के लिए (पिता द्वारा) प्रतिस्थापित किया जाता है।तब उसका यह स्वरूप (अर्थात् पुत्र का पिता) अपने कर्तव्यों का निर्वाह करके तथा आयु में वृद्धि होने पर चला जाता है। उसके चले जाने पर वह पुनः जन्म लेता है। यही उसका (अर्थात् पुत्र का) तीसरा जन्म है।

II-i-5: यह तथ्य ऋषि (अर्थात् मंत्र) द्वारा कहा गया है: "गर्भ में लेटे हुए ही मुझे सभी देवताओं के जन्म का पता चल गया था। सौ लोहे के गढ़ों ने मुझे जकड़ रखा था। तब मैं एक बाज की तरह आत्मज्ञान के बल पर उसमें से निकल गया।" वामदेव ने यह बात माता के गर्भ में लेटे हुए ही कही थी।

II-i-6: जिसने इस प्रकार जान लिया, वह परब्रह्म से एक हो गया और उसने सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लिया (यहाँ तक कि); और फिर शरीर के नाश के पश्चात ऊपर उठकर वह आत्मा के लोक में अमर हो गया। वह अमर हो गया।

III-i-1: वह क्या है जिसे हम इस आत्मा के रूप में पूजते हैं? दोनों में से आत्मा कौन है? क्या वह जिससे कोई देखता है, या जिससे कोई सुनता है, या जिससे कोई गंध सूंघता है, या जिससे कोई वाणी बोलता है, या जिससे कोई मीठा या खट्टा स्वाद लेता है?

III-i-2: यह हृदय (बुद्धि) और यह मन है, जिनका पहले उल्लेख किया गया है। यह चेतना, शासन, लौकिक ज्ञान, मन की उपस्थिति,

धारणशीलता, इंद्रिय-बोध, धैर्य, विचार, प्रतिभा, मानसिक पीड़ा, स्मृति, निश्चय, संकल्प, जीवन-क्रियाएँ, लालसा, जुनून और ऐसे अन्य हैं। ये सभी वास्तव में चेतना के नाम हैं।
III-i-3: यह एक (निम्न) ब्रह्म है; यह इंद्र है, यह प्रजापति है; ये सभी देवता हैं, और ये पांच तत्व हैं, अर्थात पृथ्वी, वायु, अंतरिक्ष, जल, अग्नि, और ये सभी (बड़े जीव) हैं, साथ ही छोटे जीव भी हैं, जो दूसरों के उत्पादक हैं और जोड़े में संदर्भित हैं - अर्थात वे जो अंडे से, गर्भ से, पृथ्वी की नमी से पैदा होते हैं, अर्थात घोड़े, मवेशी, मनुष्य, हाथी, और सभी जीव जो चलते हैं या उड़ते हैं और जो नहीं चलते हैं। इन सभी में चेतना है जो उनकी वास्तविकता का दाता है, ये सभी चेतना से प्रेरित हैं, ब्रह्मांड की आंख चेतना है और चेतना ही उसका लक्ष्य है। चेतना ही ब्रह्म है।

III-i-4: इस आत्मा के द्वारा जो चेतना है, वह इस दुनिया से ऊपर चढ़ गया, और उस स्वर्गीय दुनिया में सभी इच्छाओं को पूरा करके, वह अमर हो गया, वह अमर हो गया। ॐ! मेरी वाणी मन पर आधारित (यानी उसके अनुरूप) हो न वाणी पर आधारित हो। हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए। आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें। मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो। मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिट) दूँगा।

मैं जो मौखिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा; मैं जो मानसिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें; वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करें, वह मेरी रक्षा करें; वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें। ॐ! शांति! शांति! शांति! यहाँ ऋग्वेद में निहित ऐतरेयोपनिषद समाप्त होता है।

009 - छांदोग्य उपनिषद

स्वामी स्वाहनंद द्वारा अनुवादित

ओम! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, जीवन शक्ति और सभी इंद्रियां शक्तिशाली बनें।सभी अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, न ही ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।बिलकुल भी अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।उपनिषदों में बताए गए गुण मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।

ओम! शांति! शांति! शांति!

I-i-1: व्यक्ति को ओम अक्षर का ध्यान करना चाहिए; उद्गीथ, क्योंकि व्यक्ति ॐ से शुरू होने वाले उद्गीथ का गायन करता है। इसके लिए, व्याख्या इस प्रकार है।

I-i-2: इन सभी प्राणियों का सार पृथ्वी है। पृथ्वी का सार जल है। जल का सार वनस्पति है। वनस्पति का सार मनुष्य है। मनुष्य का सार वाणी है। वाणी का सार ऋक् है। ऋक् का सार सामन है। सामन का सार उद्गीथ है।

1-1-3: ॐ अक्षर जिसे उद्गीथ कहते हैं, वह सारों का सार है, सर्वोच्च है, सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है और आठवाँ है।

1-1-4: ऋक् कौन है? सामन कौन है? उद्गीथ कौन है? इस पर अभी विचार किया जा रहा है।

1-1-5: वाणी ही ऋक् है। प्राण ही सामन है। ॐ अक्षर उद्गीथ है। वाणी और प्राण, जो ऋक् और सामन के स्रोत हैं, मिलकर युगल बनते हैं।

1-1-6: यह युगल ॐ अक्षर में जुड़ जाता है। जब भी कोई युगल साथ आता है, तो वे वास्तव में एक दूसरे की इच्छा पूरी करते हैं।

१-१-७: जो इस शब्द को उद्गीथ के रूप में ध्यान करता है, उसे इस प्रकार (पूर्ण करने वाला) जानकर, वह वास्तव में सभी इच्छित उद्देश्यों को पूरा करने वाला बन जाता है।

१-१-८: यह वास्तव में सहमति का शब्द है, क्योंकि जब भी कोई किसी चीज़ के लिए सहमति देता है, तो वह केवल 'ओम' कहता है। केवल सहमति ही समृद्धि है। जो इस शब्द को उद्गीथ के रूप में ध्यान करता है, उसे इस

प्रकार (समृद्धि के गुण से संपन्न) जानकर, वह वास्तव में सभी इच्छित उद्देश्यों को बढ़ाने वाला बन जाता है।

१-१-९: इसके साथ तीन गुना ज्ञान होता है; (क्योंकि) ओम् से सुनने का कारण बनता है;ॐ का उच्चारण किया जाता है, ॐ का गान किया जाता है। इसी अक्षर की उपासना के लिए, इसकी महानता और सार के साथ (वैदिक अनुष्ठान किए जाते हैं)।

1-10: जो इसे इस प्रकार जानता है और जो नहीं जानता - दोनों ही इससे कर्म करते हैं। क्योंकि ज्ञान और अज्ञान भिन्न-भिन्न हैं। जो कुछ ज्ञान, श्रद्धा और ध्यान से किया जाता है, वह अधिक फलदायक होता है। यहीं तक इस अक्षर की महानता का स्पष्टीकरण है।

1-2-1: एक समय प्रजापति के वंशज देवता और दानव आपस में युद्ध कर रहे थे। उस युद्ध में देवताओं ने 'इसी से हम उन्हें पराजित करेंगे' का संकल्प करते हुए उदगतिर पुरोहितों का अनुष्ठान किया।

1-2-2: तब उन्होंने नासिका से जुड़े प्राण का ध्यान किया, जिसे उदगीथ कहा जाता है; दानवों ने उसे दुष्टता से छेद दिया। इसलिए, नाक से, मनुष्य सुगंधित और दुर्गंधयुक्त दोनों को सूंघ सकता है, क्योंकि यह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-3: तब उन्होंने वाणी के देवता का ध्यान किया, जो उद्गीता है; राक्षसों ने इसे बुराई से छेदा है।इसलिए, इससे मनुष्य सत्य और असत्य दोनों बोलता है, क्योंकि यह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-4: तब उन्होंने नेत्र के देवता का ध्यान किया, जो उद्गीता है; राक्षसों ने इसे बुराई से छेदा है। इसलिए, आंख से मनुष्य सुंदर और बदसूरत दोनों को देखता है, क्योंकि यह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-5: तब उन्होंने कान के देवता का ध्यान किया, जो उद्गीता है; राक्षसों ने इसे बुराई से छेदा है। इसलिए, कान से मनुष्य सुखद और अप्रिय दोनों को सुनता है, क्योंकि यह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-6: तब उन्होंने मन के देवता का ध्यान किया, जो उद्गीता है; राक्षसों ने इसे बुराई से छेदा है। अतः मन से अच्छे और बुरे दोनों विचार मन में आते हैं, क्योंकि वह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-7: तब उन्होंने मुख में स्थित प्राण का ध्यान किया, जो उद्गीथ है। राक्षस उससे टकराकर नष्ट हो गए, जैसे मिट्टी का ढेर कठोर चट्टान से टकराकर नष्ट हो जाता है।

I-ii-8: इस प्रकार मुख में स्थित प्राण नष्ट नहीं हुआ, वह शुद्ध है। जैसे मिट्टी का ढेर कठोर चट्टान से टकराकर नष्ट हो जाता है, वैसे ही वह नष्ट हो जाएगा जो इस (प्राण की शुद्धता) को जानने वाले का अनिष्ट करना चाहता है या जो उस जानने वाले को (वास्तव में) हानि पहुँचाता है, क्योंकि वह कठोर चट्टान के समान है।

I-ii-9: मुख में स्थित इस प्राण से मनुष्य न तो मधुर गंध का अनुभव करता है, न दुर्गंध का, क्योंकि यह पाप से मुक्त है।
इस प्राण से मनुष्य जो खाता या पीता है, उससे भी वह अन्य प्राणों को बनाए रखता है। और मृत्यु के समय इसे न पाकर मुख में स्थित प्राण और उसके आश्रित चले जाते हैं; और इस प्रकार वास्तव में मृत्यु के समय मुख खुलता है।

I-ii-10: अंगिरस ने उस प्राण का उद्गीथ के रूप में ध्यान किया। ऋषिगण इसे ही अंगिरस मानते हैं जो अंगों का सार है।

I-ii-11: इसलिए बृहस्पति ने प्राण का उद्गीथ के रूप में ध्यान किया। ऋषिगण इसे ही बृहस्पति मानते हैं, क्योंकि
वाणी महान है और यह प्राण उसका स्वामी है।

I-ii-12: इसलिए अयास्य ने प्राण का उद्गीथ के रूप में ध्यान किया (इसे स्वयं के साथ पहचानते हुए)। ऋषिगण इसे ही अयास्य मानते हैं क्योंकि यह मुख से निकलता है।

I-ii-13: दलभ के पुत्र बका ने इसे इस प्रकार जाना। इसलिए वे नैमिषा में रहने वाले यज्ञियों के उद्गति-गायक बन गए। उनके लिए उन्होंने उनकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए गाया।

I-ii-14: जो इस प्रकार जानता है और ॐ अक्षर के रूप में उद्गीथ का ध्यान करता है, उसे प्राण मानता है, वह निश्चित रूप से इच्छित वस्तुओं का गायक (और प्रदायक) बन जाता है। यह शरीर के संदर्भ में ध्यान है।

I-iii-1: अब देवताओं के संदर्भ में (उद्गीथ का) ध्यान वर्णित है। जो गर्मी (अर्थात सूर्य) देता है, उसका उद्गीथ के रूप में ध्यान करना चाहिए। वास्तव में, जब वह उगता है, तो वह सभी प्राणियों के लिए उच्च स्वर में गाता है। जब वह उगता है, तो वह अंधकार और भय को दूर करता है। वास्तव में, जो सूर्य को इन गुणों से युक्त जानता है, वह अंधकार और (परिणामस्वरूप) भय को दूर करने वाला बन जाता है।

I-iii-2: मुख में यह प्राण और वह सूर्य एक ही हैं। यह गर्म है और वह गर्म है। लोग इसे स्वर (जो जा रहा है) और उसे स्वर और प्रत्यास्वर (जो जा रहा है और आ रहा है) कहते हैं। इसलिए हमें इस प्राण और उस सूर्य का उद्गीथ के रूप में ध्यान करना चाहिए

I-iii-3: अब, वास्तव में, हमें व्यान का ध्यान उद्गीथ के रूप में करना चाहिए। जो हम बाहर छोड़ते हैं, वह प्राण है और जो हम अंदर लेते हैं, वह अपान है। प्राण और अपान का मिलन व्यान है। जो व्यान है, वह भी वाणी है। इसलिए, हम न तो सांस छोड़ते हैं, न ही अंदर लेते हैं, तब भी हम वाणी बोलते हैं।

I-iii-4: जो वाणी है, वह भी ऋक् है। इसलिए, जब हम न तो सांस छोड़ते हैं, न ही अंदर लेते हैं, तब भी हम ऋक् का उच्चारण करते हैं। जो ऋक् है, वह भी समान है। इसलिए, जब हम न तो सांस छोड़ते हैं, न ही अंदर लेते हैं, तब भी हम समान गाते हैं। जो समान है, वह भी उद्गीथ है। इसलिए, जब हम न तो सांस छोड़ते हैं, न ही अंदर लेते हैं, तब भी हम उद्गीथ गाते हैं।

I-iii-5: इसलिए जो अन्य कार्य शक्ति की आवश्यकता रखते हैं, जैसे घर्षण द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करना, लक्ष्य की ओर दौड़ना, मजबूत धनुष को झुकाना, ये सभी कार्य तब किए जाते हैं, जब व्यक्ति न तो सांस लेता है और न ही बाहर छोड़ता है। इस कारण से व्यक्ति को उद्गीथ के रूप में व्यान का ध्यान करना चाहिए।

I-iii-6: अब, व्यक्ति को 'उद्गीथ' के अक्षरों का ध्यान करना चाहिए - अर्थात, 'उत', 'गी' और 'था' अक्षरों का। प्राण 'उत' है, क्योंकि प्राण के माध्यम से व्यक्ति उत्पन्न होता है (उत-तिष्ठति)। वाणी 'गी' है, क्योंकि वाणी को शब्द (गिरह) कहा जाता है। भोजन 'था' है, क्योंकि भोजन पर यह सब स्थापित होता है (स्थितम्)।

I-iii-7: स्वर्ग उत है, आकाश गी है, पृथ्वी था है। सूर्य उत है, वायु गी है, अग्नि, था। सामवेद उत है, यजुर्वेद गी है, ऋग्वेद था। उसके लिए वाणी से दूध प्राप्त होता है, जो वाणी का लाभ है। जो व्यक्ति इस प्रकार जानता है तथा 'उद्गीथ' के अक्षरों, अर्थात् 'उत, गी तथा था' का ध्यान करता है, वह अन्न से समृद्ध होता है, तथा अन्न खाने वाला होता है।

I-iii-8: अब कामनाओं की पूर्ति होती है: व्यक्ति को अपने मन में आने वाले विषयों का ध्यान करना चाहिए। उसे उस सामन का चिंतन करना चाहिए, जिसके माध्यम से वह स्तोत्र का गायन करता है।

I-iii-9: व्यक्ति को उस ऋचा का चिंतन करना चाहिए, जिसमें वह सामन होता है, उस ऋषि का, जिसके द्वारा वह स्तोत्र का गायन करता है, तथा उस देवता का, जिसकी वह प्रार्थना करता है।

I-iii-10: व्यक्ति को उस छंद का चिंतन करना चाहिए, जिसमें वह स्तोत्र का गायन करता है, तथा उसे उस स्तोत्र का चिंतन करना चाहिए, जिसके साथ वह स्तोत्र का गायन करता है।

I-iii-11: व्यक्ति को उस दिशा (स्वर्ग) का चिंतन करना चाहिए, जिसकी ओर वह स्तोत्र का गायन करता है।
I-iii-12: अंत में, अपने बारे में सोचकर, उसे सभी दोषों से बचते हुए, अपनी इच्छित वस्तु का चिंतन करते हुए एक स्तोत्र गाना चाहिए। उसकी इच्छा बहुत जल्दी पूरी होगी, जिसकी इच्छा करते हुए वह स्तोत्र गा सकता है।

I-iv-1: व्यक्ति को ॐ अक्षर, उद्गीथ का ध्यान करना चाहिए, क्योंकि ॐ से शुरू होने वाले उद्गीथ का गायन किया जाता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है।

I-iv-2: वास्तव में, देवता मृत्यु से डरकर तीनों वेदों में शरण लेते हैं। उन्होंने खुद को छंदमय स्तोत्रों से ढक लिया। क्योंकि उन्होंने खुद को इनसे ढक लिया, इसलिए छंदमय स्तोत्र को छन्द कहा जाता है।

I-iv-3: जैसे एक मछुआरा पानी में मछली को देखता है, वैसे ही मृत्यु ने ऋक्, सामन और यजु से संबंधित (संस्कार) देवताओं को देखा। वे भी यह जानकर ऋक्, सामन और यजुस् से उठकर स्वर (ॐ अक्षर) में प्रविष्ट हो गए।

I-4-4: वास्तव में, जब कोई ऋक् सीखता है, तो वह जोर से 'ॐ' का उच्चारण करता है।सामन और यजुस् के साथ भी ऐसा ही है।यह ॐ अक्षर वास्तव में स्वर है; यह फिर अमरता और निर्भयता है।स्वर में प्रविष्ट होकर (अर्थात ध्यान करके) देवता अमर और निर्भय हो गए।

I-4-5:जो इस अक्षर को इस प्रकार जानकर उसकी उपासना करता है, वह इस स्वर में प्रविष्ट हो जाता है, जो अमरता और निर्भयता है। और इसमें प्रविष्ट होकर वह उस अमृत से अमर हो जाता है, जिससे देवता अमर हो गए थे।

I-5-1: अब, जो उद्गीथ है, वह वास्तव में प्रणव है और जो प्रणव है, वह उद्गीथ है।वह सूर्य उद्गीथ भी है और प्रणव भी, क्योंकि वह 'ॐ' का उच्चारण करता हुआ चलता है।

I-5-2:

अब ... I-v-2: ‘उसके (सूर्य के) लिए मैंने गाया; इसलिए तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो’ इस प्रकार कौषितकि ने अपने पुत्र से कहा।

‘उद्गीथ का सूर्य की किरणों की तरह चिंतन करो, तो निश्चय ही तुम्हारे कई पुत्र होंगे। यह देवताओं के संदर्भ में ध्यान है।

I-v-3: अब (ध्यान) शरीर के संदर्भ में है: व्यक्ति को उसका ध्यान करना चाहिए जो यह है
मुख में प्राण, उदगीथ के रूप में, क्योंकि वह 'ओम' का उच्चारण करता हुआ चलता है।

I-v-4: 'उसी (प्राण के) लिए मैंने गाया है; इसलिए तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो', इस प्रकार कौषितकि ने अपने पुत्र से कहा। "मुझे बहुत से पुत्र प्राप्त होंगे", ऐसा सोचकर, अनेक प्राणों के रूप में उदगीथ की स्तुति गाओ।

I-v-5: 'अब, जो उदगीथ है, वह वास्तव में प्रणव है; और जो प्रणव है, वह उदगीथ है', ऐसा सोचना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप, भले ही वह गलत तरीके से जप करता हो, वह होत्र पुरोहित की सीट से किए गए कार्य द्वारा इसे ठीक कर देता है।

I-vi-1: पृथ्वी ऋक् है, अग्नि सामन है। यह सामन उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए सामन को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। पृथ्वी 'सा' है, अग्नि 'अमा' है, और इससे 'साम' बनता है।

I-vi-2: आकाश ऋक् है, वायु साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। आकाश 'सा' है, वायु 'अमा' है, और इससे 'साम' बनता है।

I-vi-3: स्वर्ग ऋक् है, सूर्य साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। स्वर्ग 'सा' है, सूर्य 'अमा' है, और इससे 'साम' बनता है।

I-vi-4: तारे ऋक् हैं, चंद्रमा साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। तारे 'सा' हैं, चंद्रमा 'अमा' है, और इससे 'साम' बनता है।

I-vi-5: अब, सूर्य का पूरा प्रकाश ऋक् है, नीला (प्रकाश) जो अत्यंत अंधेरा है वह साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए सामन को ऋक् पर विश्राम करते हुए गाया जाता है।
I-vi-6: फिर, सूर्य का श्वेत प्रकाश 'सा' है, नीला (प्रकाश) जो अत्यंत अंधकारमय है वह 'अमा' है, और वह 'साम' बनाता है। अब, वह व्यक्ति, सोने की तरह चमकीला, जो सूर्य के भीतर दिखाई देता है, जो सुनहरे दाढ़ी और सुनहरे बालों वाला है, अपने नाखूनों की नोक तक भी अत्यधिक तेजोमय है।

I-vi-7: उसकी आँखें लाल कमल की तरह उज्ज्वल हैं। उसका नाम 'उत' है। वह सभी बुराइयों से ऊपर उठ गया है। वास्तव में, जो इस प्रकार जानता है वह सभी बुराइयों से ऊपर उठ जाता है।

I-vi-8: ऋक् और सामन उसके दो जोड़ हैं। इसलिए वह उद्गीथ है। क्योंकि पुजारी इस 'उत' का गायक है, वह उद्गीथ है। इसके अलावा, वह (यह व्यक्ति जिसे 'उत' कहा जाता है) उन दुनियाओं को नियंत्रित करता है जो उस सूर्य से ऊपर हैं, साथ ही देवताओं की इच्छाओं को भी नियंत्रित करता है। यह देवताओं के संदर्भ में है।

I-vii-1: अब (ध्यान) शरीर के संदर्भ में है: वाणी ऋक् है, प्राण साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। वाणी 'सा' है, प्राण 'अमा' है और इससे 'साम' बनता है।

I-vii-2: आँख ऋक् है, आत्मा (आँख में प्रतिबिम्बित) साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। आँख 'सा' है, आत्मा 'अमा' है और इससे 'साम' बनता है।

I-vii-3: कान ऋक् है, मन साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। कान 'सा' है, मन 'अमा' है, और उससे 'समा' बनता है।

I-vii-4: अब, आँख का श्वेत प्रकाश ऋक् है, नीला (प्रकाश) जो अत्यंत काला है वह समन है। यह समन उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए समन को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। आँख का श्वेत प्रकाश 'सा' है, नीला (प्रकाश) जो अत्यंत काला है वह 'अमा' है और उससे 'समा' बनता है।

I-vii-5: अब, यह व्यक्ति जो आँख के भीतर दिखाई देता है - वह वास्तव में ऋक् है, वह समन है, वह उक्त है, वह यजुस् है, वह वेद है। इसका (आँख में दिखाई देने वाले व्यक्ति का) रूप उस (सूर्य में दिखाई देने वाले व्यक्ति) के रूप के समान है। उसके जोड़ दूसरे के समान हैं; उसका नाम दूसरे के समान है।

I-vii-6: वह (आँख में दिखाई देने वाला व्यक्ति) नीचे फैले हुए सभी लोकों का स्वामी है, साथ ही मनुष्यों की इच्छित वस्तुओं में से। इसलिए जो वीणा पर गाते हैं, वे केवल उन्हीं का गान करते हैं और इस प्रकार धन-संपत्ति से संपन्न हो जाते हैं।

I-vii-7: अब जो इस प्रकार उद्गीथ देवता को जानकर सामन गाता है, वह दोनों का गान करता है। उस (सूर्य में स्थित व्यक्ति) के द्वारा वह (वह गायक) उस सूर्य से परे के लोकों को तथा देवताओं की इच्छित वस्तुओं को भी प्राप्त करता है।

I-vii-8-9: इसी प्रकार, नेत्र में स्थित इस व्यक्ति के द्वारा, इस व्यक्ति से नीचे तक फैले हुए लोकों को तथा मनुष्यों की इच्छित वस्तुओं को भी प्राप्त करता है। इस कारण, जो उद्गीथ पुजारी इस प्रकार जानता है, उसे (यज्ञकर्ता से) पूछना चाहिए: 'सामन गाकर मैं तुम्हारे लिए क्या इच्छा

प्राप्त करूँ?' क्योंकि वह अकेला ही सामन बन जाता है।गाकर कामनाओं को प्राप्त करने में समर्थ, जो इस प्रकार जानकर सामन गाता है - हाँ, सामन गाता है।

I-viii-1: प्राचीन काल में उद्गीथ में तीन निपुण थे: सलवत का पुत्र सिलक, दालभ्य कुल का कैकितायन
और जीवल का पुत्र प्रवाहन। उन्होंने कहा, 'हम उद्गीथ में निपुण हैं। यदि आप सहमत हैं, तो आइए हम उदगीथ पर चर्चा शुरू करें।

I-viii-2: 'ऐसा ही हो', यह कहकर वे बैठ गए। तब प्रवाहन जैवलि ने कहा, 'आप दोनों, श्रद्धेय महोदय, पहले बोलें; और मैं दो ब्राह्मणों के वार्तालाप के शब्द सुनूंगा।'

I-viii-3: तब सिलक सलवत्य ने कैकितायन दालभ्य से कहा, 'यदि आप अनुमति दें, तो मैं आपसे प्रश्न करूँगा।"प्रश्न', उन्होंने कहा।

I-viii-4: (शिलाका ने पूछा), 'सामन का सार क्या है?' 'धुन', (दाल्भ्य) ने कहा। 'धुन का सार क्या है?' 'प्राण', (दाल्भ्य) ने कहा। 'प्राण का सार क्या है?' 'भोजन', (दाल्भ्य) ने कहा। 'भोजन का सार क्या है?' 'पानी', (दाल्भ्य) ने कहा।
I-viii-5: 'पानी का सार क्या है?' 'वह (स्वर्गीय दुनिया)', (दाल्भ्य) ने कहा। 'दुनिया का सार क्या है?' 'कोई (सामन को) स्वर्गीय दुनिया से परे नहीं ले जा सकता है', (दाल्भ्य) ने कहा; 'हम सामन को स्वर्ग की दुनिया में पाते हैं, क्योंकि सामन को स्वर्ग के रूप में सराहा जाता है'।

I-viii-6: तब शिलाका शालवत्य ने कैकिटायन दाल्भ्य से कहा: 'हे दाल्भ्य, तुम्हारा सामन वास्तव में स्थापित नहीं है। यदि कोई कहे, "तुम्हारा सिर गिर जाएगा", तो निश्चय ही तुम्हारा सिर गिर जाएगा।

I-viii-7: (दाल्भ्य) 'क्या आप मुझे यह सीखने की अनुमति देंगे, श्रीमान्?' 'सीखिए', (सिलक) ने कहा। 'उस (स्वर्गीय) लोक का सार क्या है?' 'यह पृथ्वी', (सिलक) ने कहा, 'इस पृथ्वी का सार क्या है?' 'कोई इस लोक से परे सामन को उसके आधार के रूप में नहीं ले जा सकता', सिलक ने कहा; 'हम इस लोक में सामन को उसके आधार के रूप में पाते हैं, क्योंकि सामन को पृथ्वी के समान महिमामंडित किया गया है।'

I-viii-8: प्रवाहण जैवलि ने उससे कहा, 'हे शालवत्य, वास्तव में तुम्हारे साम का एक और अंत है। यदि कोई अब कहे, "तुम्हारा सिर गिर जाएगा", तो निश्चय ही तुम्हारा सिर गिर जाएगा। (शालवत्य) 'क्या आप मुझे (आपसे) यह सीखने की अनुमति देंगे?' 'सीखिए', (जयवली) ने कहा।

I-ix-1: (शालवत्य) 'इस संसार का सार क्या है?' 'आकाश' ने कहा (प्रवाहन); 'ये सभी प्राणी आकाश से ही उत्पन्न होते हैं और अंततः आकाश में ही विलीन हो जाते हैं; क्योंकि आकाश ही इन सबसे बड़ा है और आकाश ही हर समय आधार है।'

I-ix-2: यह उद्गीथ ही है जो उत्तरोत्तर उच्चतर और श्रेष्ठ है। यह भी अनंत है। जो इस प्रकार जानकर उत्तरोत्तर उच्चतर और श्रेष्ठ उद्गीथ का ध्यान करता है, वह उत्तरोत्तर उच्चतर और श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करता है और उत्तरोत्तर उच्चतर और श्रेष्ठ लोकों को जीतता है।

1-9-3: शुनक के पुत्र अतिधन्वन् ने उदरसण्डिल्य को यह उपदेश देकर कहा, 'जब तक तुम्हारे वंशजों में उद्गीथ का यह ज्ञान रहेगा, तब तक उनका इस लोक में जीवन सामान्य जीवन से क्रमशः उच्चतर और श्रेष्ठतर होता रहेगा।'
1-9-4: 'और उस परलोक में भी उनकी स्थिति ऐसी ही होगी।' जो इस प्रकार जानता और ध्यान करता है, उसका इस लोक में जीवन निश्चित रूप से क्रमशः उच्चतर और श्रेष्ठतर होता है, और उसी प्रकार उस परलोक में भी उसकी स्थिति - हाँ, उस परलोक में भी।

1-9-5: जब कुरु देश में ओलावृष्टि से फसलें नष्ट हो गईं, तब चक्र का पुत्र उसस्ति अपनी युवा पत्नी के साथ हाथी-चालकों के गाँव में दयनीय स्थिति में रहता था।

1-9-6: जब वह घटिया किस्म की फलियाँ खा रहा था, तब उसने हाथी-चालक से भोजन माँगा। हाथी-चालक ने उससे कहा, 'मेरे सामने जो रखा है, उसके अलावा और कोई भोजन नहीं है।'

I-x-7: 'मुझे उनमें से कुछ दे दो', उसास्ती ने कहा। ड्राइवर ने उन्हें उसे दे दिया और कहा, 'यहाँ पीने के लिए कुछ है, अगर तुम चाहो तो।' 'तो मैं वही पीऊँगा जो अशुद्ध है', उसास्ती ने कहा।

I-x-8: 'क्या ये फलियाँ भी अशुद्ध नहीं हैं?' 'अगर मैंने उन्हें नहीं खाया होता, तो मैं निश्चित रूप से जीवित नहीं रह सकता था', उसास्ती ने कहा, 'लेकिन पीना मेरे विकल्प पर है।'

I-x-9: उसास्ती ने खाने के बाद बचा हुआ हिस्सा अपनी पत्नी के पास लाया। उसने अपना भोजन पहले ही भिक्षा से प्राप्त कर लिया था; इसलिए इसे प्राप्त करने के बाद उसने इसे अपने पास रख लिया।

I-x-10: अगली सुबह बिस्तर छोड़ते समय उसने कहा, 'काश, मुझे थोड़ा सा भोजन मिल जाता, तो मैं एक दिन कमा सकता था।
थोड़ी सी संपत्ति है। वहाँ एक राजा यज्ञ करने जा रहा है; वह मुझे सभी पुरोहित पदों पर नियुक्त करेगा।

I-x-11: उसकी पत्नी ने उससे कहा, 'अच्छा, स्वामी, ये आपके द्वारा दी गई फलियाँ हैं।' उन्हें खाकर वह उस यज्ञ में चला गया जो किया जा रहा था।

I-x-12: वहाँ बैठे हुए गायक पुरोहितों को देखकर, वह स्तोत्र गायन के स्थान पर गायकों के पास बैठ गया। और फिर उसने प्रस्तोतिर पुजारी को संबोधित किया।

I-x-13: 'हे प्रस्तोतिर, यदि आप प्रस्तोता के देवता को जाने बिना प्रस्तोता गाते हैं, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।'

I-x-14: उसी तरह उसने उदगतिर पुजारी को संबोधित किया, हे उदगतिर, यदि आप उद्गीथ के देवता को जाने बिना उद्गीथ गाते हैं, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।

1-11: उसी प्रकार उन्होंने प्रतिहार पुरोहित को संबोधित करते हुए कहा, 'हे प्रतिहार, यदि आप प्रतिहार के देवता को जाने बिना प्रतिहार गाते हैं, तो आपका सिर झुक जाएगा।' तब वे सभी अपने कर्तव्यों को स्थगित करके चुपचाप बैठ गए।

1-11: तब यज्ञ के प्रमुख ने उससे कहा, 'मैं आपको जानना चाहता हूँ, आदरणीय महोदय, 'मैं चक्रायण उसस्ति हूँ', उसने कहा।

1-12: उसने कहा, 'मैंने आपको इन सभी पुरोहिती पदों के लिए खोजा, लेकिन आपको न पाकर, मैंने दूसरों को चुना है।'

1-13: 'आदरणीय महोदय, आप स्वयं मेरे लिए सभी पुरोहिती पद संभाल लें'। 'ऐसा ही हो; फिर, इन पुरोहितों को मेरी अनुमति से भजन गाने दें। लेकिन आपको मुझे उतना ही धन देना चाहिए जितना आप उन्हें देते हैं।' 'बहुत अच्छा', यज्ञकर्ता ने कहा।

I-xi-4: तब प्रस्तोतिर पुजारी उसके पास आया और बोला, 'पूज्य महोदय, आपने मुझसे कहा था: 'हे प्रस्तोतिर, यदि आप प्रस्तोता के देवता को जाने बिना प्रस्तोता गाते हैं, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।' वह देवता कौन है?'

I-xi-5: 'प्राण', उसस्ति ने कहा, 'ये सभी चल और अचल प्राणी प्राण में विलीन हो जाते हैं (विघटन के दौरान) और प्राण से उठते हैं (सृजन के दौरान)। यह वह देवता है जो प्रस्तोता का है। यदि आपने मेरे द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बाद भी उसे जाने बिना प्रस्तोता गाया, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।'

I-xi-6: तब उद्गतिर पुजारी उसके पास आया और बोला, 'पूज्य महोदय, आपने मुझसे कहा था: 'हे उद्गतिर, यदि आप उद्गीता के देवता को जाने बिना उद्गीता गाते हैं, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।' वह देवता कौन है?'

I-xi-7: 'सूर्य', उसस्ति ने कहा, 'ये सभी चर और अचल प्राणी सूर्य के उदय होने पर उसकी स्तुति करते हैं। यह वह देवता है जो उद्गीथ से संबंधित है। यदि तुमने मेरे द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बाद भी उद्गीथ को बिना जाने गाया होता तो तुम्हारा सिर झुक जाता।'

I-xi-8: तब प्रतिहार पुजारी उसके पास गया और बोला, 'पूज्य महोदय, आपने मुझसे कहा था: 'हे प्रतिहार, यदि तुम प्रतिहार के देवता को जाने बिना प्रतिहार गाते हो, तो तुम्हारा सिर झुक जाएगा।' वह देवता कौन है?'

I-xi-9: 'भोजन', उसस्ति ने कहा, 'ये सभी चल और अचल प्राणी केवल भोजन करके जीवित रहते हैं।

यह प्रतिहार का देवता है। यदि तुमने मेरे द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बाद भी प्रतिहार को बिना जाने गाया होता तो तुम्हारा सिर झुक जाता।'

I-xii-1: इसलिए आगे कुत्तों द्वारा देखी गई उद्गीथ शुरू होती है। एक बार दालभ्य बाक, जिसे मैत्रेय ग्लव भी कहा जाता है, अध्ययन के लिए (गाँव से) बाहर गया वेद।

I-xii-2: उसके सामने एक सफेद कुत्ता आया और अन्य कुत्ते उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए और बोले, 'आदरणीय महोदय, कृपया गाकर हमारे लिए भोजन प्राप्त करें; हम भूखे हैं।'

I-xii-3: सफेद कुत्ते ने उनसे कहा, 'कल सुबह यहाँ मेरे पास आओ।' (ऋषि नाम) दालभ्य बका और मैत्रेय ग्लव ने वहाँ उनकी रखवाली की।

I-xii-4: जिस प्रकार स्तोत्र का पाठ करने वाले लोग बहिष्पवमन स्तोत्र गाते हुए एक दूसरे का हाथ थामकर चलते हैं, उसी प्रकार कुत्ते भी साथ-साथ चलते थे। फिर वे बैठ गए और 'उसे' का उच्चारण करने लगे।

I-xii-5: 'ओम, आओ खाएँ! ओम्, आओ पिएँ! ओम्, (सूर्य जो कि) देवता हैं, वरुण, प्रजापति और सविता हमारे लिए यहाँ भोजन लाएँ। हे अन्न के स्वामी, यहाँ भोजन लाएँ, हाँ, इसे लाएँ, ओम्!'

I-xiii-1: वास्तव में, यह संसार अक्षर 'हौ' (जो कि स्तोभ है) है, वायु अक्षर 'है' है, चंद्रमा अक्षर 'अथ' है, आत्मा अक्षर 'इह' है और अग्नि अक्षर 'इ' है।

I-xiii-2: सूर्य अक्षर 'उ' है (जो कि स्तोभ है), आह्वान अक्षर 'इ' है, विश्वदेव अक्षर 'औहोयि' हैं, प्रजापति अक्षर 'हिम' हैं, प्राण स्तोभ 'स्वर' हैं, भोजन स्तोभ 'य' है

और विराट स्तोभ 'वाक' है।

I-xiii-3: अपरिभाषित और परिवर्तनशील तेरहवाँ स्तोभ 'हं' अक्षर है।

I-xiii-4: उसके लिए, वाणी दूध उत्पन्न करती है, जो वाणी का लाभ है; और वह अन्न से समृद्ध होता है और अन्न खाने वाला होता है, जो इस प्रकार

सामों के इस पवित्र सिद्धांत को जानता है - हाँ, सामों के पवित्र सिद्धांत को जानता है।

II-i-1: ॐ। निश्चित रूप से, पूरे साम का ध्यान अच्छा है। जो कुछ भी अच्छा है, लोग उसे साम कहते हैं, और जो कुछ भी अच्छा नहीं है, उसे असमान कहते हैं।

II-i-2: इस प्रकार, जब लोग कहते हैं, 'वह साम के साथ उसके पास गया', तो वे केवल यही कहते हैं: 'वह एक अच्छे इरादे से उसके पास गया'। और जब वे कहते हैं, 'वह असमान के साथ उसके पास आया था', तब वे केवल यही कहते हैं" 'वह उसके पास बुरी मंशा से आया था।'

II-i-3: फिर, लोग कहते हैं: 'ओह, यह हमारे लिए समान है', जब यह कुछ अच्छा होता है; तब वे केवल यही कहते हैं:

ओह, यह हमारे लिए अच्छा है'। फिर, वे कहते हैं, 'ओह, यह हमारे लिए असमान है', जब यह अच्छा नहीं होता; तब वे केवल यही कहते हैं: 'ओह, यह बुरा है।'

II-i-4: जब ऐसा जानने वाला व्यक्ति समान का अच्छे रूप में ध्यान करता है, तो सभी अच्छे गुण उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं और उसकी सेवा करते हैं।

II-ii-1: लोकों में से व्यक्ति को समान का पाँच प्रकार से ध्यान करना चाहिए। पृथ्वी उसका अक्षर है, अग्नि प्रस्रव है, आकाश उद्गीथ है, सूर्य प्रतिहार है, और स्वर्ग निधान है। इस प्रकार यह ध्यान उच्च लोकों से संबंधित है।

II-ii-2: अब, निम्न लोकों में से। स्वर्ग वह अक्षर है, सूर्य है प्रस्तव, आकाश है उद्गीथ, अग्नि है प्रतिहार, तथा पृथ्वी है निधान।

II-ii-3: आरोही तथा अवरोही रेखाओं में स्थित लोक उसी के हैं। जो ऐसा जानकर ('शुभ' के गुण से युक्त) लोकों में पंचविध सामन का ध्यान करता है।

II-iii-1-2: वर्षा के रूप में पंचविध सामन का ध्यान करना चाहिए। उसके पहले आने वाली वायु अक्षर है प्रस्तव, बनने वाला बादल है प्रस्तव, वर्षा है

उद्गीथ, बिजली तथा गरज है प्रतिहार, तथा समाप्त होना है निधान। जो ऐसा जानकर पंचविध सामन का ध्यान वर्षा के रूप में करता है, उसके लिए वर्षा होती है - वास्तव में, वही वर्षा करता है।

II-iv-1: सभी जलों में पंचविध सामन का ध्यान करना चाहिए। जब बादल घिरता है, तो वह अक्षर है वह। जब वर्षा होती है, तो वह प्रस्तव। जो (जल) पूर्व की ओर बहते हैं, वे उद्गीथ हैं। जो पश्चिम की ओर बहते हैं, वे प्रतिहार हैं। समुद्र निधान है।

II-IV-2: जो ऐसा जानकर सभी जलों में पंचविध सामन का ध्यान करता है, वह जल में नहीं डूबता और जल से समृद्ध हो जाता है।

II-V-1: ऋतुओं के समान पंचविध सामन का ध्यान करना चाहिए: वसंत ऋतु उसका अक्षर है, ग्रीष्म ऋतु प्रस्तव है, वर्षा ऋतु उद्गीथ है, शरद ऋतु प्रतिहार है और शीत ऋतु निधान है।

II-V-2: जो ऐसा जानकर ऋतुओं में पंचविध सामन का ध्यान करता है, ऋतुएँ उसकी सेवा करती हैं और वह ऋतुओं से समृद्ध हो जाता है।

II-VI-1: पशुओं के समान पंचविध सामन का ध्यान करना चाहिए। बकरियाँ उसका अक्षर हैं, भेड़ें प्रस्तव हैं, गायें उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं और मनुष्य निधान है।
II-vi-2: जो मनुष्य यह जानकर पशुओं में पंचगुण सामन का ध्यान करता है, पशु भी उसी के हैं।

एक होने पर भी बाह्य होने के कारण संसार के दुःखों से कलंकित नहीं होती।

2-II-12. शाश्वत सुख बुद्धिमानों को है - दूसरों को नहीं - जो अपने हृदय में उस एक को, जो सब प्राणियों का नियंत्रक और अन्तर्यामी आत्मा है, तथा जो एक रूप को अनेक रूप में बना देता है, अनुभव करते हैं।

2-II-13. बुद्धिमानों में से जो कोई हृदय के अन्तर्यामी आत्मा को, जो अनित्य में भी अनन्त है, चेतन में भी चैतन्य है, जो एक होने पर भी अनेकों को इच्छित वस्तुएँ प्रदान करता है, शाश्वत शान्ति उन्हीं को है, दूसरों को नहीं।

2-II-14. जिस अवर्णनीय और परम आनन्द को वे 'यह' समझते हैं, उसे मैं कैसे जानूँ? क्या वह स्वयं प्रकाशमान है या वह स्पष्ट रूप से चमकता है, (स्वयं को बुद्धि के लिए बोधगम्य बनाता है), या नहीं?

2-II-15. वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा और तारे चमकते हैं, न ये बिजलियाँ चमकती हैं। फिर यह अग्नि कैसे चमक सकती है? जो चमकता है, उसके पीछे-पीछे सब चमकते हैं। उसी के प्रकाश से यह सब चमकता है।

2-III-1. यह पीपल का वृक्ष जिसकी जड़ ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं, सनातन है। जो इसका मूल है, वह निश्चित रूप से शुद्ध है; वही ब्रह्म है और उसे अमर कहा जाता है। उसी पर सारे लोक बँधे हुए हैं; उससे आगे कोई नहीं जाता। यही वास्तव में वही है (जिसे तुम खोज रहे हो)।

2-III-2. यह सारा जगत् ब्रह्म से उत्पन्न होकर प्राण में (ब्रह्म में) गति करता है; यह अत्यंत भयावह है, जैसे उठा हुआ वज्र। जो इसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

2-III-3. उसी के भय से अग्नि जलती है; उसी के भय से सूर्य चमकता है; उसी के भय से इन्द्र और वायु कार्य करते हैं; उसी के भय से पाँचवाँ मृत्यु पृथ्वी पर घूमता है।

2-III-4. यदि कोई शरीर के गिरने से पहले यहाँ जान सके, (तो वह मुक्त हो जाता है); (यदि नहीं), तो वह प्राणियों के लोकों में देह धारण करने के योग्य हो जाता है।

2-III-5. जैसा दर्पण में होता है, वैसा ही बुद्धि में होता है; जैसा स्वप्न में होता है, वैसा ही पितरों के लोक में होता है; जैसा जल में होता है, वैसा ही गंधर्वों के लोक में होता है; जैसा छाया और प्रकाश में होता है, वैसा ही ब्रह्म के लोक में होता है।
2-III-6. बुद्धिमान मनुष्य इन्द्रियों के भिन्न-भिन्न स्वरूप को (उनके कारणों से) अलग-अलग उत्पन्न होने वाले तथा उनके उदय और अस्त होने को जानकर शोक नहीं करता।

2-III-7. इन्द्रियों से मन सूक्ष्म है; मन से भी सूक्ष्म बुद्धि है; बुद्धि से भी सूक्ष्म महत् (हिरण्यगर्भ) है; महत् से भी सूक्ष्म अव्यक्त है।

2-III-8. परंतु अव्यक्त से भी सूक्ष्म है पुरुष, सर्वव्यापक और लिंग रहित, जिसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है और अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

2-III-9. उसका स्वरूप दर्शन की सीमा में नहीं आता, उसे कोई भी नेत्र से नहीं देख सकता। मन को वश में करने वाली बुद्धि द्वारा और ध्यान के द्वारा वह प्रकट होता है। जो इसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

2-III-10. जब ज्ञान की पाँचों इन्द्रियाँ मन के साथ शान्त हो जाती हैं और बुद्धि क्रियाशील नहीं रहती, उस अवस्था को वे सर्वोच्च कहते हैं।

2-III-11. इन्द्रियों पर उस स्थिर संयम को वे योग कहते हैं। तब मनुष्य सजग हो जाता है, क्योंकि योग उत्पन्न भी हो सकता है और नष्ट भी हो सकता है।

2-III-12. न वाणी से, न मन से, न नेत्र से उसे प्राप्त किया जा सकता है। 'यह है' कहने वाले के अतिरिक्त और कोई इसे कैसे जान सकता है?

2-III-13. आत्मा को विद्यमान रूप में भी समझना चाहिए और जैसा वह वास्तव में है, वैसा भी समझना चाहिए। इन दो (पहलूओं) में से, जो उसे विद्यमान जानता है, उसे उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

2-III-14. जब हृदय में स्थित सभी लालसाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है और यहाँ ब्रह्म को प्राप्त करता है। 2-III-15. जब हृदय की सभी गाँठें यहाँ कट जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है। बस इतना ही निर्देश है।

2-III-16. हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। उनमें से एक सिर को भेदकर बाहर निकल जाती है। उससे ऊपर जाकर मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है, बाकी अन्य विभिन्न मार्गों से प्रस्थान करने का काम करती हैं।

2-III-17. अँगूठे के आकार का पुरुष, आंतरिक आत्मा, सभी जीवों के हृदय में हमेशा विराजमान रहता है।मनुष्य को चाहिए कि वह स्थिर भाव से अपने शरीर से मुंज घास के डंठल की तरह उसे अलग कर दे। उसे शुद्ध और अमर जानना चाहिए; उसे शुद्ध और अमर जानना चाहिए।

2-III-18. तब नचिकेता ने मृत्यु द्वारा दिए गए इस ज्ञान को, तथा योग के उपदेशों को सम्पूर्णता से प्राप्त करके, वैराग्यवान और अमर होकर ब्रह्म को प्राप्त किया। जो कोई भी इस प्रकार अंतरात्मा को जानता है, वह भी ऐसा ही हो जाता है।

ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे (ज्ञान की प्रकृति को प्रकाशित करके)। वह हम दोनों का पालन करे (ज्ञान के फल को सुनिश्चित करके)। हम दोनों मिलकर (ज्ञान की) शक्ति प्राप्त करें। हम जो सीखें, उससे हमें ज्ञान मिले। हम एक दूसरे से द्वेष न करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद में निहित कठोपनिषद् समाप्त होता है।

००४ - प्रश्न उपनिषद

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ वचन सुनें;
यज्ञ करते समय,हम अपनी आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें;स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते समय,हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें।प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों;सर्वधनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता)हम पर कृपा करें;बुराई का नाश करने वाले गरुड़ हम पर कृपा करें;बृहस्पति हमारा कल्याण करें।
ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

I-1: भारद्वाज के पुत्र सुकेश; शिबि के पुत्र सत्यकाम; सूर्य के पौत्र, गर्ग के कुल में जन्मे; अश्वल के पुत्र कौशल्या; विदर्भ में जन्मे भृगु के वंश के वंशज; तथा कात्य की सन्तान कबन्धी - ये सभी, जो (निम्न) ब्रह्म के प्रति समर्पित थे, (निम्न) ब्रह्म को जानने में लगे हुए थे, तथा परम ब्रह्म की खोज में लगे हुए थे, वे हाथ में लकड़ियाँ लेकर पूज्य पिप्पलाद के पास इस विश्वास के साथ पहुँचे कि, "यह हमें अवश्य ही सब कुछ बता देगा।"

1-2: उनसे ऋषि ने कहा, "इन्द्रियों पर संयम रखते हुए, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के साथ, एक वर्ष तक यहाँ फिर से रहो। फिर जो चाहो पूछो। यदि हमें पता चल जाए, तो हम तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर दे देंगे।"

1-3: तत्पश्चात् कात्य की सन्तान कबन्धी ने उनके पास आकर पूछा, "पूज्यवर, ये सभी प्राणी किससे उत्पन्न हुए हैं?"

1-4: उनसे उन्होंने कहा: समस्त प्राणियों के स्वामी को सन्तान की इच्छा हुई। उन्होंने (पूर्व वैदिक) ज्ञान पर विचार किया। उस ज्ञान पर विचार करके उन्होंने अन्न और प्राण की जोड़ी बनाई, इस विचार के साथ कि "ये दोनों मेरे लिए अनेक प्रकार से प्राणियों को उत्पन्न करेंगे।"

1-5: सूर्य प्राण है और अन्न चन्द्रमा है। जो कुछ भी स्थूल या सूक्ष्म है, वह अन्न ही है।स्थूल, सूक्ष्म से भिन्न, निश्चित रूप से सूक्ष्म का भोजन है।

I-6: अब, तथ्य यह है कि सूर्य, उदय होते हुए, पूर्व दिशा में प्रवेश करता है, जिससे वह पूर्व में सभी प्राणियों को अपनी किरणों में अवशोषित कर लेता है। यह कि वह दक्षिण में प्रवेश करता है, यह कि वह पश्चिम में प्रवेश करता है, यह कि वह उत्तर में प्रवेश करता है, यह कि वह नादिर और चरम पर पहुंचता है, यह कि वह राशि चक्र के मध्यवर्ती बिंदुओं में प्रवेश करता है, यह कि वह सभी को प्रकाशित करता है, जिससे वह सभी जीवित चीजों को अपनी किरणों में अवशोषित करता है।

I-7: वही उगता है जो प्राण और अग्नि है, जो सभी प्राणियों के साथ पहचाना जाता है, और जो सभी रूपों से युक्त है। यह वही है, जिसका उल्लेख किया गया है, मंत्र द्वारा कहा गया है:

I-8: (ब्रहम को जानने वाले) उस एक को जानते थे जो सभी रूपों से युक्त है, किरणों से भरा है, प्रकाश से संपन्न है, सबका आश्रय है, (सबका एक प्रकाश) और गर्मी का रेडिएटर है। सूर्य ही उदय होता है - वह सूर्य जो सहस्र किरणों वाला है, सौ रूपों में स्थित है और समस्त प्राणियों का प्राण है।

1-9: वर्ष वास्तव में प्राणियों का स्वामी है। उसके दो मार्ग हैं - दक्षिण और उत्तर। इस प्रकार जो लोग इस प्रकार कर्म के फलस्वरूप यज्ञ और लोकहित आदि का पालन करते हैं, वे चन्द्रलोक को जीत लेते हैं। वे ही लौटकर आते हैं। (क्योंकि ऐसा है), अतः ये स्वर्ग के ऋषि, जो संतान की इच्छा रखते हैं, दक्षिण मार्ग को प्राप्त करते हैं। जो पितरों का मार्ग है, वही वास्तव में अन्न है।

1-10: फिर वे इन्द्रियों के संयम, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और ध्यान के द्वारा आत्मा की खोज करके उत्तर मार्ग से चलकर सूर्य को जीत लेते हैं। यही सब प्राणियों का आश्रय है; यही अविनाशी है; यही निर्भय है; यही परम लक्ष्य है, क्योंकि यहीं से वे लौटकर नहीं आते। यह बात (अज्ञानी के लिए) अवास्तविक है। इस विषय में यहाँ एक श्लोक है:

1-11: कुछ लोग (सूर्य को) पाँच पैरों वाला, पिता के समान, बारह अंगों वाला, तथा आकाश के ऊपर ऊँचे स्थान में जल से भरा हुआ बताते हैं। लेकिन कुछ लोग उसे सर्वज्ञ कहते हैं और कहते हैं कि सात पहियों और छः तीलियों वाला, उस पर (सारा ब्रह्माण्ड) स्थित है।

1-12: मास ही सब प्राणियों का स्वामी है। कृष्ण पक्ष उसका भोजन है और शुक्ल पक्ष उसका प्राण है। इसलिए ये ऋषिगण शुक्ल पक्ष में यज्ञ करते हैं। अन्य लोग शुक्ल पक्ष में यज्ञ करते हैं।

1-13: दिन और रात सब प्राणियों के स्वामी हैं। दिन ही उसका प्राण है और रात्रि ही उसका भोजन है। जो लोग दिन में काम-वासना में लिप्त रहते हैं, वे प्राण को नष्ट कर देते हैं। जो लोग रात में काम-वासना में लिप्त रहते हैं, वे ब्रह्मचर्य के समान हैं।

1-14: भोजन ही सब प्राणियों का स्वामी है। उसी से मनुष्य बीज उत्पन्न होता है। उसी से ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं।

1-15: ऐसा होने पर जो प्राणीमात्र के स्वामी का सुविख्यात व्रत धारण करते हैं, उनके पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न होती हैं। उन्हीं के लिए यह चन्द्रमा का लोक है, जिसमें व्रत और संयम है, तथा जिसमें मिथ्यात्व का सदा परित्याग है।

1-16: उन्हीं के लिए ब्रह्म का वह निष्कलंक लोक है, जिसमें कोई कुटिलता, कोई मिथ्यात्व और कोई कपट नहीं है।

2-1: इसके पश्चात विदर्भ में जन्मे भृगुवंश के एक वंशज ने उनसे पूछा, "महाराज, वास्तव में कितने देवता हैं जो प्राणी का पालन करते हैं? उनमें से कौन इस महिमा को प्रदर्शित करता है? फिर उनमें कौन प्रमुख है?"

2-2: उन्होंने उससे कहा: वास्तव में आकाश ही यह देवता है, जैसे वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वाणी, मन, आँख और कान। वे अपनी महिमा प्रकट करते हुए कहते हैं, "निःसंदेह हम ही इस शरीर को विघटित न होने देकर इसे एक साथ रखते हैं।"

2-3: उनसे प्राण प्रमुख ने कहा, "भ्रमित न हो। मैं ही हूँ जो अपने को पाँच भागों में बाँटकर इसे विघटित न होने देता हूँ।" वे अविश्वासी बने रहे।

2-4: वे क्रोध के कारण शरीर से ऊपर उठते हुए प्रतीत हुए। जैसे ही वे ऊपर चढ़े, अन्य सभी भी तुरंत ऊपर चढ़ गए; और जब वे शांत हो गए, तो अन्य सभी भी अपनी स्थिति में आ गए। जैसे संसार में मधुमक्खियों के राजा के अनुसार सभी मधुमक्खियाँ उड़ती हैं और उनके ऐसा करते ही वे भी शांत हो जाती हैं, वैसे ही वाणी, मन, आँख, कान आदि भी व्यवहार करते हैं। प्रसन्न होकर वे प्राण की स्तुति करने लगे।

2-5: यह (अर्थात प्राण) अग्नि के समान जलता है, यह सूर्य है, यह बादल है, यह इन्द्र और वायु है, यह पृथ्वी और अन्न है। यह देवता स्थूल और सूक्ष्म है, साथ ही वह भी है जो अमृत है।

2-6: रथ के पहिये की धुरी पर लगे तीलियों के समान प्राण पर सभी चीजें - ऋक्, यजु, समास, यज्ञ, क्षत्रिय और ब्राह्मण - स्थिर हैं।

2-7: यह आप ही हैं जो सृष्टि के स्वामी के रूप में गर्भ में विचरण करते हैं, और आप ही माता-पिता की छवि के अनुसार जन्म लेते हैं। हे प्राण, यह आप ही हैं, जो इंद्रियों के साथ रहते हैं, कि ये सभी प्राणी उपहार ले जाते हैं।

2-8: आप देवताओं को सर्वश्रेष्ठ संचारक (अर्पण) हैं। आप पितरों को अर्पित किए जाने वाले भोजन हैं जो अन्य अर्पण से पहले किया जाता है। आप उन इंद्रियों का सही आचरण हैं जो शरीर का सार हैं और जिन्हें अथर्व के रूप में जाना जाता है।

2-9: हे प्राण, तुम इन्द्र हो। अपने पराक्रम से तुम रुद्र हो, और तुम ही सब ओर के पालनहार हो।तुम आकाश में घूमते हो - तुम सूर्य हो, सब ज्योतियों के स्वामी हो।

2-10: हे प्राण, जब तुम बरसते हो (वर्षा के रूप में), तब तुम्हारे ये प्राणी इस विश्वास के साथ प्रसन्न रहते हैं कि "हमारे हृदय की तृप्ति के लिए भोजन उत्पन्न होगा।"

2-11: हे प्राण, तुम अपवित्र हो, तुम अग्नि हो, तुम भक्षक हो, और तुम ही सबका स्वामी हो। हम (तुम्हारे) अन्नदाता हैं। हे मातरिश्व, तुम हमारे पिता हो।

2-12: अपने उस भाव को शांत करो जो वाणी में स्थित है, जो कान में है, जो आँख में है, और जो मन में व्याप्त है। ऊपर मत उठो।

2-13: यह सब (इस संसार में), और स्वर्ग में जो कुछ भी है, वह सब प्राण के अधीन है। जैसे माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है, वैसे ही आप हमारी रक्षा करें और हमारे लिए तेज और बुद्धि का विधान करें।

तृतीय-१: तब अश्वल के पुत्र कौशल्या ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, यह प्राण कहाँ से उत्पन्न होता है? यह इस शरीर में कैसे आता है? यह फिर किस प्रकार विभाजित होकर निवास करता है? यह किस प्रकार विदा होता है? यह बाह्य वस्तुओं को किस प्रकार धारण करता है और भौतिक वस्तुओं को किस प्रकार धारण करता है?"

तृतीय-२: उन्होंने उनसे कहा: आप असाधारण प्रश्न पूछ रहे हैं, क्योंकि आप सर्वोपरि ब्रह्म के ज्ञाता हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ।

तृतीय-३: यह प्राण आत्मा से उत्पन्न होता है। जैसे मनुष्य के रहने पर छाया पड़ सकती है, वैसे ही यह प्राण आत्मा में स्थित है। यह मन के कर्मों के कारण इस शरीर में आता है।

तृतीय-४: जैसे राजा ही अधिकारियों को यह कहकर नियुक्त करता है कि "इन गाँवों और उन गाँवों पर शासन करो", वैसे ही प्राण अन्य इन्द्रियों को अलग-अलग लगाता है।

3-5: वे अपान को दो निचले छिद्रों में रखते हैं। प्राण स्वयं मुख और नासिका से निकलकर नेत्रों और कानों में रहता है। तथापि, बीच में समान है, क्योंकि यह खाया हुआ सारा भोजन समान रूप से वितरित करता है। उसी से ये सात ज्वालाएँ निकलती हैं।

III-6: यह आत्मा (अर्थात सूक्ष्म शरीर) निश्चित रूप से हृदय में है। एक सौ एक (मुख्य) नाड़ियाँ हैं। उनमें से प्रत्येक में एक सौ (विभाग) हैं। प्रत्येक शाखा बहत्तर हजार उप शाखाओं में विभाजित है। उनमें से व्यान चलता है।

III-7: अब उदान, जब अपनी ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति में होता है, तो पुण्य के फलस्वरूप पुण्य लोक की ओर, पाप के फलस्वरूप पाप लोक की ओर तथा दोनों के फलस्वरूप मनुष्य लोक की ओर ले जाता है।

III-8: सूर्य वास्तव में बाह्य प्राण है। यह नेत्र में इस प्राण को अनुकूल बनाकर ऊपर उठता है। वह देवता, जो पृथ्वी में है, मनुष्य में अपान को आकर्षित करके अनुकूल बनाता है। भीतर जो स्थान (अर्थात वायु) है, वह समान है। (सामान्य) वायु व्यान है।

III-9: जिसे यदि प्रकाश के रूप में जाना जाता है, वह उदान है। इसलिए, जो अपना प्रकाश बुझा लेता है, वह अपने मन में प्रवेश करने वाली इंद्रियों के साथ पुनर्जन्म प्राप्त करता है।

III-10: जो कुछ भी विचार उसके मन में था (मृत्यु के समय), वह प्राण में प्रवेश करता है। प्राण, उदान के साथ और आत्मा के साथ मिलकर उसे उसके इच्छित लोक में ले जाता है।

III-11: जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकार प्राण को जानता है, उसकी संतान की वंशावली कभी नहीं टूटती। वह अमर हो जाता है। इसके संबंध में यह मंत्र है।

III-12: प्राण की उत्पत्ति, आगमन, निवास और पंचविध प्रभुता तथा भौतिक अस्तित्व को जानने के बाद, मनुष्य अमरता को प्राप्त करता है।

चतुर्थ-१: तब गर्ग के कुल में उत्पन्न सूर्य के पौत्र ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, इस व्यक्ति में कौन-कौन सी इन्द्रियाँ सो जाती हैं? इसमें कौन-कौन सी इन्द्रियाँ जागती रहती हैं? स्वप्न देखने वाला देवता कौन है? यह सुख किसको प्राप्त होता है? सब किसमें विलीन हो जाते हैं?"

चतुर्थ-२: उन्होंने उनसे कहा, हे गार्ग्य, जैसे अस्त होते हुए सूर्य की सभी किरणें इस प्रकाश-मंडल में एकाकार हो जाती हैं और जब सूर्य पुनः उदय होता है, तो वे उससे विलीन हो जाती हैं, वैसे ही वह सब उच्च देवता मन में एकाकार हो जाता है। इसलिए यह व्यक्ति न सुनता है, न देखता है, न

सूँघता है, न चखता है, न छूता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न भोगता है, न त्यागता है, न हिलता है। लोग कहते हैं, "यह सो रहा है।"

चतुर्थ-३: प्राण की अग्नियाँ (अर्थात् अग्नि के समान कार्य) ही वास्तव में इस शरीर नगर में जागृत रहती हैं। यह अपान जो है, वह वास्तव में गार्हपत्य अग्नि के सदृश है, व्यान अग्नि के सदृश है, अन्वहार्यपचन। चूँकि आहवनीय अग्नि गार्हपत्य से प्राप्त होती है, जो कि पूर्व का निष्कर्षण स्रोत है, इसलिए प्राण आहवनीय के अनुरूप है (क्योंकि यह अपान से निकलता है)।

IV-4: समान पुजारी है जिसे होता कहा जाता है, क्योंकि यह साँस छोड़ने और साँस लेने के बीच संतुलन बनाता है जो कि दो आहुतियों के समान हैं। मन वास्तव में यज्ञकर्ता है। इच्छित फल उदान, जो इस यज्ञकर्ता को प्रतिदिन ब्रह्म की ओर ले जाता है।

IV-5: इस स्वप्न अवस्था में यह देवता (अर्थात मन) महानता का अनुभव करता है। जो कुछ भी देखा गया था, वह फिर से देखता है; जो कुछ भी सुना गया था, वह फिर से सुनता है; जो कुछ भी विभिन्न स्थानों और दिशाओं में देखा गया था, वह बार-बार अनुभव करता है; जो कुछ भी देखा गया या नहीं देखा गया, सुना गया या नहीं सुना गया, देखा गया या नहीं देखा गया, और जो कुछ भी वास्तविक या अवास्तविक है, वह सब बनकर यह सब देखता है।

चतुर्थ-6: जब वह देवता (मन) पित्त नामक (सूर्य) किरणों से अभिभूत हो जाता है, तब इस अवस्था में देवता स्वप्न नहीं देखता। तब, उस पूरे समय, इस शरीर में इस प्रकार का सुख होता है।

चतुर्थ-7: इस बात को स्पष्ट करने के लिए: जैसे पक्षी, हे सुंदर, निवास करने वाले वृक्ष की ओर बढ़ते हैं, वैसे ही ये सभी पक्षी परम आत्मा की ओर बढ़ते हैं।

चतुर्थ-8: पृथ्वी और पृथ्वी का मूल, जल और जल का मूल, अग्नि और अग्नि का मूल, आकाश और आकाश का मूल, दृष्टि का अंग और विषय, श्रवण का अंग और विषय, गंध का अंग और विषय, स्वाद का अंग और विषय, स्पर्श का अंग और विषय, वाणी का अंग और विषय, हाथ और पकड़ी गई वस्तु, मैथुन और भोग, मलमूत्र का अंग और मल, पैर और कुचला गया स्थान, मन और विचार का विषय, समझ और समझ का

विषय, अहंकार और अहंकार का विषय, जागरूकता और जागरूकता का विषय, चमकती हुई त्वचा और उससे प्रकट होने वाला विषय, प्राण और प्राण द्वारा धारण की जाने वाली सभी वस्तुएँ।

चतुर्थ-9: और यह द्रष्टा, अनुभव करने वाला, सुनने वाला, सूंघने वाला, चखने वाला, विचार करने वाला, पता लगाने वाला, कर्ता है - पुरुष (शरीर और इन्द्रियों में व्याप्त), जो स्वभाव से ज्ञाता है। यह पूर्णतः उस परम अक्षर पुरुष में स्थित हो जाता है।

चतुर्थ-10: जो उस छायारहित, अशरीरी, रंगरहित, शुद्ध, अक्षर पुरुष को जान लेता है, वह उस परम अक्षर पुरुष को प्राप्त हो जाता है। हे मनोहर! जो इस बात को जान लेता है, वह सर्वज्ञ और सर्वज्ञ हो जाता है। इसके लिए यह श्लोक है:

चतुर्थ-11: हे मनोहर! जो उस अचल पुरुष को जान लेता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है और सबमें प्रवेश कर जाता है, जिसमें ज्ञानात्मक आत्मा (स्वाभाविक रूप से जानने वाला पुरुष) विलीन हो जाती है, तथा सभी देवता और इन्द्रियाँ और तत्व भी विलीन हो जाते हैं।

पंचम-1: तत्पश्चात् शिबि के पुत्र सत्यकाम ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर! जो मनुष्यों में से कोई भी व्यक्ति मृत्युपर्यन्त उस अद्भुत विधि से ॐ का ध्यान करता है, वह वास्तव में किस लोक को जीतता है?" उससे उन्होंने कहा:
2: हे सत्यकाम! यह ब्रह्म, जो निम्न और श्रेष्ठ कहलाता है, वह ॐ ही है। अतः प्रकाशित आत्मा केवल इसी एक साधन से दोनों में से किसी एक को प्राप्त कर लेता है।

3: यदि वह ॐ का एक अक्षर के रूप में ध्यान करे, तो वह उससे भी प्रकाशित हो जाता है और पृथ्वी पर मनुष्य जन्म प्राप्त करता है। ऋक् मन्त्र उसे मनुष्य जन्म की ओर ले जाते हैं। वहाँ संयम, संयम और श्रद्धा से युक्त होकर वह महानता का अनुभव करता है।

4: अब फिर, यदि वह दूसरे अक्षर की सहायता से ॐ का ध्यान करता है, तो वह उसी के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।मन। यजुर् मंत्रों द्वारा वह मध्यवर्ती स्थान, चन्द्रलोक में उठा लिया जाता है। चन्द्रलोक में महानता का अनुभव करके वह पुनः भ्रमण करता है।

श्लोक 5: फिर, जो कोई तीन अक्षरों वाले इस ॐ अक्षर की सहायता से परम पुरुष का ध्यान करता है, वह प्रकाश से युक्त सूर्य में एक हो जाता है। जैसे साँप अपने केंचुल से मुक्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार वह पाप से मुक्त हो जाता है, और साम मंत्रों द्वारा वह ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) के लोक में उठा लिया जाता है। प्राणियों के इस समग्र समूह (जो हिरण्यगर्भ है) से वह उस परम पुरुष को देखता है जो प्रत्येक प्राणी में व्याप्त है और उच्चतर (अर्थात हिरण्यगर्भ) से भी उच्च है। इस पर आधारित, दो श्लोक आते हैं:

श्लोक 6: तीनों अक्षर (अपने आप में) मृत्यु की सीमा के भीतर हैं। किन्तु यदि वे एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हों, भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर भिन्न-भिन्न रूप से लागू न हों, तथा तीनों प्रकार की क्रियाओं - बाह्य, आंतरिक तथा मध्यवर्ती - पर लागू हों, जिनका समुचित रूप से सहारा लिया जाता है, तो आत्मज्ञानी पुरुष विचलित नहीं होता (अर्थात् अविचलित रहता है)। ऋक् मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले इस जगत को, यजुर् मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले मध्यवर्ती स्थान को तथा साम मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले जगत को बुद्धिमान व्यक्ति जानता है। आत्मज्ञानी पुरुष केवल ॐ के द्वारा उस (त्रिविध) जगत को प्राप्त करता है; तथा ॐ के माध्यम से वह उस परम तत्व को भी प्राप्त करता है जो शान्त है तथा बुढ़ापे, मृत्यु और भय से परे है।

6-1: तब भारद्वाज के पुत्र सुकेश ने उनसे पूछा, "पूज्यवर, कोसल के राजकुमार हिरण्यनाभ ने मेरे पास आकर प्रश्न किया, 'भारद्वाज, क्या आप सोलह अंगों वाले पुरुष को जानते हैं?' मैंने उस राजकुमार से कहा, 'मैं उसे नहीं जानता। यदि मैं उसे जानता होता, तो आपको क्यों न बताता? जो कोई मिथ्या वचन बोलता है, वह जड़ सहित सूख जाता है। इसलिए मैं मिथ्या वचन नहीं बोल सकता। वह चुपचाप रथ पर सवार होकर चला गया। उस पुरुष के विषय में मैं आपसे पूछता हूँ, 'वह कहाँ है?'"

6-2: उससे उन्होंने (पिप्पलाद ने) कहा: हे प्रियतम, यहाँ शरीर के अन्दर ही वह पुरुष है, जिससे ये सोलह अंग उत्पन्न होते हैं।

6-3: उन्होंने विचार किया: "किसके चले जाने से मैं उठूँगा? और किसके बने रहने से मैं स्थिर रहूँगा?"

VI-4: उन्होंने प्राण की रचना की; प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रियाँ, मन, अन्न की रचना की; अन्न से तेज, संयम, मन्त्र, कर्म, लोक और लोकों में नाम की रचना की।

VI-5: दृष्टान्त यह है: जैसे समुद्र को लक्ष्य मानकर बहने वाली ये नदियाँ समुद्र में पहुँचकर लीन हो जाती हैं, तथा उनके नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं, और वे केवल समुद्र कहलाती हैं, वैसे ही पुरुष के ये सोलह अंग (अर्थात् अवयव), जिनका लक्ष्य पुरुष ही है, पुरुष के पास पहुँचकर लुप्त हो जाते हैं, जब उनके नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं और वे केवल पुरुष कहलाते हैं। ऐसा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त पुरुष अंगों से मुक्त हो जाता है और अमर हो जाता है। इस विषय में यह श्लोक आता है:

6-6: तुम उस पुरुष को जानो जो जानने योग्य है और जिसके भीतर रथ के पहिये के नाभि के समान तीलियाँ लगी हुई हैं, ताकि मृत्यु तुम्हें कहीं भी न सताए।

7-8: उसने उनसे कहा, "मैं इस परम ब्रह्म को अब तक ही जानता हूँ। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।"

8-9: उसकी पूजा करते हुए उन्होंने कहा, "आप ही हमारे पिता हैं, जिन्होंने हमें अज्ञान से पार उतारकर उस पार पहुँचाया है। महान ऋषियों को नमस्कार है। महान ऋषियों को नमस्कार है।"

ॐ! हे देवताओं, हम कानों से शुभ वचन सुनें; यज्ञ करते हुए, हम आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें; स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते हुए, हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें। प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों; परम धनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हमारे लिए अनुकूल हों; बुराई के नाश करने वाले गरुड़ जी की जय हो।

<u>005 - मुण्डक उपनिषद</u>

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ वचन सुनें;यज्ञ करते समय,हम अपनी आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें;स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते समय,हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें।प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों;सर्वधनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हम पर कृपा करें;बुराई का नाश करने वाले गरुड़,हम पर कृपा करें;बृहस्पति हमारा कल्याण करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

I-i-1: ॐ ! ब्रह्माण्ड के रचयिता और जगत के रक्षक ब्रह्मा, देवताओं में सबसे पहले प्रकट हुए थे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व को ब्रह्म का वह ज्ञान दिया जो सभी ज्ञान का आधार है।

1-1-2: ब्रह्मा ने जो ब्रह्मज्ञान अथर्व को दिया था, अथर्व ने उसे प्राचीन काल में अंगिर को प्रदान किया। उन्होंने (अंगिर ने) इसे भारद्वाज वंश के सत्यवाह को दिया। भारद्वाज वंश के सत्यवाह ने अंगिरस को वह ज्ञान प्रदान किया, जो निम्न लोगों द्वारा उच्चतर से क्रमिक रूप से प्राप्त किया गया था।

1-1-3: महान गृहस्थ के रूप में विख्यात शौनक ने अंगिरस के पास जाकर पूछा, 'हे पूज्यनीय महाराज, वह कौन सी वस्तु है, जिसके ज्ञात हो जाने पर यह सब ज्ञात हो जाता है?'

1-1-4: उन्होंने उससे कहा, '"ज्ञान दो प्रकार का होता है - उच्चतर और निम्नतर"; वेदों के अर्थ के ज्ञाता परम्परागत रूप से यही कहते हैं।’

I-i-5: इनमें से निम्नतर में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उच्चारण आदि का विज्ञान, कर्मकाण्ड, व्याकरण, व्युत्पत्ति, छन्द और ज्योतिष शामिल हैं। फिर उच्चतर (ज्ञान) है जिसके द्वारा उस अविनाशी को प्राप्त किया जाता है।

1-1-6: (उच्चतर ज्ञान के द्वारा) बुद्धिमान व्यक्ति उस वस्तु को सर्वत्र अनुभव करते हैं, जिसे देखा और समझा नहीं जा सकता, जो स्रोत, आकृति,

नेत्र और कान से रहित है, जिसके न हाथ हैं, न पैर, जो शाश्वत, अनेकरूपी, सर्वव्यापक, अत्यंत सूक्ष्म और अविनाशी है तथा जो सबका स्रोत है।

1-1-7: जैसे मकड़ी फैलती है और अपना धागा खींच लेती है, जैसे पृथ्वी पर जड़ी-बूटियाँ (और वृक्ष) उगते हैं, और जैसे जीवित मनुष्य से बाल निकलते हैं (सिर और शरीर पर), वैसे ही अविनाशी से यहाँ (इस अभूतपूर्व सृष्टि में) ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है।

1-1-8: ज्ञान से ब्रह्म का आकार बढ़ता है। उससे अन्न (अव्यक्त) उत्पन्न होता है। अन्न से प्राण (हिरण्यगर्भ), मन, पंचतत्व, लोक, कर्म में अमरता उत्पन्न होती है।

I-i-9: जो सर्वज्ञ है, विस्तार से सब कुछ जानता है, तथा जिसकी तपस्या ज्ञान से युक्त है, उससे यह ब्रह्म, नाम, रंग और अन्न उत्पन्न होते हैं।

I-ii-1: जो वस्तु ऐसी है, वही सत्य है। ज्ञानियों ने मन्त्रों में जो कर्म खोजे हैं, वे तीनों वैदिक कर्तव्यों के संयोग से (यज्ञ के प्रसंग में) विविध प्रकार से सम्पन्न होते हैं। तुम सत्य फल की इच्छा से उन्हें सदा करते रहो। यही तुम्हारा मार्ग है, जो तुम्हें अपने द्वारा अर्जित कर्मों के फल की ओर ले जाता है।

I-ii-2: जब अग्नि प्रज्वलित हो जाए, और ज्वाला ऊपर उठे, तब उस भाग में आहुति देनी चाहिए, जो दाएं और बाएं के बीच में है।

I-ii-3: यह (अर्थात अग्निहोत्र) उस मनुष्य के सातों लोकों को नष्ट कर देता है जिसका अग्निहोत्र (यज्ञ) दर्ष और पौर्णमास (अनुष्ठान) से रहित, चातुर्मास्य से रहित, अग्रयान से रहित, अतिथियों से रहित, अकृतज्ञ, वैश्वदेव (अनुष्ठान) से रहित और औपचारिक रूप से किया गया हो।

I-ii-4: काली, कराली, मनोजवा और सुलोहिता तथा जो सुधुम्रवर्णा है, तथा स्फुलिंगिनी और चमकती विश्वरुचि - ये सात ज्वलन्त जिह्वाएँ हैं।

I-ii-5: ये आहुति सूर्य की किरणों में बदल जाती हैं और जो व्यक्ति इन चमकती हुई ज्वालाओं में उचित समय पर अनुष्ठान करता है, उसे ऊपर ले जाती हैं, जहाँ देवताओं का एकमात्र स्वामी सबका अधिपति है।

1-2-6: 'आओ, आओ' कहकर, 'यह तुम्हारा पुण्य पथ है, जो स्वर्ग की ओर ले जाता है', ऐसे मनभावन वचन बोलकर तथा उसे प्रणाम करके, जगमगाती हुई आहुति यज्ञकर्ता को सूर्य की किरणों के साथ ले जाती है।

1-2-7: चूँकि यज्ञ के ये अठारह अवयव, जिन पर निम्न कर्म का वास बताया गया है, अपनी नाज़ुक अवस्था के कारण नाशवान हैं, इसलिए जो अज्ञानी लोग 'यही आनंद का कारण है', इस विचार से प्रफुल्लित हो जाते हैं, वे बार-बार बुढ़ापे और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

1-2-8: अज्ञान के घेरे में रहकर और 'हम स्वयं ही बुद्धिमान और विद्वान हैं' ऐसा सोचकर मूर्ख लोग बहुत अधिक मार खाते हुए भी, अंधे के द्वारा अकेले चलाए जाने वाले अंधे के समान इधर-उधर भटकते रहते हैं।

1-2-9: अज्ञान के बीच में नाना प्रकार से चलते हुए, अज्ञानी पुरुष यह सोचकर भ्रम करते हैं कि, 'हमने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।' क्योंकि कर्म में लगे हुए मनुष्य आसक्ति के वश में होकर (सत्य को) नहीं समझते, इसलिए वे दुःख से पीड़ित होते हैं और कर्म के फल समाप्त होने पर स्वर्ग से वंचित हो जाते हैं।

1-2-10: मोहग्रस्त मूर्ख लोग वेद और स्मृतियों द्वारा बताए गए कर्मों को सर्वोच्च मानकर मोक्ष की दूसरी वस्तु को नहीं समझते। वे स्वर्ग की ऊंचाइयों पर स्थित सुख के धाम में (कर्मों के फलों को) भोगकर इस लोक या निम्न लोक में प्रवेश करते हैं।

1-2-11: जो वन में रहते हैं, वे भिक्षा मांगते हैं - अर्थात। जो वनवासी और तपस्वी अपने-अपने जीवन के कर्तव्यों का पालन करते हुए ध्यान का भी ध्यान करते हैं, तथा जो विद्वान् गृहस्थ अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं, वे मल से मुक्त होकर सूर्य के मार्ग से उस स्थान पर जाते हैं, जहाँ स्वभाव से अविनाशी और अविनाशी पुरुष रहता है।

1-2-12: कर्म से प्राप्त लोकों का परीक्षण करने के पश्चात् ब्राह्मण को त्याग का आश्रय लेना चाहिए, इस उक्ति की सहायता से कि 'यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है जो कर्म का फल न हो, अतः कर्म करने की क्या आवश्यकता है?' उस तत्व को जानने के लिए उसे यज्ञ की लकड़ियाँ हाथ में लेकर केवल वेदों के ज्ञाता और ब्रह्म में लीन गुरु के पास जाना चाहिए।

1-2-13: जो विधिपूर्वक गया है, जिसका हृदय शांत है और जिसकी बाह्य इन्द्रियाँ अविचल हैं, उसके पास जाना चाहिए।

2-1-1: जो वस्तु ऐसी है, वही सत्य है। जैसे पूर्ण रूप से प्रज्वलित अग्नि से अग्नि के समान हजारों चिंगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार हे सुदर्शन! अविनाशी से नाना प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं और पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं।

2-1-2: पुरुष पारलौकिक है, क्योंकि वह निराकार है। और चूँकि वह बाह्य और आन्तरिक सभी के साथ समाया हुआ है और चूँकि वह अजन्मा है, इसलिए वह प्राणशक्ति और मन से रहित है; वह (अन्य) श्रेष्ठ अविनाशी (माया) से शुद्ध और श्रेष्ठ है।

2-1-3: उसी से प्राणशक्ति और मन, सभी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न होती है, जो सबका भरण-पोषण करती है।

II-i-4: सबका अन्तर्यामी आत्मा वही है जिसका सिर आकाश है, चन्द्रमा और सूर्य दो आँखें हैं, दिशाएँ दो कान हैं, प्रकाशित वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हृदय है, तथा जिसके दो पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई है।

II-i-5: उसी से अग्नि (अर्थात् स्वर्ग) उत्पन्न होती है जिसका ईंधन सूर्य है। चन्द्रमा से बादल उत्पन्न होते हैं, तथा बादल से पृथ्वी पर जड़ी-बूटियाँ और अनाज उत्पन्न होते हैं। पुरुष स्त्री में वीर्य डालता है। पुरुष से अनेक जीव उत्पन्न हुए हैं।

II-i-6: उसी से ऋक्, साम और यजुर् मंत्र, दीक्षा, सभी यज्ञ - चाहे यज्ञ के साथ हों या उसके बिना - ब्राह्मणों को अर्पण, वर्ष, यज्ञकर्ता, तथा वे लोक जहाँ चन्द्रमा (सबका) हवन करता है और जहाँ सूर्य (चमकता है) उत्पन्न होते हैं।

II-i-7: और उसी से अनेक समूहों में देवता उत्पन्न हुए, साध्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण, चावल और जौ, साथ ही तप, श्रद्धा, सत्य, संयम और कर्तव्यपरायणता।

II-i-8: उसी से सात ज्ञानेन्द्रियाँ, सात ज्वालाएँ, सात प्रकार के ईंधन, सात हवन और ये सात स्थान उत्पन्न हुए, जहाँ गुहा में सोई हुई इन्द्रियाँ चलती हैं, और जिन्हें (ईश्वर ने) सात के समूहों में जमा किया है।

II-i-9: उसी से सारे समुद्र और सारे पर्वत उत्पन्न हुए। उसी से अनेक रूपों वाली नदियाँ निकलती हैं। उसी से सारे अनाज और रस निकलते हैं, जिसके कारण आंतरिक आत्मा वास्तव में तत्वों के बीच में स्थित है।

II-i-10: पुरुष ही यह सब है - कर्म और ज्ञान सहित। हे सुदर्शन! जो इस परम अविनाशी ब्रहम को हृदय में स्थित जानता है, वह इस अज्ञानरूपी ग्रन्थि को नष्ट कर देता है। यह तेजोमय है, समीप है, हृदय में गति करने वाला है, तथा महान् लक्ष्य है। इसमें वे सब स्थित हैं जो चलते हैं, श्वास लेते हैं, पलक झपकाते हैं या नहीं झपकाते। इस एक को जानो, जो स्थूल और सूक्ष्म तीनों से युक्त है, जो प्राणियों के सामान्य ज्ञान से परे है, तथा जो सबसे अधिक वांछनीय और श्रेष्ठ है। यह जो तेजोमय है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, तथा जिसमें समस्त लोक तथा लोकों के निवासी स्थित हैं, वह यह अपरिवर्तनशील ब्रहम है। यह प्राणशक्ति है, यह वाणी और मन भी है। यह जो सत्ता है, वह सत्य है। यह अमर है। हे सुदर्शन! इसे भेदकर इस पर प्रहार करो।

द्वितीय-द्वितीय-3: उपनिषदों में वर्णित महान् अस्त्र धनुष को पकड़कर, उस पर ध्यानपूर्वक धारदार बाण चढ़ाना चाहिए। हे सुदर्शन! उस बाण की डोरी खींचकर, उस अविनाशी लक्ष्य पर मन को उसी के विचार में लगाकर प्रहार करो।

द्वितीय-द्वितीय-4: ॐ धनुष है, आत्मा बाण है, और ब्रहम उसका लक्ष्य है। उसे अचूक पुरुष को ही मारना है। बाण के समान उसी के साथ एक हो जाना चाहिए।

द्वितीय-द्वितीय-5: उस आत्मा को जान लो, जो एक है, जिस पर स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, मन, प्राण तथा अन्य सभी इन्द्रियाँ बंधी हुई हैं, और अन्य सब बातों को छोड़ दो। यही अमरता की ओर ले जाने वाला सेतु है।

द्वितीय-द्वितीय-6: उस हृदय में, जिसमें रथ के पहिये के पोर के समान नाड़ियाँ लगी हुई हैं,इस पूर्वोक्त आत्मा को अनेकरूप धारण करके गतिमान करता है। इस प्रकार ॐ की सहायता से आत्मा का ध्यान करो। अंधकार से परे दूसरे किनारे पर जाने में बाधा से मुक्त हो जाओ।

II-II-7: वह आत्मा जो सामान्य रूप से सर्वज्ञ है और विस्तार से सर्वज्ञ है तथा जिसकी इस संसार में ऐसी महिमा है - वह आत्मा, जो इस प्रकार की

है - ब्रह्म के प्रकाशमय नगर के भीतर अंतरिक्ष में विराजमान है। यह मन से बद्ध है, यह प्राण और शरीर का वाहक है, यह बुद्धि को (हृदय की गुहा में) स्थापित करके अन्न में विराजमान है। अपने ज्ञान के द्वारा विवेकशील लोग उस आत्मा को सर्वत्र अपनी पूर्णता में विद्यमान अनुभव करते हैं - वह आत्मा जो परमानंद और अमरता के रूप में चमकती है।

II-II-8: जब वह आत्मा, जो उच्च और निम्न दोनों है, का साक्षात्कार हो जाता है, तब हृदय की गांठ जुड़ जाती है, सभी संदेह दूर हो जाते हैं, और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

II-ii-9: परम उज्ज्वल कोश में ब्रह्म है, जो कल्मषों से रहित और अंगों से रहित है। वह शुद्ध है, और ज्योतियों का प्रकाश है। यह वही है जिसे आत्मा के ज्ञाता अनुभव करते हैं।

II-ii-10: वहाँ न सूर्य चमकता है, न चंद्रमा या तारे; न ये बिजली की चमक वहाँ चमकती है। यह अग्नि ऐसा कैसे कर सकती है? सब कुछ उसी के अनुसार चमकता है; उसके प्रकाश से यह सब भिन्न-भिन्न रूप से चमकता है।

II-ii-11: यह जो कुछ सामने है, वह केवल ब्रह्म है, अविनाशी है। ब्रह्म पीछे है, दाएं और बाएं भी है। यह ऊपर और नीचे भी फैला हुआ है। यह जगत् सर्वोच्च ब्रह्म के अलावा और कुछ नहीं है।

III-i-1: दो पक्षी जो सदैव एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं और जिनके नाम समान हैं, एक ही वृक्ष से चिपके रहते हैं। इनमें से एक भिन्न-भिन्न स्वाद वाले फल खाता है, और दूसरा बिना खाए देखता रहता है।

तृतीय-1-2: उसी वृक्ष पर जीवात्मा मानो डूबा हुआ (अथवा अटका हुआ) रहता है, और अपनी नपुंसकता से चिन्तित होकर विलाप करता है। जब वह इस प्रकार दूसरे, पूज्य भगवान् को तथा उनकी महिमा को देखता है, तब वह दुःख से मुक्त हो जाता है।

तृतीय-1-3: जब द्रष्टा पुरुष को - सुवर्णमय, सृष्टिकर्ता, स्वामी तथा अधम ब्रह्म के मूल को - देख लेता है, तब वह ज्ञानी पुरुष पाप-पुण्य से सर्वथा मुक्त हो जाता है, निष्कलंक हो जाता है, तथा परम समता को प्राप्त हो जाता है।

तृतीय-1-4: यह वास्तव में प्राणशक्ति है, जो सभी प्राणियों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकाशित होती है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष को अपनी बात में आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलता। वह आत्मा में रमण करता है, आत्मा में रमण करता है, तथा पुरुषार्थ में लीन रहता है। यह ब्रह्म के जानने वालों में प्रमुख है।

III-i-5: शरीर के भीतर जो उज्ज्वल और शुद्ध आत्मा है, जिसे (आदतन प्रयास और) क्षीण दोषों वाले भिक्षु देखते हैं, वह सत्य, एकाग्रता, पूर्ण ज्ञान और संयम के द्वारा, निरंतर अभ्यास करने से प्राप्त होता है। III-i-6: सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। सत्य के द्वारा ही देवयान नामक मार्ग निर्धारित किया गया है, जिसके द्वारा इच्छा रहित द्रष्टा सत्य के द्वारा प्राप्त होने वाले परम कोष तक पहुँचते हैं।

III-i-7: यह महान और स्वयं प्रकाशमान है; और इसका रूप अकल्पनीय है। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। यह विविध रूप से चमकता है। यह दूर से भी दूर है, और यह इस शरीर में निकट है। चेतन प्राणियों में यह इसी शरीर में, हृदय गुहा में स्थित है।

III-i-8: यह न तो नेत्र से, न वाणी से, न अन्य इन्द्रियों से समझा जा सकता है; न ही यह तप या कर्म से प्राप्त होता है। चूँकि बुद्धि की अनुकूलता से मन शुद्ध हो जाता है, इसलिए ध्यान के द्वारा उस अविभाज्य आत्मा को देखा जा सकता है।
III-i-9: शरीर के भीतर (हृदय में) जहाँ प्राणशक्ति पाँच रूपों में प्रविष्ट हुई है, उस बुद्धि के द्वारा इस सूक्ष्म आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए, जो सम्पूर्ण मन के साथ-साथ सभी प्राणियों के कर्मेन्द्रियों और इन्द्रियों में व्याप्त है। और मन में ही इसे जानना चाहिए, जो शुद्ध हो जाने पर यह आत्मा अपने आप को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है।

III-i-10: शुद्ध मन वाला मनुष्य उन लोकों को जीत लेता है, जिनकी वह मानसिक रूप से कामना करता है और उन भोग्य वस्तुओं को, जिनकी वह अभिलाषा करता है। इसलिए कल्याण की इच्छा रखने वाले को चाहिए कि वह आत्मवेत्ता की आराधना करे।

तृतीय-द्वितीय-१: वह इस परमधाम को, इस ब्रह्म को जानता है, जिसमें यह जगत स्थित है और जो पवित्रता से प्रकाशित होता है। जो बुद्धिमान पुरुष कामनारहित होकर इस (ज्ञानी) पुरुष की आराधना करते हैं, वे इस मनुष्य बीज से पार हो जाते हैं।

तृतीय-द्‌वितीय-२: जो पुरुष गुणों का चिन्तन करते हुए इच्छित वस्तुओं की अभिलाषा करता है, वह कामनाओं सहित उन्हीं परिवेशों में जन्म लेता है। परन्तु जिसकी कामनाएँ पूर्ण हो गई हैं और जो आत्मस्थ है, उसके लिए यहाँ भी सब कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं।

तृतीय-द्‌वितीय-३: यह आत्मा न तो अध्ययन से प्राप्त होती है, न बुद्‌धि से, न बहुत सुनने से। जिस आत्मा को यह साधक खोजता है, वह उसी खोज के द्‌वारा प्राप्त होने योग्य है; उसका यह आत्मा अपना स्वरूप प्रकट करता है।

तृतीय-द्‌वितीय-४: यह आत्मा न तो बलहीन को प्राप्त होती है, न मोह से, न संन्यास से असंबद्‌ध ज्ञान से। परन्तु जो ज्ञाता इन साधनों से प्रयत्न करता है, उसका आत्मा ब्रह्म-धाम में प्रवेश करता है।

तृतीय-द्‌वितीय-5: इसे प्राप्त करके द्रष्टा अपने ज्ञान से संतुष्ट, आत्मा में स्थित, आसक्ति से मुक्त और शांत हो जाते हैं। सर्वत्र व्याप्त उस एक को जानकर, ये विवेकशील लोग, चिन्तन में लीन होकर, सर्व में प्रवेश करते हैं।

तृतीय-द्‌वितीय-6: जिनको वेदान्तिक ज्ञान द्‌वारा प्रस्तुत सत्ता पूर्णतः ज्ञात हो गई है, जो तपस्वी हैं और संन्यास-योग द्‌वारा मन से शुद्‌ध हो गए हैं - वे सभी, अन्तिम प्रयाण के परम क्षण में ब्रह्म-रूपी लोकों में परम अमरता से एकाकार हो जाते हैं और सब ओर से मुक्त हो जाते हैं।

तृतीय-द्‌वितीय-7: (शरीर के) पंद्रह अवयव अपने-अपने मूल में चले जाते हैं और (इन्द्रियों के) सभी देवता अपने-अपने देवताओं में चले जाते हैं। कर्म और आत्मा बुद्‌धि के समान प्रकट होकर, सभी परम अविनाशी के साथ एक हो जाते हैं।

तृतीय-द्‌वितीय-८: जैसे नदियाँ बहती हुई समुद्र में पहुँचकर अपने नाम और रूप त्यागकर अविभाज्य हो जाती हैं, वैसे ही प्रकाशवान आत्मा नाम और रूप से मुक्त होकर स्वयं प्रकाशमान पुरुष को प्राप्त हो जाती है, जो परब्रह्म (माया) से भी उच्च है।

तृतीय-द्‌वितीय-९: जो कोई उस परम ब्रह्म को जान लेता है, वह वास्तव में ब्रह्म ही हो जाता है। उसके वंश में ऐसा कोई उत्पन्न नहीं होता, जो ब्रह्म को न जानता हो। वह शोक पर विजय प्राप्त कर लेता है, विपथनों से ऊपर

उठ जाता है, और हृदय की गांठों से मुक्त होकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

तृतीय-द्वितीय-१०: यह (नियम) इस मंत्र द्वारा प्रकट किया गया है (जो इस प्रकार है): 'केवल उन्हीं को इस ज्ञान का वर्णन करना चाहिए जो अनुशासन में लगे हुए हैं, वेदों में पारंगत हैं, और वास्तव में ब्रह्म के प्रति समर्पित हैं, जो स्वयं एकरसी नामक अग्नि में श्रद्धापूर्वक आहुति देते हैं, और जिन्होंने अग्नि को सिर पर धारण करने का व्रत विधिपूर्वक पूरा किया है।'

तृतीय-द्वितीय-११: ऋषि अंगिरस ने प्राचीन काल में इस सत्य की बात कही थी। जिसने व्रत पूरा नहीं किया है, वह इसे नहीं पढ़ता है। महान ऋषियों को नमस्कार है। महान ऋषियों को नमस्कार है। ॐ ! हे देवताओं, हम कानों से शुभ शब्द सुनें; यज्ञ करते समय, हम आँखों से शुभ चीजें देखें; स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते हुए, हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें। प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों; परम धनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हम पर कृपा करें; बुराई का नाश करने वाले गरुड़ हम पर कृपा करें; बृहस्पति हमारा कल्याण करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में सम्मिलित मुण्डकोपनिषद् समाप्त होता है।

006 - मांडूक्य उपनिषद

विद्यावाचस्पति वी. पनोली द्वारा अनुवादित

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें;हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें;हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों।

महान् इन्द्र हम पर कृपा करें;सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें;दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों;बृहस्पति हम पर सबकी समृद्धि प्रदान करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

1. यह सब ॐ अक्षर है। इसकी विशद व्याख्या (आरंभ) की गई है। भूत, वर्तमान और भविष्य जो कुछ भी है, वह ॐ ही है। जो तीनों काल से परे है, वह भी ॐ ही है।

2. यह सब निश्चय ही ब्रह्म है। यह आत्मा ब्रह्म है। यह आत्मा इस प्रकार चार दिशाओं से युक्त है।

3. जो आत्मा जाग्रत अवस्था में स्थित है और जिसे वैश्वानर कहते हैं, जो बाह्य चेतना, सात अंगों और उन्नीस मुखों से युक्त होकर स्थूल विषयों का भोग करता है, वह प्रथम दिशा है।

4. जो आत्मा स्वप्नावस्था में स्थित है और जिसे तैजस कहते हैं, जो आन्तरिक चेतना, सात अंगों और उन्नीस मुखों से युक्त होकर सूक्ष्म विषयों का भोग करता है, वह द्वितीय दिशा है।

5. जहाँ शयनकर्ता भोग की किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता और कोई स्वप्न नहीं देखता, वह अवस्था सुषुप्ति है।
जो आत्मा सुषुप्ति में स्थित है और जिसे प्रज्ञा कहते हैं, जिसमें सब कुछ एकरूप है, जो चेतना से युक्त है, जो आनन्द से पूर्ण है, जो निश्चय ही आनन्द का भोक्ता है, और जो (पूर्ववर्ती दो अवस्थाओं का) ज्ञान का द्वार है, वह तृतीय दिशा है।
6. यह सबका स्वामी है, यह सर्वज्ञ है; यह सबका नियंत्रक है; यह सभी प्राणियों का स्रोत है, तथा वास्तव में उत्पत्ति और प्रलय भी है।

7. चतुर्थ को वह माना जाता है जो न तो आंतरिक जगत के प्रति सचेत है, न ही बाह्य जगत के प्रति सचेत है, न ही दोनों जगतों के प्रति सचेत है, न ही चेतना से सघन है, न ही केवल चेतना है, न ही अचेतन है, जो अदृश्य, क्रियाहीन, अज्ञेय, अकल्पनीय, अकल्पनीय, अवर्णनीय है, जिसका प्रमाण आत्मा की पहचान (सभी अवस्थाओं में) में निहित है, जिसमें सभी घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं, और जो अपरिवर्तनीय, शुभ और अद्वैत है। वही आत्मा है जिसे जानना है।

8. अक्षर की दृष्टि से वही आत्मा ॐ है और अक्षरों की दृष्टि से देखा जाए तो काल ही अक्षर हैं और काल ही काल हैं। ये अक्षर हैं अ, उ और म।

9. जाग्रत अवस्था में बैठा हुआ वैश्वानर सर्वव्यापक होने के कारण प्रथम अक्षर अ है। जो इस प्रकार जानता है, वह सब कामनाओं को पूर्ण कर लेता है और प्रथम हो जाता है।

10. स्वप्न में बैठा हुआ तैजस श्रेष्ठता की समानता या मध्यवर्ती स्थिति के कारण उ है, जो ॐ का दूसरा अक्षर है। जो इस प्रकार जानता है, वह अपने ज्ञान की सीमा को आगे बढ़ाता है और सबके समान हो जाता है और उसके कुल में कोई भी ब्रह्मज्ञ उत्पन्न नहीं होता।

11. सुषुप्ति अवस्था में बैठा हुआ प्रज्ञा म है, जो ॐ का तीसरा अक्षर है, क्योंकि वह वह माप या इकाई है जिसमें सब लीन हो जाते हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह इन सबको माप लेता है और सबको ग्रहण कर लेता है।

12. जो अक्षर (अंश) रहित है, वह चतुर्थ है, जो सामान्य साधनों से समझ से परे है, वह प्रचंड जगत्, शुभ और अद्वैत का निरोध है। इस प्रकार ॐ निश्चय ही आत्मा है। जो इस प्रकार जानता है, वह आत्मा द्वारा आत्मा में प्रवेश करता है। ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हम अपनी आँखों से शुभ देखें; हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों। महान यश वाले इंद्र हम पर कृपा करें; सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें; दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों; बृहस्पति हमें सभी समृद्धि प्रदान करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में निहित माण्डूक्योपनिषद् समाप्त होता है।
गौड़पाद की माण्डूक्य कारिका I. आगम प्रकरण आह्वान ;

1. मैं उस ब्रह्म को नमन करता हूँ जो समस्त चराचर वस्तुओं में व्याप्त ज्ञान किरणों के प्रसार द्वारा सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है, जो (जाग्रत अवस्था में) समस्त स्थूल भोगों का भोग कर चुका है, तथा जो (स्वप्न अवस्था में) समस्त कामनाजन्य तथा बुद्धि द्वारा प्रकाशित विषयों का भोग कर चुका है, तथा स्वयं आनन्द का अनुभव करते हुए तथा (अपनी) माया द्वारा हम सबको आनन्दित करते हुए विश्राम करता है, तथा जो माया के द्वारा चौथे स्थान पर है, तथा सर्वोच्च, अमर और अजन्मा है।

2. जो जाग्रत अवस्था में पुण्य-पाप से उत्पन्न स्थूल भोगों को भोगकर स्वप्न अवस्था में अपनी ही बुद्धि से उत्पन्न तथा अपनी ही ज्योति से प्रकाशित अन्य सूक्ष्म विषयों को भोगता है, तथा उन सबको धीरे-धीरे अपने में लीन करके तथा सब भेदों को त्यागकर निर्गुण हो जाता है, वह विश्वात्मा, जो चौथी अवस्था में स्थित है, हमारी रक्षा करे। विश्वा बाह्य चेतना से युक्त होकर सर्वव्यापक है, तैजस अन्तरंग चेतना से युक्त है, तथा प्रज्ञा भी चेतना से युक्त है।

इस प्रकार एक ही को दोनों प्रकार से देखा जाता है। विश्वा दाहिनी आँख में देखा जाता है, जो उसका अनुभव स्थान है, तैजस मन के अन्दर है तथा प्रज्ञा हृदय के अन्दर है।

इन तीनों प्रकार से वह शरीर में रहता है। विश्वा स्थूल का, तैजस सूक्ष्म का तथा प्रज्ञा आनन्द का भोक्ता है। (इसलिए) आनंद को तीन तरीकों से जानो।

१-४. घास विश्व को, सूक्ष्म तैजस को तथा इसी प्रकार प्रसन्नता प्रज्ञा को संतुष्ट करती है। अतः संतुष्टि को तीन प्रकार से जानो।

१-५. जो इन दोनों को जानता है, अर्थात् जो भोगने योग्य बताया गया है तथा जो भोगने वाला बताया गया है, वह तीनों अवस्थाओं में भोगता हुआ भी भोगता हुआ भी ग्रसित नहीं होता।

१-६. यह एक स्थापित तथ्य है कि अस्तित्व में आना केवल सकारात्मक संस्थाओं के लिए ही कहा जा सकता है। प्राण सबका निर्माण करता है; तथा पुरुष चेतन प्राणियों को पृथक रूप से बनाता है।

१-७. जो लोग सृष्टि के बारे में सोचते हैं, वे इसे भगवान की शक्ति का प्रकटीकरण मानते हैं; जबकि अन्य लोग सृष्टि को स्वप्न और भ्रम के समान मानते हैं।

१-८. जिन्होंने सृष्टि की प्रक्रिया को भली-भाँति समझा, वे कहते हैं कि सृष्टि भगवान की इच्छा मात्र है, परन्तु जो लोग काल पर भरोसा करते हैं, वे प्राणियों के जन्म को काल से मानते हैं।

१-९. कुछ लोग कहते हैं कि सृष्टि भगवान के आनंद के लिए है, जबकि कुछ लोग कहते हैं कि यह उनकी लीला के लिए है। लेकिन यह तो तेजोमय पुरुष का स्वभाव है, जिसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गई हैं, उसे क्या इच्छा हो सकती है?

I-10. तुरीय, जो सभी दुखों का निवारण करने वाला, अविनाशी, सभी भूतों का अद्वैत भगवान माना जाता है, तथा सर्वव्यापी है।

I-11. विश्व और तैजस को कारण और प्रभाव से बद्ध माना जाता है। प्रज्ञा कारण से बद्ध है। लेकिन ये दोनों (अर्थात कारण और प्रभाव) तुरीय में नहीं होते।

I-12. प्रज्ञा न स्वयं को जानती है, न दूसरों को, न सत्य को, न असत्य को। लेकिन वह तुरीय सदैव सर्वज्ञ है।

I-13. द्वैत का अज्ञान प्रज्ञा और तुरीय दोनों में समान है। प्रज्ञा में कारण स्वरूप की निद्रा होती है, जबकि तुरीय में वह निद्रा नहीं होती।

I-14. प्रथम दो (अर्थात विश्व और तैजस) स्वप्न और सुषुप्ति से सम्बन्धित हैं, किन्तु प्रज्ञा स्वप्न से रहित सुषुप्ति से सम्बन्धित है। ब्रह्म के ज्ञाता तुरीय अवस्था में न तो सुषुप्ति देखते हैं और न स्वप्न।

I-15. स्वप्न उसका है जो गलत देखता है और निद्रा उसका है जो वास्तविकता को नहीं जानता। जब इन दोनों की मिथ्या धारणा समाप्त हो जाती है, तब तुरीय अवस्था प्राप्त होती है।

I-16. जब अनादि माया के प्रभाव में सोया हुआ जीवात्मा जागृत होता है, तब वह (तुरीय अर्थात्) अजन्मा, निद्रारहित, स्वप्नरहित और अद्वैत को प्राप्त करता है।

I-17. यदि कोई अद्भुत जगत् हो, तो निस्संदेह उसका अस्तित्व समाप्त हो जाना चाहिए। यह द्वैत केवल भ्रम है; वास्तव में यह अद्वैत है।

I-18. यदि किसी ने इसकी कल्पना की है, तो यह धारणा (जैसे कि शिक्षक, शिक्षाप्राप्त और शास्त्र) लुप्त हो जाएगी। यह धारणा (शिक्षक आदि की) शिक्षा के उद्देश्य से है। जब (सत्य का) साक्षात्कार हो जाता है, तब द्वैत नहीं रहता।

1-19. जब विश्व का अ अक्षर से तादात्म्य माना जाता है, अर्थात् जब विश्व का अ अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब प्रथम होने का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा सर्वव्यापकता का सामान्य लक्षण भी स्पष्ट दिखाई देता है।

1-20. जब तैजस का उ अक्षर से तादात्म्य माना जाता है, अर्थात् जब तैजस का उ अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब श्रेष्ठता का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा मध्यवर्ती स्थिति भी स्पष्ट दिखाई देती है।

1-21. प्रज्ञा का म से तादात्म्य माना जाने की स्थिति में, अर्थात् जब प्रज्ञा का म अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब माप होने का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा अवशोषण का सामान्य लक्षण भी स्पष्ट दिखाई देता है।

1-22. जो तीनों अवस्थाओं में समानता को निश्चयपूर्वक जान लेता है, वह सब प्राणियों द्वारा पूज्य और पूजनीय हो जाता है, तथा महान ऋषि भी हो जाता है।

I-23.अ अक्षर विश्व की ओर ले जाता है, और उ अक्षर तैजस की ओर ले जाता है।फिर म अक्षर प्रज्ञा की ओर ले जाता है।जो अक्षर से मुक्त है, उसके लिए कोई प्राप्ति नहीं है।

I-24.ओम को एक-एक करके जानना चाहिए।इसमें कोई संदेह नहीं है कि (आत्मा के) ये सभी अक्षर (ओम के) ही हैं।ओम को एक-एक करके जानने के बाद, किसी अन्य विषय पर विचार नहीं करना चाहिए।

I-25.ओम में मन को स्थिर करो, क्योंकि ओम ही ब्रह्म है, निर्भय है।जो व्यक्ति ओम में सदा स्थिर रहता है, उसके लिए यह एक ही बात है। हीं कोई भय नहीं है।

I-26. ॐ वास्तव में निम्न ब्रह्म है; ॐ को उच्चतर (ब्रह्म) भी माना जाता है। ॐ कारण रहित, भीतरी और बाह्य रहित, कार्य रहित और अविनाशी है।

I-27. ॐ वास्तव में सबका आदि, मध्य और अंत है। ॐ को इस प्रकार जानने पर, व्यक्ति तुरन्त आत्मा से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है।

I-28. ॐ को सबके हृदय में निवास करने वाला ईश्वर जानना चाहिए। सर्वव्यापी ॐ को जानने पर बुद्धिमान व्यक्ति शोक नहीं करता।

I-29. जो ॐ को जानता है, जो अपरिमित, अनंत परिमाण वाला और मंगलमय है, क्योंकि उसमें सभी द्वैत समाप्त हो जाते हैं, वह ॐ ही है, अन्य कोई नहीं।

II. वैतथ्य प्रकरण

II-1. बुद्धिमान व्यक्ति स्वप्न में सभी वस्तुओं की असत्यता की घोषणा करता है, क्योंकि वे (शरीर में) स्थित हैं और (इसलिए भी) क्योंकि वे सीमित स्थान में सीमित हैं।

II-2. चूंकि अवधि कम होती है, इसलिए व्यक्ति उस स्थान पर जाकर नहीं देख सकता। साथ ही, प्रत्येक स्वप्नदर्शी, जब जागृत होता है, तो उस स्थान (स्वप्न) में नहीं रहता।

II-3. रथ आदि का अस्तित्व न होना (स्वप्न में देखा गया) तर्क की दृष्टि से (श्रुति में) सुना जाता है। ब्रह्म के ज्ञाता कहते हैं कि इस प्रकार (तर्क के माध्यम से) प्राप्त हुई असत्यता स्वप्न के संदर्भ में (श्रुति द्वारा) प्रकट होती है।

II-4. जाग्रत अवस्था में भी वस्तुओं की असत्यता होती है। जैसे वे स्वप्न में असत्य हैं, वैसे ही जाग्रत अवस्था में भी असत्य हैं। स्थानिक सीमा के कारण शरीर के भीतर स्थान के कारण (स्वप्न में) वस्तुएं भिन्न होती हैं।

II-5. ज्ञानी कहते हैं कि जाग्रत और स्वप्न की अवस्थाएं समान हैं, वस्तुओं की समानता की दृष्टि से (दोनों अवस्थाओं में देखी गई) और अनुमान के सुविदित आधार की दृष्टि से।

II-6. जो आदि और अन्त में असत्य है, वह वर्तमान में (अर्थात् मध्य में) अवश्य है। वस्तुएँ यद्यपि असत्य का चिह्न धारण करती हैं, फिर भी वे सत्य प्रतीत होती हैं।

II-7. स्वप्न में उनकी उपयोगिता विपरीत है। अतः आदि और अन्त होने के आधार पर वे निश्चित रूप से असत्य मानी जाती हैं।

II-8. स्वप्न में असामान्य वस्तुएँ देखना स्वप्नदर्शी का गुण है, जैसा कि स्वर्ग में रहने वालों का है। वह वहाँ जाकर इन्हें देखता है, जैसे कोई भली-भाँति इस लोक में देखता है।

II-9. स्वप्न में भी मन (चित्त) द्वारा भीतर जो कल्पना की जाती है, वह असत्य है, जबकि मन द्वारा बाहर जो ग्रहण किया जाता है, वह सत्य है। परन्तु ये दोनों ही असत्य दिखाई पड़ते हैं।

II-10. जाग्रत अवस्था में भी मन द्वारा भीतर जो कल्पना की जाती है, वह असत्य है, जबकि मन द्वारा बाहर जो ग्रहण किया जाता है, वह सत्य है। इन दोनों को असत्य मानना युक्तिसंगत है।

II-11. यदि दोनों अवस्थाओं के विषय मिथ्या हों, तो इन सबको कौन समझता है और फिर कौन उनकी कल्पना करता है?

II-12. स्वयं प्रकाशमान आत्मा अपनी माया से स्वयं ही अपनी कल्पना करता है और वही सब विषयों को जानता है। यह वेदान्त-ग्रन्थों का एक निश्चित तथ्य है।

II-13. भगवान ने मन में स्थित सांसारिक विषयों की अनेक रूपों में कल्पना की। मन को बाहर की ओर मोड़कर वे अनेक प्रकार के स्थायी विषयों (तथा अनित्य पदार्थों) की कल्पना करते हैं। इस प्रकार भगवान कल्पना करते हैं।

II-14. जो वस्तुएँ विचार के रहने तक भीतर रहती हैं और जो वस्तुएँ बाह्य हैं तथा दो समय-बिन्दुओं के अनुरूप हैं, वे सब केवल कल्पनाएँ हैं। (उनके बीच) भेद किसी और कारण से नहीं है।
II-15. जो वस्तुएँ मन में अप्रकट प्रतीत होती हैं और जो बाहर प्रकट प्रतीत होती हैं, वे सब केवल कल्पनाएँ हैं, उनका भेद इन्द्रियों का भेद है।

II-16. सर्वप्रथम वे जीव की कल्पना करते हैं, फिर बाह्य तथा आन्तरिक विभिन्न पदार्थों की कल्पना करते हैं। जैसा ज्ञान होता है, वैसी ही स्मृति भी होती है।

II-17. जिस प्रकार अंधकार में रस्सी का स्वरूप ज्ञात नहीं होता, उसी प्रकार रस्सी की कल्पना भी की जाती है।साँप, जलरेखा आदि, इसी प्रकार आत्मा की भी कल्पना (विभिन्न वस्तुओं के रूप में) की जाती है।

II-18. जैसे रस्सी का (वास्तविक स्वरूप) ज्ञात हो जाने पर मोह समाप्त हो जाता है और केवल रस्सी ही अपने अद्वैत स्वरूप में रह जाती है, उसी प्रकार आत्मा का भी पता लग जाता है।

II-19. (आत्मा की) कल्पना प्राण आदि अनंत वस्तुओं के रूप में की जाती है। यह प्रकाशमान की माया है, जिससे वह स्वयं मोहित हो जाता है।

II-20. प्राण के ज्ञाता प्राण को (संसार का कारण) मानते हैं, जिसे तत्त्वों के ज्ञाता तत्त्वों को (कारण) मानते हैं। गुण (कारण हैं), गुण के ज्ञाता कहते हैं, जबकि श्रेणी के ज्ञाता श्रेणियों को (ऐसा मानते हैं)।

II-21. दिशाओं के ज्ञाता (जैसे विश्वा) दिशाओं को (कारण) मानते हैं, जबकि इन्द्रिय-विषयों के ज्ञाता इन्द्रिय-विषयों को (कारण) मानते हैं। लोकों के ज्ञाता कहते हैं कि ये लोक (वास्तविक हैं) और देवताओं के ज्ञाता देवताओं को (ऐसा मानते हैं)।

II-22. वैदिक विद्या में पारंगत लोग वेदों को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि यज्ञकर्ता इसे यज्ञ मानते हैं। जो भोक्ता को जानते हैं वे भोक्ता को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि भोग्य वस्तुओं से परिचित लोग उन्हें (वास्तविक) मानते हैं।

II-23. सूक्ष्मता को जानने वाले कहते हैं कि ये सूक्ष्मता (वास्तविक) है, जबकि स्थूल से परिचित लोग इसे (वास्तविक) मानते हैं। (वास्तविकता) साकार है, ऐसा साकार ईश्वर के उपासक कहते हैं, जबकि निराकार के उपासक (वास्तविकता को) निराकार मानते हैं।

II-24. ज्योतिषी काल को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि दिशाओं के ज्ञाता दिशाओं को (ऐसा मानते हैं)। वाद-विवाद में दृढ़ रहने वाले लोग यह कहते हैं कि वाद-विवाद (वास्तविकता की ओर ले जाते हैं), जबकि लोकों की आकांक्षा रखने वाले लोग उन्हें (वास्तविक) मानते हैं।

II-25. मन के ज्ञाता इसे (आत्मा) मानते हैं, जबकि बुद्धि के ज्ञाता इसे (ऐसा) मानते हैं। हृदय के ज्ञाता इसे (वास्तविकता) मानते हैं, जबकि इसे जानने वाले इसे पुण्य और पाप मानते हैं।

II-26. कुछ लोग कहते हैं कि पच्चीस श्रेणियाँ (वास्तविकता का निर्माण करती हैं), जबकि अन्य लोग छब्बीस की बात करते हैं।
फिर, कुछ लोग कहते हैं कि इकतीस श्रेणियाँ (वास्तविकता का निर्माण करती हैं), फिर भी कुछ अन्य मानते हैं कि वे अनंत हैं।

II-27. जो लोग (और उनके सुखों को) जानते हैं, वे सुखों में वास्तविकता पाते हैं। जो लोग जीवन के चरणों से परिचित हैं, वे उन्हें (वास्तविक) मानते हैं। व्याकरणविद पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग के शब्दों को (वास्तविकता) मानते हैं, जबकि अन्य लोग (वास्तविकता को) उच्च और निम्न (ब्रहम) मानते हैं।

II-28. जो लोग सृष्टि के बारे में सब कुछ जानते हैं, वे कहते हैं कि वास्तविकता सृष्टि में निहित है। (वास्तविकता) प्रलय में है, ऐसा जानने वाले कहते हैं, जबकि जो अस्तित्व को जानते हैं, वे (उसे ही वास्तविकता मानते हैं)। ये सभी विचार हमेशा आत्मा पर ही कल्पित होते हैं।

II-29. जो (गुरु) किसी वस्तु को दिखाता है, वह उसे ही (वास्तविकता के रूप में) देखता है। वह वस्तु भी उसके साथ एक हो जाती है, और उसकी रक्षा करती है। तल्लीन होने की वह स्थिति दिखाई गई वस्तु के साथ उसकी आत्म-तादात्म्य में परिणत होती है।

II-30. इन अविभाज्य वस्तुओं के द्वारा (आत्मा से) यह आत्मा पृथक रूप में प्रकट होती है। जो इसे जानता है, वह बिना किसी संदेह के (वेदों का अर्थ) सही रूप से समझ लेता है।

II-31. जैसे स्वप्न और जादू, तथा आकाश में स्थित नगर, (असत्य प्रतीत होते हैं), वैसे ही यह ब्रह्मांड भी वेदांत-ग्रंथों से (असत्य) दिखाई देता है।

II-32. इस आत्मा में प्रलय नहीं है, उत्पत्ति नहीं है, कोई बंधन में नहीं है, कोई मोक्ष के साधन से युक्त नहीं है, कोई मोक्ष की इच्छा नहीं रखता है, तथा कोई मुक्त नहीं है। यही परम सत्य है।

II-33. यह (आत्मा) मिथ्या वस्तु भी मानी जाती है तथा अद्वैत भी। वस्तुओं की कल्पना भी अद्वैत (आत्मा) पर की जाती है। इसलिए अद्वैत शुभ है।

II-34. आत्मा के आधार पर देखा गया यह (जगत) भिन्न नहीं है। न तो यह कभी अपने आप से स्वतंत्र है, न ही (आत्मा से) कुछ भिन्न या अविभाज्य है। इस प्रकार सत्य के जानने वाले जानते हैं।

II-35. आसक्ति, भय और क्रोध से रहित तथा वेदों में पारंगत ऋषियों द्वारा इस आत्मा का साक्षात्कार किया जाता है, जो सभी कल्पनाओं से परे है, जिसमें प्रचण्ड जगत् का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तथा जो अद्वैत है।

II-36. अतः इस प्रकार जानकर मनुष्य को अद्वैत पर अपनी स्मृति स्थिर करनी चाहिए (अर्थात् उस पर पूरा ध्यान देना चाहिए)। अद्वैत को प्राप्त करके मनुष्य को मूर्ख की तरह आचरण करना चाहिए।

II-37. तपस्वी को स्तुति, वंदना तथा कर्मकाण्ड से मुक्त रहना चाहिए। शरीर और आत्मा ही उसका आधार होना चाहिए तथा उसे जो संयोग मिले, उस पर निर्भर रहना चाहिए।

II-38. सत्य को आन्तरिक रूप से तथा बाह्य रूप से अनुभव करके मनुष्य को सत्य से तादात्म्य कर लेना चाहिए, सत्य से आनन्द प्राप्त करना चाहिए तथा सत्य से कभी विचलित नहीं होना चाहिए।

III. अद्वैत प्रकरण

III-1. साधक भक्ति का आश्रय लेकर बद्ध ब्रह्म में स्थित रहता है। सृष्टि से पूर्व यह सब अजन्मा ब्रह्म का स्वरूप था। अतः (ऐसी दृष्टि से) मनुष्य संकीर्ण दृष्टिकोण वाला माना जाता है।

III-2. अतः मैं उस ब्रह्म का वर्णन करूँगा जो सीमा से रहित है, अजन्मा है और सदा एक ही है। सुनो कि कोई भी वस्तु किस प्रकार जन्मती नहीं है, यद्यपि वह सब प्रकार से जन्मती हुई प्रतीत होती है।
III-3. आत्मा को जीवों के रूप में विद्यमान कहा गया है, जैसे (अनंत) आकाश घड़ों में सीमित आकाश के रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार, उसे

शरीरों के समुच्चय के रूप में विद्यमान कहा गया है, जैसे आकाश घड़ों आदि के रूप में विद्यमान है। यह जन्म के संबंध में दृष्टांत है।

III-4. जैसे जब घड़े आदि का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो उनके भीतर सीमित आकाश आदि अनंत आकाश में लीन हो जाते हैं, वैसे ही यहाँ भी जीवात्माएँ आत्मा में लीन हो जाती हैं।

III-5. जैसे जब किसी घड़े में सीमित आकाश में धूल और धुआँ होता है, तो सभी घड़ों में ऐसा नहीं होता, उसी प्रकार सभी जीवात्माएँ सुख आदि से संबंधित नहीं होतीं।

III-6. यद्यपि रूप, कार्य और नाम यहाँ-वहाँ भिन्न-भिन्न हैं (घड़ों आदि में निहित ईथर के सम्बन्ध में), फिर भी इससे ईथर में कोई अंतर नहीं पड़ता। व्यक्तिगत आत्माओं के सम्बन्ध में भी यही निष्कर्ष है।

III-7. जैसे घड़े के अन्दर का ईथर (अनंत) ईथर का रूपान्तरण या अंग नहीं है, वैसे ही व्यक्तिगत आत्मा कभी भी (परम) आत्मा का रूपान्तरण या अंग नहीं है।

III-8. जैसे बच्चों के लिए आकाश मैल से मैला हो जाता है, वैसे ही मूर्खों के लिए आत्मा अशुद्धियों से मैल हो जाती है।

III-9. आत्मा अपनी मृत्यु और जन्म, आने-जाने तथा सभी शरीरों में अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में ईथर से भिन्न नहीं है।

III-10. सभी समुच्चय (जैसे शरीर) आत्मा की माया द्वारा स्वप्न के समान निर्मित होते हैं। चाहे वे श्रेष्ठ हों या समान, उनकी वास्तविकता को सिद्ध करने का कोई आधार नहीं है।

III-11. तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्न से बने कोशों की वैयक्तिक आत्मा का वर्णन किया गया है, जो कि परम आत्मा के समान है, जैसा कि हम पहले ही आकाश के उदाहरण से स्पष्ट कर चुके हैं।

III-12. जिस प्रकार यह कहा गया है कि पृथ्वी और उदर में स्थित आकाश एक ही है, उसी प्रकार मधु-ब्राह्मण (बृहदारण्यक उपनिषद्) में परम ब्रह्म को भी प्रत्येक दो (अर्थात् साकार और पारलौकिक) के संदर्भ में एक ही बताया गया है।

III-13. चूँकि जीव और परम आत्मा में अभेद की प्रशंसा उनकी एकता के आधार पर की गई है, तथा चूँकि विभिन्नता की निन्दा की गई है, इसलिए वह (अद्वैत) ही युक्तिसंगत है।

III-14. सृष्टि के विवेचन (उपनिषदों में) से पहले (श्रुति में) जो जीवात्मा और परमात्मा की पृथकता घोषित की गई है, वह भविष्य के परिणाम की दृष्टि से गौण अर्थ में है, क्योंकि यदि इसे प्राथमिक अर्थ में माना जाए तो यह (पृथक्ता) उपयुक्त नहीं है।

III-15. पृथ्वी, सोना, चिंगारी आदि (के दृष्टांतों) के माध्यम से जो सृष्टि भिन्न रूप से प्रस्तुत की गई है, वह (केवल) विचार (पहचान) को प्रकट करने का साधन है। परंतु अनेकता किसी भी प्रकार से विद्यमान नहीं है।

III-16. जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं - निम्न, मध्यम और उच्च। यह ध्यान उनके लिए करुणावश कहा गया है।

III-17. द्वैतवादी, अपने-अपने निष्कर्षों से प्राप्त अपने-अपने सिद्धांत में दृढ़ निश्चयी होकर एक-दूसरे का विरोध करते हैं। परंतु यह (अद्वैतवादी का दृष्टिकोण) उनसे किसी प्रकार का विरोध नहीं करता।

III-18. अद्वैत ही वास्तव में परम सत्य है, क्योंकि द्वैत को उसका उत्पाद कहा गया है। उनके लिए द्वैत दोनों (सत्य और अवास्तविक) का निर्माण करता है। इसलिए यह (हमारा दृष्टिकोण) उनके (उनके) विपरीत नहीं है।

III-19. यह अजन्मा (आत्मा) माया के माध्यम से परिवर्तन से गुजरता है, किसी अन्य तरीके से नहीं। क्योंकि, यदि परिवर्तन एक वास्तविकता है, तो अमर नश्वर होने की प्रवृत्ति होगी।

III-20. विवादकर्ता जन्म के संदर्भ में अजन्मा आत्मा के बारे में सोचते हैं। जो आत्मा अजन्मा और अमर है, वह नश्वरता की ओर कैसे प्रवृत्त हो सकती है?

III-21. अमर कभी नश्वर नहीं हो सकता। इसलिए, नश्वर भी कभी अमर नहीं हो सकता। क्योंकि किसी के स्वभाव में परिवर्तन कभी किसी भी तरह से नहीं हो सकता।

III-22. जो अमर है, वह उस व्यक्ति के अनुसार अपरिवर्तित कैसे रह सकता है, जिसके लिए स्वभाव से अमर वस्तु पैदा हो सकती है, क्योंकि वह (उसके विचार में) एक उत्पाद है?

III-23. श्रुति यथार्थ में तथा माया द्वारा सृष्टि को समान रूप से समर्थन देती है। जो श्रुति द्वारा निश्चित किया गया है तथा तर्क द्वारा समर्थित है, वही सत्य है, अन्य कुछ नहीं।

III-24. चूँकि श्रुति कहती है, "यहाँ अनेकता नहीं है", "भगवान माया के कारण (विविध रूप से) देखे जाते हैं", तथा "आत्मा यद्यपि अजन्मा है, (अनेक प्रकार से जन्म लेती हुई प्रतीत होती है)", अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वह माया द्वारा जन्मा है।

III-25. हिरण्यगर्भ की निन्दा करने से सृष्टि का निषेध होता है। "कौन इसे उत्पन्न करेगा?" कहने से कार्य-कारण का निषेध होता है।

III-26. (ब्रह्म की) अज्ञानता के आधार पर, (उसकी समझ के लिए) सभी पूर्ववर्ती निर्देश श्रुति द्वारा अस्वीकृत कर दिए जाते हैं, "यह आत्मा वह है जिसे 'यह नहीं, यह नहीं' कहा गया है"। अतः अजन्मा आत्मा स्वयं ही प्रकट हो जाती है।

III-27. जो विद्यमान है उसका जन्म केवल माया के द्वारा होता है, वास्तविकता में नहीं। जो यह समझता है कि कोई वस्तु वास्तविकता में जन्म लेती है, उसे यह जानना चाहिए कि जो पहले से ही जन्म ले चुका है, वह पुनः जन्म लेता है।

III-28. जो अस्तित्वहीन है उसका जन्म न तो माया से होता है, न ही वास्तविकता में, क्योंकि बांझ स्त्री का पुत्र न तो माया से होता है, न ही वास्तविकता में।

III-29. जैसे स्वप्न में मन माया के द्वारा कंपन करता है, मानो दोहरी भूमिकाएँ निभाता हो, वैसे ही जाग्रत अवस्था में मन माया के द्वारा कंपन करता है, मानो दोहरी भूमिकाएँ निभाता हो।

III-30. इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्वप्न में केवल अद्वैत मन ही दोहरी भूमिकाएँ निभाता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी अद्वैत मन दोहरी भूमिकाएँ निभाता हुआ दिखाई देता है।

III-31. जो कुछ भी चलायमान और अचल है, जो इस द्वैत का निर्माण करता है, वह मन द्वारा देखा जाता है, क्योंकि जब मन मन के रूप में नहीं रहता, तो द्वैत कभी नहीं देखा जाता।

III-32. जब मन सत्य अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार होने पर कल्पना करना छोड़ देता है, तब वह मन न रहने की स्थिति को प्राप्त होता है और बोधगम्य विषयों के अभाव के कारण अबोधगम्य हो जाता है।

III-33. (ब्रह्म के ज्ञाता) कहते हैं कि जो ज्ञान कल्पना से रहित और अजन्मा है, वह ज्ञेय से भिन्न नहीं है। जिस ज्ञान का एकमात्र विषय ब्रह्म है, वह अजन्मा और नित्य है। अजन्मा (आत्मा) अजन्मा (ज्ञान) से जाना जाता है।

III-34. (इस प्रकार) संयमित, जो सब कल्पनाओं से मुक्त और विवेक से युक्त है, उस मन के आचरण पर ध्यान देना चाहिए। सुषुप्ति में मन भिन्न स्वभाव का होता है और संयम में रहने पर ऐसा नहीं होता।

III-35. सुषुप्ति में मन विलीन हो जाता है, परंतु संयम में रहने पर विलीन नहीं होता। वह (मन) ही ब्रह्म बन जाता है, निर्भय हो जाता है, वह सब ओर से चेतना रूपी प्रकाश से युक्त हो जाता है।

III-36. (ब्रह्म) अजन्मा, निद्राहीन, स्वप्नहीन, नामहीन, निराकार, नित्य-दीप्तिमान और सर्वज्ञ है। (उसके सम्बन्ध में) किसी भी प्रकार का कोई नियमित अभ्यास नहीं हो सकता।

III-37. आत्मा सभी (बाह्य) इन्द्रियों से रहित है, तथा सभी आन्तरिक इन्द्रियों से ऊपर है। वह अत्यंत शान्त, नित्य-दीप्तिमान, दिव्य-लीन, अपरिवर्तनशील और निर्भय है।

III-38. जहाँ कोई विचार नहीं है, वहाँ कोई स्वीकार या अस्वीकार नहीं है। तब आत्मा में स्थित ज्ञान अजन्मा और एकरूपता की स्थिति को प्राप्त करता है।
III-39. यह योग, जिसे किसी भी वस्तु से असंबद्ध कहा गया है, किसी भी प्राणी द्वारा अनुभव करना कठिन है।जो योगीजन निर्भयता में भय देखते हैं, वे उससे डरते हैं।

III-40. सभी योगियों के लिए निर्भयता, दुःख का निवारण, जागरूकता और चिरस्थायी शांति, उनके मन के संयम पर निर्भर है।

III-41. कुश की धार से बूंद-बूंद करके समुद्र को खाली करने के समान अथक प्रयास से मन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

III-42. (उचित) साधनों से कामना और भोग के बीच में उलझे हुए मन को संयम में लाना चाहिए। जब मन नींद में भी पूरी तरह से स्थिर हो जाए, तब भी उसे संयम में लाना चाहिए, क्योंकि नींद कामना के समान ही हानिकारक है।

III-43. यह स्मरण रखते हुए कि सब कुछ दुःख उत्पन्न करने वाला है, मनुष्य को कामना के विषयों के भोग से (अपने मन को) हटा लेना चाहिए। (इसी प्रकार) यह स्मरण रखते हुए कि सब कुछ अजन्मा ब्रह्म है, मनुष्य जन्मा (अर्थात् द्वैत) को अवश्य नहीं देखता।

III-44. गहरी नींद में सोये हुए मन को जगाना चाहिए और विचलित मन को पुनः शांत करना चाहिए। मन को काम-युक्त जानना चाहिए और जब वह समावस्था में आ जाए, तो उसे विचलित नहीं करना चाहिए।

III-45. उस अवस्था में सुख का भोग नहीं करना चाहिए, बल्कि विवेक द्वारा अनासक्त हो जाना चाहिए। जब शांत हुआ मन भटकने लगे, तो उसे प्रयत्नपूर्वक आत्मा से एक कर लेना चाहिए।

III-46. जब मन पुनः विलीन या विचलित नहीं होता, जब वह निश्चल हो जाता है और वस्तुओं के रूप में प्रकट नहीं होता, तब वह वास्तव में ब्रह्म हो जाता है।

III-47. वह परम आनन्द स्वयं की आत्मा में ही विद्यमान है। वह शांत है, मोक्ष के समान है, अवर्णनीय है और अजन्मा है। चूँकि यह अजन्मा ज्ञेय (ब्रह्म) से एक है, इसलिए ब्रह्म के ज्ञाता इसे सर्वज्ञ (ब्रह्म) कहते हैं।

III-48. कोई भी जीव (व्यक्तिगत आत्मा), चाहे वह कोई भी हो, पैदा नहीं होता। इसका कोई कारण (जन्म का) नहीं है। (ऐसा होने पर),यह सर्वोच्च सत्य है जहाँ कुछ भी पैदा नहीं होता है।

IV. अलतसंति प्रकरण (अग्नि को बुझाने पर)

IV-1. मैं उस व्यक्ति को नमन करता हूँ जो मनुष्यों में श्रेष्ठ है और जिसने अपने ज्ञान के द्वारा आकाश के समान व्यक्तिगत आत्माओं को महसूस किया है, जो फिर से आकाश के समान है और ज्ञान की वस्तु से भिन्न नहीं है।

IV-2. मैं उस योग को नमन करता हूँ जो किसी भी चीज़ के साथ स्पर्श से रहित है (जो संबंध को दर्शाता है),जो सभी प्राणियों के सुख में सहायक है और लाभकारी है, और जो विवाद और विरोधाभास से मुक्त है और शास्त्रों द्वारा सिखाया गया है।

IV-3. कुछ विवादी लोग पहले से ही विद्यमान सत्ता के जन्म की कल्पना करते हैं, जबकि कुछ अन्य, अपनी बुद्धि पर गर्व करते हुए, आपस में विरोध करते हुए, जो पहले से ही विद्यमान नहीं है, उसके जन्म की कल्पना करते हैं।

IV-4. जो पहले से ही विद्यमान है, वह जन्म नहीं ले सकता और जो नहीं है, वह भी जन्म नहीं ले सकता।जो लोग इस प्रकार तर्क करते हैं, वे अद्वैतवादी ही हैं और केवल जन्महीनता की घोषणा करते हैं।

IV-5. हम उनके द्वारा प्रकट की गई जन्महीनता का अनुमोदन करते हैं। हम उनसे विवाद नहीं करते। अब, यह सीखो जो सभी विवादों से मुक्त है।

IV-6. विवादी लोग जन्म के आधार पर आत्मा के बारे में सोचते हैं। जो आत्मा अजन्मा और अमर है, वह नश्वरता की ओर कैसे प्रवृत्त हो सकती है?

IV-7. अमर कभी नश्वर नहीं हो सकता। इसी प्रकार, नश्वर कभी अमर नहीं हो सकता। क्योंकि किसी के स्वभाव में परिवर्तन कभी किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता।
IV-8. जो अमर है, वह उस व्यक्ति के अनुसार अपरिवर्तित कैसे रह सकती है, जिसके विचार में स्वभाव से अमर वस्तु का जन्म हो सकता है, क्योंकि वह (उसके विचार में) एक प्रभाव है?

IV-9. प्रकृति शब्द से वह जाना जाता है जो सम्यक सिद्धियों से अस्तित्व में आता है, जो आंतरिक है, जन्मजात है, अजन्मा है, तथा जो अपना स्वरूप नहीं छोड़ता।

IV-10. सभी आत्माएँ स्वभाव से ही क्षय और मृत्यु से मुक्त हैं। परन्तु क्षय और मृत्यु के बारे में सोचने से, तथा
उस विचार में लीन होकर वे (उस स्वभाव से) विचलित हो जाते हैं।

IV-11. जो यह मानता है कि कारण ही परिणाम है, उसके अनुसार कारण का जन्म होना ही चाहिए। जो जन्मा है वह अजन्मा कैसे हो सकता है? जो परिवर्तन के अधीन है वह शाश्वत कैसे हो सकता है?

IV-12. यदि (आपके विचार में) परिणाम कारण से अभिन्न है और यदि, इस कारण से, परिणाम भी अजन्मा है, तो कारण शाश्वत कैसे हो सकता है, क्योंकि वह जन्म लेने वाले परिणाम से अभिन्न है?

IV-13. जो यह मानता है कि परिणाम अजन्मे कारण से जन्मा है, उसके पास कोई उदाहरण (उद्धृत करने के लिए) नहीं है। यदि जन्मा परिणाम किसी अन्य जन्मी वस्तु से जन्मा हुआ माना जाए, तो वह अनंत तक ले जाता है।

IV-14. जो यह मानते हैं कि परिणाम कारण का स्रोत है और कारण परिणाम का स्रोत है, वे कारण और परिणाम के लिए अनादित्व का दावा कैसे कर सकते हैं?

IV-15. जो लोग यह मानते हैं कि कार्य ही कारण का मूल है और कारण ही कार्य का मूल है, उनके अनुसार जन्म संभव है, जैसे पिता पुत्र से जन्म ले सकता है।

IV-16. यदि कारण और कार्य संभव हैं, तो आपको उनके उत्पन्न होने का क्रम ज्ञात करना होगा,क्योंकि यदि वे एक साथ उत्पन्न होते हैं, तो दोनों के बीच कोई संबंध नहीं होता, जैसा कि गाय के सींगों के मामले में होता है।
IV-17. आपका कारण जो कार्य से उत्पन्न होता है, उसे स्थापित नहीं किया जा सकता। जो कारण स्वयं स्थापित नहीं है, वह कार्य कैसे उत्पन्न करेगा?

IV-18. यदि कारण कार्य से उत्पन्न होता है और यदि कार्य कारण से उत्पन्न होता है, तो दोनों में से कौन पहले उत्पन्न हुआ है, जिस पर दूसरे का उद्भव निर्भर करता है?

IV-19. आपकी (उत्तर देने में) असमर्थता अज्ञानता के बराबर है, अन्यथा उत्तराधिकार के क्रम में (आपके द्वारा प्रतिपादित) अंतर होगा। इस प्रकार वास्तव में जन्म का अभाव सभी प्रकार से बुद्धिमान द्वारा प्रकट किया जाता है।

IV-20. जिसे बीज और अंकुर का दृष्टांत कहा जाता है, वह हमेशा मुख्य पद (अभी सिद्ध होना बाकी है) के बराबर होता है। मध्य पद (अर्थात दृष्टांत) जो अप्रमाणित मुख्य पद के बराबर है, उसे अभी सिद्ध होने बाकी प्रस्ताव को स्थापित करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है।

IV-21. पूर्वता और उत्तराधिकार के बारे में अज्ञान जन्महीनता को प्रकट करता है। जो चीज पैदा होती है, उसका पूर्ववर्ती कारण क्यों नहीं समझा जाता है?

IV-22. कोई भी चीज न तो खुद से पैदा होती है और न ही किसी और चीज से। इसी तरह, कोई भी चीज पैदा नहीं होती है, चाहे वह अस्तित्व में हो या न हो या अस्तित्व में और न होने दोनों में से कोई भी चीज पैदा नहीं होती है।

IV-23. कोई कारण अनादि कार्य से पैदा नहीं होता है, न ही कोई कार्य स्वाभाविक रूप से (अनंत कारण से) जन्म लेता है। क्योंकि जिसका कोई कारण नहीं है, उसका कोई जन्म भी नहीं है।

IV-24. ज्ञान का अपना विषय होता है, क्योंकि अन्यथा यह द्वैत का नाश करता है। इसके अतिरिक्त, पीड़ा के अनुभव से, विरोधियों की विचार प्रणाली द्वारा समर्थित बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

IV-25. ज्ञान के कारण की धारणा के अनुसार, उत्तरार्द्ध को बाह्य वस्तुओं पर आधारित माना जाता है। लेकिन वास्तविकता के दृष्टिकोण से, (बाह्य) कारण को कोई कारण नहीं माना जाता है।

IV-26. चेतना वस्तुओं के संपर्क में नहीं है, न ही यह वस्तुओं की उपस्थिति के संपर्क में है। क्योंकि वस्तु निश्चित रूप से अस्तित्वहीन है और वस्तु की उपस्थिति (विचारों का गठन) चेतना से अलग नहीं हैं।

IV-27. चेतना तीनों समय में कभी भी वस्तुओं के संपर्क में नहीं आती है। बिना किसी कारण (यानी, बाहरी वस्तु) के इसकी झूठी आशंका कैसे हो सकती है?

IV-28. इसलिए चेतना पैदा नहीं होती है, न ही इसके द्वारा देखी जाने वाली चीजें पैदा होती हैं। जो इसे जन्म के रूप में देखते हैं, वे आकाश में पैरों के निशान देख सकते हैं।

IV-29. चूँकि जन्म अजन्मा ही होता है (विवादकर्ताओं के अनुसार), अतः अजन्मापन ही उसका स्वभाव है। अतः इस स्वभाव से विचलन किसी भी प्रकार नहीं हो सकता।

IV-30. यदि देहान्तर का अस्तित्व अनादि हो, तो उसका अन्त नहीं हो सकता। और यदि उसका प्रारम्भ हो, तो मोक्ष शाश्वत नहीं हो सकता।

IV-31. जो प्रारम्भ और अन्त में असत्य है, वह वर्तमान में अवश्य ही असत्य है। वस्तुएँ असत्य के समान होते हुए भी सत्य प्रतीत होती हैं।

IV-32. स्वप्न में उनकी उपयोगिता का विरोध होता है। अतः प्रारम्भ और अन्त होने के कारण वे असत्य ही याद किये जाते हैं।

IV-33. स्वप्न में सभी वस्तुएँ अवास्तविक हैं, क्योंकि वे शरीर के भीतर देखी जाती हैं। इस संकीर्ण स्थान में प्राणियों का दर्शन कैसे संभव है?

IV-34. यह कहना उचित नहीं है कि स्वप्न में वस्तुएँ (वास्तव में) उनके पास जाकर देखी जाती हैं, क्योंकि यह यात्रा के लिए आवश्यक समय के नियम के विपरीत है। इसके अलावा, जागने पर कोई भी वस्तु स्वप्न के स्थान पर नहीं रहती।

IV-35. (स्वप्न में) मित्रों और अन्य लोगों के साथ जो चर्चा की गई है (और तय की गई है) उसे जागने पर नहीं दोहराया जाता। स्वप्न में जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह भी जाग्रत अवस्था में नहीं देखा जाता।

IV-36. और स्वप्न में शरीर मिथ्या हो जाता है, क्योंकि दूसरा शरीर (बिस्तर में) देखा जाता है। जैसा शरीर है, वैसी ही चेतना द्वारा जानी जाने वाली सभी चीजें मिथ्या हैं।

IV-37. चूँकि स्वप्न में (वस्तुओं का) अनुभव जाग्रत अवस्था के समान ही होता है, अतः पूर्व को उत्तरार्द्ध के कारण माना जाता है। ऐसी स्थिति में, जाग्रत अवस्था को केवल स्वप्न देखने वाले के लिए ही वास्तविक माना जाता है।

IV-38. ऐसा जन्म स्थापित नहीं है, सब कुछ अजन्मा कहा जाता है। इसके अलावा, किसी भी तरह से वास्तविक से अवास्तविक का जन्म होना संभव नहीं है।

IV-39. जाग्रत अवस्था में अवास्तविक चीजों को देखकर, मनुष्य बहुत प्रभावित होकर उन्हीं चीजों को स्वप्न में देखता है। इसी तरह, स्वप्न में अवास्तविक वस्तुओं को देखकर, मनुष्य उन्हें जाग्रत अवस्था में नहीं देखता।

IV-40. ऐसा कोई अस्तित्वहीन नहीं है जो अस्तित्वहीन का कारण बनता हो, जिस प्रकार विद्यमान वस्तु असत्य का कारण नहीं बनती। कोई भी वास्तविक सत्ता ऐसी नहीं है जो किसी अन्य वास्तविक सत्ता का कारण बने। असत्य वस्तु किस प्रकार वास्तविक वस्तु की उत्पत्ति हो सकती है?

4-41. जिस प्रकार व्यक्ति विवेक के अभाव में जाग्रत अवस्था में अकल्पनीय वस्तुओं को भी वास्तविक मान लेता है, उसी प्रकार स्वप्न में भी विवेक के अभाव में व्यक्ति केवल उसी अवस्था में वस्तुओं को देखता है।

4-42. जो व्यक्ति अपने अनुभव और सही आचरण से सत्त्व के अस्तित्व को मानते हैं और जो अजन्मा से सदैव डरते हैं, उनके लिए बुद्धिमानों ने जन्म के विषय में शिक्षा दी है।

4-43. जो व्यक्ति अजन्मा के भय से तथा द्वैत के बोध के कारण सही मार्ग से विचलित हो जाते हैं, उनके लिए जन्म (सृष्टि) को स्वीकार करने से उत्पन्न होने वाला पाप नहीं होता। यदि कोई पाप होगा भी, तो वह बहुत कम होगा।

4-44. जिस प्रकार जादू से उत्पन्न हाथी को बोध और सही आचरण के आधार पर हाथी कहा जाता है, उसी प्रकार बोध और सही आचरण के कारण कोई वस्तु विद्यमान कही जाती है।

IV-45. जो जन्म के समान प्रतीत होता है, चलायमान प्रतीत होता है, तथा उसी प्रकार गुणयुक्त वस्तु प्रतीत होता है, वह चेतना है जो जन्मरहित, अचल और जड़, शांत और अद्वैत है।

IV-46. इस प्रकार चेतना अजन्मा है, इस प्रकार आत्मा को अजन्मा माना जाता है। जो इस प्रकार अनुभव करते हैं, वे निश्चित रूप से दुर्भाग्य में नहीं पड़ते।

IV-47. जिस प्रकार गतिमान अग्नि-दाग सीधा, टेढ़ा आदि दिखाई देता है, उसी प्रकार चेतना का स्पंदन द्रष्टा और द्रष्टा के रूप में दिखाई देता है।

IV-48. जिस प्रकार गतिहीन अग्नि-दाग प्रकट और जन्म से रहित है, उसी प्रकार स्पंदन से रहित चेतना प्रकट और जन्म से रहित है।

IV-49. जब अग्नि-दाग गति में होता है, तो दृश्य कहीं और से नहीं आते। न तो वे, जब अग्नि-दाग गति से मुक्त होता है, कहीं और जाते हैं, न ही वे उसमें प्रवेश करते हैं।

IV-50. वे पदार्थ की प्रकृति के न होने के कारण अग्नि-दाग से बाहर नहीं गए। चेतना के मामले में भी, दृश्य एक जैसे होने चाहिए, क्योंकि दृश्य के रूप में कोई भेद नहीं हो सकता।

IV-51. जब चेतना गति में होती है, तो दृश्य कहीं और से नहीं आते। न ही वे, जब चेतना गति से मुक्त होता है, कहीं और जाते हैं, न ही वे फिर से उसमें प्रवेश करते हैं।

IV-52. वे पदार्थ की प्रकृति के न होने के कारण चेतना से बाहर नहीं गए, क्योंकि वे प्रभाव और कारण के संबंध के अभाव के कारण हमेशा समझ से परे रहते हैं।

IV-53. एक पदार्थ किसी पदार्थ का कारण हो सकता है और दूसरा किसी अन्य चीज़ का कारण हो सकता है। परन्तु आत्मा को न तो पदार्थ माना जा सकता है और न ही अन्य सभी से भिन्न कोई अन्य वस्तु।

IV-54. इस प्रकार बाह्य वस्तुएँ चेतना से उत्पन्न नहीं होतीं, न ही चेतना बाह्य वस्तुओं से उत्पन्न होती है। इस प्रकार बुद्धिमानों ने कारण और प्रभाव की अजन्माता को निश्चित किया है।

IV-55. जब तक कारण और प्रभाव के प्रति मोह है, तब तक कारण और प्रभाव अस्तित्व में आते हैं। जब कारण और प्रभाव के प्रति मोह समाप्त हो जाता है, तब कारण और प्रभाव उत्पन्न नहीं होते।

IV-56. जब तक व्यक्ति कारण और प्रभाव में पूर्णतः लीन रहता है, तब तक देहान्तरण जारी रहता है। जब कारण और प्रभाव में लीनता समाप्त हो जाती है, तब व्यक्ति देहान्तरण से नहीं गुजरता।

IV-57. सापेक्षिक स्तर (सोचने के) से सब कुछ जन्मा हुआ प्रतीत होता है, इसलिए शाश्वत नहीं है। निरपेक्ष स्तर (बोध के) से सब कुछ अजन्मा (आत्मा) है, इसलिए विनाश जैसा कुछ नहीं है।

IV-58. इस प्रकार जन्म लेने वाली आत्माएँ वास्तव में जन्म नहीं लेतीं। उनका जन्म माया के माध्यम से वस्तु के जन्म के समान होता है। और वह माया फिर अस्तित्वहीन है।

IV-59. जिस प्रकार एक जादुई बीज से उसी प्रकृति का अंकुर निकलता है जो न तो स्थायी है और न ही विनाशशील, उसी प्रकार वस्तुओं के संबंध में भी तर्क लागू होता है।

IV-60. सभी जन्महीन संस्थाओं के मामले में स्थायी और अस्थाई शब्दों का कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता। जहाँ शब्दों से वर्णन नहीं हो पाता, वहाँ किसी भी संस्था के बारे में विवेकपूर्ण ढंग से बात नहीं की जा सकती।

IV-61. जैसे स्वप्न में चेतना भ्रम के माध्यम से कंपन करती है, मानो स्वभाव से द्वैत हो, वैसे ही जाग्रत अवस्था में चेतना भ्रम के माध्यम से कंपन करती है, मानो द्वैत रूप से युक्त हो।

IV-62. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि अद्वैत चेतना ही स्वप्न में द्वैत के रूप में दिखाई देती है।इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी अद्वैत चेतना निस्संदेह द्वैत के रूप में दिखाई देती है।

IV-63. स्वप्न-भूमि में विचरण करते हुए स्वप्नदर्शी हमेशा अंडों से या नमी से उत्पन्न प्राणियों को दसों दिशाओं में विद्यमान देखता है।

IV-64. स्वप्नदर्शी की चेतना में बोधगम्य इन (प्राणियों) का उसकी चेतना से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार स्वप्नदर्शी की यह चेतना केवल स्वप्नदर्शी के लिए बोध का विषय मानी जाती है।

IV-65. जाग्रत मनुष्य, जाग्रत स्थानों में विचरण करते हुए, सदैव अण्डों से या नमी से उत्पन्न प्राणियों को दसों दिशाओं में विद्यमान देखता है।

IV-66. जाग्रत मनुष्य की चेतना में बोधगम्य इन (प्राणियों) का उसकी चेतना से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार जाग्रत मनुष्य की यह चेतना केवल जाग्रत मनुष्य के लिए बोध का विषय मानी जाती है।

IV-67. ये दोनों एक दूसरे के लिए बोधगम्य हैं। "क्या इसका अस्तित्व है?" (ऐसे प्रश्न के उत्तर में) "नहीं" कहा जाता है। ये दोनों ही वैध प्रमाण से रहित हैं, तथा प्रत्येक को केवल दूसरे के विचार से ही बोधगम्य किया जा सकता है।

IV-68. जिस प्रकार स्वप्न में देखा गया प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-69. जिस प्रकार जादू से उत्पन्न प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-70. जिस प्रकार मन्त्र-मंत्र और औषधि से उत्पन्न कृत्रिम प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-71. कोई भी प्राणी न तो जन्म लेता है और न ही उसका कोई स्रोत होता है। यह वह परम सत्य है, जहाँ कुछ भी उत्पन्न नहीं होता।

IV-72. विषय-वस्तु सम्बन्ध में निहित यह द्वैत चेतना के स्पंदन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पुनः, चेतना विषय-वस्तु रहित है और इसलिए उसे सदैव अनासक्त घोषित किया जाता है।

IV-73. जो कल्पित अनुभवजन्य दृष्टि होने के कारण विद्यमान है, वह वास्तव में विद्यमान नहीं है। फिर, जो अन्य विचारधाराओं द्वारा लाए गए अनुभवजन्य दृष्टिकोण के आधार पर मौजूद है, वह वास्तव में मौजूद नहीं है।

IV-74. चूँकि आत्मा, अन्य विचारधाराओं द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार, एक कल्पित अनुभवजन्य दृष्टिकोण से जन्म लेती है, इसलिए उस अनुभवजन्य दृष्टिकोण के अनुरूप यह कहा जाता है कि आत्मा अजन्मा है; किन्तु परम सत्य की दृष्टि से वह अजन्मा भी नहीं है।

IV-75. अवास्तविक वस्तुओं के प्रति आकर्षण मात्र है, यद्यपि द्वैत नहीं है। द्वैत के अभाव को अनुभव कर लेने पर कारण के अभाव में मनुष्य पुनः जन्म नहीं लेता।

IV-76. जब कोई कारण नहीं होता - श्रेष्ठ, निम्न या मध्यम - तब चेतना जन्म नहीं लेती। जब कारण ही नहीं है तो परिणाम कैसे हो सकता है?

IV-77. कारणों से रहित चेतना की अजन्मापन स्थिर और निरपेक्ष है, क्योंकि यह सब (अर्थात् द्वैत और जन्म) उसके लिए बोध का विषय था, जो (पहले भी) अजन्मा था।

IV-78. अकारण सत्य को अनुभव कर लेने पर तथा किसी भी अन्य कारण को प्राप्त करने से बच जाने पर मनुष्य उस निर्भयता की स्थिति को प्राप्त करता है जो शोक और मोह (काम) से रहित होती है।

IV-79. अवास्तविक वस्तुओं के प्रति मोह के कारण चेतना स्वयं को उन वस्तुओं में लगाती है जो समान रूप से अवास्तविक हैं। वस्तुओं के अस्तित्वहीन होने का बोध होने पर चेतना आसक्ति से मुक्त होकर उनसे विरत हो जाती है।

IV-80. तब निश्चलता की स्थिति आती है, जब चेतना आसक्ति से मुक्त हो जाती है और अवास्तविक वस्तुओं में स्वयं को नहीं लगाती। बुद्धिमानों के लिए यही दर्शन का विषय है। यही अभेद की (परम) स्थिति है, और यही अजन्मा तथा अद्वैत है।

IV-81. यह अजन्मा, निद्राहीन, स्वप्नहीन तथा स्वयं प्रकाशमान है। क्योंकि यह सत्ता (आत्मा) अपने स्वभाव से ही सदैव प्रकाशमान है।

IV-82. भगवान को किसी भी वस्तु से प्रेम होने के कारण वह अनायास ही आच्छादित हो जाता है, तथा हर बार कठोर प्रयास से अनावृत होता है।

IV-83. बचकानी कल्पना वाला मनुष्य आत्मा को निश्चित रूप से इस प्रकार ढक लेता है कि वह "है", "नहीं है", "है और नहीं है", अथवा "नहीं है", "नहीं है", तथा इस प्रकार के विचार रखता है कि वह परिवर्तनशील है और अपरिवर्तनशील है, परिवर्तनशील है और अपरिवर्तनशील है और अस्तित्वहीन है।

IV-84. ये चार वैकल्पिक विचार हैं, जिनके मोह के कारण भगवान सदैव छिपे रहते हैं। वे ही सर्वद्रष्टा हैं, जिनके द्वारा भगवान इनसे अछूते देखे जाते हैं।

IV-85. सम्पूर्ण सर्वज्ञता तथा आदि, मध्य और अन्त से रहित अद्वैत ब्रह्मत्व को प्राप्त करके क्या कोई उसके बाद कुछ चाहता है?

IV-86. यह ब्राह्मणों की विनम्रता है; इसे उनका स्वाभाविक संयम कहा गया है। चूँकि स्वभाव से ही उन्होंने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, इसलिए यही उनका संयम है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष शांति।

IV-87. वह द्वैत जो विषय और (उसकी) अनुभूति दोनों के साथ सह-अस्तित्व में है, उसे सामान्य (जागृत) अवस्था कहते हैं। वह अवस्था जिसमें विषय के (वास्तविक उपस्थिति) बिना केवल अनुभूति होती है, उसे सामान्य (स्वप्न) अवस्था कहते हैं।

IV-88. विषय से रहित और अनुभूति से रहित अवस्था असाधारण मानी जाती है। इस प्रकार बुद्धिमानों ने ज्ञान, विषय और ज्ञेय को सदा के लिए घोषित कर दिया है।

IV-89. (तीनों विषयों का) ज्ञान प्राप्त करने और क्रमशः विषयों को जानने पर, यहाँ महान बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए, सदा के लिए सर्वज्ञता की स्थिति होती है।

IV-90. जो त्यागने योग्य हैं, जो प्राप्त करने योग्य हैं, जो ग्रहण करने योग्य हैं और जो निष्प्रभावी बनाने योग्य हैं, उन्हें पहले जानना चाहिए।इनमें से, जो प्राप्त करने योग्य है, उसे छोड़कर, ये तीनों अज्ञान से उत्पन्न कल्पना मात्र माने जाते हैं।

IV-91. यह जानना चाहिए कि सभी आत्माएँ स्वभाव से आकाश के समान और शाश्वत हैं। उनमें कहीं भी, लेशमात्र भी, अनेकता नहीं है।

IV-92. सभी आत्माएँ स्वभाव से ही प्रारम्भ से ही प्रकाशित हैं और उनके लक्षण भली-भाँति निश्चित हैं। जो इस प्रकार ज्ञानार्जन की आवश्यकता से मुक्त हो जाता है, वह अमरत्व के योग्य माना जाता है।

IV-93. सभी आत्माएँ प्रारम्भ से ही शान्त, अजन्मा और स्वभाव से ही सर्वथा पृथक, समान और अविभेद हैं और चूँकि सत्त्व इस प्रकार अजन्मा, अद्‌वितीय और शुद्‌ध है, (इसलिए आत्मा में शान्तता लाने की कोई आवश्यकता नहीं है)।

IV-94. जो लोग सदैव द्‌वैत के मार्ग पर चलते हैं, उनके लिए कभी शुद्‌धि नहीं हो सकती। वे भेद के मार्ग पर चलते हैं और अनेकता की बात करते हैं और इसलिए वे नीच माने जाते हैं।

IV-95. जो लोग अजन्मा और सदा एकरस रहने वाले तत्त्व के विषय में दृढ़ निश्चय रखते हैं, वे इस संसार में महान ज्ञान से युक्त हैं। परंतु सामान्य मनुष्य उसे समझ नहीं सकता।

IV-96. अजन्मा आत्मा में विद्‌यमान ज्ञान अजन्मा और असंबंधित माना जाता है। क्योंकि उस ज्ञान का अन्य वस्तुओं से कोई संबंध नहीं है, इसलिए उसे अनासक्त कहा गया है।

IV-97. यदि किसी वस्तु का जन्म हो, चाहे वह कितनी ही तुच्छ क्यों न हो, तो अज्ञानी मनुष्य के लिए अनासक्ति कभी संभव नहीं होती। फिर उसके लिए आवरण के नाश की बात ही क्या करें?

IV-98. सभी आत्माएँ आवरण से रहित हैं और स्वभाव से ही शुद्‌ध हैं। वे प्रारंभ से ही प्रकाशित और मुक्त हैं। इसलिए उन्हें स्वामी कहा गया है, क्योंकि वे जानने में समर्थ हैं।

IV-99. जो ज्ञानवान और सर्वव्यापी है, उसका ज्ञान वस्तुओं में प्रवेश नहीं करता। और इसलिए आत्मा भी वस्तुओं में प्रवेश नहीं करती। इस तथ्य का उल्लेख बुद्‌ध ने नहीं किया।

IV-100. उस अद्वैत अवस्था को अनुभव करके, जो अनुभव करने में कठिन है, गहन, अजन्मा, एकरूप और शांत है, हम उसे यथाशक्ति नमस्कार करते हैं।

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें; हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों। महान यश वाले इंद्र हम पर कृपा करें; सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें; दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों; बृहस्पति हमें सभी प्रकार की समृद्धि प्रदान करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में शामिल माण्डूक्योपनिषद् समाप्त होता है।

008 - तैत्तिरीय उपनिषद

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो! मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

शिक्षा वल्ली

I-i-1: मित्र हम पर आनंदित हों। वरुण हम पर आनंदित हों। आर्यमन हम पर आनंदित हों। इंद्र और बृहस्पति हम पर आनंदित हों। लंबी चाल वाले विष्णु हम पर आनंदित हों।

ब्रह्म को नमस्कार। हे वायु, आपको नमस्कार। आप वास्तव में प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। केवल आपको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। मैं आपको धर्म कहूंगा।

मैं तुम्हें सत्य कहूंगा। वह मेरी रक्षा करें। वह गुरु की रक्षा करें। वह मेरी रक्षा करें। वह गुरु की रक्षा करें। ॐ, शांति, शांति, शांति!

I-ii-1: हम उच्चारण के विज्ञान की बात करेंगे। (सीखने वाली चीजें हैं) वर्णमाला, उच्चारण, माप, जोर, एकरूपता, समीपता। इस प्रकार उच्चारण पर अध्याय कहा गया है।

I-iii-1: हम दोनों एक साथ प्रसिद्धि प्राप्त करें। हम दोनों को आध्यात्मिक श्रेष्ठता प्रदान की जाए। अब इसलिए, हम पाँच श्रेणियों के माध्यम से समीपता पर ध्यान बताएंगे - दुनिया से संबंधित, चमकदार चीजें, ज्ञान, संतान और शरीर से संबंधित। इन्हें वे महान समीपता कहते हैं। अब, जहाँ तक दुनिया के ध्यान का संबंध है। पृथ्वी पहला अक्षर है। स्वर्ग अंतिम अक्षर है। आकाश मिलन स्थल है।

I-iii-2-4: वायु कड़ी है। यह दुनिया के संबंध में ध्यान है। इसके बाद चमकती हुई चीज़ों के बारे में ध्यान आता है। अग्नि पहला अक्षर है। सूर्य अंतिम अक्षर है। जल रैली का बिंदु है। बिजली कड़ी है। यह चमकती हुई चीज़ों के बारे में ध्यान है। इसके बाद ज्ञान के बारे में ध्यान आता है। शिक्षक पहला अक्षर है। छात्र अंतिम अक्षर है ज्ञान मिलन-स्थल है। निर्देश कड़ी है। यह ज्ञान के संबंध में ध्यान है। फिर संतान के संबंध में ध्यान है। माँ पहला अक्षर है। पिता अंतिम अक्षर है। संतान केंद्र बिंदु है। पीढ़ी कड़ी है। यह संतान के संबंध में ध्यान है। फिर (व्यक्तिगत) शरीर के संबंध में ध्यान है। निचला जबड़ा पहला अक्षर है।

ऊपरी जबड़ा अंतिम अक्षर है। वाणी मिलन-स्थल है। जीभ कड़ी है। यह (व्यक्तिगत) शरीर के संबंध में ध्यान है। ये महान विरोधाभास हैं। जो कोई भी इन महान विरोधाभासों पर ध्यान करता है, जैसा कि उन्हें समझाया गया है, वह संतान, जानवरों, पवित्रता की महिमा, खाद्य पदार्थ और स्वर्गीय दुनिया के साथ जुड़ जाता है।

I-iv-1-2: वेदों में जो ओम सबसे श्रेष्ठ है, जो सभी लोकों में व्याप्त है, और जो अमर वेदों से उनका सार रूप में प्रकट हुआ है, वह (ओम अर्थात् इंद्र), सर्वोच्च भगवान, मुझे बुद्धि से संतुष्ट करें। हे प्रभु, मैं अमरता का पात्र बनूं। मेरा शरीर स्वस्थ हो; मेरी जीभ अत्यंत मधुर हो; मैं कानों से बहुत कुछ सुनूं। आप ब्रह्म के आवरण हैं: आप (सांसारिक) ज्ञान से आच्छादित हैं। मैंने जो सुना है उसकी रक्षा करें। फिर मुझे जो उसकी (यानी समृद्धि की) अपनी है, वह समृद्धि प्रदान करें जो मेरे लिए हमेशा के लिए कपड़े,

मवेशी, भोजन और पेय लाती है, बढ़ती है और जल्दी से पूरा करती है, और जो रोएँदार और अन्य जानवरों से जुड़ी है। स्वाहा। ब्रह्मचारी (यानी छात्र) सभी तरफ से मेरे पास आएं। स्वाहा।

ब्रह्मचारी विभिन्न तरीकों से मेरे पास आएं। स्वाहा। ब्रह्मचारी मेरे पास उचित मार्ग से आएं। स्वाहा। ब्रह्मचारियों में शारीरिक संयम हो। स्वाहा। ब्रह्मचारियों में मानसिक संयम हो। स्वाहा।

I-iv-3: मैं लोगों के बीच प्रसिद्ध हो जाऊं। स्वाहा। मैं धनवानों के बीच प्रशंसनीय बनूं। स्वाहा। हे आराध्य, आप जैसे हैं, वैसे ही मैं आप में प्रवेश करूं। स्वाहा। हे पूज्य, आप जैसे हैं, वैसे ही मुझ में प्रवेश करें। स्वाहा। हे आराध्य, आप जो बहुत विविधतापूर्ण हैं, मैं आप में अपने पापों का शुद्धिकरण करूं। स्वाहा। जैसे जल ढलान से नीचे बहता है, जैसे महीने एक वर्ष में बदल जाते हैं, वैसे ही हे प्रभु, छात्र सभी दिशाओं से मेरे पास आएं। स्वाहा। आप विश्रामगृह की तरह हैं, इसलिए आप मेरे लिए प्रकट होते हैं, आप मेरे पास हर तरह से पहुंचते हैं।

I-v-1-2: भूः, भुवः, सुवः - ये तीन, वास्तव में, व्याहृतियाँ हैं। उनमें से महाकामस्य ने एक चौथे को जाना - जिसका नाम महा है। यह ब्रह्म है; यह आत्मा है। अन्य देवता अंग हैं। भूः वास्तव में यह जगत है। भुवः मध्यवर्ती स्थान है। सुवः दूसरा जगत है। महा सूर्य है; सूर्य के द्वारा ही समस्त लोक फलते-फूलते हैं। भूः वास्तव में अग्नि है। भुवः वायु है। सुवः सूर्य है। महा चन्द्रमा है; चन्द्रमा के द्वारा ही समस्त प्रकाशमान प्राणी फलते-फूलते हैं। भूः वास्तव में ऋग्वेद है। भुवः सामवेद है। सुवः यजुर्वेद है।

प्रथम-पंचम-3: महा ब्रह्म (अर्थात् ॐ) है, क्योंकि ब्रह्म (ॐ) से ही समस्त वेद पोषित होते हैं। भूः वास्तव में प्राण है; भुवः अपान है; सुवः व्यान है; महा अन्न है; क्योंकि अन्न से ही समस्त प्राणशक्तियाँ पोषित होती हैं। ये चार हैं, ये चार हैं। व्याहृतियाँ चार-चार के चार समूहों में विभक्त हैं। जो इन्हें जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। सभी देवता उसके लिए उपहार लेकर आते हैं।

1-6-1-2: हृदय में जो स्थान है, उसमें यह पुरुष है, जो ज्ञान के द्वारा साक्षात् होने योग्य है, जो अमर और तेजोमय है। यह जो तालुओं के बीच में थन की तरह लटकता है, उसमें से ब्रह्म का मार्ग बहता है और जहाँ बाल अलग होते हैं, वहाँ पहुँचकर खोपड़ियों को अलग करके निकल जाता है। (उस मार्ग से निकलकर मनुष्य) अग्नि में व्याहृति भूः के रूप में स्थित

होता है; वह वायु में व्याहृति भुवः के रूप में स्थित होता है; सूर्य में व्याहृति सुवः के रूप में स्थित होता है; ब्रह्म में व्याहृति महाः के रूप में स्थित होता है। वह स्वयं स्वतंत्र प्रभुता प्राप्त करता है; वह मन का स्वामी बन जाता है; वह वाणी का अधिपति, नेत्रों का अधिपति, कानों का अधिपति, ज्ञान का अधिपति बन जाता है। इन सबसे ऊपर वह ब्रह्म बन जाता है जो आकाश में समाया हुआ है, जो स्थूल और सूक्ष्म से पहचाना जाता है और जिसका वास्तविक स्वरूप सत्य है, जो जीवन में प्रकट होता है, जिसके अधीन मन आनंद का स्रोत है, जो शांति से समृद्ध है और अमर है। इस प्रकार, हे प्रचिनायोग, तुम आराधना करो।

I-vii-1: पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, प्राथमिक तिमाही और मध्यवर्ती तिमाही; अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्रमा और तारे; जल, जड़ी-बूटियाँ, वृक्ष, आकाश और विराट - ये प्राकृतिक कारकों से संबंधित हैं। फिर व्यक्तिगत कारकों का पालन करें: प्राण, व्यान, अपान, उदान और समान; आंख, कान, मन, वाणी और स्पर्श की इंद्रिय; त्वचा, मांस, मांसपेशियां, अस्थि और मज्जा। इस प्रकार इनकी कल्पना करके, ऋषि ने कहा, "यह सब पाँच कारकों से बना है; व्यक्ति (बाहरी) पाँच गुना कारकों को (व्यक्तिगत) पाँच गुना कारकों से भरता है।

I-viii-1: ॐ ब्रह्म है। ॐ यह सब है। ॐ अनुकरण (यानी सहमति) के शब्द के रूप में प्रसिद्ध है। इसके अलावा, वे उन्हें (देवताओं को) "ॐ, (देवताओं को) सुनाओ" शब्दों के साथ (देवताओं को) सुनाते हैं। वे ॐ से समास गाना शुरू करते हैं। 'ॐ सोम' शब्द का उच्चारण करते हुए वे शास्त्रों का पाठ करते हैं। ब्रह्मा 'ॐ' शब्द से स्वीकृति देते हैं। अग्निहोत्र यज्ञ करने की अनुमति 'ॐ' शब्द से देते हैं। ब्राह्मण जब वेदों का पाठ करने वाला होता है तो 'मैं ब्रह्म को प्राप्त करूँगा' इस भावना से 'ॐ' का उच्चारण करता है। वह वास्तव में ब्रह्म को प्राप्त करता है।

1-9-1: धर्म, विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। सत्य, विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। तप, विद्या और शिक्षा (का सहारा लेना है)। बाह्य इन्द्रियों का संयम तथा विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। अन्तः इन्द्रियों का संयम तथा विद्या और शिक्षा (का सहारा लेना है)। अग्नि (को जलाना है) तथा विद्या और शिक्षा (का पालन करना है)। अग्निहोत्र (करना है) तथा विद्या और शिक्षा (करना है)। अतिथियों का सत्कार करना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। सामाजिक अच्छा आचरण अपनाना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का

अभ्यास करना चाहिए। संतान उत्पन्न करनी चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए।

संतानोत्पत्ति करनी चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। पौत्र का पालन करना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। सत्य ही सब कुछ है - ऐसा रथीतर वंश के सत्यवचन का विचार है। तप ही सब कुछ है - ऐसा पुरुषिष्टी के पुत्र तपोनित्य का विचार है। विद्या और शिक्षा ही सब कुछ है - ऐसा मुद्गल पुत्र नक का विचार है। यही तपस्या है; यही तपस्या है। मैं इस संसार के वृक्ष को शक्ति प्रदान करने वाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत की चोटी के समान ऊँची है। मेरा मूल शुद्ध (ब्रह्म) है। मैं सूर्य में स्थित उस शुद्ध सत्य (आत्मा) के समान हूँ। मैं तेजोमय धन हूँ। मैं उत्तम बुद्धि से युक्त हूँ, अमर और अविनाशी हूँ। इस प्रकार त्रिशंकु ने आत्मज्ञान प्राप्ति के पश्चात कहा था।

11-11: वेदों की शिक्षा देने के पश्चात् गुरु शिष्यों को यह उपदेश देते हैं: "सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। अध्ययन में कोई भूल मत करो। गुरु को इच्छित धन अर्पित करने के पश्चात् वंश का नाश मत करो। सत्य के विषय में कोई असावधानी नहीं होनी चाहिए। धर्माचरण से कोई विमुखता नहीं होनी चाहिए। आत्मरक्षा के विषय में कोई भूल नहीं होनी चाहिए। शुभ कर्मों की उपेक्षा मत करो। अध्ययन और शिक्षण में प्रमाद मत करो।

11-2-4: देवताओं और पितरों के प्रति कर्तव्यों में कोई भूल नहीं होनी चाहिए। तुम्हारी माता तुम्हारे लिए देवी हो। तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए देवता हों। तुम्हारा गुरु तुम्हारे लिए देवता हो। तुम्हारा अतिथि तुम्हारे लिए देवता हो। जो काम निन्दनीय नहीं हैं, उन्हें करना चाहिए, पर दूसरे काम नहीं करने चाहिए। हमारे ये जो प्रशंसनीय कार्य हैं, उन्हें तुम्हें करना चाहिए, पर दूसरे नहीं करने चाहिए।

तुम उन ब्राह्मणों को आसन देकर उनकी थकान दूर करो, जो हम में से अधिक प्रशंसनीय हैं। अर्पण आदर के साथ होना चाहिए, अर्पण अनादर के साथ नहीं होना चाहिए। अर्पण प्रचुर मात्रा में होना चाहिए। अर्पण विनय के साथ होना चाहिए। अर्पण भय के साथ होना चाहिए। अर्पण सहानुभूति के साथ होना चाहिए। फिर, यदि तुम्हें कर्तव्यों या रीति-रिवाजों के संबंध में कोई संदेह हो, तो तुम्हें उन मामलों में ब्राह्मणों के समान आचरण करना चाहिए, जो वहाँ उपस्थित हो सकते हैं और जो योग्य विचारक हैं, जो उन कर्तव्यों और रीति-रिवाजों में निपुण हैं, जो दूसरों के द्वारा निर्देशित नहीं होते, जो क्रूर नहीं हैं और जो पुण्य के इच्छुक हैं।

फिर, जहाँ तक आरोपी लोगों का सवाल है, आपको उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा ब्राह्मण करते हैं, जो वहाँ मौजूद हो सकते हैं और जो योग्य विचारक हैं, जो उन कामों में निपुण हैं।

कर्तव्य और रीति-रिवाज, जो दूसरों के द्वारा निर्देशित नहीं हैं, जो क्रूर नहीं हैं, जो पुण्य के इच्छुक हैं। यही आदेश है। यही निर्देश है। यही वेदों का रहस्य है। यही ईश्वरीय आदेश है। इसी प्रकार ध्यान करना चाहिए। इसी प्रकार इसका ध्यान करना चाहिए।

I-xii-1: मित्र हम पर आनंदित हों। वरुण हम पर आनंदित हों। आर्यमन हम पर आनंदित हों। इंद्र और बृहस्पति हम पर आनंदित हों। लंबे कदमों वाले विष्णु हम पर आनंदित हों। ब्रह्म को नमस्कार। हे वायु, आपको नमस्कार है। आप वास्तव में प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। केवल आपको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। मैं आपको धर्म कहूंगा। मैं आपको सत्य कहूंगा। वे मेरी रक्षा करें। वे गुरु की रक्षा करें। वे मेरी रक्षा करें। वे गुरु की रक्षा करें। ॐ, शांति, शांति, शांति! ब्रह्मानंद वल्ली

II-i: वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें। वह हम दोनों का पोषण साथ-साथ करे। हम दोनों मिलकर शक्ति प्राप्त करें। हमारा अध्ययन उत्कृष्ट हो। हम एक-दूसरे पर दोषारोपण न करें। ॐ! शांति! शांति! शांति!

II-i-1: ब्रह्म को जानने वाला सर्वोच्च को प्राप्त करता है। इसी तथ्य को कहने वाला एक श्लोक है: "ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनंत है। जो व्यक्ति उस ब्रह्म को बुद्धि में विद्यमान, हृदय में परम स्थान में स्थित जानता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ एकरूप होकर सभी इच्छित वस्तुओं का एक साथ आनंद लेता है। उस ब्रह्म से, जो आत्मा है, आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु उत्पन्न हुई।

वायु से अग्नि उत्पन्न हुई। अग्नि से जल उत्पन्न हुआ। जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वी से जड़ी-बूटियाँ उत्पन्न हुईं। जड़ी-बूटियों से अन्न उत्पन्न हुआ। अन्न से मनुष्य उत्पन्न हुआ। वह मनुष्य, जैसा वह है, अन्न के सार का उत्पाद है। उसी में से यह सिर है, यह दक्षिण भाग है; यह उत्तर भाग है; यह आत्मा है; यह स्थिर करने वाली पूँछ है।

इसी तथ्य से संबंधित एक श्लोक यहाँ है:

II-ii-1: पृथ्वी पर विश्राम करने वाले सभी प्राणी वस्तुतः अन्न से ही उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, वे अन्न पर ही जीवित रहते हैं और अंत में अन्न में ही लीन हो जाते हैं। अन्न वस्तुतः सभी प्राणियों से पहले उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसे सभी के लिए औषधि कहा गया है, जो लोग अन्न को ब्रह्म के रूप में पूजते हैं, वे सभी अन्न प्राप्त करते हैं। अन्न वस्तुतः सभी प्राणियों से पहले उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसे सभी के लिए औषधि कहा गया है। प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर वे अन्न से बढ़ते हैं। चूँकि इसे खाया जाता है और यह प्राणियों को खाता है, इसलिए इसे अन्न कहा जाता है।

जैसा कि पहले कहा गया है, अन्न के सार से बनी इस आत्मा की तुलना में, एक और आंतरिक आत्मा है जो वायु से बनी है। उसी से यह भरी हुई है। यह आत्मा भी मनुष्य रूप वाली है। इसका मनुष्य रूप उस (पहले वाले) के मनुष्य रूप का ही रूप है। इसमें प्राण सिर है, व्यान दक्षिण भाग है, अपान उत्तर भाग है, आकाश आत्मा है, पृथ्वी स्थिर करने वाली पूँछ है। उससे संबंधित यह (निम्न) श्लोक है:

II-III-1: इन्द्रियाँ मुख में प्राण का अनुसरण करके कार्य करती हैं; वहाँ स्थित सभी मनुष्य और पशु इसी प्रकार कार्य करते हैं; चूँकि प्राण पर ही सभी प्राणियों का जीवन निर्भर है, इसलिए इसे सभी का जीवन कहा जाता है; जो लोग प्राण को ब्रह्म के रूप में पूजते हैं, वे पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं; चूँकि प्राण पर ही सभी का जीवन निर्भर है, इसलिए इसे सभी का जीवन कहा जाता है। पूर्ववर्ती (भौतिक) में से यह वास्तव में देहधारी आत्मा है। इस प्राणमय शरीर की तुलना में मन से निर्मित एक और आंतरिक आत्मा है। उसी से यह आत्मा भरी हुई है।

मन से निर्मित वह आत्मा भी मानव आकार की है। मनस शरीर का मानव आकार प्राण शरीर के मानव आकार का ही अनुसरण करता है। मनस-शरीर में यजुर्-मंत्र सिर हैं। ऋग्-मंत्र दाहिना भाग हैं, साम-मंत्र बायाँ भाग हैं, ब्राहमण भाग आत्मा (धड़) है, अथर्वंगीरस द्वारा देखे गए मंत्र स्थिर करने वाली पूँछ हैं। इस संबंध में एक श्लोक है:

II-IV-1: यदि कोई उस आनंद को जानता है जो ब्रह्म है, तो उसे कभी भी भय नहीं लगता है, जिसे प्राप्त न करने पर (ब्रह्म, मन द्वारा वातानुकूलित), वाणी मन के साथ पीछे लौट जाती है। उस पूर्ववर्ती (प्राण) में से यह (मानसिक) वास्तव में देहधारी आत्मा है। इसकी तुलना में

मानसिक शरीर के अतिरिक्त एक और आंतरिक आत्मा है, जो सत्य ज्ञान से निर्मित है। उसी से यह आत्मा परिपूर्ण है। जैसा कि पूर्वोक्त कहा गया है, इसका आकार वास्तव में मनुष्य जैसा है।

यह पहले वाले के मानव आकार के अनुसार ही मानव रूप में बना है। उसका श्रद्धा ही सिर है, धर्म ही दाहिना भाग है, सत्य ही बायाँ भाग है, एकाग्रता ही आत्मा है, महात् नामक तत्त्व ही स्थिर करने वाली पूँछ है। इस विषय में यहाँ एक श्लोक है: ज्ञान से ही यज्ञ की सिद्धि होती है, तथा वह कर्तव्यों का पालन भी करता है। सभी देवता ज्ञान से युक्त होकर प्रथम ब्रह्म का ध्यान करते हैं।

यदि कोई ज्ञान-ब्रह्म को जान ले, तथा उसमें कोई भूल न करे, तो वह शरीर में सभी पापों का परित्याग कर देता है, तथा सभी सुखों का पूर्ण आनंद उठाता है। उस पहले वाले (मानसिक) ब्रह्म का यह (ज्ञानात्मक) स्वरूप वास्तव में देहधारी आत्मा है। इस ज्ञानात्मक शरीर की अपेक्षा आनन्द से निर्मित एक और अन्तरात्मा है। उसी से यह पूर्ण है। जैसा कि पूर्वोक्त है, इसका भी वास्तव में मनुष्य रूप है। यह पहले वाले के मनुष्य रूप के अनुसार ही मनुष्य रूप में बना है।

आनन्द ही उसका सिर है, भोग दाहिना भाग है, उल्लास बायाँ भाग है; आनन्द ही आत्मा (धड़) है। ब्रह्म ही स्थिर करने वाली पूँछ है। इसी के सम्बन्ध में यहाँ एक श्लोक है:

II-vi-1: यदि कोई ब्रह्म को असत् जानता है, तो वह स्वयं असत् हो जाता है। यदि कोई जानता है कि ब्रह्म है, तो वे उसे उसी (ज्ञान) के कारण विद्यमान मानते हैं। उस पहले वाले (आनन्दमय) का यह देहधारी आत्मा है। अतः आगे ये प्रश्न आते हैं: क्या कोई अज्ञानी मनुष्य यहाँ से विदा होकर परलोक में जाता है (या नहीं जाता)? इसके अलावा, क्या कोई ज्ञानी पुरुष यहाँ से विदा होकर परलोक में पहुँचता है (या नहीं)? उसने (आत्मा ने) चाहा, 'मैं अनेक हो जाऊँ, मैं जन्म लूँ। उसने विचार किया। विचार करके उसने यह सब रचा जो विद्यमान है।

वह (ब्रह्म) रचकर उसी में प्रविष्ट हो गया। और वहाँ प्रविष्ट होकर वह सगुण और निराकार, परिभाषित और अपरिभाषित, धारण करने वाला और अधारण करने वाला, चेतन और अचेतन, सत्य और असत्य बन गया। जो कुछ है वह सब सत्य बन गया। उस ब्रह्म को वे सत्य कहते हैं। इसके विषय में यह श्लोक आता है:

II-vii-1: आरंभ में यह सब अव्यक्त (ब्रहम) था। उससे व्यक्त उत्पन्न हुआ। उस ब्रहम ने स्वयं ही स्वयं को रचा। इसलिए उसे स्वयं रचयिता कहते हैं। जिसे स्वयं रचयिता कहते हैं, वही वास्तव में आनंद का स्रोत है; क्योंकि उस आनन्द के स्रोत के सम्पर्क में आने से ही मनुष्य सुखी हो जाता है। यदि यह आनन्द परम स्थान (हृदय के भीतर) में न हो, तो कौन श्वास लेगा और कौन छोड़ेगा। यह आनन्द ही लोगों को सजीव करता है।

जब भी साधक इस अगोचर, अशरीरी, अवर्णनीय और आधारहीन ब्रहम में निर्भय होकर स्थित हो जाता है, तो वह निर्भयता की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। जब भी साधक इसमें जरा-सा भी अन्तर उत्पन्न करता है, तो वह भय से ग्रसित हो जाता है। फिर भी, वही ब्रहम उस तथाकथित विद्वान व्यक्ति के लिए भय का कारण है, जिसमें एकात्मक दृष्टिकोण का अभाव है। इसका उदाहरण यह श्लोक है:

II-viii-1-4: उसके भय से वायु चलती है। भय से ही सूर्य उदय होता है। उसके भय से ही अग्नि, इन्द्र और मृत्यु उत्पन्न होते हैं। तो, यह उस आनंद का मूल्यांकन है: मान लीजिए कि एक युवा व्यक्ति है - जीवन के चरम पर, अच्छा, विद्वान, सबसे तेज, सबसे मजबूत और सबसे ऊर्जावान। मान लीजिए कि उसके लिए यह धरती धन से भरी हुई है। यह मानवीय आनंद की एक इकाई होगी। यदि यह मानवीय आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह मनुष्य-गंधर्वों का एक आनंद है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है।

यदि मनुष्य-गंधर्वों का यह आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह दिव्य-गंधर्वों का एक आनंद है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है। यदि दिव्य-गंधर्वों का आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह उन पितरों का एक आनंद है जिनका संसार शाश्वत है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है।

यदि शाश्वत संसार में रहने वाले पितरों का आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह उन पितरों का एक आनंद है जिनका संसार शाश्वत है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है स्वर्ग में देवताओं के रूप में जन्म लेने वालों का आनंद और इच्छाओं से अछूते वेदों के अनुयायी का भी आनंद।

यदि स्वर्ग में देवताओं के रूप में जन्म लेने वालों का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह कर्म-देवों नामक देवताओं का एक आनंद है, जो वैदिक अनुष्ठानों के माध्यम से देवताओं तक पहुँचते हैं, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है।

यदि कर्म-देवों नामक देवताओं का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह देवताओं का एक आनंद है, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है। यदि देवताओं का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह इंद्र का एक आनंद है, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है। यदि इंद्र का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह बृहस्पति का एक आनंद है और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है।

बृहस्पति का आनन्द यदि सौ गुना बढ़ जाये तो वह विराट का एक आनन्द है, और वेदों के अनुयायी का भी जो कामनाओं से रहित है। विराट का आनन्द यदि सौ गुना बढ़ जाये तो वह हिरण्यगर्भ का एक आनन्द है, और वेदों के अनुयायी का भी जो कामनाओं से रहित है।

II-viii-5: वह जो यहाँ मनुष्य शरीर में है, और वह जो वहाँ सूर्य में है, वे एक हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह इस संसार से विरक्त होकर अन्नमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, प्राणमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, बुद्धिमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, आनन्दमय इस आत्मा को प्राप्त करता है। इसकी अभिव्यक्ति में यह श्लोक आता है:

II-ix-1: ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त करने के बाद प्रबुद्ध व्यक्ति किसी भी चीज़ से नहीं डरता, जिसे प्राप्त न करने पर मन के साथ-साथ वाणी भी लौट जाती है। उसे यह पश्चाताप नहीं सताता कि मैंने अच्छे कर्म क्यों नहीं किए और बुरे कर्म क्यों किए? जो इस प्रकार ज्ञानी हो जाता है, वह उस आत्मा को बल देता है, जो इन दोनों के समान है; क्योंकि जो इस प्रकार जानता है, वही उस आत्मा को बल दे सकता है, जो वास्तव में ये दोनों है। यही गुप्त शिक्षा है।

भृगु वल्ली तृतीय-1: वरुण के सुप्रसिद्ध पुत्र भृगु अपने पिता वरुण के पास यह (औपचारिक) निवेदन लेकर गए कि हे पूज्यवर, मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। उनसे उन्होंने (वरुण ने) यह कहा: "अन्न, प्राण, नेत्र, कान, मन, वाणी - (ये ब्रह्म के ज्ञान के सहायक हैं)"। उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "उसको जानने की लालसा करो, जिससे ये सभी प्राणी जन्म लेते हैं, जिससे

जन्म लेने के बाद जीवित रहते हैं, जिसकी ओर वे गति करते हैं और जिसमें विलीन हो जाते हैं। वही ब्रह्म है।" उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास करके,

III-ii-1: उन्होंने अन्न (अर्थात विराट, स्थूल ब्रह्मांडीय व्यक्ति) को ब्रह्म के रूप में जाना। क्योंकि यह वास्तव में अन्न से ही है कि ये सभी प्राणी जन्म लेते हैं, अन्न पर ही जन्म लेने के बाद निर्वाह करते हैं और अन्न की ओर बढ़ते हैं और अन्न में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर, वे फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गए। "हे, पूज्य महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाइए"। उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "एकाग्रता के माध्यम से ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ब्रह्म है"। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास करके,

III-iii-1: उन्होंने प्राण शक्ति को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि प्राण शक्ति से ही वास्तव में ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; अस्तित्व में आने के बाद, वे प्राण शक्ति के माध्यम से जीवित रहते हैं; वे प्राण शक्ति की ओर बढ़ते हैं और उसमें प्रवेश करते हैं, ऐसा जानकर, वे फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गए। "हे, पूज्य महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाइए"। उससे उसने (वरुण ने) कहा: “एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है”।

उसने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करने के बाद, उसने मन को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि मन से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद, वे मन द्वारा पोषित होते हैं; और वे मन की ओर बढ़ते हैं और मन में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर, वह फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गया। “हे, श्रद्धेय महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाएँ”। उससे उसने (वरुण ने) कहा: “एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है”। उसने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करने के बाद।

तृतीय पंचम-१: उन्होंने ज्ञान को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि ज्ञान से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद वे ज्ञान से पोषित होते हैं; वे ज्ञान की ओर बढ़ते हैं और ज्ञान में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर वे पुनः अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध लेकर गए। "हे पूज्यवर, मुझे ब्रह्म सिखाइए"।

उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की लालसा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है"। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करके उन्होंने आनंद को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि आनंद से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद वे आनंद से पोषित होते हैं; वे आनंद की ओर बढ़ते हैं और आनंद में विलीन हो जाते हैं।

भृगु द्वारा अनुभव किया गया और वरुण द्वारा प्रदान किया गया यह ज्ञान (अन्न-स्व से प्रारंभ होकर) हृदय गुहा में स्थित परम (आनंद) में समाप्त होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह दृढ़ता से स्थित हो जाता है; वह अन्न का स्वामी और अन्न खानेवाला बन जाता है और वह संतति, पशुधन और पवित्रता की चमक में महान और यश में महान हो जाता है।

III-vii-1: उसका व्रत है कि वह अन्न का तिरस्कार न करे। प्राण ही अन्न है और शरीर भक्षक है; क्योंकि प्राण शरीर में स्थित है। (फिर से, शरीर अन्न है और प्राण ही भक्षक है, क्योंकि) शरीर प्राण पर स्थित है। इस प्रकार (शरीर और प्राण दोनों ही अन्न हैं; और) एक अन्न दूसरे में स्थित है। जो इस प्रकार जानता है कि एक अन्न दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ हो जाता है। वह अन्न का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतति, पशुधन और पवित्रता की चमक में महान और यश में महान हो जाता है।

III-viii-1: उसका व्रत है कि वह अन्न का त्याग न करे। जल ही अन्न है; अग्नि ही भक्षक है; क्योंकि जल अग्नि पर स्थित है। (अग्नि भोजन है और जल भक्षक है, क्योंकि) अग्नि जल में निवास करती है। इस प्रकार एक भोजन दूसरे भोजन में स्थित होता है। जो इस प्रकार जानता है कि एक भोजन दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ रूप से स्थापित हो जाता है। वह भोजन का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतान, पशुधन, पवित्रता की चमक और महिमा में महान हो जाता है।

III-ix-1: उसका व्रत है कि वह भोजन को प्रचुर मात्रा में बनाए। पृथ्वी भोजन है; अंतरिक्ष भक्षक है; क्योंकि पृथ्वी अंतरिक्ष में स्थित है। (अंतरिक्ष भोजन है; और पृथ्वी भक्षक है, क्योंकि) अंतरिक्ष पृथ्वी पर स्थित है। इस प्रकार एक भोजन दूसरे भोजन में स्थित होता है। जो इस प्रकार जानता है कि एक भोजन दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ रूप से स्थापित हो जाता है। वह भोजन का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतान, पशुधन, पवित्रता की चमक और महिमा में महान हो जाता है।

III-x-1-2: उसका व्रत है कि वह किसी को भी आश्रय के लिए आने से मना नहीं करेगा। इसलिए व्यक्ति को किसी भी तरह से प्रचुर मात्रा में भोजन इकट्ठा करना चाहिए। (और भोजन इकट्ठा करना चाहिए क्योंकि) वे कहते हैं, "उसके लिए भोजन तैयार है"। क्योंकि वह अपनी छोटी उम्र में पका हुआ भोजन सम्मान के साथ अर्पित करता है, इसलिए भोजन छोटी उम्र में सम्मान के साथ उसके हिस्से में आता है।

क्योंकि वह अपनी मध्यम आयु में मध्यम शिष्टाचार के साथ भोजन अर्पित करता है, इसलिए भोजन उसकी मध्यम आयु में मध्यम सम्मान के साथ उसके हिस्से में आता है। क्योंकि वह अपनी बुढ़ापे में अल्प सम्मान के साथ भोजन अर्पित करता है, इसलिए भोजन बुढ़ापे में अल्प विचार के साथ उसके हिस्से में आता है। जो इस प्रकार जानता है (उक्त परिणाम प्राप्त होता है)। (ब्रह्म का ध्यान) वाणी में संरक्षण के रूप में; श्वास लेने और छोड़ने में अधिग्रहण और संरक्षण के रूप में; हाथों में क्रिया के रूप में; पैरों में गति के रूप में; गुदा में उत्सर्जन के रूप में। मानव स्तर पर ध्यान हैं। फिर दिव्य का पालन करें। (ब्रह्म का ध्यान) वर्षा में संतोष के रूप में; बिजली में ऊर्जा के रूप में।

III-x-3-4: ब्रह्म की पूजा जानवरों में प्रसिद्धि के रूप में की जाती है; सितारों में प्रकाश के रूप में; प्रजनन, अमरता और जननेंद्रिय में आनंद के रूप में; अंतरिक्ष में सब कुछ के रूप में। उस ब्रह्म का ध्यान आधार के रूप में करना चाहिए; जिससे वह सहारा पाता है। उस ब्रह्म का ध्यान महान के रूप में करना चाहिए; जिससे वह महान बन जाता है। उस पर विचार के रूप में ध्यान करना चाहिए; जिससे वह सक्षम हो जाता है विचार करो।

उसे नमन के रूप में ध्यान करना चाहिए; इससे आनंददायक चीजें उसके सामने झुक जाती हैं। उसे सबसे श्रेष्ठ मानकर ध्यान करना चाहिए; इससे वह श्रेष्ठ हो जाता है। उसे ब्रह्म के नाश का माध्यम मानकर ध्यान करना चाहिए; इससे ऐसे व्यक्ति से ईर्ष्या करने वाले विरोधी मर जाते हैं, और ऐसे ही शत्रु भी मर जाते हैं जिनसे वह व्यक्ति घृणा करता है। यह जो मनुष्य व्यक्तित्व में है, और वह जो सूर्य में है, वे एक हैं।

III-x-5-6: जो इस प्रकार जानता है, वह इस संसार से विरक्त होकर अन्न से बने इस आत्मा को प्राप्त करता है। फिर अन्न से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर प्राण से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर मन से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर बुद्धि से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर आनंद से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, और इच्छानुसार अन्न पर

अधिकार करके और इच्छानुसार सभी रूपों पर अधिकार करके इन लोकों में भ्रमण करता हुआ, वह यह साम गीत गाता रहता है: "हाल्लो ! हाल्लो ! हाल्लो ! मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ; मैं खानेवाला हूँ, मैं खानेवाला हूँ, मैं खानेवाला हूँ; मैं जोड़नेवाला हूँ, मैं जोड़नेवाला हूँ, मैं जोड़नेवाला हूँ; मैं (हिरण्यगर्भ) इस जगत् में सगुण और अगुण से युक्त प्रथम जन्मा हूँ, मैं (विराट के रूप में) देवताओं से भी प्राचीन हूँ।

मैं अमरता की नाभि हूँ। जो मुझे इस प्रकार (भोजन के रूप में) अर्पण करता है, वह मेरी रक्षा करे। जो अर्पण किए बिना अन्न खाता है, उसे मैं अन्न के रूप में खा जाता हूँ। मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को परास्त कर देता हूँ। हमारा तेज सूर्य के समान है। यह उपनिषद् है। ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन प्रबल और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! कृष्ण-यजुर्वेद में सम्मिलित तैत्तिरीयोपनिषद् यहीं समाप्त होता है।

एक होने पर भी बाह्य होने के कारण संसार के दुःखों से कलंकित नहीं होती।

2-II-12. शाश्वत सुख बुद्धिमानों को है - दूसरों को नहीं - जो अपने हृदय में उस एक को, जो सब प्राणियों का नियंत्रक और अन्तर्यामी आत्मा है, तथा जो एक रूप को अनेक रूप में बना देता है, अनुभव करते हैं।

2-II-13. बुद्धिमानों में से जो कोई हृदय के अन्तर्यामी आत्मा को, जो अनित्य में भी अनन्त है, चेतन में भी चैतन्य है, जो एक होने पर भी अनेकों को इच्छित वस्तुएँ प्रदान करता है, शाश्वत शान्ति उन्हीं को है, दूसरों को नहीं।

2-II-14. जिस अवर्णनीय और परम आनन्द को वे 'यह' समझते हैं, उसे मैं कैसे जानूँ? क्या वह स्वयं प्रकाशमान है या वह स्पष्ट रूप से चमकता है, (स्वयं को बुद्धि के लिए बोधगम्य बनाता है), या नहीं?

2-II-15. वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा और तारे चमकते हैं, न ये बिजलियाँ चमकती हैं। फिर यह अग्नि कैसे चमक सकती है? जो चमकता है, उसके पीछे-पीछे सब चमकते हैं। उसी के प्रकाश से यह सब चमकता है।

2-III-1. यह पीपल का वृक्ष जिसकी जड़ ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं, सनातन है। जो इसका मूल है, वह निश्चित रूप से शुद्ध है; वही ब्रह्म है और उसे अमर कहा जाता है। उसी पर सारे लोक बँधे हुए हैं; उससे आगे कोई नहीं जाता। यही वास्तव में वही है (जिसे तुम खोज रहे हो)।

2-III-2. यह सारा जगत् ब्रह्म से उत्पन्न होकर प्राण में (ब्रह्म में) गति करता है; यह अत्यंत भयावह है, जैसे उठा हुआ वज्र। जो इसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

2-III-3. उसी के भय से अग्नि जलती है; उसी के भय से सूर्य चमकता है; उसी के भय से इन्द्र और वायु कार्य करते हैं; उसी के भय से पाँचवाँ मृत्यु पृथ्वी पर घूमता है।

2-III-4. यदि कोई शरीर के गिरने से पहले यहाँ जान सके, (तो वह मुक्त हो जाता है); (यदि नहीं), तो वह प्राणियों के लोकों में देह धारण करने के योग्य हो जाता है।

2-III-5. जैसा दर्पण में होता है, वैसा ही बुद्धि में होता है; जैसा स्वप्न में होता है, वैसा ही पितरों के लोक में होता है; जैसा जल में होता है, वैसा ही गंधर्वों के लोक में होता है; जैसा छाया और प्रकाश में होता है, वैसा ही ब्रह्म के लोक में होता है।
2-III-6. बुद्धिमान मनुष्य इन्द्रियों के भिन्न-भिन्न स्वरूप को (उनके कारणों से) अलग-अलग उत्पन्न होने वाले तथा उनके उदय और अस्त होने को जानकर शोक नहीं करता।

2-III-7. इन्द्रियों से मन सूक्ष्म है; मन से भी सूक्ष्म बुद्धि है; बुद्धि से भी सूक्ष्म महत् (हिरण्यगर्भ) है; महत् से भी सूक्ष्म अव्यक्त है।

2-III-8. परंतु अव्यक्त से भी सूक्ष्म है पुरुष, सर्वव्यापक और लिंग रहित, जिसे जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है और अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

2-III-9. उसका स्वरूप दर्शन की सीमा में नहीं आता, उसे कोई भी नेत्र से नहीं देख सकता। मन को वश में करने वाली बुद्धि द्वारा और ध्यान के द्वारा वह प्रकट होता है। जो इसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

2-III-10. जब ज्ञान की पाँचों इन्द्रियाँ मन के साथ शान्त हो जाती हैं और बुद्धि क्रियाशील नहीं रहती, उस अवस्था को वे सर्वोच्च कहते हैं।

2-III-11. इन्द्रियों पर उस स्थिर संयम को वे योग कहते हैं। तब मनुष्य सजग हो जाता है, क्योंकि योग उत्पन्न भी हो सकता है और नष्ट भी हो सकता है।

2-III-12. न वाणी से, न मन से, न नेत्र से उसे प्राप्त किया जा सकता है। 'यह है' कहने वाले के अतिरिक्त और कोई इसे कैसे जान सकता है?

2-III-13. आत्मा को विद्यमान रूप में भी समझना चाहिए और जैसा वह वास्तव में है, वैसा भी समझना चाहिए। इन दो (पहलूओं) में से, जो उसे विद्यमान जानता है, उसे उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

2-III-14. जब हृदय में स्थित सभी लालसाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है और यहाँ ब्रह्म को प्राप्त करता है। 2-III-15. जब हृदय की सभी गाँठें यहाँ कट जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है। बस इतना ही निर्देश है।

2-III-16. हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। उनमें से एक सिर को भेदकर बाहर निकल जाती है। उससे ऊपर जाकर मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है, बाकी अन्य विभिन्न मार्गों से प्रस्थान करने का काम करती हैं।

2-III-17. अँगूठे के आकार का पुरुष, आंतरिक आत्मा, सभी जीवों के हृदय में हमेशा विराजमान रहता है।मनुष्य को चाहिए कि वह स्थिर भाव से अपने शरीर से मुंज घास के डंठल की तरह उसे अलग कर दे। उसे शुद्ध और अमर जानना चाहिए; उसे शुद्ध और अमर जानना चाहिए।

2-III-18. तब नचिकेता ने मृत्यु द्वारा दिए गए इस ज्ञान को, तथा योग के उपदेशों को सम्पूर्णता से प्राप्त करके, वैराग्यवान और अमर होकर ब्रह्म को प्राप्त किया। जो कोई भी इस प्रकार अंतरात्मा को जानता है, वह भी ऐसा ही हो जाता है।

ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे (ज्ञान की प्रकृति को प्रकाशित करके)। वह हम दोनों का पालन करे (ज्ञान के फल को सुनिश्चित करके)। हम दोनों मिलकर (ज्ञान की) शक्ति प्राप्त करें। हम जो सीखें, उससे हमें ज्ञान मिले। हम एक दूसरे से द्वेष न करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद में निहित कठोपनिषद् समाप्त होता है।

००४ - प्रश्न उपनिषद

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ वचन सुनें;
यज्ञ करते समय,हम अपनी आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें;स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते समय,हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें।प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों;सर्वधनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता)हम पर कृपा करें;बुराई का नाश करने वाले गरुड़ हम पर कृपा करें;बृहस्पति हमारा कल्याण करें।
ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

I-1: भारद्वाज के पुत्र सुकेश; शिबि के पुत्र सत्यकाम; सूर्य के पौत्र, गर्ग के कुल में जन्मे; अश्वल के पुत्र कौशल्या; विदर्भ में जन्मे भृगु के वंश के वंशज; तथा कात्य की सन्तान कबन्धी - ये सभी, जो (निम्न) ब्रह्म के प्रति समर्पित थे, (निम्न) ब्रह्म को जानने में लगे हुए थे, तथा परम ब्रह्म की खोज में लगे हुए थे, वे हाथ में लकड़ियाँ लेकर पूज्य पिप्पलाद के पास इस विश्वास के साथ पहुँचे कि, "यह हमें अवश्य ही सब कुछ बता देगा।"

1-2: उनसे ऋषि ने कहा, "इन्द्रियों पर संयम रखते हुए, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के साथ, एक वर्ष तक यहाँ फिर से रहो। फिर जो चाहो पूछो। यदि हमें पता चल जाए, तो हम तुम्हारे सभी प्रश्नों का उत्तर दे देंगे।"

1-3: तत्पश्चात् कात्य की सन्तान कबन्धी ने उनके पास आकर पूछा, "पूज्यवर, ये सभी प्राणी किससे उत्पन्न हुए हैं?"

1-4: उनसे उन्होंने कहा: समस्त प्राणियों के स्वामी को सन्तान की इच्छा हुई। उन्होंने (पूर्व वैदिक) ज्ञान पर विचार किया। उस ज्ञान पर विचार करके उन्होंने अन्न और प्राण की जोड़ी बनाई, इस विचार के साथ कि "ये दोनों मेरे लिए अनेक प्रकार से प्राणियों को उत्पन्न करेंगे।"

1-5: सूर्य प्राण है और अन्न चन्द्रमा है। जो कुछ भी स्थूल या सूक्ष्म है, वह अन्न ही है।स्थूल, सूक्ष्म से भिन्न, निश्चित रूप से सूक्ष्म का भोजन है।

I-6: अब, तथ्य यह है कि सूर्य, उदय होते हुए, पूर्व दिशा में प्रवेश करता है, जिससे वह पूर्व में सभी प्राणियों को अपनी किरणों में अवशोषित कर लेता है। यह कि वह दक्षिण में प्रवेश करता है, यह कि वह पश्चिम में प्रवेश करता है, यह कि वह उत्तर में प्रवेश करता है, यह कि वह नादिर और चरम पर पहुंचता है, यह कि वह राशि चक्र के मध्यवर्ती बिंदुओं में प्रवेश करता है, यह कि वह सभी को प्रकाशित करता है, जिससे वह सभी जीवित चीजों को अपनी किरणों में अवशोषित करता है।
I-7: वही उगता है जो प्राण और अग्नि है, जो सभी प्राणियों के साथ पहचाना जाता है, और जो सभी रूपों से युक्त है। यह वही है, जिसका उल्लेख किया गया है, मंत्र द्वारा कहा गया है:

I-8: (ब्रह्म को जानने वाले) उस एक को जानते थे जो सभी रूपों से युक्त है, किरणों से भरा है, प्रकाश से संपन्न है, सबका आश्रय है, (सबका एक प्रकाश) और गर्मी का रेडिएटर है। सूर्य ही उदय होता है - वह सूर्य जो सहस्र किरणों वाला है, सौ रूपों में स्थित है और समस्त प्राणियों का प्राण है।

1-9: वर्ष वास्तव में प्राणियों का स्वामी है। उसके दो मार्ग हैं - दक्षिण और उत्तर। इस प्रकार जो लोग इस प्रकार कर्म के फलस्वरूप यज्ञ और लोकहित आदि का पालन करते हैं, वे चन्द्रलोक को जीत लेते हैं। वे ही लौटकर आते हैं। (क्योंकि ऐसा है), अतः ये स्वर्ग के ऋषि, जो संतान की इच्छा रखते हैं, दक्षिण मार्ग को प्राप्त करते हैं। जो पितरों का मार्ग है, वही वास्तव में अन्न है।

1-10: फिर वे इन्द्रियों के संयम, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और ध्यान के द्वारा आत्मा की खोज करके उत्तर मार्ग से चलकर सूर्य को जीत लेते हैं। यही सब प्राणियों का आश्रय है; यही अविनाशी है; यही निर्भय है; यही परम लक्ष्य है,

क्योंकि यहीं से वे लौटकर नहीं आते। यह बात (अज्ञानी के लिए) अवास्तविक है। इस विषय में यहाँ एक श्लोक है:

1-11: कुछ लोग (सूर्य को) पाँच पैरों वाला, पिता के समान, बारह अंगों वाला, तथा आकाश के ऊपर ऊँचे स्थान में जल से भरा हुआ बताते हैं। लेकिन कुछ लोग उसे सर्वज्ञ कहते हैं और कहते हैं कि सात पहियों और छः तीलियों वाला, उस पर (सारा ब्रह्माण्ड) स्थित है।

1-12: मास ही सब प्राणियों का स्वामी है। कृष्ण पक्ष उसका भोजन है और शुक्ल पक्ष उसका प्राण है। इसलिए ये ऋषिगण शुक्ल पक्ष में यज्ञ करते हैं। अन्य लोग शुक्ल पक्ष में यज्ञ करते हैं।

1-13: दिन और रात सब प्राणियों के स्वामी हैं। दिन ही उसका प्राण है और रात्रि ही उसका भोजन है। जो लोग दिन में काम-वासना में लिप्त रहते हैं, वे प्राण को नष्ट कर देते हैं। जो लोग रात में काम-वासना में लिप्त रहते हैं, वे ब्रह्मचर्य के समान हैं।

1-14: भोजन ही सब प्राणियों का स्वामी है। उसी से मनुष्य बीज उत्पन्न होता है। उसी से ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं।

1-15: ऐसा होने पर जो प्राणीमात्र के स्वामी का सुविख्यात व्रत धारण करते हैं, उनके पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न होती हैं। उन्हीं के लिए यह चन्द्रमा का लोक है, जिसमें व्रत और संयम है, तथा जिसमें मिथ्यात्व का सदा परित्याग है।

1-16: उन्हीं के लिए ब्रह्म का वह निष्कलंक लोक है, जिसमें कोई कुटिलता, कोई मिथ्यात्व और कोई कपट नहीं है।

2-1: इसके पश्चात विदर्भ में जन्मे भृगुवंश के एक वंशज ने उनसे पूछा, "महाराज, वास्तव में कितने देवता हैं जो प्राणी का पालन करते हैं? उनमें से कौन इस महिमा को प्रदर्शित करता है? फिर उनमें कौन प्रमुख है?"

2-2: उन्होंने उससे कहा: वास्तव में आकाश ही यह देवता है, जैसे वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वाणी, मन, आँख और कान। वे अपनी महिमा प्रकट

करते हुए कहते हैं, "निःसंदेह हम ही इस शरीर को विघटित न होने देकर इसे एक साथ रखते हैं।"

2-3: उनसे प्राण प्रमुख ने कहा, "भ्रमित न हो। मैं ही हूँ जो अपने को पाँच भागों में बाँटकर इसे विघटित न होने देता हूँ।" वे अविश्वासी बने रहे।

2-4: वे क्रोध के कारण शरीर से ऊपर उठते हुए प्रतीत हुए। जैसे ही वे ऊपर चढ़े, अन्य सभी भी तुरंत ऊपर चढ़ गए; और जब वे शांत हो गए, तो अन्य सभी भी अपनी स्थिति में आ गए। जैसे संसार में मधुमक्खियों के राजा के अनुसार सभी मधुमक्खियाँ उड़ती हैं और उनके ऐसा करते ही वे भी शांत हो जाती हैं, वैसे ही वाणी, मन, आँख, कान आदि भी व्यवहार करते हैं। प्रसन्न होकर वे प्राण की स्तुति करने लगे।

2-5: यह (अर्थात प्राण) अग्नि के समान जलता है, यह सूर्य है, यह बादल है, यह इन्द्र और वायु है, यह पृथ्वी और अन्न है। यह देवता स्थूल और सूक्ष्म है, साथ ही वह भी है जो अमृत है।

2-6: रथ के पहिये की धुरी पर लगे तीलियों के समान प्राण पर सभी चीजें - ऋक्, यजु, समास, यज्ञ, क्षत्रिय और ब्राह्मण - स्थिर हैं।

2-7: यह आप ही हैं जो सृष्टि के स्वामी के रूप में गर्भ में विचरण करते हैं, और आप ही माता-पिता की छवि के अनुसार जन्म लेते हैं। हे प्राण, यह आप ही हैं, जो इंद्रियों के साथ रहते हैं, कि ये सभी प्राणी उपहार ले जाते हैं।

2-8: आप देवताओं को सर्वश्रेष्ठ संचारक (अर्पण) हैं। आप पितरों को अर्पित किए जाने वाले भोजन हैं जो अन्य अर्पण से पहले किया जाता है। आप उन इंद्रियों का सही आचरण हैं जो शरीर का सार हैं और जिन्हें अथर्व के रूप में जाना जाता है।

2-9: हे प्राण, तुम इन्द्र हो। अपने पराक्रम से तुम रुद्र हो, और तुम ही सब ओर के पालनहार हो।तुम आकाश में घूमते हो - तुम सूर्य हो, सब ज्योतियों के स्वामी हो।

2-10: हे प्राण, जब तुम बरसते हो (वर्षा के रूप में), तब तुम्हारे ये प्राणी इस विश्वास के साथ प्रसन्न रहते हैं कि "हमारे हृदय की तृप्ति के लिए भोजन उत्पन्न होगा।"

2-11: हे प्राण, तुम अपवित्र हो, तुम अग्नि हो, तुम भक्षक हो, और तुम ही सबका स्वामी हो। हम (तुम्हारे) अन्नदाता हैं। हे मातरिश्व, तुम हमारे पिता हो।

2-12: अपने उस भाव को शांत करो जो वाणी में स्थित है, जो कान में है, जो आँख में है, और जो मन में व्याप्त है। ऊपर मत उठो।

2-13: यह सब (इस संसार में), और स्वर्ग में जो कुछ भी है, वह सब प्राण के अधीन है। जैसे माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है, वैसे ही आप हमारी रक्षा करें और हमारे लिए तेज और बुद्धि का विधान करें।

तृतीय-१: तब अश्वल के पुत्र कौशल्या ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, यह प्राण कहाँ से उत्पन्न होता है? यह इस शरीर में कैसे आता है? यह फिर किस प्रकार विभाजित होकर निवास करता है? यह किस प्रकार विदा होता है? यह बाह्य वस्तुओं को किस प्रकार धारण करता है और भौतिक वस्तुओं को किस प्रकार धारण करता है?"

तृतीय-२: उन्होंने उनसे कहा: आप असाधारण प्रश्न पूछ रहे हैं, क्योंकि आप सर्वोपरि ब्रह्म के ज्ञाता हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ।

तृतीय-३: यह प्राण आत्मा से उत्पन्न होता है। जैसे मनुष्य के रहने पर छाया पड़ सकती है, वैसे ही यह प्राण आत्मा में स्थित है। यह मन के कर्मों के कारण इस शरीर में आता है।

तृतीय-४: जैसे राजा ही अधिकारियों को यह कहकर नियुक्त करता है कि "इन गाँवों और उन गाँवों पर शासन करो", वैसे ही प्राण अन्य इन्द्रियों को अलग-अलग लगाता है।

3-5: वे अपान को दो निचले छिद्रों में रखते हैं। प्राण स्वयं मुख और नासिका से निकलकर नेत्रों और कानों में रहता है। तथापि, बीच में समान है, क्योंकि यह खाया हुआ सारा भोजन समान रूप से वितरित करता है। उसी से ये सात ज्वालाएँ निकलती हैं।

III-6: यह आत्मा (अर्थात सूक्ष्म शरीर) निश्चित रूप से हृदय में है। एक सौ एक (मुख्य) नाड़ियाँ हैं। उनमें से प्रत्येक में एक सौ (विभाग) हैं। प्रत्येक शाखा बहत्तर हजार उप शाखाओं में विभाजित है। उनमें से व्यान चलता है।

III-7: अब उदान, जब अपनी ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति में होता है, तो पुण्य के फलस्वरूप पुण्य लोक की ओर, पाप के फलस्वरूप पाप लोक की ओर तथा दोनों के फलस्वरूप मनुष्य लोक की ओर ले जाता है।

III-8: सूर्य वास्तव में बाह्य प्राण है। यह नेत्र में इस प्राण को अनुकूल बनाकर ऊपर उठता है। वह देवता, जो पृथ्वी में है, मनुष्य में अपान को आकर्षित करके अनुकूल बनाता है। भीतर जो स्थान (अर्थात वायु) है, वह समान है। (सामान्य) वायु व्यान है।

III-9: जिसे यदि प्रकाश के रूप में जाना जाता है, वह उदान है। इसलिए, जो अपना प्रकाश बुझा लेता है, वह अपने मन में प्रवेश करने वाली इंद्रियों के साथ पुनर्जन्म प्राप्त करता है।

III-10: जो कुछ भी विचार उसके मन में था (मृत्यु के समय), वह प्राण में प्रवेश करता है। प्राण, उदान के साथ और आत्मा के साथ मिलकर उसे उसके इच्छित लोक में ले जाता है।

III-11: जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकार प्राण को जानता है, उसकी संतान की वंशावली कभी नहीं टूटती। वह अमर हो जाता है। इसके संबंध में यह मंत्र है।

III-12: प्राण की उत्पत्ति, आगमन, निवास और पंचविध प्रभुता तथा भौतिक अस्तित्व को जानने के बाद, मनुष्य अमरता को प्राप्त करता है।

चतुर्थ-१: तब गर्ग के कुल में उत्पन्न सूर्य के पौत्र ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, इस व्यक्ति में कौन-कौन सी इन्द्रियाँ सो जाती हैं? इसमें कौन-कौन सी इन्द्रियाँ जागती रहती हैं? स्वप्न देखने वाला देवता कौन है? यह सुख किसको प्राप्त होता है? सब किसमें विलीन हो जाते हैं?"

चतुर्थ-२: उन्होंने उनसे कहा, हे गार्ग्य, जैसे अस्त होते हुए सूर्य की सभी किरणें इस प्रकाश-मंडल में एकाकार हो जाती हैं और जब सूर्य पुनः उदय होता है, तो वे उससे विलीन हो जाती हैं, वैसे ही वह सब उच्च देवता मन में एकाकार हो जाता है। इसलिए यह व्यक्ति न सुनता है, न देखता है, न सूँघता है, न चखता है, न छूता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न भोगता है, न त्यागता है, न हिलता है। लोग कहते हैं, "यह सो रहा है।"

चतुर्थ-३: प्राण की अग्नियाँ (अर्थात् अग्नि के समान कार्य) ही वास्तव में इस शरीर नगर में जागृत रहती हैं। यह अपान जो है, वह वास्तव में गार्हपत्य अग्नि के सदृश है, व्यान अग्नि के सदृश है, अन्वहार्यपचन। चूँकि आहवनीय अग्नि गार्हपत्य से प्राप्त होती है, जो कि पूर्व का निष्कर्षण स्रोत है, इसलिए प्राण आहवनीय के अनुरूप है (क्योंकि यह अपान से निकलता है)।

IV-4: समान पुजारी है जिसे होता कहा जाता है, क्योंकि यह साँस छोड़ने और साँस लेने के बीच संतुलन बनाता है जो कि दो आहुतियों के समान हैं। मन वास्तव में यज्ञकर्ता है। इच्छित फल उदान, जो इस यज्ञकर्ता को प्रतिदिन ब्रह्म की ओर ले जाता है।

IV-5: इस स्वप्न अवस्था में यह देवता (अर्थात मन) महानता का अनुभव करता है। जो कुछ भी देखा गया था, वह फिर से देखता है; जो कुछ भी सुना गया था, वह फिर से सुनता है; जो कुछ भी विभिन्न स्थानों और दिशाओं में देखा गया था, वह बार-बार अनुभव करता है; जो कुछ भी देखा गया या नहीं देखा गया, सुना गया या नहीं सुना गया, देखा गया या नहीं देखा गया, और जो कुछ भी वास्तविक या अवास्तविक है, वह सब बनकर यह सब देखता है।

चतुर्थ-6: जब वह देवता (मन) पित्त नामक (सूर्य) किरणों से अभिभूत हो जाता है, तब इस अवस्था में देवता स्वप्न नहीं देखता। तब, उस पूरे समय, इस शरीर में इस प्रकार का सुख होता है।

चतुर्थ-7: इस बात को स्पष्ट करने के लिए: जैसे पक्षी, हे सुंदर, निवास करने वाले वृक्ष की ओर बढ़ते हैं, वैसे ही ये सभी पक्षी परम आत्मा की ओर बढ़ते हैं।

चतुर्थ-8: पृथ्वी और पृथ्वी का मूल, जल और जल का मूल, अग्नि और अग्नि का मूल, आकाश और आकाश का मूल, दृष्टि का अंग और विषय, श्रवण का अंग और विषय, गंध का अंग और विषय, स्वाद का अंग और विषय, स्पर्श का अंग और विषय, वाणी का अंग और विषय, हाथ और पकड़ी गई वस्तु, मैथुन और भोग, मलमूत्र का अंग और मल, पैर और कुचला गया स्थान, मन और विचार का विषय, समझ और समझ का विषय, अहंकार और अहंकार का विषय, जागरूकता और जागरूकता का विषय, चमकती हुई त्वचा और उससे प्रकट होने वाला विषय, प्राण और प्राण द्वारा धारण की जाने वाली सभी वस्तुएँ।

चतुर्थ-9: और यह द्रष्टा, अनुभव करने वाला, सुनने वाला, सूंघने वाला, चखने वाला, विचार करने वाला, पता लगाने वाला, कर्ता है - पुरुष (शरीर और इन्द्रियों में व्याप्त), जो स्वभाव से ज्ञाता है। यह पूर्णतः उस परम अक्षर पुरुष में स्थित हो जाता है।

चतुर्थ-10: जो उस छायारहित, अशरीरी, रंगरहित, शुद्ध, अक्षर पुरुष को जान लेता है, वह उस परम अक्षर पुरुष को प्राप्त हो जाता है। हे मनोहर! जो इस बात को जान लेता है, वह सर्वज्ञ और सर्वज्ञ हो जाता है। इसके लिए यह श्लोक है:

चतुर्थ-11: हे मनोहर! जो उस अचल पुरुष को जान लेता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है और सबमें प्रवेश कर जाता है, जिसमें ज्ञानात्मक आत्मा (स्वाभाविक रूप से जानने वाला पुरुष) विलीन हो जाती है, तथा सभी देवता और इन्द्रियाँ और तत्व भी विलीन हो जाते हैं।

पंचम-1: तत्पश्चात् शिबि के पुत्र सत्यकाम ने उनसे पूछा, "हे पूज्यवर! जो मनुष्यों में से कोई भी व्यक्ति मृत्युपर्यन्त उस अद्भुत विधि से ॐ का ध्यान करता है, वह वास्तव में किस लोक को जीतता है?" उससे उन्होंने कहा:
2: हे सत्यकाम! यह ब्रह्म, जो निम्न और श्रेष्ठ कहलाता है, वह ॐ ही है। अतः प्रकाशित आत्मा केवल इसी एक साधन से दोनों में से किसी एक को प्राप्त कर लेता है।

3: यदि वह ॐ का एक अक्षर के रूप में ध्यान करे, तो वह उससे भी प्रकाशित हो जाता है और पृथ्वी पर मनुष्य जन्म प्राप्त करता है। ऋक् मन्त्र उसे मनुष्य जन्म की ओर ले जाते हैं। वहाँ संयम, संयम और श्रद्धा से युक्त होकर वह महानता का अनुभव करता है।

4: अब फिर, यदि वह दूसरे अक्षर की सहायता से ॐ का ध्यान करता है, तो वह उसी के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।मन। यजुर् मंत्रों द्वारा वह मध्यवर्ती स्थान, चन्द्रलोक में उठा लिया जाता है। चन्द्रलोक में महानता का अनुभव करके वह पुनः भ्रमण करता है।

श्लोक 5: फिर, जो कोई तीन अक्षरों वाले इस ॐ अक्षर की सहायता से परम पुरुष का ध्यान करता है, वह प्रकाश से युक्त सूर्य में एक हो जाता है। जैसे साँप अपने केंचुल से मुक्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार वह पाप से

मुक्त हो जाता है, और साम मंत्रों द्वारा वह ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) के लोक में उठा लिया जाता है। प्राणियों के इस समग्र समूह (जो हिरण्यगर्भ है) से वह उस परम पुरुष को देखता है जो प्रत्येक प्राणी में व्याप्त है और उच्चतर (अर्थात हिरण्यगर्भ) से भी उच्च है। इस पर आधारित, दो श्लोक आते हैं:

श्लोक 6: तीनों अक्षर (अपने आप में) मृत्यु की सीमा के भीतर हैं। किन्तु यदि वे एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हों, भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर भिन्न-भिन्न रूप से लागू न हों, तथा तीनों प्रकार की क्रियाओं - बाह्य, आंतरिक तथा मध्यवर्ती - पर लागू हों, जिनका समुचित रूप से सहारा लिया जाता है, तो आत्मज्ञानी पुरुष विचलित नहीं होता (अर्थात् अविचलित रहता है)। ऋक् मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले इस जगत को, यजुर् मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले मध्यवर्ती स्थान को तथा साम मंत्रों द्वारा प्राप्त होने वाले जगत को बुद्धिमान व्यक्ति जानता है। आत्मज्ञानी पुरुष केवल ॐ के द्वारा उस (त्रिविध) जगत को प्राप्त करता है; तथा ॐ के माध्यम से वह उस परम तत्व को भी प्राप्त करता है जो शान्त है तथा बुढ़ापे, मृत्यु और भय से परे है।

6-1: तब भारद्वाज के पुत्र सुकेश ने उनसे पूछा, "पूज्यवर, कोसल के राजकुमार हिरण्यनाभ ने मेरे पास आकर प्रश्न किया, 'भारद्वाज, क्या आप सोलह अंगों वाले पुरुष को जानते हैं?' मैंने उस राजकुमार से कहा, 'मैं उसे नहीं जानता। यदि मैं उसे जानता होता, तो आपको क्यों न बताता? जो कोई मिथ्या वचन बोलता है, वह जड़ सहित सूख जाता है। इसलिए मैं मिथ्या वचन नहीं बोल सकता। वह चुपचाप रथ पर सवार होकर चला गया। उस पुरुष के विषय में मैं आपसे पूछता हूँ, 'वह कहाँ है?'"

6-2: उससे उन्होंने (पिप्पलाद ने) कहा: हे प्रियतम, यहाँ शरीर के अन्दर ही वह पुरुष है, जिससे ये सोलह अंग उत्पन्न होते हैं।

6-3: उन्होंने विचार किया: "किसके चले जाने से मैं उठूँगा? और किसके बने रहने से मैं स्थिर रहूँगा?"

VI-4: उन्होंने प्राण की रचना की; प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रियाँ, मन, अन्न की रचना की; अन्न से तेज, संयम, मन्त्र, कर्म, लोक और लोकों में नाम की रचना की।

VI-5: दृष्टान्त यह है: जैसे समुद्र को लक्ष्य मानकर बहने वाली ये नदियाँ समुद्र में पहुँचकर लीन हो जाती हैं, तथा उनके नाम और रूप नष्ट हो जाते

हैं, और वे केवल समुद्र कहलाती हैं, वैसे ही पुरुष के ये सोलह अंग (अर्थात् अवयव), जिनका लक्ष्य पुरुष ही है, पुरुष के पास पहुँचकर लुप्त हो जाते हैं, जब उनके नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं और वे केवल पुरुष कहलाते हैं। ऐसा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त पुरुष अंगों से मुक्त हो जाता है और अमर हो जाता है। इस विषय में यह श्लोक आता है:

6-6: तुम उस पुरुष को जानो जो जानने योग्य है और जिसके भीतर रथ के पहिये के नाभि के समान तीलियाँ लगी हुई हैं, ताकि मृत्यु तुम्हें कहीं भी न सताए।

7-8: उसने उनसे कहा, "मैं इस परम ब्रह्म को अब तक ही जानता हूँ। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।"

8-9: उसकी पूजा करते हुए उन्होंने कहा, "आप ही हमारे पिता हैं, जिन्होंने हमें अज्ञान से पार उतारकर उस पार पहुँचाया है। महान ऋषियों को नमस्कार है। महान ऋषियों को नमस्कार है।"

ॐ! हे देवताओं, हम कानों से शुभ वचन सुनें; यज्ञ करते हुए, हम आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें; स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते हुए, हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें। प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों; परम धनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हमारे लिए अनुकूल हों; बुराई के नाश करने वाले गरुड़ जी की जय हो।

<u>005 - मुण्डक उपनिषद</u>

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ वचन सुनें;यज्ञ करते समय,हम अपनी आँखों से शुभ वस्तुएँ देखें;स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते समय,हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें।प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों;सर्वधनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हम पर कृपा करें;बुराई का नाश करने वाले गरुड़,हम पर कृपा करें;बृहस्पति हमारा कल्याण करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

I-i-1: ॐ ! ब्रह्माण्ड के रचयिता और जगत के रक्षक ब्रह्मा, देवताओं में सबसे पहले प्रकट हुए थे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्व को ब्रह्म का वह ज्ञान दिया जो सभी ज्ञान का आधार है।

1-1-2: ब्रह्मा ने जो ब्रह्मज्ञान अथर्व को दिया था, अथर्व ने उसे प्राचीन काल में अंगिर को प्रदान किया। उन्होंने (अंगिर ने) इसे भारद्वाज वंश के सत्यवाह को दिया। भारद्वाज वंश के सत्यवाह ने अंगिरस को वह ज्ञान प्रदान किया, जो निम्न लोगों द्वारा उच्चतर से क्रमिक रूप से प्राप्त किया गया था।

1-1-3: महान गृहस्थ के रूप में विख्यात शौनक ने अंगिरस के पास जाकर पूछा, 'हे पूज्यनीय महाराज, वह कौन सी वस्तु है, जिसके ज्ञात हो जाने पर यह सब ज्ञात हो जाता है?'

1-1-4: उन्होंने उससे कहा, '"ज्ञान दो प्रकार का होता है - उच्चतर और निम्नतर"; वेदों के अर्थ के ज्ञाता परम्परागत रूप से यही कहते हैं।’

I-i-5: इनमें से निम्नतर में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उच्चारण आदि का विज्ञान, कर्मकाण्ड, व्याकरण, व्युत्पत्ति, छन्द और ज्योतिष शामिल हैं। फिर उच्चतर (ज्ञान) है जिसके द्वारा उस अविनाशी को प्राप्त किया जाता है।

1-1-6: (उच्चतर ज्ञान के द्वारा) बुद्धिमान व्यक्ति उस वस्तु को सर्वत्र अनुभव करते हैं, जिसे देखा और समझा नहीं जा सकता, जो स्रोत, आकृति, नेत्र और कान से रहित है, जिसके न हाथ हैं, न पैर, जो शाश्वत, अनेकरूपी, सर्वव्यापक, अत्यंत सूक्ष्म और अविनाशी है तथा जो सबका स्रोत है।

1-1-7: जैसे मकड़ी फैलती है और अपना धागा खींच लेती है, जैसे पृथ्वी पर जड़ी-बूटियाँ (और वृक्ष) उगते हैं, और जैसे जीवित मनुष्य से बाल निकलते हैं (सिर और शरीर पर), वैसे ही अविनाशी से यहाँ (इस अभूतपूर्व सृष्टि में) ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है।

1-1-8: ज्ञान से ब्रह्म का आकार बढ़ता है। उससे अन्न (अव्यक्त) उत्पन्न होता है। अन्न से प्राण (हिरण्यगर्भ), मन, पंचतत्व, लोक, कर्म में अमरता उत्पन्न होती है।

I-i-9: जो सर्वज्ञ है, विस्तार से सब कुछ जानता है, तथा जिसकी तपस्या ज्ञान से युक्त है, उससे यह ब्रह्म, नाम, रंग और अन्न उत्पन्न होते हैं।

I-ii-1: जो वस्तु ऐसी है, वही सत्य है। ज्ञानियों ने मन्त्रों में जो कर्म खोजे हैं, वे तीनों वैदिक कर्तव्यों के संयोग से (यज्ञ के प्रसंग में) विविध प्रकार से सम्पन्न होते हैं। तुम सत्य फल की इच्छा से उन्हें सदा करते रहो। यही तुम्हारा मार्ग है, जो तुम्हें अपने द्वारा अर्जित कर्मों के फल की ओर ले जाता है।

I-ii-2: जब अग्नि प्रज्वलित हो जाए, और ज्वाला ऊपर उठे, तब उस भाग में आहुति देनी चाहिए, जो दाएं और बाएं के बीच में है।

I-ii-3: यह (अर्थात अग्निहोत्र) उस मनुष्य के सातों लोकों को नष्ट कर देता है जिसका अग्निहोत्र (यज्ञ) दर्ष और पौर्णमास (अनुष्ठान) से रहित, चातुर्मास्य से रहित, अग्रयान से रहित, अतिथियों से रहित, अकृतज्ञ, वैश्वदेव (अनुष्ठान) से रहित और औपचारिक रूप से किया गया हो।

I-ii-4: काली, कराली, मनोजवा और सुलोहिता तथा जो सुधुम्रवर्णा है, तथा स्फुलिंगिनी और चमकती विश्वरुचि - ये सात ज्वलन्त जिह्वाएँ हैं।

I-ii-5: ये आहुति सूर्य की किरणों में बदल जाती हैं और जो व्यक्ति इन चमकती हुई ज्वालाओं में उचित समय पर अनुष्ठान करता है, उसे ऊपर ले जाती हैं, जहाँ देवताओं का एकमात्र स्वामी सबका अधिपति है।

1-2-6: 'आओ, आओ' कहकर, 'यह तुम्हारा पुण्य पथ है, जो स्वर्ग की ओर ले जाता है', ऐसे मनभावन वचन बोलकर तथा उसे प्रणाम करके, जगमगाती हुई आहुति यज्ञकर्ता को सूर्य की किरणों के साथ ले जाती है।

1-2-7: चूँकि यज्ञ के ये अठारह अवयव, जिन पर निम्न कर्म का वास बताया गया है, अपनी नाज़ुक अवस्था के कारण नाशवान हैं, इसलिए जो अज्ञानी लोग 'यही आनंद का कारण है', इस विचार से प्रफुल्लित हो जाते हैं, वे बार-बार बुढ़ापे और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

1-2-8: अज्ञान के घेरे में रहकर और 'हम स्वयं ही बुद्धिमान और विद्वान हैं' ऐसा सोचकर मूर्ख लोग बहुत अधिक मार खाते हुए भी, अंधे के द्वारा अकेले चलाए जाने वाले अंधे के समान इधर-उधर भटकते रहते हैं।

1-2-9: अज्ञान के बीच में नाना प्रकार से चलते हुए, अज्ञानी पुरुष यह सोचकर भ्रम करते हैं कि, 'हमने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।' क्योंकि कर्म में लगे हुए मनुष्य आसक्ति के वश में होकर (सत्य को) नहीं समझते, इसलिए वे दुःख से पीड़ित होते हैं और कर्म के फल समाप्त होने पर स्वर्ग से वंचित हो जाते हैं।

1-2-10: मोहग्रस्त मूर्ख लोग वेद और स्मृतियों द्वारा बताए गए कर्मों को सर्वोच्च मानकर मोक्ष की दूसरी वस्तु को नहीं समझते। वे स्वर्ग की ऊंचाइयों पर स्थित सुख के धाम में (कर्मों के फलों को) भोगकर इस लोक या निम्न लोक में प्रवेश करते हैं।

1-2-11: जो वन में रहते हैं, वे भिक्षा मांगते हैं - अर्थात। जो वनवासी और तपस्वी अपने-अपने जीवन के कर्तव्यों का पालन करते हुए ध्यान का भी ध्यान करते हैं, तथा जो विद्वान् गृहस्थ अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं, वे मल से मुक्त होकर सूर्य के मार्ग से उस स्थान पर जाते हैं, जहाँ स्वभाव से अविनाशी और अविनाशी पुरुष रहता है।

1-2-12: कर्म से प्राप्त लोकों का परीक्षण करने के पश्चात् ब्राह्मण को त्याग का आश्रय लेना चाहिए, इस उक्ति की सहायता से कि 'यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है जो कर्म का फल न हो, अतः कर्म करने की क्या आवश्यकता है?' उस तत्व को जानने के लिए उसे यज्ञ की लकड़ियाँ हाथ में लेकर केवल वेदों के ज्ञाता और ब्रह्म में लीन गुरु के पास जाना चाहिए।

1-2-13: जो विधिपूर्वक गया है, जिसका हृदय शांत है और जिसकी बाह्य इन्द्रियाँ अविचल हैं, उसके पास जाना चाहिए।

2-1-1: जो वस्तु ऐसी है, वही सत्य है। जैसे पूर्ण रूप से प्रज्वलित अग्नि से अग्नि के समान हजारों चिंगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार हे सुदर्शन! अविनाशी से नाना प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं और पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं।

2-1-2: पुरुष पारलौकिक है, क्योंकि वह निराकार है। और चूँकि वह बाह्य और आन्तरिक सभी के साथ समाया हुआ है और चूँकि वह अजन्मा है, इसलिए वह प्राणशक्ति और मन से रहित है; वह (अन्य) श्रेष्ठ अविनाशी (माया) से शुद्ध और श्रेष्ठ है।

2-1-3: उसी से प्राणशक्ति और मन, सभी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न होती है, जो सबका भरण-पोषण करती है।

II-i-4: सबका अन्तर्यामी आत्मा वही है जिसका सिर आकाश है, चन्द्रमा और सूर्य दो आँखें हैं, दिशाएँ दो कान हैं, प्रकाशित वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हृदय है, तथा जिसके दो पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई है।

II-i-5: उसी से अग्नि (अर्थात् स्वर्ग) उत्पन्न होती है जिसका ईंधन सूर्य है। चन्द्रमा से बादल उत्पन्न होते हैं, तथा बादल से पृथ्वी पर जड़ी-बूटियाँ और अनाज उत्पन्न होते हैं। पुरुष स्त्री में वीर्य डालता है। पुरुष से अनेक जीव उत्पन्न हुए हैं।

II-i-6: उसी से ऋक्, साम और यजुर् मंत्र, दीक्षा, सभी यज्ञ - चाहे यज्ञ के साथ हों या उसके बिना - ब्राह्मणों को अर्पण, वर्ष, यज्ञकर्ता, तथा वे लोक जहाँ चन्द्रमा (सबका) हवन करता है और जहाँ सूर्य (चमकता है) उत्पन्न होते हैं।

II-i-7: और उसी से अनेक समूहों में देवता उत्पन्न हुए, साध्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण, चावल और जौ, साथ ही तप, श्रद्धा, सत्य, संयम और कर्तव्यपरायणता।

II-i-8: उसी से सात ज्ञानेन्द्रियाँ, सात ज्वालाएँ, सात प्रकार के ईंधन, सात हवन और ये सात स्थान उत्पन्न हुए, जहाँ गुहा में सोई हुई इन्द्रियाँ चलती हैं, और जिन्हें (ईश्वर ने) सात के समूहों में जमा किया है।

II-i-9: उसी से सारे समुद्र और सारे पर्वत उत्पन्न हुए। उसी से अनेक रूपों वाली नदियाँ निकलती हैं। उसी से सारे अनाज और रस निकलते हैं, जिसके कारण आंतरिक आत्मा वास्तव में तत्वों के बीच में स्थित है।

II-i-10: पुरुष ही यह सब है - कर्म और ज्ञान सहित। हे सुदर्शन! जो इस परम अविनाशी ब्रह्म को हृदय में स्थित जानता है, वह इस अज्ञानरूपी ग्रन्थि को नष्ट कर देता है। यह तेजोमय है, समीप है, हृदय में गति करने वाला है, तथा महान् लक्ष्य है। इसमें वे सब स्थित हैं जो चलते हैं, श्वास लेते हैं, पलक झपकाते हैं या नहीं झपकाते। इस एक को जानो, जो स्थूल और सूक्ष्म तीनों से युक्त है, जो प्राणियों के सामान्य ज्ञान से परे है, तथा जो सबसे अधिक वांछनीय और श्रेष्ठ है। यह जो तेजोमय है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, तथा जिसमें समस्त लोक तथा लोकों के निवासी स्थित हैं, वह यह अपरिवर्तनशील ब्रह्म है। यह प्राणशक्ति है, यह वाणी और मन भी है। यह जो सत्ता है, वह सत्य है। यह अमर है। हे सुदर्शन! इसे भेदकर इस पर प्रहार करो।

द्वितीय-द्वितीय-3: उपनिषदों में वर्णित महान् अस्त्र धनुष को पकड़कर, उस पर ध्यानपूर्वक धारदार बाण चढ़ाना चाहिए। हे सुदर्शन! उस बाण की डोरी खींचकर, उस अविनाशी लक्ष्य पर मन को उसी के विचार में लगाकर प्रहार करो।

द्वितीय-द्वितीय-4: ॐ धनुष है, आत्मा बाण है, और ब्रह्म उसका लक्ष्य है। उसे अचूक पुरुष को ही मारना है। बाण के समान उसी के साथ एक हो जाना चाहिए।

द्वितीय-द्वितीय-5: उस आत्मा को जान लो, जो एक है, जिस पर स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, मन, प्राण तथा अन्य सभी इन्द्रियाँ बंधी हुई हैं, और अन्य सब बातों को छोड़ दो। यही अमरता की ओर ले जाने वाला सेतु है।

द्वितीय-द्वितीय-6: उस हृदय में, जिसमें रथ के पहिये के पोर के समान नाड़ियाँ लगी हुई हैं,इस पूर्वोक्त आत्मा को अनेकरूप धारण करके गतिमान करता है। इस प्रकार ॐ की सहायता से आत्मा का ध्यान करो। अंधकार से परे दूसरे किनारे पर जाने में बाधा से मुक्त हो जाओ।

II-II-7: वह आत्मा जो सामान्य रूप से सर्वज्ञ है और विस्तार से सर्वज्ञ है तथा जिसकी इस संसार में ऐसी महिमा है - वह आत्मा, जो इस प्रकार की

है - ब्रह्म के प्रकाशमय नगर के भीतर अंतरिक्ष में विराजमान है। यह मन से बद्ध है, यह प्राण और शरीर का वाहक है, यह बुद्धि को (हृदय की गुहा में) स्थापित करके अन्न में विराजमान है। अपने ज्ञान के द्वारा विवेकशील लोग उस आत्मा को सर्वत्र अपनी पूर्णता में विद्यमान अनुभव करते हैं - वह आत्मा जो परमानंद और अमरता के रूप में चमकती है।

II-II-8: जब वह आत्मा, जो उच्च और निम्न दोनों है, का साक्षात्कार हो जाता है, तब हृदय की गांठ जुड़ जाती है, सभी संदेह दूर हो जाते हैं, और सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं।

II-ii-9: परम उज्ज्वल कोश में ब्रह्म है, जो कल्मषों से रहित और अंगों से रहित है। वह शुद्ध है, और ज्योतियों का प्रकाश है। यह वही है जिसे आत्मा के ज्ञाता अनुभव करते हैं।

II-ii-10: वहाँ न सूर्य चमकता है, न चंद्रमा या तारे; न ये बिजली की चमक वहाँ चमकती है। यह अग्नि ऐसा कैसे कर सकती है? सब कुछ उसी के अनुसार चमकता है; उसके प्रकाश से यह सब भिन्न-भिन्न रूप से चमकता है।

II-ii-11: यह जो कुछ सामने है, वह केवल ब्रह्म है, अविनाशी है। ब्रह्म पीछे है, दाएं और बाएं भी है। यह ऊपर और नीचे भी फैला हुआ है। यह जगत् सर्वोच्च ब्रह्म के अलावा और कुछ नहीं है।

III-i-1: दो पक्षी जो सदैव एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं और जिनके नाम समान हैं, एक ही वृक्ष से चिपके रहते हैं। इनमें से एक भिन्न-भिन्न स्वाद वाले फल खाता है, और दूसरा बिना खाए देखता रहता है।

तृतीय-1-2: उसी वृक्ष पर जीवात्मा मानो डूबा हुआ (अथवा अटका हुआ) रहता है, और अपनी नपुंसकता से चिन्तित होकर विलाप करता है। जब वह इस प्रकार दूसरे, पूज्य भगवान् को तथा उनकी महिमा को देखता है, तब वह दुःख से मुक्त हो जाता है।

तृतीय-1-3: जब द्रष्टा पुरुष को - सुवर्णमय, सृष्टिकर्ता, स्वामी तथा अधम ब्रह्म के मूल को - देख लेता है, तब वह ज्ञानी पुरुष पाप-पुण्य से सर्वथा मुक्त हो जाता है, निष्कलंक हो जाता है, तथा परम समता को प्राप्त हो जाता है।

तृतीय-1-4: यह वास्तव में प्राणशक्ति है, जो सभी प्राणियों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रकाशित होती है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष को अपनी बात में आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलता। वह आत्मा में रमण करता है, आत्मा में रमण करता है, तथा पुरुषार्थ में लीन रहता है। यह ब्रह्म के जानने वालों में प्रमुख है।

III-i-5: शरीर के भीतर जो उज्ज्वल और शुद्ध आत्मा है, जिसे (आदतन प्रयास और) क्षीण दोषों वाले भिक्षु देखते हैं, वह सत्य, एकाग्रता, पूर्ण ज्ञान और संयम के द्वारा, निरंतर अभ्यास करने से प्राप्त होता है। III-i-6: सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। सत्य के द्वारा ही देवयान नामक मार्ग निर्धारित किया गया है, जिसके द्वारा इच्छा रहित द्रष्टा सत्य के द्वारा प्राप्त होने वाले परम कोष तक पहुँचते हैं।

III-i-7: यह महान और स्वयं प्रकाशमान है; और इसका रूप अकल्पनीय है। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। यह विविध रूप से चमकता है। यह दूर से भी दूर है, और यह इस शरीर में निकट है। चेतन प्राणियों में यह इसी शरीर में, हृदय गुहा में स्थित है।

III-i-8: यह न तो नेत्र से, न वाणी से, न अन्य इन्द्रियों से समझा जा सकता है; न ही यह तप या कर्म से प्राप्त होता है। चूँकि बुद्धि की अनुकूलता से मन शुद्ध हो जाता है, इसलिए ध्यान के द्वारा उस अविभाज्य आत्मा को देखा जा सकता है।
III-i-9: शरीर के भीतर (हृदय में) जहाँ प्राणशक्ति पाँच रूपों में प्रविष्ट हुई है, उस बुद्धि के द्वारा इस सूक्ष्म आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए, जो सम्पूर्ण मन के साथ-साथ सभी प्राणियों के कर्मेन्द्रियों और इन्द्रियों में व्याप्त है। और मन में ही इसे जानना चाहिए, जो शुद्ध हो जाने पर यह आत्मा अपने आप को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है।

III-i-10: शुद्ध मन वाला मनुष्य उन लोकों को जीत लेता है, जिनकी वह मानसिक रूप से कामना करता है और उन भोग्य वस्तुओं को, जिनकी वह अभिलाषा करता है। इसलिए कल्याण की इच्छा रखने वाले को चाहिए कि वह आत्मवेत्ता की आराधना करे।

तृतीय-द्वितीय-१: वह इस परमधाम को, इस ब्रह्म को जानता है, जिसमें यह जगत स्थित है और जो पवित्रता से प्रकाशित होता है। जो बुद्धिमान पुरुष कामनारहित होकर इस (ज्ञानी) पुरुष की आराधना करते हैं, वे इस मनुष्य बीज से पार हो जाते हैं।

तृतीय-द्वितीय-२: जो पुरुष गुणों का चिन्तन करते हुए इच्छित वस्तुओं की अभिलाषा करता है, वह कामनाओं सहित उन्हीं परिवेशों में जन्म लेता है। परन्तु जिसकी कामनाएँ पूर्ण हो गई हैं और जो आत्मस्थ है, उसके लिए यहाँ भी सब कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं।

तृतीय-द्वितीय-३: यह आत्मा न तो अध्ययन से प्राप्त होती है, न बुद्धि से, न बहुत सुनने से। जिस आत्मा को यह साधक खोजता है, वह उसी खोज के द्वारा प्राप्त होने योग्य है; उसका यह आत्मा अपना स्वरूप प्रकट करता है।

तृतीय-द्वितीय-४: यह आत्मा न तो बलहीन को प्राप्त होती है, न मोह से, न संन्यास से असंबद्ध ज्ञान से। परन्तु जो ज्ञाता इन साधनों से प्रयत्न करता है, उसका आत्मा ब्रह्म-धाम में प्रवेश करता है।

तृतीय-द्वितीय-5: इसे प्राप्त करके द्रष्टा अपने ज्ञान से संतुष्ट, आत्मा में स्थित, आसक्ति से मुक्त और शांत हो जाते हैं। सर्वत्र व्याप्त उस एक को जानकर, ये विवेकशील लोग, चिन्तन में लीन होकर, सर्व में प्रवेश करते हैं।

तृतीय-द्वितीय-6: जिनको वेदान्तिक ज्ञान द्वारा प्रस्तुत सत्ता पूर्णतः ज्ञात हो गई है, जो तपस्वी हैं और संन्यास-योग द्वारा मन से शुद्ध हो गए हैं - वे सभी, अन्तिम प्रयाण के परम क्षण में ब्रह्म-रूपी लोकों में परम अमरता से एकाकार हो जाते हैं और सब ओर से मुक्त हो जाते हैं।

तृतीय-द्वितीय-7: (शरीर के) पंद्रह अवयव अपने-अपने मूल में चले जाते हैं और (इन्द्रियों के) सभी देवता अपने-अपने देवताओं में चले जाते हैं। कर्म और आत्मा बुद्धि के समान प्रकट होकर, सभी परम अविनाशी के साथ एक हो जाते हैं।

तृतीय-द्वितीय-८: जैसे नदियाँ बहती हुई समुद्र में पहुँचकर अपने नाम और रूप त्यागकर अविभाज्य हो जाती हैं, वैसे ही प्रकाशवान आत्मा नाम और रूप से मुक्त होकर स्वयं प्रकाशमान पुरुष को प्राप्त हो जाती है, जो परब्रह्म (माया) से भी उच्च है।

तृतीय-द्वितीय-९: जो कोई उस परम ब्रह्म को जान लेता है, वह वास्तव में ब्रह्म ही हो जाता है। उसके वंश में ऐसा कोई उत्पन्न नहीं होता, जो ब्रह्म को न जानता हो। वह शोक पर विजय प्राप्त कर लेता है, विपथनों से ऊपर

उठ जाता है, और हृदय की गांठों से मुक्त होकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

तृतीय-द्वितीय-१०: यह (नियम) इस मंत्र द्वारा प्रकट किया गया है (जो इस प्रकार है): 'केवल उन्हीं को इस ज्ञान का वर्णन करना चाहिए जो अनुशासन में लगे हुए हैं, वेदों में पारंगत हैं, और वास्तव में ब्रह्म के प्रति समर्पित हैं, जो स्वयं एकरसी नामक अग्नि में श्रद्धापूर्वक आहुति देते हैं, और जिन्होंने अग्नि को सिर पर धारण करने का व्रत विधिपूर्वक पूरा किया है।'

तृतीय-द्वितीय-११: ऋषि अंगिरस ने प्राचीन काल में इस सत्य की बात कही थी। जिसने व्रत पूरा नहीं किया है, वह इसे नहीं पढ़ता है। महान ऋषियों को नमस्कार है। महान ऋषियों को नमस्कार है। ॐ ! हे देवताओं, हम कानों से शुभ शब्द सुनें; यज्ञ करते समय, हम आँखों से शुभ चीजें देखें; स्थिर अंगों से देवताओं की स्तुति करते हुए, हम देवताओं के लिए लाभकारी जीवन का आनंद लें। प्राचीन प्रसिद्धि वाले इंद्र हमारे लिए शुभ हों; परम धनवान (या सर्वज्ञ) पूसा (पृथ्वी के देवता) हम पर कृपा करें; बुराई का नाश करने वाले गरुड़ हम पर कृपा करें; बृहस्पति हमारा कल्याण करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में सम्मिलित मुण्डकोपनिषद् समाप्त होता है।

006 - मांडूक्य उपनिषद

विद्यावाचस्पति वी. पनोली द्वारा अनुवादित

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें;हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें;हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों।

महान् इन्द्र हम पर कृपा करें;सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें;दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों;बृहस्पति हम पर सबकी समृद्धि प्रदान करें।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

1. यह सब ॐ अक्षर है। इसकी विशद व्याख्या (आरंभ) की गई है। भूत, वर्तमान और भविष्य जो कुछ भी है, वह ॐ ही है। जो तीनों काल से परे है, वह भी ॐ ही है।

2. यह सब निश्चय ही ब्रह्म है। यह आत्मा ब्रह्म है। यह आत्मा इस प्रकार चार दिशाओं से युक्त है।

3. जो आत्मा जाग्रत अवस्था में स्थित है और जिसे वैश्वानर कहते हैं, जो बाह्य चेतना, सात अंगों और उन्नीस मुखों से युक्त होकर स्थूल विषयों का भोग करता है, वह प्रथम दिशा है।

4. जो आत्मा स्वप्नावस्था में स्थित है और जिसे तैजस कहते हैं, जो आन्तरिक चेतना, सात अंगों और उन्नीस मुखों से युक्त होकर सूक्ष्म विषयों का भोग करता है, वह द्वितीय दिशा है।

5. जहाँ शयनकर्ता भोग की किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता और कोई स्वप्न नहीं देखता, वह अवस्था सुषुप्ति है।
जो आत्मा सुषुप्ति में स्थित है और जिसे प्रज्ञा कहते हैं, जिसमें सब कुछ एकरूप है, जो चेतना से युक्त है, जो आनन्द से पूर्ण है, जो निश्चय ही आनन्द का भोक्ता है, और जो (पूर्ववर्ती दो अवस्थाओं का) ज्ञान का द्वार है, वह तृतीय दिशा है।
6. यह सबका स्वामी है, यह सर्वज्ञ है; यह सबका नियंत्रक है; यह सभी प्राणियों का स्रोत है, तथा वास्तव में उत्पत्ति और प्रलय भी है।

7. चतुर्थ को वह माना जाता है जो न तो आंतरिक जगत के प्रति सचेत है, न ही बाह्य जगत के प्रति सचेत है, न ही दोनों जगतों के प्रति सचेत है, न ही चेतना से सघन है, न ही केवल चेतना है, न ही अचेतन है, जो अदृश्य, क्रियाहीन, अज्ञेय, अकल्पनीय, अकल्पनीय, अवर्णनीय है, जिसका प्रमाण आत्मा की पहचान (सभी अवस्थाओं में) में निहित है, जिसमें सभी घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं, और जो अपरिवर्तनीय, शुभ और अद्वैत है। वही आत्मा है जिसे जानना है।

8. अक्षर की दृष्टि से वही आत्मा ॐ है और अक्षरों की दृष्टि से देखा जाए तो काल ही अक्षर हैं और काल ही काल हैं। ये अक्षर हैं अ, उ और म।

9. जाग्रत अवस्था में बैठा हुआ वैश्वानर सर्वव्यापक होने के कारण प्रथम अक्षर अ है। जो इस प्रकार जानता है, वह सब कामनाओं को पूर्ण कर लेता है और प्रथम हो जाता है।

10. स्वप्न में बैठा हुआ तैजस श्रेष्ठता की समानता या मध्यवर्ती स्थिति के कारण उ है, जो ॐ का दूसरा अक्षर है। जो इस प्रकार जानता है, वह अपने ज्ञान की सीमा को आगे बढ़ाता है और सबके समान हो जाता है और उसके कुल में कोई भी ब्रह्मज्ञ उत्पन्न नहीं होता।

11. सुषुप्ति अवस्था में बैठा हुआ प्रज्ञा म है, जो ॐ का तीसरा अक्षर है, क्योंकि वह वह माप या इकाई है जिसमें सब लीन हो जाते हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह इन सबको माप लेता है और सबको ग्रहण कर लेता है।

12. जो अक्षर (अंश) रहित है, वह चतुर्थ है, जो सामान्य साधनों से समझ से परे है, वह प्रचंड जगत्, शुभ और अद्वैत का निरोध है। इस प्रकार ॐ निश्चय ही आत्मा है। जो इस प्रकार जानता है, वह आत्मा द्वारा आत्मा में प्रवेश करता है। ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हम अपनी आँखों से शुभ देखें; हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों। महान यश वाले इंद्र हम पर कृपा करें; सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें; दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों; बृहस्पति हमें सभी समृद्धि प्रदान करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में निहित माण्डूक्योपनिषद् समाप्त होता है।
गौड़पाद की माण्डूक्य कारिका I. आगम प्रकरण आह्वान ;

1. मैं उस ब्रह्म को नमन करता हूँ जो समस्त चराचर वस्तुओं में व्याप्त ज्ञान किरणों के प्रसार द्वारा सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है, जो (जाग्रत अवस्था में) समस्त स्थूल भोगों का भोग कर चुका है, तथा जो (स्वप्न अवस्था में) समस्त कामनाजन्य तथा बुद्धि द्वारा प्रकाशित विषयों का भोग कर चुका है, तथा स्वयं आनन्द का अनुभव करते हुए तथा (अपनी) माया द्वारा हम सबको आनन्दित करते हुए विश्राम करता है, तथा जो माया के द्वारा चौथे स्थान पर है, तथा सर्वोच्च, अमर और अजन्मा है।

2. जो जाग्रत अवस्था में पुण्य-पाप से उत्पन्न स्थूल भोगों को भोगकर स्वप्न अवस्था में अपनी ही बुद्धि से उत्पन्न तथा अपनी ही ज्योति से प्रकाशित अन्य सूक्ष्म विषयों को भोगता है, तथा उन सबको धीरे-धीरे अपने में लीन करके तथा सब भेदों को त्यागकर निर्गुण हो जाता है, वह विश्वात्मा, जो चौथी अवस्था में स्थित है, हमारी रक्षा करे। विश्वा बाह्य चेतना से युक्त होकर सर्वव्यापक है, तैजस अन्तरंग चेतना से युक्त है, तथा प्रज्ञा भी चेतना से युक्त है।

इस प्रकार एक ही को दोनों प्रकार से देखा जाता है। विश्वा दाहिनी आँख में देखा जाता है, जो उसका अनुभव स्थान है, तैजस मन के अन्दर है तथा प्रज्ञा हृदय के अन्दर है।

इन तीनों प्रकार से वह शरीर में रहता है। विश्वा स्थूल का, तैजस सूक्ष्म का तथा प्रज्ञा आनन्द का भोक्ता है। (इसलिए) आनंद को तीन तरीकों से जानो।

१-४. घास विश्व को, सूक्ष्म तैजस को तथा इसी प्रकार प्रसन्नता प्रज्ञा को संतुष्ट करती है। अतः संतुष्टि को तीन प्रकार से जानो।

१-५. जो इन दोनों को जानता है, अर्थात् जो भोगने योग्य बताया गया है तथा जो भोगने वाला बताया गया है, वह तीनों अवस्थाओं में भोगता हुआ भी भोगता हुआ भी ग्रसित नहीं होता।

१-६. यह एक स्थापित तथ्य है कि अस्तित्व में आना केवल सकारात्मक संस्थाओं के लिए ही कहा जा सकता है। प्राण सबका निर्माण करता है; तथा पुरुष चेतन प्राणियों को पृथक रूप से बनाता है।

१-७. जो लोग सृष्टि के बारे में सोचते हैं, वे इसे भगवान की शक्ति का प्रकटीकरण मानते हैं; जबकि अन्य लोग सृष्टि को स्वप्न और भ्रम के समान मानते हैं।

१-८. जिन्होंने सृष्टि की प्रक्रिया को भली-भाँति समझा, वे कहते हैं कि सृष्टि भगवान की इच्छा मात्र है, परन्तु जो लोग काल पर भरोसा करते हैं, वे प्राणियों के जन्म को काल से मानते हैं।

१-९. कुछ लोग कहते हैं कि सृष्टि भगवान के आनंद के लिए है, जबकि कुछ लोग कहते हैं कि यह उनकी लीला के लिए है। लेकिन यह तो तेजोमय पुरुष का स्वभाव है, जिसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गई हैं, उसे क्या इच्छा हो सकती है?

I-10. तुरीय, जो सभी दुखों का निवारण करने वाला, अविनाशी, सभी भूतों का अद्वैत भगवान माना जाता है, तथा सर्वव्यापी है।

I-11. विश्व और तैजस को कारण और प्रभाव से बद्ध माना जाता है। प्रज्ञा कारण से बद्ध है। लेकिन ये दोनों (अर्थात कारण और प्रभाव) तुरीय में नहीं होते।

I-12. प्रज्ञा न स्वयं को जानती है, न दूसरों को, न सत्य को, न असत्य को। लेकिन वह तुरीय सदैव सर्वज्ञ है।

I-13. द्वैत का अज्ञान प्रज्ञा और तुरीय दोनों में समान है। प्रज्ञा में कारण स्वरूप की निद्रा होती है, जबकि तुरीय में वह निद्रा नहीं होती।

I-14. प्रथम दो (अर्थात विश्व और तैजस) स्वप्न और सुषुप्ति से सम्बन्धित हैं, किन्तु प्रज्ञा स्वप्न से रहित सुषुप्ति से सम्बन्धित है। ब्रह्म के ज्ञाता तुरीय अवस्था में न तो सुषुप्ति देखते हैं और न स्वप्न।

I-15. स्वप्न उसका है जो गलत देखता है और निद्रा उसका है जो वास्तविकता को नहीं जानता। जब इन दोनों की मिथ्या धारणा समाप्त हो जाती है, तब तुरीय अवस्था प्राप्त होती है।

I-16. जब अनादि माया के प्रभाव में सोया हुआ जीवात्मा जागृत होता है, तब वह (तुरीय अर्थात्) अजन्मा, निद्रारहित, स्वप्नरहित और अद्वैत को प्राप्त करता है।

I-17. यदि कोई अद्भुत जगत् हो, तो निस्संदेह उसका अस्तित्व समाप्त हो जाना चाहिए। यह द्वैत केवल भ्रम है; वास्तव में यह अद्वैत है।

I-18. यदि किसी ने इसकी कल्पना की है, तो यह धारणा (जैसे कि शिक्षक, शिक्षाप्राप्त और शास्त्र) लुप्त हो जाएगी। यह धारणा (शिक्षक आदि की) शिक्षा के उद्देश्य से है। जब (सत्य का) साक्षात्कार हो जाता है, तब द्वैत नहीं रहता।

1-19. जब विश्व का अ अक्षर से तादात्म्य माना जाता है, अर्थात् जब विश्व का अ अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब प्रथम होने का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा सर्वव्यापकता का सामान्य लक्षण भी स्पष्ट दिखाई देता है।

1-20. जब तैजस का उ अक्षर से तादात्म्य माना जाता है, अर्थात् जब तैजस का उ अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब श्रेष्ठता का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा मध्यवर्ती स्थिति भी स्पष्ट दिखाई देती है।

1-21. प्रज्ञा का म से तादात्म्य माना जाने की स्थिति में, अर्थात् जब प्रज्ञा का म अक्षर से तादात्म्य स्वीकार किया जाता है, तब माप होने का सामान्य लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है, तथा अवशोषण का सामान्य लक्षण भी स्पष्ट दिखाई देता है।

1-22. जो तीनों अवस्थाओं में समानता को निश्चयपूर्वक जान लेता है, वह सब प्राणियों द्वारा पूज्य और पूजनीय हो जाता है, तथा महान ऋषि भी हो जाता है।

I-23.अ अक्षर विश्व की ओर ले जाता है, और उ अक्षर तैजस की ओर ले जाता है।फिर म अक्षर प्रज्ञा की ओर ले जाता है।जो अक्षर से मुक्त है, उसके लिए कोई प्राप्ति नहीं है।

I-24.ओम को एक-एक करके जानना चाहिए।इसमें कोई संदेह नहीं है कि (आत्मा के) ये सभी अक्षर (ओम के) ही हैं।ओम को एक-एक करके जानने के बाद, किसी अन्य विषय पर विचार नहीं करना चाहिए।

I-25.ओम में मन को स्थिर करो, क्योंकि ओम ही ब्रह्म है, निर्भय है।जो व्यक्ति ओम में सदा स्थिर रहता है, उसके लिए यह एक ही बात है। हीं कोई भय नहीं है।

I-26. ॐ वास्तव में निम्न ब्रह्म है; ॐ को उच्चतर (ब्रह्म) भी माना जाता है। ॐ कारण रहित, भीतरी और बाह्य रहित, कार्य रहित और अविनाशी है।

I-27. ॐ वास्तव में सबका आदि, मध्य और अंत है। ॐ को इस प्रकार जानने पर, व्यक्ति तुरन्त आत्मा से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है।

I-28. ॐ को सबके हृदय में निवास करने वाला ईश्वर जानना चाहिए। सर्वव्यापी ॐ को जानने पर बुद्धिमान व्यक्ति शोक नहीं करता।

I-29. जो ॐ को जानता है, जो अपरिमित, अनंत परिमाण वाला और मंगलमय है, क्योंकि उसमें सभी द्वैत समाप्त हो जाते हैं, वह ॐ ही है, अन्य कोई नहीं।

II. वैतथ्य प्रकरण

II-1. बुद्धिमान व्यक्ति स्वप्न में सभी वस्तुओं की असत्यता की घोषणा करता है, क्योंकि वे (शरीर में) स्थित हैं और (इसलिए भी) क्योंकि वे सीमित स्थान में सीमित हैं।

II-2. चूंकि अवधि कम होती है, इसलिए व्यक्ति उस स्थान पर जाकर नहीं देख सकता। साथ ही, प्रत्येक स्वप्नदर्शी, जब जागृत होता है, तो उस स्थान (स्वप्न) में नहीं रहता।

II-3. रथ आदि का अस्तित्व न होना (स्वप्न में देखा गया) तर्क की दृष्टि से (श्रुति में) सुना जाता है। ब्रह्म के ज्ञाता कहते हैं कि इस प्रकार (तर्क के माध्यम से) प्राप्त हुई असत्यता स्वप्न के संदर्भ में (श्रुति द्वारा) प्रकट होती है।

II-4. जाग्रत अवस्था में भी वस्तुओं की असत्यता होती है। जैसे वे स्वप्न में असत्य हैं, वैसे ही जाग्रत अवस्था में भी असत्य हैं। स्थानिक सीमा के कारण शरीर के भीतर स्थान के कारण (स्वप्न में) वस्तुएं भिन्न होती हैं।

II-5. ज्ञानी कहते हैं कि जाग्रत और स्वप्न की अवस्थाएं समान हैं, वस्तुओं की समानता की दृष्टि से (दोनों अवस्थाओं में देखी गई) और अनुमान के सुविदित आधार की दृष्टि से।

II-6. जो आदि और अन्त में असत्य है, वह वर्तमान में (अर्थात् मध्य में) अवश्य है। वस्तुएँ यद्यपि असत्य का चिह्न धारण करती हैं, फिर भी वे सत्य प्रतीत होती हैं।

II-7. स्वप्न में उनकी उपयोगिता विपरीत है। अतः आदि और अन्त होने के आधार पर वे निश्चित रूप से असत्य मानी जाती हैं।

II-8. स्वप्न में असामान्य वस्तुएँ देखना स्वप्नदर्शी का गुण है, जैसा कि स्वर्ग में रहने वालों का है। वह वहाँ जाकर इन्हें देखता है, जैसे कोई भली-भाँति इस लोक में देखता है।

II-9. स्वप्न में भी मन (चित्त) द्वारा भीतर जो कल्पना की जाती है, वह असत्य है, जबकि मन द्वारा बाहर जो ग्रहण किया जाता है, वह सत्य है। परन्तु ये दोनों ही असत्य दिखाई पड़ते हैं।

II-10. जाग्रत अवस्था में भी मन द्वारा भीतर जो कल्पना की जाती है, वह असत्य है, जबकि मन द्वारा बाहर जो ग्रहण किया जाता है, वह सत्य है। इन दोनों को असत्य मानना युक्तिसंगत है।

II-11. यदि दोनों अवस्थाओं के विषय मिथ्या हों, तो इन सबको कौन समझता है और फिर कौन उनकी कल्पना करता है?

II-12. स्वयं प्रकाशमान आत्मा अपनी माया से स्वयं ही अपनी कल्पना करता है और वही सब विषयों को जानता है। यह वेदान्त-ग्रन्थों का एक निश्चित तथ्य है।

II-13. भगवान ने मन में स्थित सांसारिक विषयों की अनेक रूपों में कल्पना की। मन को बाहर की ओर मोड़कर वे अनेक प्रकार के स्थायी विषयों (तथा अनित्य पदार्थों) की कल्पना करते हैं। इस प्रकार भगवान कल्पना करते हैं।

II-14. जो वस्तुएँ विचार के रहने तक भीतर रहती हैं और जो वस्तुएँ बाह्य हैं तथा दो समय-बिन्दुओं के अनुरूप हैं, वे सब केवल कल्पनाएँ हैं। (उनके बीच) भेद किसी और कारण से नहीं है।
II-15. जो वस्तुएँ मन में अप्रकट प्रतीत होती हैं और जो बाहर प्रकट प्रतीत होती हैं, वे सब केवल कल्पनाएँ हैं, उनका भेद इन्द्रियों का भेद है।

II-16. सर्वप्रथम वे जीव की कल्पना करते हैं, फिर बाह्य तथा आन्तरिक विभिन्न पदार्थों की कल्पना करते हैं। जैसा ज्ञान होता है, वैसी ही स्मृति भी होती है।

II-17. जिस प्रकार अंधकार में रस्सी का स्वरूप ज्ञात नहीं होता, उसी प्रकार रस्सी की कल्पना भी की जाती है।साँप, जलरेखा आदि, इसी प्रकार आत्मा की भी कल्पना (विभिन्न वस्तुओं के रूप में) की जाती है।

II-18. जैसे रस्सी का (वास्तविक स्वरूप) ज्ञात हो जाने पर मोह समाप्त हो जाता है और केवल रस्सी ही अपने अद्वैत स्वरूप में रह जाती है, उसी प्रकार आत्मा का भी पता लग जाता है।

II-19. (आत्मा की) कल्पना प्राण आदि अनंत वस्तुओं के रूप में की जाती है। यह प्रकाशमान की माया है, जिससे वह स्वयं मोहित हो जाता है।

II-20. प्राण के ज्ञाता प्राण को (संसार का कारण) मानते हैं, जिसे तत्त्वों के ज्ञाता तत्त्वों को (कारण) मानते हैं। गुण (कारण हैं), गुण के ज्ञाता कहते हैं, जबकि श्रेणी के ज्ञाता श्रेणियों को (ऐसा मानते हैं)।

II-21. दिशाओं के ज्ञाता (जैसे विश्वा) दिशाओं को (कारण) मानते हैं, जबकि इन्द्रिय-विषयों के ज्ञाता इन्द्रिय-विषयों को (कारण) मानते हैं। लोकों के ज्ञाता कहते हैं कि ये लोक (वास्तविक हैं) और देवताओं के ज्ञाता देवताओं को (ऐसा मानते हैं)।

II-22. वैदिक विद्या में पारंगत लोग वेदों को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि यज्ञकर्ता इसे यज्ञ मानते हैं। जो भोक्ता को जानते हैं वे भोक्ता को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि भोग्य वस्तुओं से परिचित लोग उन्हें (वास्तविक) मानते हैं।

II-23. सूक्ष्मता को जानने वाले कहते हैं कि ये सूक्ष्मता (वास्तविक) है, जबकि स्थूल से परिचित लोग इसे (वास्तविक) मानते हैं। (वास्तविकता) साकार है, ऐसा साकार ईश्वर के उपासक कहते हैं, जबकि निराकार के उपासक (वास्तविकता को) निराकार मानते हैं।

II-24. ज्योतिषी काल को (वास्तविक) मानते हैं, जबकि दिशाओं के ज्ञाता दिशाओं को (ऐसा मानते हैं)। वाद-विवाद में दृढ़ रहने वाले लोग यह कहते हैं कि वाद-विवाद (वास्तविकता की ओर ले जाते हैं), जबकि लोकों की आकांक्षा रखने वाले लोग उन्हें (वास्तविक) मानते हैं।

II-25. मन के ज्ञाता इसे (आत्मा) मानते हैं, जबकि बुद्धि के ज्ञाता इसे (ऐसा) मानते हैं। हृदय के ज्ञाता इसे (वास्तविकता) मानते हैं, जबकि इसे जानने वाले इसे पुण्य और पाप मानते हैं।

II-26. कुछ लोग कहते हैं कि पच्चीस श्रेणियाँ (वास्तविकता का निर्माण करती हैं), जबकि अन्य लोग छब्बीस की बात करते हैं।
फिर, कुछ लोग कहते हैं कि इकतीस श्रेणियाँ (वास्तविकता का निर्माण करती हैं), फिर भी कुछ अन्य मानते हैं कि वे अनंत हैं।

II-27. जो लोग (और उनके सुखों को) जानते हैं, वे सुखों में वास्तविकता पाते हैं। जो लोग जीवन के चरणों से परिचित हैं, वे उन्हें (वास्तविक) मानते हैं। व्याकरणविद पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग के शब्दों को (वास्तविकता) मानते हैं, जबकि अन्य लोग (वास्तविकता को) उच्च और निम्न (ब्रह्म) मानते हैं।

II-28. जो लोग सृष्टि के बारे में सब कुछ जानते हैं, वे कहते हैं कि वास्तविकता सृष्टि में निहित है। (वास्तविकता) प्रलय में है, ऐसा जानने वाले कहते हैं, जबकि जो अस्तित्व को जानते हैं, वे (उसे ही वास्तविकता मानते हैं)। ये सभी विचार हमेशा आत्मा पर ही कल्पित होते हैं।

II-29. जो (गुरु) किसी वस्तु को दिखाता है, वह उसे ही (वास्तविकता के रूप में) देखता है। वह वस्तु भी उसके साथ एक हो जाती है, और उसकी रक्षा करती है। तल्लीन होने की वह स्थिति दिखाई गई वस्तु के साथ उसकी आत्म-तादात्म्य में परिणत होती है।

II-30. इन अविभाज्य वस्तुओं के द्वारा (आत्मा से) यह आत्मा पृथक रूप में प्रकट होती है। जो इसे जानता है, वह बिना किसी संदेह के (वेदों का अर्थ) सही रूप से समझ लेता है।

II-31. जैसे स्वप्न और जादू, तथा आकाश में स्थित नगर, (असत्य प्रतीत होते हैं), वैसे ही यह ब्रह्मांड भी वेदांत-ग्रंथों से (असत्य) दिखाई देता है।

II-32. इस आत्मा में प्रलय नहीं है, उत्पत्ति नहीं है, कोई बंधन में नहीं है, कोई मोक्ष के साधन से युक्त नहीं है, कोई मोक्ष की इच्छा नहीं रखता है, तथा कोई मुक्त नहीं है। यही परम सत्य है।

II-33. यह (आत्मा) मिथ्या वस्तु भी मानी जाती है तथा अद्वैत भी। वस्तुओं की कल्पना भी अद्वैत (आत्मा) पर की जाती है। इसलिए अद्वैत शुभ है।

II-34. आत्मा के आधार पर देखा गया यह (जगत) भिन्न नहीं है। न तो यह कभी अपने आप से स्वतंत्र है, न ही (आत्मा से) कुछ भिन्न या अविभाज्य है। इस प्रकार सत्य के जानने वाले जानते हैं।

II-35. आसक्ति, भय और क्रोध से रहित तथा वेदों में पारंगत ऋषियों द्वारा इस आत्मा का साक्षात्कार किया जाता है, जो सभी कल्पनाओं से परे है, जिसमें प्रचण्ड जगत् का अस्तित्व समाप्त हो जाता है तथा जो अद्वैत है।

II-36. अतः इस प्रकार जानकर मनुष्य को अद्वैत पर अपनी स्मृति स्थिर करनी चाहिए (अर्थात् उस पर पूरा ध्यान देना चाहिए)। अद्वैत को प्राप्त करके मनुष्य को मूर्ख की तरह आचरण करना चाहिए।

II-37. तपस्वी को स्तुति, वंदना तथा कर्मकाण्ड से मुक्त रहना चाहिए। शरीर और आत्मा ही उसका आधार होना चाहिए तथा उसे जो संयोग मिले, उस पर निर्भर रहना चाहिए।

II-38. सत्य को आन्तरिक रूप से तथा बाह्य रूप से अनुभव करके मनुष्य को सत्य से तादात्म्य कर लेना चाहिए, सत्य से आनन्द प्राप्त करना चाहिए तथा सत्य से कभी विचलित नहीं होना चाहिए।

III. अद्वैत प्रकरण

III-1. साधक भक्ति का आश्रय लेकर बद्ध ब्रह्म में स्थित रहता है। सृष्टि से पूर्व यह सब अजन्मा ब्रह्म का स्वरूप था। अतः (ऐसी दृष्टि से) मनुष्य संकीर्ण दृष्टिकोण वाला माना जाता है।

III-2. अतः मैं उस ब्रह्म का वर्णन करूँगा जो सीमा से रहित है, अजन्मा है और सदा एक ही है। सुनो कि कोई भी वस्तु किस प्रकार जन्मती नहीं है, यद्यपि वह सब प्रकार से जन्मती हुई प्रतीत होती है।
III-3. आत्मा को जीवों के रूप में विद्यमान कहा गया है, जैसे (अनंत) आकाश घड़ों में सीमित आकाश के रूप में विद्यमान है। इसी प्रकार, उसे

शरीरों के समुच्चय के रूप में विद्यमान कहा गया है, जैसे आकाश घड़ों आदि के रूप में विद्यमान है। यह जन्म के संबंध में दृष्टांत है।

III-4. जैसे जब घड़े आदि का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो उनके भीतर सीमित आकाश आदि अनंत आकाश में लीन हो जाते हैं, वैसे ही यहाँ भी जीवात्माएँ आत्मा में लीन हो जाती हैं।

III-5. जैसे जब किसी घड़े में सीमित आकाश में धूल और धुआँ होता है, तो सभी घड़ों में ऐसा नहीं होता, उसी प्रकार सभी जीवात्माएँ सुख आदि से संबंधित नहीं होतीं।

III-6. यद्यपि रूप, कार्य और नाम यहाँ-वहाँ भिन्न-भिन्न हैं (घड़ों आदि में निहित ईथर के सम्बन्ध में), फिर भी इससे ईथर में कोई अंतर नहीं पड़ता। व्यक्तिगत आत्माओं के सम्बन्ध में भी यही निष्कर्ष है।

III-7. जैसे घड़े के अन्दर का ईथर (अनंत) ईथर का रूपान्तरण या अंग नहीं है, वैसे ही व्यक्तिगत आत्मा कभी भी (परम) आत्मा का रूपान्तरण या अंग नहीं है।

III-8. जैसे बच्चों के लिए आकाश मैल से मैला हो जाता है, वैसे ही मूर्खों के लिए आत्मा अशुद्धियों से मैल हो जाती है।

III-9. आत्मा अपनी मृत्यु और जन्म, आने-जाने तथा सभी शरीरों में अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में ईथर से भिन्न नहीं है।

III-10. सभी समुच्चय (जैसे शरीर) आत्मा की माया द्वारा स्वप्न के समान निर्मित होते हैं। चाहे वे श्रेष्ठ हों या समान, उनकी वास्तविकता को सिद्ध करने का कोई आधार नहीं है।

III-11. तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्न से बने कोशों की वैयक्तिक आत्मा का वर्णन किया गया है, जो कि परम आत्मा के समान है, जैसा कि हम पहले ही आकाश के उदाहरण से स्पष्ट कर चुके हैं।

III-12. जिस प्रकार यह कहा गया है कि पृथ्वी और उदर में स्थित आकाश एक ही है, उसी प्रकार मधु-ब्राह्मण (बृहदारण्यक उपनिषद्) में परम ब्रह्म को भी प्रत्येक दो (अर्थात् साकार और पारलौकिक) के संदर्भ में एक ही बताया गया है।

III-13. चूँकि जीव और परम आत्मा में अभेद की प्रशंसा उनकी एकता के आधार पर की गई है, तथा चूँकि विभिन्नता की निन्दा की गई है, इसलिए वह (अद्वैत) ही युक्तिसंगत है।

III-14. सृष्टि के विवेचन (उपनिषदों में) से पहले (श्रुति में) जो जीवात्मा और परमात्मा की पृथकता घोषित की गई है, वह भविष्य के परिणाम की दृष्टि से गौण अर्थ में है, क्योंकि यदि इसे प्राथमिक अर्थ में माना जाए तो यह (पृथक्ता) उपयुक्त नहीं है।

III-15. पृथ्वी, सोना, चिंगारी आदि (के दृष्टांतों) के माध्यम से जो सृष्टि भिन्न रूप से प्रस्तुत की गई है, वह (केवल) विचार (पहचान) को प्रकट करने का साधन है। परंतु अनेकता किसी भी प्रकार से विद्यमान नहीं है।

III-16. जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं - निम्न, मध्यम और उच्च। यह ध्यान उनके लिए करुणावश कहा गया है।

III-17. द्वैतवादी, अपने-अपने निष्कर्षों से प्राप्त अपने-अपने सिद्धांत में दृढ़ निश्चयी होकर एक-दूसरे का विरोध करते हैं। परंतु यह (अद्वैतवादी का दृष्टिकोण) उनसे किसी प्रकार का विरोध नहीं करता।

III-18. अद्वैत ही वास्तव में परम सत्य है, क्योंकि द्वैत को उसका उत्पाद कहा गया है। उनके लिए द्वैत दोनों (सत्य और अवास्तविक) का निर्माण करता है। इसलिए यह (हमारा दृष्टिकोण) उनके (उनके) विपरीत नहीं है।

III-19. यह अजन्मा (आत्मा) माया के माध्यम से परिवर्तन से गुजरता है, किसी अन्य तरीके से नहीं। क्योंकि, यदि परिवर्तन एक वास्तविकता है, तो अमर नश्वर होने की प्रवृत्ति होगी।

III-20. विवादकर्ता जन्म के संदर्भ में अजन्मा आत्मा के बारे में सोचते हैं। जो आत्मा अजन्मा और अमर है, वह नश्वरता की ओर कैसे प्रवृत्त हो सकती है?

III-21. अमर कभी नश्वर नहीं हो सकता। इसलिए, नश्वर भी कभी अमर नहीं हो सकता। क्योंकि किसी के स्वभाव में परिवर्तन कभी किसी भी तरह से नहीं हो सकता।

III-22. जो अमर है, वह उस व्यक्ति के अनुसार अपरिवर्तित कैसे रह सकता है, जिसके लिए स्वभाव से अमर वस्तु पैदा हो सकती है, क्योंकि वह (उसके विचार में) एक उत्पाद है?

III-23. श्रुति यथार्थ में तथा माया द्वारा सृष्टि को समान रूप से समर्थन देती है। जो श्रुति द्वारा निश्चित किया गया है तथा तर्क द्वारा समर्थित है, वही सत्य है, अन्य कुछ नहीं।

III-24. चूँकि श्रुति कहती है, "यहाँ अनेकता नहीं है", "भगवान माया के कारण (विविध रूप से) देखे जाते हैं", तथा "आत्मा यद्यपि अजन्मा है, (अनेक प्रकार से जन्म लेती हुई प्रतीत होती है)", अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वह माया द्वारा जन्मा है।

III-25. हिरण्यगर्भ की निन्दा करने से सृष्टि का निषेध होता है। "कौन इसे उत्पन्न करेगा?" कहने से कार्य-कारण का निषेध होता है।

III-26. (ब्रह्म की) अज्ञानता के आधार पर, (उसकी समझ के लिए) सभी पूर्ववर्ती निर्देश श्रुति द्वारा अस्वीकृत कर दिए जाते हैं, "यह आत्मा वह है जिसे 'यह नहीं, यह नहीं' कहा गया है"। अतः अजन्मा आत्मा स्वयं ही प्रकट हो जाती है।

III-27. जो विद्यमान है उसका जन्म केवल माया के द्वारा होता है, वास्तविकता में नहीं। जो यह समझता है कि कोई वस्तु वास्तविकता में जन्म लेती है, उसे यह जानना चाहिए कि जो पहले से ही जन्म ले चुका है, वह पुनः जन्म लेता है।

III-28. जो अस्तित्वहीन है उसका जन्म न तो माया से होता है, न ही वास्तविकता में, क्योंकि बांझ स्त्री का पुत्र न तो माया से होता है, न ही वास्तविकता में।

III-29. जैसे स्वप्न में मन माया के द्वारा कंपन करता है, मानो दोहरी भूमिकाएँ निभाता हो, वैसे ही जाग्रत अवस्था में मन माया के द्वारा कंपन करता है, मानो दोहरी भूमिकाएँ निभाता हो।

III-30. इसमें कोई संदेह नहीं है कि स्वप्न में केवल अद्वैत मन ही दोहरी भूमिकाएँ निभाता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी अद्वैत मन दोहरी भूमिकाएँ निभाता हुआ दिखाई देता है।

III-31. जो कुछ भी चलायमान और अचल है, जो इस द्वैत का निर्माण करता है, वह मन द्वारा देखा जाता है, क्योंकि जब मन मन के रूप में नहीं रहता, तो द्वैत कभी नहीं देखा जाता।

III-32. जब मन सत्य अर्थात् आत्मा का साक्षात्कार होने पर कल्पना करना छोड़ देता है, तब वह मन न रहने की स्थिति को प्राप्त होता है और बोधगम्य विषयों के अभाव के कारण अबोधगम्य हो जाता है।

III-33. (ब्रह्म के ज्ञाता) कहते हैं कि जो ज्ञान कल्पना से रहित और अजन्मा है, वह ज्ञेय से भिन्न नहीं है। जिस ज्ञान का एकमात्र विषय ब्रह्म है, वह अजन्मा और नित्य है। अजन्मा (आत्मा) अजन्मा (ज्ञान) से जाना जाता है।

III-34. (इस प्रकार) संयमित, जो सब कल्पनाओं से मुक्त और विवेक से युक्त है, उस मन के आचरण पर ध्यान देना चाहिए। सुषुप्ति में मन भिन्न स्वभाव का होता है और संयम में रहने पर ऐसा नहीं होता।

III-35. सुषुप्ति में मन विलीन हो जाता है, परंतु संयम में रहने पर विलीन नहीं होता। वह (मन) ही ब्रह्म बन जाता है, निर्भय हो जाता है, वह सब ओर से चेतना रूपी प्रकाश से युक्त हो जाता है।

III-36. (ब्रह्म) अजन्मा, निद्राहीन, स्वप्नहीन, नामहीन, निराकार, नित्य-दीप्तिमान और सर्वज्ञ है। (उसके सम्बन्ध में) किसी भी प्रकार का कोई नियमित अभ्यास नहीं हो सकता।

III-37. आत्मा सभी (बाह्य) इन्द्रियों से रहित है, तथा सभी आन्तरिक इन्द्रियों से ऊपर है। वह अत्यंत शान्त, नित्य-दीप्तिमान, दिव्य-लीन, अपरिवर्तनशील और निर्भय है।

III-38. जहाँ कोई विचार नहीं है, वहाँ कोई स्वीकार या अस्वीकार नहीं है। तब आत्मा में स्थित ज्ञान अजन्मा और एकरूपता की स्थिति को प्राप्त करता है।

III-39. यह योग, जिसे किसी भी वस्तु से असंबद्ध कहा गया है, किसी भी प्राणी द्वारा अनुभव करना कठिन है।जो योगीजन निर्भयता में भय देखते हैं, वे उससे डरते हैं।

III-40. सभी योगियों के लिए निर्भयता, दुःख का निवारण, जागरूकता और चिरस्थायी शांति, उनके मन के संयम पर निर्भर है।

III-41. कुश की धार से बूंद-बूंद करके समुद्र को खाली करने के समान अथक प्रयास से मन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

III-42. (उचित) साधनों से कामना और भोग के बीच में उलझे हुए मन को संयम में लाना चाहिए। जब मन नींद में भी पूरी तरह से स्थिर हो जाए, तब भी उसे संयम में लाना चाहिए, क्योंकि नींद कामना के समान ही हानिकारक है।

III-43. यह स्मरण रखते हुए कि सब कुछ दुःख उत्पन्न करने वाला है, मनुष्य को कामना के विषयों के भोग से (अपने मन को) हटा लेना चाहिए। (इसी प्रकार) यह स्मरण रखते हुए कि सब कुछ अजन्मा ब्रह्म है, मनुष्य जन्मा (अर्थात् द्वैत) को अवश्य नहीं देखता।

III-44. गहरी नींद में सोये हुए मन को जगाना चाहिए और विचलित मन को पुनः शांत करना चाहिए। मन को काम-युक्त जानना चाहिए और जब वह समावस्था में आ जाए, तो उसे विचलित नहीं करना चाहिए।

III-45. उस अवस्था में सुख का भोग नहीं करना चाहिए, बल्कि विवेक द्वारा अनासक्त हो जाना चाहिए। जब शांत हुआ मन भटकने लगे, तो उसे प्रयत्नपूर्वक आत्मा से एक कर लेना चाहिए।

III-46. जब मन पुनः विलीन या विचलित नहीं होता, जब वह निश्चल हो जाता है और वस्तुओं के रूप में प्रकट नहीं होता, तब वह वास्तव में ब्रह्म हो जाता है।

III-47. वह परम आनन्द स्वयं की आत्मा में ही विद्यमान है। वह शांत है, मोक्ष के समान है, अवर्णनीय है और अजन्मा है। चूँकि यह अजन्मा ज्ञेय (ब्रह्म) से एक है, इसलिए ब्रह्म के ज्ञाता इसे सर्वज्ञ (ब्रह्म) कहते हैं।

III-48. कोई भी जीव (व्यक्तिगत आत्मा), चाहे वह कोई भी हो, पैदा नहीं होता। इसका कोई कारण (जन्म का) नहीं है। (ऐसा होने पर),यह सर्वोच्च सत्य है जहाँ कुछ भी पैदा नहीं होता है।

IV. अलतसंति प्रकरण (अग्नि को बुझाने पर)

IV-1. मैं उस व्यक्ति को नमन करता हूँ जो मनुष्यों में श्रेष्ठ है और जिसने अपने ज्ञान के द्वारा आकाश के समान व्यक्तिगत आत्माओं को महसूस किया है, जो फिर से आकाश के समान है और ज्ञान की वस्तु से भिन्न नहीं है।

IV-2. मैं उस योग को नमन करता हूँ जो किसी भी चीज़ के साथ स्पर्श से रहित है (जो संबंध को दर्शाता है),जो सभी प्राणियों के सुख में सहायक है और लाभकारी है, और जो विवाद और विरोधाभास से मुक्त है और शास्त्रों द्वारा सिखाया गया है।

IV-3. कुछ विवादी लोग पहले से ही विद्यमान सत्ता के जन्म की कल्पना करते हैं, जबकि कुछ अन्य, अपनी बुद्धि पर गर्व करते हुए, आपस में विरोध करते हुए, जो पहले से ही विद्यमान नहीं है, उसके जन्म की कल्पना करते हैं।

IV-4. जो पहले से ही विद्यमान है, वह जन्म नहीं ले सकता और जो नहीं है, वह भी जन्म नहीं ले सकता।जो लोग इस प्रकार तर्क करते हैं, वे अद्वैतवादी ही हैं और केवल जन्महीनता की घोषणा करते हैं।

IV-5. हम उनके द्वारा प्रकट की गई जन्महीनता का अनुमोदन करते हैं। हम उनसे विवाद नहीं करते। अब, यह सीखो जो सभी विवादों से मुक्त है।

IV-6. विवादी लोग जन्म के आधार पर आत्मा के बारे में सोचते हैं। जो आत्मा अजन्मा और अमर है, वह नश्वरता की ओर कैसे प्रवृत्त हो सकती है?

IV-7. अमर कभी नश्वर नहीं हो सकता। इसी प्रकार, नश्वर कभी अमर नहीं हो सकता। क्योंकि किसी के स्वभाव में परिवर्तन कभी किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता।

IV-8. जो अमर है, वह उस व्यक्ति के अनुसार अपरिवर्तित कैसे रह सकती है, जिसके विचार में स्वभाव से अमर वस्तु का जन्म हो सकता है, क्योंकि वह (उसके विचार में) एक प्रभाव है?

IV-9. प्रकृति शब्द से वह जाना जाता है जो सम्यक सिद्धियों से अस्तित्व में आता है, जो आंतरिक है, जन्मजात है, अजन्मा है, तथा जो अपना स्वरूप नहीं छोड़ता।

IV-10. सभी आत्माएँ स्वभाव से ही क्षय और मृत्यु से मुक्त हैं। परन्तु क्षय और मृत्यु के बारे में सोचने से, तथा
उस विचार में लीन होकर वे (उस स्वभाव से) विचलित हो जाते हैं।

IV-11. जो यह मानता है कि कारण ही परिणाम है, उसके अनुसार कारण का जन्म होना ही चाहिए। जो जन्मा है वह अजन्मा कैसे हो सकता है? जो परिवर्तन के अधीन है वह शाश्वत कैसे हो सकता है?

IV-12. यदि (आपके विचार में) परिणाम कारण से अभिन्न है और यदि, इस कारण से, परिणाम भी अजन्मा है, तो कारण शाश्वत कैसे हो सकता है, क्योंकि वह जन्म लेने वाले परिणाम से अभिन्न है?

IV-13. जो यह मानता है कि परिणाम अजन्मे कारण से जन्मा है, उसके पास कोई उदाहरण (उद्धृत करने के लिए) नहीं है। यदि जन्मा परिणाम किसी अन्य जन्मी वस्तु से जन्मा हुआ माना जाए, तो वह अनंत तक ले जाता है।

IV-14. जो यह मानते हैं कि परिणाम कारण का स्रोत है और कारण परिणाम का स्रोत है, वे कारण और परिणाम के लिए अनादित्व का दावा कैसे कर सकते हैं?

IV-15. जो लोग यह मानते हैं कि कार्य ही कारण का मूल है और कारण ही कार्य का मूल है, उनके अनुसार जन्म संभव है, जैसे पिता पुत्र से जन्म ले सकता है।

IV-16. यदि कारण और कार्य संभव हैं, तो आपको उनके उत्पन्न होने का क्रम ज्ञात करना होगा,क्योंकि यदि वे एक साथ उत्पन्न होते हैं, तो दोनों के बीच कोई संबंध नहीं होता, जैसा कि गाय के सींगों के मामले में होता है।
IV-17. आपका कारण जो कार्य से उत्पन्न होता है, उसे स्थापित नहीं किया जा सकता। जो कारण स्वयं स्थापित नहीं है, वह कार्य कैसे उत्पन्न करेगा?

IV-18. यदि कारण कार्य से उत्पन्न होता है और यदि कार्य कारण से उत्पन्न होता है, तो दोनों में से कौन पहले उत्पन्न हुआ है, जिस पर दूसरे का उद्भव निर्भर करता है?

IV-19. आपकी (उत्तर देने में) असमर्थता अज्ञानता के बराबर है, अन्यथा उत्तराधिकार के क्रम में (आपके द्वारा प्रतिपादित) अंतर होगा। इस प्रकार वास्तव में जन्म का अभाव सभी प्रकार से बुद्धिमान द्वारा प्रकट किया जाता है।

IV-20. जिसे बीज और अंकुर का दृष्टांत कहा जाता है, वह हमेशा मुख्य पद (अभी सिद्ध होना बाकी है) के बराबर होता है। मध्य पद (अर्थात दृष्टांत) जो अप्रमाणित मुख्य पद के बराबर है, उसे अभी सिद्ध होने बाकी प्रस्ताव को स्थापित करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है।

IV-21. पूर्वता और उत्तराधिकार के बारे में अज्ञान जन्महीनता को प्रकट करता है। जो चीज पैदा होती है, उसका पूर्ववर्ती कारण क्यों नहीं समझा जाता है?

IV-22. कोई भी चीज न तो खुद से पैदा होती है और न ही किसी और चीज से। इसी तरह, कोई भी चीज पैदा नहीं होती है, चाहे वह अस्तित्व में हो या न हो या अस्तित्व में और न होने दोनों में से कोई भी चीज पैदा नहीं होती है।

IV-23. कोई कारण अनादि कार्य से पैदा नहीं होता है, न ही कोई कार्य स्वाभाविक रूप से (अनंत कारण से) जन्म लेता है। क्योंकि जिसका कोई कारण नहीं है, उसका कोई जन्म भी नहीं है।

IV-24. ज्ञान का अपना विषय होता है, क्योंकि अन्यथा यह द्वैत का नाश करता है। इसके अतिरिक्त, पीड़ा के अनुभव से, विरोधियों की विचार प्रणाली द्वारा समर्थित बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

IV-25. ज्ञान के कारण की धारणा के अनुसार, उत्तरार्द्ध को बाह्य वस्तुओं पर आधारित माना जाता है। लेकिन वास्तविकता के दृष्टिकोण से, (बाह्य) कारण को कोई कारण नहीं माना जाता है।

IV-26. चेतना वस्तुओं के संपर्क में नहीं है, न ही यह वस्तुओं की उपस्थिति के संपर्क में है। क्योंकि वस्तु निश्चित रूप से अस्तित्वहीन है और वस्तु की उपस्थिति (विचारों का गठन) चेतना से अलग नहीं हैं।

IV-27. चेतना तीनों समय में कभी भी वस्तुओं के संपर्क में नहीं आती है। बिना किसी कारण (यानी, बाहरी वस्तु) के इसकी झूठी आशंका कैसे हो सकती है?

IV-28. इसलिए चेतना पैदा नहीं होती है, न ही इसके द्वारा देखी जाने वाली चीजें पैदा होती हैं। जो इसे जन्म के रूप में देखते हैं, वे आकाश में पैरों के निशान देख सकते हैं।

IV-29. चूँकि जन्म अजन्मा ही होता है (विवादकर्ताओं के अनुसार), अतः अजन्मापन ही उसका स्वभाव है। अतः इस स्वभाव से विचलन किसी भी प्रकार नहीं हो सकता।

IV-30. यदि देहान्तर का अस्तित्व अनादि हो, तो उसका अन्त नहीं हो सकता। और यदि उसका प्रारम्भ हो, तो मोक्ष शाश्वत नहीं हो सकता।

IV-31. जो प्रारम्भ और अन्त में असत्य है, वह वर्तमान में अवश्य ही असत्य है। वस्तुएँ असत्य के समान होते हुए भी सत्य प्रतीत होती हैं।

IV-32. स्वप्न में उनकी उपयोगिता का विरोध होता है। अतः प्रारम्भ और अन्त होने के कारण वे असत्य ही याद किये जाते हैं।

IV-33. स्वप्न में सभी वस्तुएँ अवास्तविक हैं, क्योंकि वे शरीर के भीतर देखी जाती हैं। इस संकीर्ण स्थान में प्राणियों का दर्शन कैसे संभव है?

IV-34. यह कहना उचित नहीं है कि स्वप्न में वस्तुएँ (वास्तव में) उनके पास जाकर देखी जाती हैं, क्योंकि यह यात्रा के लिए आवश्यक समय के नियम के विपरीत है। इसके अलावा, जागने पर कोई भी वस्तु स्वप्न के स्थान पर नहीं रहती।

IV-35. (स्वप्न में) मित्रों और अन्य लोगों के साथ जो चर्चा की गई है (और तय की गई है) उसे जागने पर नहीं दोहराया जाता। स्वप्न में जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह भी जाग्रत अवस्था में नहीं देखा जाता।

IV-36. और स्वप्न में शरीर मिथ्या हो जाता है, क्योंकि दूसरा शरीर (बिस्तर में) देखा जाता है। जैसा शरीर है, वैसी ही चेतना द्वारा जानी जाने वाली सभी चीजें मिथ्या हैं।

IV-37. चूँकि स्वप्न में (वस्तुओं का) अनुभव जाग्रत अवस्था के समान ही होता है, अतः पूर्व को उत्तरार्द्ध के कारण माना जाता है। ऐसी स्थिति में, जाग्रत अवस्था को केवल स्वप्न देखने वाले के लिए ही वास्तविक माना जाता है।

IV-38. ऐसा जन्म स्थापित नहीं है, सब कुछ अजन्मा कहा जाता है। इसके अलावा, किसी भी तरह से वास्तविक से अवास्तविक का जन्म होना संभव नहीं है।

IV-39. जाग्रत अवस्था में अवास्तविक चीजों को देखकर, मनुष्य बहुत प्रभावित होकर उन्हीं चीजों को स्वप्न में देखता है। इसी तरह, स्वप्न में अवास्तविक वस्तुओं को देखकर, मनुष्य उन्हें जाग्रत अवस्था में नहीं देखता।

IV-40. ऐसा कोई अस्तित्वहीन नहीं है जो अस्तित्वहीन का कारण बनता हो, जिस प्रकार विद्यमान वस्तु असत्य का कारण नहीं बनती। कोई भी वास्तविक सत्ता ऐसी नहीं है जो किसी अन्य वास्तविक सत्ता का कारण बने। असत्य वस्तु किस प्रकार वास्तविक वस्तु की उत्पत्ति हो सकती है?

4-41. जिस प्रकार व्यक्ति विवेक के अभाव में जाग्रत अवस्था में अकल्पनीय वस्तुओं को भी वास्तविक मान लेता है, उसी प्रकार स्वप्न में भी विवेक के अभाव में व्यक्ति केवल उसी अवस्था में वस्तुओं को देखता है।

4-42. जो व्यक्ति अपने अनुभव और सही आचरण से सत्त्व के अस्तित्व को मानते हैं और जो अजन्मा से सदैव डरते हैं, उनके लिए बुद्धिमानों ने जन्म के विषय में शिक्षा दी है।

4-43. जो व्यक्ति अजन्मा के भय से तथा द्वैत के बोध के कारण सही मार्ग से विचलित हो जाते हैं, उनके लिए जन्म (सृष्टि) को स्वीकार करने से उत्पन्न होने वाला पाप नहीं होता। यदि कोई पाप होगा भी, तो वह बहुत कम होगा।

4-44. जिस प्रकार जादू से उत्पन्न हाथी को बोध और सही आचरण के आधार पर हाथी कहा जाता है, उसी प्रकार बोध और सही आचरण के कारण कोई वस्तु विद्यमान कही जाती है।

IV-45. जो जन्म के समान प्रतीत होता है, चलायमान प्रतीत होता है, तथा उसी प्रकार गुणयुक्त वस्तु प्रतीत होता है, वह चेतना है जो जन्मरहित, अचल और जड़, शांत और अद्वैत है।

IV-46. इस प्रकार चेतना अजन्मा है, इस प्रकार आत्मा को अजन्मा माना जाता है। जो इस प्रकार अनुभव करते हैं, वे निश्चित रूप से दुर्भाग्य में नहीं पड़ते।

IV-47. जिस प्रकार गतिमान अग्नि-दाग सीधा, टेढ़ा आदि दिखाई देता है, उसी प्रकार चेतना का स्पंदन द्रष्टा और द्रष्टा के रूप में दिखाई देता है।

IV-48. जिस प्रकार गतिहीन अग्नि-दाग प्रकट और जन्म से रहित है, उसी प्रकार स्पंदन से रहित चेतना प्रकट और जन्म से रहित है।

IV-49. जब अग्नि-दाग गति में होता है, तो दृश्य कहीं और से नहीं आते। न तो वे, जब अग्नि-दाग गति से मुक्त होता है, कहीं और जाते हैं, न ही वे उसमें प्रवेश करते हैं।

IV-50. वे पदार्थ की प्रकृति के न होने के कारण अग्नि-दाग से बाहर नहीं गए। चेतना के मामले में भी, दृश्य एक जैसे होने चाहिए, क्योंकि दृश्य के रूप में कोई भेद नहीं हो सकता।

IV-51. जब चेतना गति में होती है, तो दृश्य कहीं और से नहीं आते। न ही वे, जब चेतना गति से मुक्त होता है, कहीं और जाते हैं, न ही वे फिर से उसमें प्रवेश करते हैं।

IV-52. वे पदार्थ की प्रकृति के न होने के कारण चेतना से बाहर नहीं गए, क्योंकि वे प्रभाव और कारण के संबंध के अभाव के कारण हमेशा समझ से परे रहते हैं।

IV-53. एक पदार्थ किसी पदार्थ का कारण हो सकता है और दूसरा किसी अन्य चीज़ का कारण हो सकता है। परन्तु आत्मा को न तो पदार्थ माना जा सकता है और न ही अन्य सभी से भिन्न कोई अन्य वस्तु।

IV-54. इस प्रकार बाह्य वस्तुएँ चेतना से उत्पन्न नहीं होतीं, न ही चेतना बाह्य वस्तुओं से उत्पन्न होती है। इस प्रकार बुद्धिमानों ने कारण और प्रभाव की अजन्माता को निश्चित किया है।

IV-55. जब तक कारण और प्रभाव के प्रति मोह है, तब तक कारण और प्रभाव अस्तित्व में आते हैं। जब कारण और प्रभाव के प्रति मोह समाप्त हो जाता है, तब कारण और प्रभाव उत्पन्न नहीं होते।

IV-56. जब तक व्यक्ति कारण और प्रभाव में पूर्णतः लीन रहता है, तब तक देहान्तरण जारी रहता है। जब कारण और प्रभाव में लीनता समाप्त हो जाती है, तब व्यक्ति देहान्तरण से नहीं गुजरता।

IV-57. सापेक्षिक स्तर (सोचने के) से सब कुछ जन्मा हुआ प्रतीत होता है, इसलिए शाश्वत नहीं है। निरपेक्ष स्तर (बोध के) से सब कुछ अजन्मा (आत्मा) है, इसलिए विनाश जैसा कुछ नहीं है।

IV-58. इस प्रकार जन्म लेने वाली आत्माएँ वास्तव में जन्म नहीं लेतीं। उनका जन्म माया के माध्यम से वस्तु के जन्म के समान होता है। और वह माया फिर अस्तित्वहीन है।

IV-59. जिस प्रकार एक जादुई बीज से उसी प्रकृति का अंकुर निकलता है जो न तो स्थायी है और न ही विनाशशील, उसी प्रकार वस्तुओं के संबंध में भी तर्क लागू होता है।

IV-60. सभी जन्महीन संस्थाओं के मामले में स्थायी और अस्थाई शब्दों का कोई अनुप्रयोग नहीं हो सकता। जहाँ शब्दों से वर्णन नहीं हो पाता, वहाँ किसी भी संस्था के बारे में विवेकपूर्ण ढंग से बात नहीं की जा सकती।

IV-61. जैसे स्वप्न में चेतना भ्रम के माध्यम से कंपन करती है, मानो स्वभाव से द्वैत हो, वैसे ही जाग्रत अवस्था में चेतना भ्रम के माध्यम से कंपन करती है, मानो द्वैत रूप से युक्त हो।

IV-62. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि अद्वैत चेतना ही स्वप्न में द्वैत के रूप में दिखाई देती है।इसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी अद्वैत चेतना निस्संदेह द्वैत के रूप में दिखाई देती है।

IV-63. स्वप्न-भूमि में विचरण करते हुए स्वप्नदर्शी हमेशा अंडों से या नमी से उत्पन्न प्राणियों को दसों दिशाओं में विद्‌यमान देखता है।

IV-64. स्वप्नदर्शी की चेतना में बोधगम्य इन (प्राणियों) का उसकी चेतना से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार स्वप्नदर्शी की यह चेतना केवल स्वप्नदर्शी के लिए बोध का विषय मानी जाती है।

IV-65. जाग्रत मनुष्य, जाग्रत स्थानों में विचरण करते हुए, सदैव अण्डों से या नमी से उत्पन्न प्राणियों को दसों दिशाओं में विद्‌यमान देखता है।

IV-66. जाग्रत मनुष्य की चेतना में बोधगम्य इन (प्राणियों) का उसकी चेतना से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार जाग्रत मनुष्य की यह चेतना केवल जाग्रत मनुष्य के लिए बोध का विषय मानी जाती है।

IV-67. ये दोनों एक दूसरे के लिए बोधगम्य हैं। "क्या इसका अस्तित्व है?" (ऐसे प्रश्न के उत्तर में) "नहीं" कहा जाता है। ये दोनों ही वैध प्रमाण से रहित हैं, तथा प्रत्येक को केवल दूसरे के विचार से ही बोधगम्य किया जा सकता है।

IV-68. जिस प्रकार स्वप्न में देखा गया प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-69. जिस प्रकार जादू से उत्पन्न प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-70. जिस प्रकार मन्त्र-मंत्र और औषधि से उत्पन्न कृत्रिम प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है, उसी प्रकार ये सभी प्राणी भी उत्पन्न होते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

IV-71. कोई भी प्राणी न तो जन्म लेता है और न ही उसका कोई स्रोत होता है। यह वह परम सत्य है, जहाँ कुछ भी उत्पन्न नहीं होता।

IV-72. विषय-वस्तु सम्बन्ध में निहित यह द्‌वैत चेतना के स्पंदन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पुनः, चेतना विषय-वस्तु रहित है और इसलिए उसे सदैव अनासक्त घोषित किया जाता है।

IV-73. जो कल्पित अनुभवजन्य दृष्टि होने के कारण विद्यमान है, वह वास्तव में विद्यमान नहीं है। फिर, जो अन्य विचारधाराओं द्वारा लाए गए अनुभवजन्य दृष्टिकोण के आधार पर मौजूद है, वह वास्तव में मौजूद नहीं है।

IV-74. चूँकि आत्मा, अन्य विचारधाराओं द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार, एक कल्पित अनुभवजन्य दृष्टिकोण से जन्म लेती है, इसलिए उस अनुभवजन्य दृष्टिकोण के अनुरूप यह कहा जाता है कि आत्मा अजन्मा है; किन्तु परम सत्य की दृष्टि से वह अजन्मा भी नहीं है।

IV-75. अवास्तविक वस्तुओं के प्रति आकर्षण मात्र है, यद्यपि द्वैत नहीं है। द्वैत के अभाव को अनुभव कर लेने पर कारण के अभाव में मनुष्य पुनः जन्म नहीं लेता।

IV-76. जब कोई कारण नहीं होता - श्रेष्ठ, निम्न या मध्यम - तब चेतना जन्म नहीं लेती। जब कारण ही नहीं है तो परिणाम कैसे हो सकता है?

IV-77. कारणों से रहित चेतना की अजन्मापन स्थिर और निरपेक्ष है, क्योंकि यह सब (अर्थात् द्वैत और जन्म) उसके लिए बोध का विषय था, जो (पहले भी) अजन्मा था।

IV-78. अकारण सत्य को अनुभव कर लेने पर तथा किसी भी अन्य कारण को प्राप्त करने से बच जाने पर मनुष्य उस निर्भयता की स्थिति को प्राप्त करता है जो शोक और मोह (काम) से रहित होती है।

IV-79. अवास्तविक वस्तुओं के प्रति मोह के कारण चेतना स्वयं को उन वस्तुओं में लगाती है जो समान रूप से अवास्तविक हैं। वस्तुओं के अस्तित्वहीन होने का बोध होने पर चेतना आसक्ति से मुक्त होकर उनसे विरत हो जाती है।

IV-80. तब निश्चलता की स्थिति आती है, जब चेतना आसक्ति से मुक्त हो जाती है और अवास्तविक वस्तुओं में स्वयं को नहीं लगाती। बुद्धिमानों के लिए यही दर्शन का विषय है। यही अभेद की (परम) स्थिति है, और यही अजन्मा तथा अद्वैत है।

IV-81. यह अजन्मा, निद्राहीन, स्वप्नहीन तथा स्वयं प्रकाशमान है। क्योंकि यह सत्ता (आत्मा) अपने स्वभाव से ही सदैव प्रकाशमान है।

IV-82. भगवान को किसी भी वस्तु से प्रेम होने के कारण वह अनायास ही आच्छादित हो जाता है, तथा हर बार कठोर प्रयास से अनावृत होता है।

IV-83. बचकानी कल्पना वाला मनुष्य आत्मा को निश्चित रूप से इस प्रकार ढक लेता है कि वह "है", "नहीं है", "है और नहीं है", अथवा "नहीं है", "नहीं है", तथा इस प्रकार के विचार रखता है कि वह परिवर्तनशील है और अपरिवर्तनशील है, परिवर्तनशील है और अपरिवर्तनशील है और अस्तित्वहीन है।

IV-84. ये चार वैकल्पिक विचार हैं, जिनके मोह के कारण भगवान सदैव छिपे रहते हैं। वे ही सर्वद्रष्टा हैं, जिनके द्वारा भगवान इनसे अछूते देखे जाते हैं।

IV-85. सम्पूर्ण सर्वज्ञता तथा आदि, मध्य और अन्त से रहित अद्वैत ब्रह्मत्व को प्राप्त करके क्या कोई उसके बाद कुछ चाहता है?

IV-86. यह ब्राह्मणों की विनम्रता है; इसे उनका स्वाभाविक संयम कहा गया है। चूँकि स्वभाव से ही उन्होंने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, इसलिए यही उनका संयम है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष शांति।

IV-87. वह द्वैत जो विषय और (उसकी) अनुभूति दोनों के साथ सह-अस्तित्व में है, उसे सामान्य (जागृत) अवस्था कहते हैं। वह अवस्था जिसमें विषय के (वास्तविक उपस्थिति) बिना केवल अनुभूति होती है, उसे सामान्य (स्वप्न) अवस्था कहते हैं।

IV-88. विषय से रहित और अनुभूति से रहित अवस्था असाधारण मानी जाती है। इस प्रकार बुद्धिमानों ने ज्ञान, विषय और ज्ञेय को सदा के लिए घोषित कर दिया है।

IV-89. (तीनों विषयों का) ज्ञान प्राप्त करने और क्रमशः विषयों को जानने पर, यहाँ महान बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए, सदा के लिए सर्वज्ञता की स्थिति होती है।

IV-90. जो त्यागने योग्य हैं, जो प्राप्त करने योग्य हैं, जो ग्रहण करने योग्य हैं और जो निष्प्रभावी बनाने योग्य हैं, उन्हें पहले जानना चाहिए।इनमें से, जो प्राप्त करने योग्य है, उसे छोड़कर, ये तीनों अज्ञान से उत्पन्न कल्पना मात्र माने जाते हैं।

IV-91. यह जानना चाहिए कि सभी आत्माएँ स्वभाव से आकाश के समान और शाश्वत हैं। उनमें कहीं भी, लेशमात्र भी, अनेकता नहीं है।

IV-92. सभी आत्माएँ स्वभाव से ही प्रारम्भ से ही प्रकाशित हैं और उनके लक्षण भली-भाँति निश्चित हैं। जो इस प्रकार ज्ञानार्जन की आवश्यकता से मुक्त हो जाता है, वह अमरत्व के योग्य माना जाता है।

IV-93. सभी आत्माएँ प्रारम्भ से ही शान्त, अजन्मा और स्वभाव से ही सर्वथा पृथक, समान और अविभेद हैं और चूँकि सत्त्व इस प्रकार अजन्मा, अद्‌वितीय और शुद्‌ध है, (इसलिए आत्मा में शान्तता लाने की कोई आवश्यकता नहीं है)।

IV-94. जो लोग सदैव द्‌वैत के मार्ग पर चलते हैं, उनके लिए कभी शुद्‌धि नहीं हो सकती। वे भेद के मार्ग पर चलते हैं और अनेकता की बात करते हैं और इसलिए वे नीच माने जाते हैं।

IV-95. जो लोग अजन्मा और सदा एकरस रहने वाले तत्त्व के विषय में दृढ़ निश्चय रखते हैं, वे इस संसार में महान ज्ञान से युक्त हैं। परंतु सामान्य मनुष्य उसे समझ नहीं सकता।

IV-96. अजन्मा आत्मा में विद्‌यमान ज्ञान अजन्मा और असंबंधित माना जाता है। क्योंकि उस ज्ञान का अन्य वस्तुओं से कोई संबंध नहीं है, इसलिए उसे अनासक्त कहा गया है।

IV-97. यदि किसी वस्तु का जन्म हो, चाहे वह कितनी ही तुच्छ क्यों न हो, तो अज्ञानी मनुष्य के लिए अनासक्ति कभी संभव नहीं होती। फिर उसके लिए आवरण के नाश की बात ही क्या करें?

IV-98. सभी आत्माएँ आवरण से रहित हैं और स्वभाव से ही शुद्‌ध हैं। वे प्रारंभ से ही प्रकाशित और मुक्त हैं। इसलिए उन्हें स्वामी कहा गया है, क्योंकि वे जानने में समर्थ हैं।

IV-99. जो ज्ञानवान और सर्वव्यापी है, उसका ज्ञान वस्तुओं में प्रवेश नहीं करता। और इसलिए आत्मा भी वस्तुओं में प्रवेश नहीं करती। इस तथ्य का उल्लेख बुद्‌ध ने नहीं किया।

IV-100. उस अद्‌वैत अवस्था को अनुभव करके, जो अनुभव करने में कठिन है, गहन, अजन्मा, एकरूप और शांत है, हम उसे यथाशक्ति नमस्कार करते हैं।

ॐ ! हे देवताओं, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें; हम देवताओं की स्तुति करते हुए अपने अंगों से सुदृढ़ शरीर से उस जीवन का आनंद लें, जिसे देवता हमें प्रदान करके प्रसन्न हों। महान यश वाले इंद्र हम पर कृपा करें; सर्वज्ञ (या अत्यधिक धनवान) पूषा हम पर कृपा करें; दुखों को हरने वाले गरुड़ हम पर प्रसन्न हों; बृहस्पति हमें सभी प्रकार की समृद्‌धि प्रदान करें। ॐ ! शांति ! शांति ! शांति ! यहाँ अथर्ववेद में शामिल माण्डूक्योपनिषद् समाप्त होता है।

008 - तैत्तिरीय उपनिषद

स्वामी गम्भीरानंद द्‌वारा अनुवादित ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से द्‌वेष न करें)।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो! मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

शिक्षा वल्ली

I-i-1: मित्र हम पर आनंदित हों। वरुण हम पर आनंदित हों। आर्यमन हम पर आनंदित हों। इंद्र और बृहस्पति हम पर आनंदित हों। लंबी चाल वाले विष्णु हम पर आनंदित हों।

ब्रह्म को नमस्कार। हे वायु, आपको नमस्कार। आप वास्तव में प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। केवल आपको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। मैं आपको धर्म कहूंगा।

मैं तुम्हें सत्य कहूंगा। वह मेरी रक्षा करें। वह गुरु की रक्षा करें। वह मेरी रक्षा करें। वह गुरु की रक्षा करें। ॐ, शांति, शांति, शांति!

I-ii-1: हम उच्चारण के विज्ञान की बात करेंगे। (सीखने वाली चीजें हैं) वर्णमाला, उच्चारण, माप, जोर, एकरूपता, समीपता। इस प्रकार उच्चारण पर अध्याय कहा गया है।

I-iii-1: हम दोनों एक साथ प्रसिद्धि प्राप्त करें। हम दोनों को आध्यात्मिक श्रेष्ठता प्रदान की जाए। अब इसलिए, हम पाँच श्रेणियों के माध्यम से समीपता पर ध्यान बताएंगे - दुनिया से संबंधित, चमकदार चीजें, ज्ञान, संतान और शरीर से संबंधित। इन्हें वे महान समीपता कहते हैं। अब, जहाँ तक दुनिया के ध्यान का संबंध है। पृथ्वी पहला अक्षर है। स्वर्ग अंतिम अक्षर है। आकाश मिलन स्थल है।

I-iii-2-4: वायु कड़ी है। यह दुनिया के संबंध में ध्यान है। इसके बाद चमकती हुई चीज़ों के बारे में ध्यान आता है। अग्नि पहला अक्षर है। सूर्य अंतिम अक्षर है। जल रैली का बिंदु है। बिजली कड़ी है। यह चमकती हुई चीज़ों के बारे में ध्यान है। इसके बाद ज्ञान के बारे में ध्यान आता है। शिक्षक पहला अक्षर है। छात्र अंतिम अक्षर है ज्ञान मिलन-स्थल है। निर्देश कड़ी है। यह ज्ञान के संबंध में ध्यान है। फिर संतान के संबंध में ध्यान है। माँ पहला अक्षर है। पिता अंतिम अक्षर है। संतान केंद्र बिंदु है। पीढ़ी कड़ी है। यह संतान के संबंध में ध्यान है। फिर (व्यक्तिगत) शरीर के संबंध में ध्यान है। निचला जबड़ा पहला अक्षर है।

ऊपरी जबड़ा अंतिम अक्षर है। वाणी मिलन-स्थल है। जीभ कड़ी है। यह (व्यक्तिगत) शरीर के संबंध में ध्यान है। ये महान विरोधाभास हैं। जो कोई भी इन महान विरोधाभासों पर ध्यान करता है, जैसा कि उन्हें समझाया गया है, वह संतान, जानवरों, पवित्रता की महिमा, खाद्य पदार्थ और स्वर्गीय दुनिया के साथ जुड़ जाता है।

I-iv-1-2: वेदों में जो ओम सबसे श्रेष्ठ है, जो सभी लोकों में व्याप्त है, और जो अमर वेदों से उनका सार रूप में प्रकट हुआ है, वह (ओम अर्थात् इंद्र), सर्वोच्च भगवान, मुझे बुद्धि से संतुष्ट करें। हे प्रभु, मैं अमरता का पात्र बनूं। मेरा शरीर स्वस्थ हो; मेरी जीभ अत्यंत मधुर हो; मैं कानों से बहुत कुछ सुनूं। आप ब्रह्म के आवरण हैं: आप (सांसारिक) ज्ञान से आच्छादित हैं। मैंने जो सुना है उसकी रक्षा करें। फिर मुझे जो उसकी (यानी समृद्धि की) अपनी है, वह समृद्धि प्रदान करें जो मेरे लिए हमेशा के लिए कपड़े,

मवेशी, भोजन और पेय लाती है, बढ़ती है और जल्दी से पूरा करती है, और जो रोएँदार और अन्य जानवरों से जुड़ी है। स्वाहा। ब्रह्मचारी (यानी छात्र) सभी तरफ से मेरे पास आएं। स्वाहा।

ब्रह्मचारी विभिन्न तरीकों से मेरे पास आएं। स्वाहा। ब्रह्मचारी मेरे पास उचित मार्ग से आएं। स्वाहा। ब्रह्मचारियों में शारीरिक संयम हो। स्वाहा। ब्रह्मचारियों में मानसिक संयम हो। स्वाहा।

I-iv-3: मैं लोगों के बीच प्रसिद्ध हो जाऊं। स्वाहा। मैं धनवानों के बीच प्रशंसनीय बनूं। स्वाहा। हे आराध्य, आप जैसे हैं, वैसे ही मैं आप में प्रवेश करूं। स्वाहा। हे पूज्य, आप जैसे हैं, वैसे ही मुझ में प्रवेश करें। स्वाहा। हे आराध्य, आप जो बहुत विविधतापूर्ण हैं, मैं आप में अपने पापों का शुद्धिकरण करूं। स्वाहा। जैसे जल ढलान से नीचे बहता है, जैसे महीने एक वर्ष में बदल जाते हैं, वैसे ही हे प्रभु, छात्र सभी दिशाओं से मेरे पास आएं। स्वाहा। आप विश्रामगृह की तरह हैं, इसलिए आप मेरे लिए प्रकट होते हैं, आप मेरे पास हर तरह से पहुंचते हैं।

I-v-1-2: भूः, भुवः, सुवः - ये तीन, वास्तव में, व्याहृतियाँ हैं। उनमें से महाकामस्य ने एक चौथे को जाना - जिसका नाम महा है। यह ब्रह्म है; यह आत्मा है। अन्य देवता अंग हैं। भूः वास्तव में यह जगत है। भुवः मध्यवर्ती स्थान है। सुवः दूसरा जगत है। महा सूर्य है; सूर्य के द्वारा ही समस्त लोक फलते-फूलते हैं। भूः वास्तव में अग्नि है। भुवः वायु है। सुवः सूर्य है। महा चन्द्रमा है; चन्द्रमा के द्वारा ही समस्त प्रकाशमान प्राणी फलते-फूलते हैं। भूः वास्तव में ऋग्वेद है। भुवः सामवेद है। सुवः यजुर्वेद है।

प्रथम-पंचम-3: महा ब्रह्म (अर्थात् ॐ) है, क्योंकि ब्रह्म (ॐ) से ही समस्त वेद पोषित होते हैं। भूः वास्तव में प्राण है; भुवः अपान है; सुवः व्यान है; महा अन्न है; क्योंकि अन्न से ही समस्त प्राणशक्तियाँ पोषित होती हैं। ये चार हैं, ये चार हैं। व्याहृतियाँ चार-चार के चार समूहों में विभक्त हैं। जो इन्हें जानता है, वह ब्रह्म को जानता है। सभी देवता उसके लिए उपहार लेकर आते हैं।

1-6-1-2: हृदय में जो स्थान है, उसमें यह पुरुष है, जो ज्ञान के द्वारा साक्षात् होने योग्य है, जो अमर और तेजोमय है। यह जो तालुओं के बीच में थन की तरह लटकता है, उसमें से ब्रह्म का मार्ग बहता है और जहाँ बाल अलग होते हैं, वहाँ पहुँचकर खोपड़ियों को अलग करके निकल जाता है। (उस मार्ग से निकलकर मनुष्य) अग्नि में व्याहृति भूः के रूप में स्थित

होता है; वह वायु में व्याहृति भुवः के रूप में स्थित होता है; सूर्य में व्याहृति सुवः के रूप में स्थित होता है; ब्रह्म में व्याहृति महाः के रूप में स्थित होता है। वह स्वयं स्वतंत्र प्रभुता प्राप्त करता है; वह मन का स्वामी बन जाता है; वह वाणी का अधिपति, नेत्रों का अधिपति, कानों का अधिपति, ज्ञान का अधिपति बन जाता है। इन सबसे ऊपर वह ब्रह्म बन जाता है जो आकाश में समाया हुआ है, जो स्थूल और सूक्ष्म से पहचाना जाता है और जिसका वास्तविक स्वरूप सत्य है, जो जीवन में प्रकट होता है, जिसके अधीन मन आनंद का स्रोत है, जो शांति से समृद्ध है और अमर है। इस प्रकार, हे प्रचिनायोग, तुम आराधना करो।

I-vii-1: पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, प्राथमिक तिमाही और मध्यवर्ती तिमाही; अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्रमा और तारे; जल, जड़ी-बूटियाँ, वृक्ष, आकाश और विराट - ये प्राकृतिक कारकों से संबंधित हैं। फिर व्यक्तिगत कारकों का पालन करें: प्राण, व्यान, अपान, उदान और समान; आंख, कान, मन, वाणी और स्पर्श की इंद्रिय; त्वचा, मांस, मांसपेशियां, अस्थि और मज्जा। इस प्रकार इनकी कल्पना करके, ऋषि ने कहा, "यह सब पाँच कारकों से बना है; व्यक्ति (बाहरी) पाँच गुना कारकों को (व्यक्तिगत) पाँच गुना कारकों से भरता है।

I-viii-1: ॐ ब्रह्म है। ॐ यह सब है। ॐ अनुकरण (यानी सहमति) के शब्द के रूप में प्रसिद्ध है। इसके अलावा, वे उन्हें (देवताओं को) "ॐ, (देवताओं को) सुनाओ" शब्दों के साथ (देवताओं को) सुनाते हैं। वे ॐ से समास गाना शुरू करते हैं। 'ॐ सोम' शब्द का उच्चारण करते हुए वे शास्त्रों का पाठ करते हैं। ब्रह्मा 'ॐ' शब्द से स्वीकृति देते हैं। अग्निहोत्र यज्ञ करने की अनुमति 'ॐ' शब्द से देते हैं। ब्राह्मण जब वेदों का पाठ करने वाला होता है तो 'मैं ब्रह्म को प्राप्त करूँगा' इस भावना से 'ॐ' का उच्चारण करता है। वह वास्तव में ब्रह्म को प्राप्त करता है।

1-9-1: धर्म, विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। सत्य, विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। तप, विद्या और शिक्षा (का सहारा लेना है)। बाह्य इन्द्रियों का संयम तथा विद्या और शिक्षा (का अभ्यास करना है)। अन्तः इन्द्रियों का संयम तथा विद्या और शिक्षा (का सहारा लेना है)। अग्नि (को जलाना है) तथा विद्या और शिक्षा (का पालन करना है)। अग्निहोत्र (करना है) तथा विद्या और शिक्षा (करना है)। अतिथियों का सत्कार करना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। सामाजिक अच्छा आचरण अपनाना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का

अभ्यास करना चाहिए। संतान उत्पन्न करनी चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए।

संतानोत्पत्ति करनी चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। पौत्र का पालन करना चाहिए, तथा विद्या और शिक्षा का अभ्यास करना चाहिए। सत्य ही सब कुछ है - ऐसा रथीतर वंश के सत्यवचन का विचार है। तप ही सब कुछ है - ऐसा पुरुषिष्टी के पुत्र तपोनित्य का विचार है। विद्या और शिक्षा ही सब कुछ है - ऐसा मुद्गल पुत्र नक का विचार है। यही तपस्या है; यही तपस्या है। मैं इस संसार के वृक्ष को शक्ति प्रदान करने वाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत की चोटी के समान ऊँची है। मेरा मूल शुद्ध (ब्रह्म) है। मैं सूर्य में स्थित उस शुद्ध सत्य (आत्मा) के समान हूँ। मैं तेजोमय धन हूँ। मैं उत्तम बुद्धि से युक्त हूँ, अमर और अविनाशी हूँ। इस प्रकार त्रिशंकु ने आत्मज्ञान प्राप्ति के पश्चात कहा था।

11-11: वेदों की शिक्षा देने के पश्चात् गुरु शिष्यों को यह उपदेश देते हैं: "सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। अध्ययन में कोई भूल मत करो। गुरु को इच्छित धन अर्पित करने के पश्चात् वंश का नाश मत करो। सत्य के विषय में कोई असावधानी नहीं होनी चाहिए। धर्माचरण से कोई विमुखता नहीं होनी चाहिए। आत्मरक्षा के विषय में कोई भूल नहीं होनी चाहिए। शुभ कर्मों की उपेक्षा मत करो। अध्ययन और शिक्षण में प्रमाद मत करो।

11-2-4: देवताओं और पितरों के प्रति कर्तव्यों में कोई भूल नहीं होनी चाहिए। तुम्हारी माता तुम्हारे लिए देवी हो। तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए देवता हों। तुम्हारा गुरु तुम्हारे लिए देवता हो। तुम्हारा अतिथि तुम्हारे लिए देवता हो। जो काम निन्दनीय नहीं हैं, उन्हें करना चाहिए, पर दूसरे काम नहीं करने चाहिए। हमारे ये जो प्रशंसनीय कार्य हैं, उन्हें तुम्हें करना चाहिए, पर दूसरे नहीं करने चाहिए।

तुम उन ब्राह्मणों को आसन देकर उनकी थकान दूर करो, जो हम में से अधिक प्रशंसनीय हैं। अर्पण आदर के साथ होना चाहिए, अर्पण अनादर के साथ नहीं होना चाहिए। अर्पण प्रचुर मात्रा में होना चाहिए। अर्पण विनय के साथ होना चाहिए। अर्पण भय के साथ होना चाहिए। अर्पण सहानुभूति के साथ होना चाहिए। फिर, यदि तुम्हें कर्तव्यों या रीति-रिवाजों के संबंध में कोई संदेह हो, तो तुम्हें उन मामलों में ब्राह्मणों के समान आचरण करना चाहिए, जो वहाँ उपस्थित हो सकते हैं और जो योग्य विचारक हैं, जो उन कर्तव्यों और रीति-रिवाजों में निपुण हैं, जो दूसरों के द्वारा निर्देशित नहीं होते, जो क्रूर नहीं हैं और जो पुण्य के इच्छुक हैं।

फिर, जहाँ तक आरोपी लोगों का सवाल है, आपको उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा ब्राह्मण करते हैं, जो वहाँ मौजूद हो सकते हैं और जो योग्य विचारक हैं, जो उन कामों में निपुण हैं।

कर्तव्य और रीति-रिवाज, जो दूसरों के द्वारा निर्देशित नहीं हैं, जो क्रूर नहीं हैं, जो पुण्य के इच्छुक हैं। यही आदेश है। यही निर्देश है। यही वेदों का रहस्य है। यही ईश्वरीय आदेश है। इसी प्रकार ध्यान करना चाहिए। इसी प्रकार इसका ध्यान करना चाहिए।

I-xii-1: मित्र हम पर आनंदित हों। वरुण हम पर आनंदित हों। आर्यमन हम पर आनंदित हों। इंद्र और बृहस्पति हम पर आनंदित हों। लंबे कदमों वाले विष्णु हम पर आनंदित हों। ब्रह्म को नमस्कार। हे वायु, आपको नमस्कार है। आप वास्तव में प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। केवल आपको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। मैं आपको धर्म कहूंगा। मैं आपको सत्य कहूंगा। वे मेरी रक्षा करें। वे गुरु की रक्षा करें। वे मेरी रक्षा करें। वे गुरु की रक्षा करें। ॐ, शांति, शांति, शांति! ब्रह्मानंद वल्ली

II-i: वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें। वह हम दोनों का पोषण साथ-साथ करे। हम दोनों मिलकर शक्ति प्राप्त करें। हमारा अध्ययन उत्कृष्ट हो। हम एक-दूसरे पर दोषारोपण न करें। ॐ! शांति! शांति! शांति!

II-i-1: ब्रह्म को जानने वाला सर्वोच्च को प्राप्त करता है। इसी तथ्य को कहने वाला एक श्लोक है: "ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनंत है। जो व्यक्ति उस ब्रह्म को बुद्धि में विद्यमान, हृदय में परम स्थान में स्थित जानता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ एकरूप होकर सभी इच्छित वस्तुओं का एक साथ आनंद लेता है। उस ब्रह्म से, जो आत्मा है, आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु उत्पन्न हुई।

वायु से अग्नि उत्पन्न हुई। अग्नि से जल उत्पन्न हुआ। जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वी से जड़ी-बूटियाँ उत्पन्न हुईं। जड़ी-बूटियों से अन्न उत्पन्न हुआ। अन्न से मनुष्य उत्पन्न हुआ। वह मनुष्य, जैसा वह है, अन्न के सार का उत्पाद है। उसी में से यह सिर है, यह दक्षिण भाग है; यह उत्तर भाग है; यह आत्मा है; यह स्थिर करने वाली पूँछ है।

इसी तथ्य से संबंधित एक श्लोक यहाँ है:

II-ii-1: पृथ्वी पर विश्राम करने वाले सभी प्राणी वस्तुतः अन्न से ही उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा, वे अन्न पर ही जीवित रहते हैं और अंत में अन्न में ही लीन हो जाते हैं। अन्न वस्तुतः सभी प्राणियों से पहले उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसे सभी के लिए औषधि कहा गया है, जो लोग अन्न को ब्रह्म के रूप में पूजते हैं, वे सभी अन्न प्राप्त करते हैं। अन्न वस्तुतः सभी प्राणियों से पहले उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसे सभी के लिए औषधि कहा गया है। प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर वे अन्न से बढ़ते हैं। चूँकि इसे खाया जाता है और यह प्राणियों को खाता है, इसलिए इसे अन्न कहा जाता है।

जैसा कि पहले कहा गया है, अन्न के सार से बनी इस आत्मा की तुलना में, एक और आंतरिक आत्मा है जो वायु से बनी है। उसी से यह भरी हुई है। यह आत्मा भी मनुष्य रूप वाली है। इसका मनुष्य रूप उस (पहले वाले) के मनुष्य रूप का ही रूप है। इसमें प्राण सिर है, व्यान दक्षिण भाग है, अपान उत्तर भाग है, आकाश आत्मा है, पृथ्वी स्थिर करने वाली पूँछ है। उससे संबंधित यह (निम्न) श्लोक है:

II-III-1: इन्द्रियाँ मुख में प्राण का अनुसरण करके कार्य करती हैं; वहाँ स्थित सभी मनुष्य और पशु इसी प्रकार कार्य करते हैं; चूँकि प्राण पर ही सभी प्राणियों का जीवन निर्भर है, इसलिए इसे सभी का जीवन कहा जाता है; जो लोग प्राण को ब्रह्म के रूप में पूजते हैं, वे पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं; चूँकि प्राण पर ही सभी का जीवन निर्भर है, इसलिए इसे सभी का जीवन कहा जाता है। पूर्ववर्ती (भौतिक) में से यह वास्तव में देहधारी आत्मा है। इस प्राणमय शरीर की तुलना में मन से निर्मित एक और आंतरिक आत्मा है। उसी से यह आत्मा भरी हुई है।

मन से निर्मित वह आत्मा भी मानव आकार की है। मनस शरीर का मानव आकार प्राण शरीर के मानव आकार का ही अनुसरण करता है। मनस-शरीर में यजुर्-मंत्र सिर हैं। ऋग्-मंत्र दाहिना भाग हैं, साम-मंत्र बायाँ भाग हैं, ब्राह्मण भाग आत्मा (धड़) है, अथर्वंगीरस द्वारा देखे गए मंत्र स्थिर करने वाली पूँछ हैं। इस संबंध में एक श्लोक है:

II-IV-1: यदि कोई उस आनंद को जानता है जो ब्रह्म है, तो उसे कभी भी भय नहीं लगता है, जिसे प्राप्त न करने पर (ब्रह्म, मन द्वारा वातानुकूलित), वाणी मन के साथ पीछे लौट जाती है। उस पूर्ववर्ती (प्राण) में से यह (मानसिक) वास्तव में देहधारी आत्मा है। इसकी तुलना में

मानसिक शरीर के अतिरिक्त एक और आंतरिक आत्मा है, जो सत्य ज्ञान से निर्मित है। उसी से यह आत्मा परिपूर्ण है। जैसा कि पूर्वोक्त कहा गया है, इसका आकार वास्तव में मनुष्य जैसा है।

यह पहले वाले के मानव आकार के अनुसार ही मानव रूप में बना है। उसका श्रद्धा ही सिर है, धर्म ही दाहिना भाग है, सत्य ही बायाँ भाग है, एकाग्रता ही आत्मा है, महात् नामक तत्त्व ही स्थिर करने वाली पूँछ है। इस विषय में यहाँ एक श्लोक है: ज्ञान से ही यज्ञ की सिद्धि होती है, तथा वह कर्तव्यों का पालन भी करता है। सभी देवता ज्ञान से युक्त होकर प्रथम ब्रह्म का ध्यान करते हैं।

यदि कोई ज्ञान-ब्रह्म को जान ले, तथा उसमें कोई भूल न करे, तो वह शरीर में सभी पापों का परित्याग कर देता है, तथा सभी सुखों का पूर्ण आनंद उठाता है। उस पहले वाले (मानसिक) ब्रह्म का यह (ज्ञानात्मक) स्वरूप वास्तव में देहधारी आत्मा है। इस ज्ञानात्मक शरीर की अपेक्षा आनन्द से निर्मित एक और अन्तरात्मा है। उसी से यह पूर्ण है। जैसा कि पूर्वोक्त है, इसका भी वास्तव में मनुष्य रूप है। यह पहले वाले के मनुष्य रूप के अनुसार ही मनुष्य रूप में बना है।

आनन्द ही उसका सिर है, भोग दाहिना भाग है, उल्लास बायाँ भाग है; आनन्द ही आत्मा (धड़) है। ब्रह्म ही स्थिर करने वाली पूँछ है। इसी के सम्बन्ध में यहाँ एक श्लोक है:

II-vi-1: यदि कोई ब्रह्म को असत् जानता है, तो वह स्वयं असत् हो जाता है। यदि कोई जानता है कि ब्रह्म है, तो वे उसे उसी (ज्ञान) के कारण विद्यमान मानते हैं। उस पहले वाले (आनन्दमय) का यह देहधारी आत्मा है। अतः आगे ये प्रश्न आते हैं: क्या कोई अज्ञानी मनुष्य यहाँ से विदा होकर परलोक में जाता है (या नहीं जाता)? इसके अलावा, क्या कोई ज्ञानी पुरुष यहाँ से विदा होकर परलोक में पहुँचता है (या नहीं)? उसने (आत्मा ने) चाहा, 'मैं अनेक हो जाऊँ, मैं जन्म लूँ। उसने विचार किया। विचार करके उसने यह सब रचा जो विद्यमान है।

वह (ब्रह्म) रचकर उसी में प्रविष्ट हो गया। और वहाँ प्रविष्ट होकर वह सगुण और निराकार, परिभाषित और अपरिभाषित, धारण करने वाला और अधारण करने वाला, चेतन और अचेतन, सत्य और असत्य बन गया। जो कुछ है वह सब सत्य बन गया। उस ब्रह्म को वे सत्य कहते हैं। इसके विषय में यह श्लोक आता है:

II-vii-1: आरंभ में यह सब अव्यक्त (ब्रह्म) था। उससे व्यक्त उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्म ने स्वयं ही स्वयं को रचा। इसलिए उसे स्वयं रचयिता कहते हैं। जिसे स्वयं रचयिता कहते हैं, वही वास्तव में आनंद का स्रोत है; क्योंकि उस आनन्द के स्रोत के सम्पर्क में आने से ही मनुष्य सुखी हो जाता है। यदि यह आनन्द परम स्थान (हृदय के भीतर) में न हो, तो कौन श्वास लेगा और कौन छोड़ेगा। यह आनन्द ही लोगों को सजीव करता है।

जब भी साधक इस अगोचर, अशरीरी, अवर्णनीय और आधारहीन ब्रह्म में निर्भय होकर स्थित हो जाता है, तो वह निर्भयता की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। जब भी साधक इसमें जरा-सा भी अन्तर उत्पन्न करता है, तो वह भय से ग्रसित हो जाता है। फिर भी, वही ब्रह्म उस तथाकथित विद्वान व्यक्ति के लिए भय का कारण है, जिसमें एकात्मक दृष्टिकोण का अभाव है। इसका उदाहरण यह श्लोक है:

II-viii-1-4: उसके भय से वायु चलती है। भय से ही सूर्य उदय होता है। उसके भय से ही अग्नि, इन्द्र और मृत्यु उत्पन्न होते हैं। तो, यह उस आनंद का मूल्यांकन है: मान लीजिए कि एक युवा व्यक्ति है - जीवन के चरम पर, अच्छा, विद्वान, सबसे तेज, सबसे मजबूत और सबसे ऊर्जावान। मान लीजिए कि उसके लिए यह धरती धन से भरी हुई है। यह मानवीय आनंद की एक इकाई होगी। यदि यह मानवीय आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह मनुष्य-गंधर्वों का एक आनंद है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है।

यदि मनुष्य-गंधर्वों का यह आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह दिव्य-गंधर्वों का एक आनंद है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है। यदि दिव्य-गंधर्वों का आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह उन पितरों का एक आनंद है जिनका संसार शाश्वत है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है।

यदि शाश्वत संसार में रहने वाले पितरों का आनंद सौ गुना बढ़ जाए, तो यह उन पितरों का एक आनंद है जिनका संसार शाश्वत है, और इसी तरह वेदों के अनुयायी का भी जो इच्छाओं से प्रभावित नहीं होता है स्वर्ग में देवताओं के रूप में जन्म लेने वालों का आनंद और इच्छाओं से अछूते वेदों के अनुयायी का भी आनंद।

यदि स्वर्ग में देवताओं के रूप में जन्म लेने वालों का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह कर्म-देवों नामक देवताओं का एक आनंद है, जो वैदिक अनुष्ठानों के माध्यम से देवताओं तक पहुँचते हैं, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है।

यदि कर्म-देवों नामक देवताओं का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह देवताओं का एक आनंद है, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है। यदि देवताओं का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह इंद्र का एक आनंद है, और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है। यदि इंद्र का आनंद सौ गुना बढ़ा दिया जाए, तो यह बृहस्पति का एक आनंद है और यह इच्छाओं से अप्रभावित वेदों के अनुयायी का भी आनंद है।

बृहस्पति का आनन्द यदि सौ गुना बढ़ जाये तो वह विराट का एक आनन्द है, और वेदों के अनुयायी का भी जो कामनाओं से रहित है। विराट का आनन्द यदि सौ गुना बढ़ जाये तो वह हिरण्यगर्भ का एक आनन्द है, और वेदों के अनुयायी का भी जो कामनाओं से रहित है।

II-viii-5: वह जो यहाँ मनुष्य शरीर में है, और वह जो वहाँ सूर्य में है, वे एक हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह इस संसार से विरक्त होकर अन्नमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, प्राणमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, बुद्धिमय इस आत्मा को प्राप्त करता है, आनन्दमय इस आत्मा को प्राप्त करता है। इसकी अभिव्यक्ति में यह श्लोक आता है:

II-ix-1: ब्रह्म के आनन्द को प्राप्त करने के बाद प्रबुद्ध व्यक्ति किसी भी चीज़ से नहीं डरता, जिसे प्राप्त न करने पर मन के साथ-साथ वाणी भी लौट जाती है। उसे यह पश्चाताप नहीं सताता कि मैंने अच्छे कर्म क्यों नहीं किए और बुरे कर्म क्यों किए? जो इस प्रकार ज्ञानी हो जाता है, वह उस आत्मा को बल देता है, जो इन दोनों के समान है; क्योंकि जो इस प्रकार जानता है, वही उस आत्मा को बल दे सकता है, जो वास्तव में ये दोनों है। यही गुप्त शिक्षा है।

भृगु वल्ली तृतीय-1: वरुण के सुप्रसिद्ध पुत्र भृगु अपने पिता वरुण के पास यह (औपचारिक) निवेदन लेकर गए कि हे पूज्यवर, मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। उनसे उन्होंने (वरुण ने) यह कहा: "अन्न, प्राण, नेत्र, कान, मन, वाणी - (ये ब्रह्म के ज्ञान के सहायक हैं)"। उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "उसको जानने की लालसा करो, जिससे ये सभी प्राणी जन्म लेते हैं, जिससे

जन्म लेने के बाद जीवित रहते हैं, जिसकी ओर वे गति करते हैं और जिसमें विलीन हो जाते हैं। वही ब्रह्म है।" उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास करके,

III-ii-1: उन्होंने अन्न (अर्थात विराट, स्थूल ब्रह्मांडीय व्यक्ति) को ब्रह्म के रूप में जाना। क्योंकि यह वास्तव में अन्न से ही है कि ये सभी प्राणी जन्म लेते हैं, अन्न पर ही जन्म लेने के बाद निर्वाह करते हैं और अन्न की ओर बढ़ते हैं और अन्न में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर, वे फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गए। "हे, पूज्य महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाइए"। उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "एकाग्रता के माध्यम से ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ब्रह्म है"। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास करके,

III-iii-1: उन्होंने प्राण शक्ति को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि प्राण शक्ति से ही वास्तव में ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; अस्तित्व में आने के बाद, वे प्राण शक्ति के माध्यम से जीवित रहते हैं; वे प्राण शक्ति की ओर बढ़ते हैं और उसमें प्रवेश करते हैं, ऐसा जानकर, वे फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गए। "हे, पूज्य महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाइए"। उससे उसने (वरुण ने) कहा: “एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है”।

उसने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करने के बाद, उसने मन को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि मन से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद, वे मन द्वारा पोषित होते हैं; और वे मन की ओर बढ़ते हैं और मन में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर, वह फिर से अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध के साथ गया। “हे, श्रद्धेय महोदय, मुझे ब्रह्म सिखाएँ”। उससे उसने (वरुण ने) कहा: “एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की इच्छा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है”। उसने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करने के बाद।

तृतीय पंचम-१: उन्होंने ज्ञान को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि ज्ञान से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद वे ज्ञान से पोषित होते हैं; वे ज्ञान की ओर बढ़ते हैं और ज्ञान में विलीन हो जाते हैं। यह जानकर वे पुनः अपने पिता वरुण के पास (औपचारिक) अनुरोध लेकर गए। "हे पूज्यवर, मुझे ब्रह्म सिखाइए"।

उनसे उन्होंने (वरुण ने) कहा: "एकाग्रता के द्वारा ब्रह्म को जानने की लालसा करो; एकाग्रता ही ब्रह्म है"। उन्होंने एकाग्रता का अभ्यास किया। एकाग्रता का अभ्यास करके उन्होंने आनंद को ब्रह्म के रूप में जाना; क्योंकि आनंद से ही ये सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं; जन्म लेने के बाद वे आनंद से पोषित होते हैं; वे आनंद की ओर बढ़ते हैं और आनंद में विलीन हो जाते हैं।

भृगु द्वारा अनुभव किया गया और वरुण द्वारा प्रदान किया गया यह ज्ञान (अन्न-स्व से प्रारंभ होकर) हृदय गुहा में स्थित परम (आनंद) में समाप्त होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह दृढ़ता से स्थित हो जाता है; वह अन्न का स्वामी और अन्न खानेवाला बन जाता है और वह संतति, पशुधन और पवित्रता की चमक में महान और यश में महान हो जाता है।

III-vii-1: उसका व्रत है कि वह अन्न का तिरस्कार न करे। प्राण ही अन्न है और शरीर भक्षक है; क्योंकि प्राण शरीर में स्थित है। (फिर से, शरीर अन्न है और प्राण ही भक्षक है, क्योंकि) शरीर प्राण पर स्थित है। इस प्रकार (शरीर और प्राण दोनों ही अन्न हैं; और) एक अन्न दूसरे में स्थित है। जो इस प्रकार जानता है कि एक अन्न दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ हो जाता है। वह अन्न का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतति, पशुधन और पवित्रता की चमक में महान और यश में महान हो जाता है।

III-viii-1: उसका व्रत है कि वह अन्न का त्याग न करे। जल ही अन्न है; अग्नि ही भक्षक है; क्योंकि जल अग्नि पर स्थित है। (अग्नि भोजन है और जल भक्षक है, क्योंकि) अग्नि जल में निवास करती है। इस प्रकार एक भोजन दूसरे भोजन में स्थित होता है। जो इस प्रकार जानता है कि एक भोजन दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ रूप से स्थापित हो जाता है। वह भोजन का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतान, पशुधन, पवित्रता की चमक और महिमा में महान हो जाता है।

III-ix-1: उसका व्रत है कि वह भोजन को प्रचुर मात्रा में बनाए। पृथ्वी भोजन है; अंतरिक्ष भक्षक है; क्योंकि पृथ्वी अंतरिक्ष में स्थित है। (अंतरिक्ष भोजन है; और पृथ्वी भक्षक है, क्योंकि) अंतरिक्ष पृथ्वी पर स्थित है। इस प्रकार एक भोजन दूसरे भोजन में स्थित होता है। जो इस प्रकार जानता है कि एक भोजन दूसरे में स्थित है, वह दृढ़ रूप से स्थापित हो जाता है। वह भोजन का स्वामी और भक्षक बन जाता है। वह संतान, पशुधन, पवित्रता की चमक और महिमा में महान हो जाता है।

III-x-1-2: उसका व्रत है कि वह किसी को भी आश्रय के लिए आने से मना नहीं करेगा। इसलिए व्यक्ति को किसी भी तरह से प्रचुर मात्रा में भोजन इकट्ठा करना चाहिए। (और भोजन इकट्ठा करना चाहिए क्योंकि) वे कहते हैं, "उसके लिए भोजन तैयार है"। क्योंकि वह अपनी छोटी उम्र में पका हुआ भोजन सम्मान के साथ अर्पित करता है, इसलिए भोजन छोटी उम्र में सम्मान के साथ उसके हिस्से में आता है।

क्योंकि वह अपनी मध्यम आयु में मध्यम शिष्टाचार के साथ भोजन अर्पित करता है, इसलिए भोजन उसकी मध्यम आयु में मध्यम सम्मान के साथ उसके हिस्से में आता है। क्योंकि वह अपनी बुढ़ापे में अल्प सम्मान के साथ भोजन अर्पित करता है, इसलिए भोजन बुढ़ापे में अल्प विचार के साथ उसके हिस्से में आता है। जो इस प्रकार जानता है (उक्त परिणाम प्राप्त होता है)। (ब्रह्म का ध्यान) वाणी में संरक्षण के रूप में; श्वास लेने और छोड़ने में अधिग्रहण और संरक्षण के रूप में; हाथों में क्रिया के रूप में; पैरों में गति के रूप में; गुदा में उत्सर्जन के रूप में। मानव स्तर पर ध्यान हैं। फिर दिव्य का पालन करें। (ब्रह्म का ध्यान) वर्षा में संतोष के रूप में; बिजली में ऊर्जा के रूप में।

III-x-3-4: ब्रह्म की पूजा जानवरों में प्रसिद्धि के रूप में की जाती है; सितारों में प्रकाश के रूप में; प्रजनन, अमरता और जननेंद्रिय में आनंद के रूप में; अंतरिक्ष में सब कुछ के रूप में। उस ब्रह्म का ध्यान आधार के रूप में करना चाहिए; जिससे वह सहारा पाता है। उस ब्रह्म का ध्यान महान के रूप में करना चाहिए; जिससे वह महान बन जाता है। उस पर विचार के रूप में ध्यान करना चाहिए; जिससे वह सक्षम हो जाता है विचार करो।

उसे नमन के रूप में ध्यान करना चाहिए; इससे आनंददायक चीजें उसके सामने झुक जाती हैं। उसे सबसे श्रेष्ठ मानकर ध्यान करना चाहिए; इससे वह श्रेष्ठ हो जाता है। उसे ब्रह्म के नाश का माध्यम मानकर ध्यान करना चाहिए; इससे ऐसे व्यक्ति से ईर्ष्या करने वाले विरोधी मर जाते हैं, और ऐसे ही शत्रु भी मर जाते हैं जिनसे वह व्यक्ति घृणा करता है। यह जो मनुष्य व्यक्तित्व में है, और वह जो सूर्य में है, वे एक हैं।

III-x-5-6: जो इस प्रकार जानता है, वह इस संसार से विरक्त होकर अन्न से बने इस आत्मा को प्राप्त करता है। फिर अन्न से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर प्राण से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर मन से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर बुद्धि से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, फिर आनंद से बने इस आत्मा को प्राप्त करके, और इच्छानुसार अन्न पर

अधिकार करके और इच्छानुसार सभी रूपों पर अधिकार करके इन लोकों में भ्रमण करता हुआ, वह यह साम गीत गाता रहता है: "हाल्लो ! हाल्लो ! हाल्लो ! मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ; मैं खानेवाला हूँ, मैं खानेवाला हूँ, मैं खानेवाला हूँ; मैं जोड़नेवाला हूँ, मैं जोड़नेवाला हूँ, मैं जोड़नेवाला हूँ; मैं (हिरण्यगर्भ) इस जगत् में सगुण और अगुण से युक्त प्रथम जन्मा हूँ, मैं (विराट के रूप में) देवताओं से भी प्राचीन हूँ।

मैं अमरता की नाभि हूँ। जो मुझे इस प्रकार (भोजन के रूप में) अर्पण करता है, वह मेरी रक्षा करे। जो अर्पण किए बिना अन्न खाता है, उसे मैं अन्न के रूप में खा जाता हूँ। मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को परास्त कर देता हूँ। हमारा तेज सूर्य के समान है। यह उपनिषद् है। ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन प्रबल और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! कृष्ण-यजुर्वेद में सम्मिलित तैत्तिरीयोपनिषद् यहीं समाप्त होता है।

००८ - ऐतरेय उपनिषद

स्वामी गम्भीरानंद द्वारा अनुवादित

ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);मेरा मन वाणी पर आधारित हो।हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दो।तुम दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनो।मैंने जो कुछ सुना है, वह सब मुझसे दूर न हो।मैं इस अध्ययनके द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिटा दूँगा) जोड़ूँगा।मैं वही बोलूँगा जो मौखिक रूप से सत्य है;मैं वही बोलूँगा जो मानसिक रूप से सत्य है।वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करे;वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करे, वह मेरी रक्षा करे;वह वक्ता की रक्षा करे - वह वक्ता की रक्षा करे।

ॐ ! शांति ! शांति !

I-i-1: आरंभ में यह केवल पूर्ण आत्मा थी। और कुछ भी नहीं था जो पलक झपकाता हो। उसने सोचा, "मैं लोकों की रचना करूँ।"

1-1-2: उसने इन लोकों की रचना की, अर्थात् अम्भस, मरीचि, मर, आपः। जो स्वर्ग से परे है, वह अम्भस है। स्वर्ग उसका आधार है। आकाश मरीचि है। पृथ्वी मर है। नीचे जो लोक हैं, वे आपः हैं।

1-1-3: उसने सोचा, "तो ये लोक हैं। मैं लोकों के रक्षकों की रचना करूँ।" जल से ही मनुष्य रूप का एक पिंड एकत्र करके उसने उसे आकार दिया।

1-1-4: उसने अपने (अर्थात् मानव रूप के विराट) के संबंध में विचार किया। जैसे ही उस (अर्थात् विराट) के बारे में विचार किया जा रहा था, उसका (अर्थात् विराट) मुख अंडे की तरह खुल गया। मुख से वाणी निकली; वाणी से अग्नि निकली। नासिकाएँ खुल गईं; नासिकाओं से घ्राण शक्ति निकली; गंध की इंद्रिय से वायु उत्पन्न हुई। दोनों आंखें अलग हो गईं; आंखों से दृष्टि की इंद्रिय उत्पन्न हुई; दृष्टि की इंद्रिय से सूर्य उत्पन्न हुआ। दोनों कान अलग हो गए; कानों से श्रवण की इंद्रिय उत्पन्न हुई; श्रवण की इंद्रिय से दिशाएं उत्पन्न हुईं। त्वचा उत्पन्न हुई; त्वचा से बाल उत्पन्न हुए (अर्थात बालों से जुड़ी स्पर्श की इंद्रिय); स्पर्श की इंद्रिय से जड़ी-बूटियां और पेड़ उत्पन्न हुए। हृदय ने आकार लिया;

हृदय से अंतःकरण (मन) निकला; अंतःकरण से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। नाभि फट गई; नाभि से उत्सर्जन अंग निकला; उत्सर्जन अंग से मृत्यु निकली। प्रजनन अंग का स्थान फट गया; उससे प्रजनन अंग निकला; प्रजनन अंग से जल निकला।

I-ii-1: ये देवता, जो बनाए गए थे, इस विशाल महासागर में गिर गए। उसने उसे (यानी विराट को) भूख और प्यास के अधीन कर दिया। उन्होंने उससे (यानी सृष्टिकर्ता से) कहा, "हमारे लिए एक निवास प्रदान करें, जहाँ हम भोजन कर सकें।"

I-ii-2: उनके लिए वह (यानी भगवान) एक गाय लाया। उन्होंने कहा, "यह निश्चित रूप से हमारे लिए पर्याप्त नहीं है।" उनके लिए वह एक घोड़ा लाया। उन्होंने कहा, "यह निश्चित रूप से हमारे लिए पर्याप्त नहीं है।"

I-ii-3: उनके लिए वह एक आदमी लाया। उन्होंने कहा "यह अच्छी तरह से बना हुआ है; मनुष्य वास्तव में स्वयं ईश्वर की रचना है। उनसे उन्होंने कहा, "अपने-अपने निवास में प्रवेश करो"।

I-ii-4: अग्नि वाणी के अंग का रूप लेकर मुख में प्रवेश कर गई; वायु घ्राण के अंग का रूप लेकर नासिका में प्रवेश कर गई; सूर्य दृष्टि के अंग के रूप में आंखों में प्रवेश कर गया; दिशाएं श्रवण के अंग बनकर कानों में प्रवेश कर गईं; जड़ी-बूटियां और पेड़ बाल (यानी स्पर्श की इंद्रिय) के रूप में त्वचा में प्रवेश कर गए; चंद्रमा मन के रूप में हृदय में प्रवेश कर गया; मृत्यु अपान (यानी दबाव डालने वाली महत्वपूर्ण ऊर्जा) के रूप में नाभि में प्रवेश कर गई; जल वीर्य (यानी प्रजनन के अंग) के रूप में पीढ़ी के अंग में प्रवेश कर गया।

I-ii-5: भूख और प्यास ने उनसे कहा, "हमारे लिए (कोई निवास) प्रदान करें।" उनसे उन्होंने कहा, "मैं इन्हीं देवताओं के बीच तुम्हारी आजीविका प्रदान करता हूँ; मैं तुम्हें उनके हिस्से में भागीदार बनाता हूँ। इसलिए जब किसी भी देवता के लिए आहुति दी जाती है, तो भूख और प्यास वास्तव में उस देवता के हिस्सेदार बन जाते हैं।

I-iii-1: उन्होंने सोचा, "तो, ये इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के देवता हैं। मुझे उनके लिए भोजन बनाना चाहिए।

I-iii-2: उन्होंने पानी के संबंध में विचार किया। इस प्रकार विचार करने पर पानी से एक रूप विकसित हुआ। जो रूप उत्पन्न हुआ वह वास्तव में भोजन था।

I-iii-3: यह भोजन, जो बनाया गया था, पीछे मुड़ा और भागने का प्रयास किया। उसने इसे वाणी से लेने की कोशिश की। वह इसे वाणी के माध्यम से लेने में सफल नहीं हुआ। यदि वह इसे वाणी से लेने में सफल हो जाता, तो भोजन की बात करने मात्र से ही व्यक्ति संतुष्ट हो जाता।

I-iii-4: उसने उस भोजन को घ्राणेन्द्रिय से पकड़ने का प्रयास किया। वह उसे सूँघकर पकड़ने में सफल नहीं हुआ। यदि वे सूँघकर उसे ग्रहण करने में सफल हो जाते, तो सभी को केवल सूँघकर ही तृप्त हो जाना चाहिए था।

I-iii-5: वे भोजन को आँख से ग्रहण करना चाहते थे। वे उसे आँख से ग्रहण करने में सफल नहीं हुए। यदि वे उसे आँख से ग्रहण करते, तो भोजन को देखने मात्र से ही तृप्त हो जाते।

I-iii-6: वे भोजन को कान से ग्रहण करना चाहते थे। वे उसे कान से ग्रहण करने में सफल नहीं हुए। यदि वे उसे कान से ग्रहण करते, तो भोजन के सुनने मात्र से ही तृप्त हो जाते।

I-iii-7: वे उसे स्पर्श इन्द्रिय से ग्रहण करना चाहते थे। वे उसे स्पर्श इन्द्रिय से ग्रहण करने में सफल नहीं हुए। यदि वे उसे स्पर्श से ग्रहण करते, तो भोजन को छूने मात्र से ही तृप्त हो जाते।

I-iii-8: वे उसे मन से ग्रहण करना चाहते थे। वे उसे मन से ग्रहण करने में सफल नहीं हुए। यदि वे उसे मन से ग्रहण करते, तो भोजन के बारे में सोचने मात्र से ही तृप्त हो जाते।
I-iii-9: वह इसे प्रजनन इंद्रिय के साथ लेना चाहता था। वह इसे प्रजनन इंद्रिय के साथ लेने में सफल नहीं हुआ। यदि वह इसे प्रजनन इंद्रिय के साथ ले जाता, तो केवल भोजन को बाहर निकालने से ही व्यक्ति तृप्त हो जाता।

I-iii-10: वह इसे अपान के साथ लेना चाहता था। उसने इसे पकड़ लिया। यह भोजन का भक्षक है। वह महत्वपूर्ण ऊर्जा जो अपने निर्वाह के लिए भोजन पर निर्भर के रूप में प्रसिद्ध है, यह महत्वपूर्ण ऊर्जा (अपान कहलाती है) है।

I-iii-11: उसने सोचा, "वास्तव में यह मेरे बिना कैसे हो सकता है?" उसने सोचा, "इन दो में से किस रास्ते से मुझे प्रवेश करना चाहिए?" उसने सोचा, "यदि वाणी से उच्चारण होता है, गंध से सूंघना, आंख से देखना, कान से सुनना, स्पर्श से महसूस करना,मन, अपान द्वारा अन्दर खींचने (या दबाने) की क्रिया, प्रजनन इन्द्रिय द्वारा बाहर निकालने की क्रिया, तो मैं कौन (या क्या) हूँ ?"

I-iii-12: इसी छोर को चीरकर वे इसी द्वार से प्रविष्ट हुए। इस प्रवेश द्वार को विद्दति (मुख्य प्रवेश द्वार) कहते हैं। अतः यह आनन्ददायक है। उनके तीन निवास हैं - स्वप्न की तीन (अवस्थाएँ)। यह एक निवास है, यह एक निवास है। यह एक निवास है।

I-iii-13: जन्म लेकर उन्होंने समस्त प्राणियों को प्रकट किया; क्या उन्होंने इसके अलावा कुछ कहा (या जाना) ? उन्होंने इसी पुरुष को ब्रह्म के रूप में, सबसे व्यापक रूप में, इस प्रकार महसूस किया: "मैंने इसे महसूस किया है"।

I-iii-14: अतः उनका नाम इदन्द्र है। वे वास्तव में इदन्द्र के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि वे इदन्द्र हैं, फिर भी वे उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से इन्द्र कहते हैं; क्योंकि देवताओं को अप्रत्यक्ष नाम बहुत प्रिय हैं, देवताओं को अप्रत्यक्ष नाम बहुत प्रिय हैं।

II-i-1: मनुष्य में सबसे पहले आत्मा का गर्भाधान होता है। जो वीर्य है, वह सभी अंगों से उनकी शक्ति के रूप में निकाला जाता है। वह अपनी उस आत्मा को अपने भीतर धारण करता है। जब वह उसे अपनी पत्नी में डालता है, तब वह उसे उत्पन्न करता है। वह उसका पहला जन्म है।

II-i-2: वह पत्नी से उतना ही भिन्न हो जाता है, जितना उसका अपना अंग है। इसलिए (भ्रूण) उसे चोट नहीं पहुँचाता। वह अपने इस आत्मा का पोषण करती है, जो यहाँ (उसके गर्भ में) आया है।

II-i-3: वह, पोषण करने वाली, पोषण के योग्य हो जाती है। पत्नी उस भ्रूण को (जन्म से पहले) धारण करती है। वह (पिता) पुत्र की जन्म के तुरंत बाद, शुरुआत में ही रक्षा करता है। वह पुत्र की जन्म के तुरंत बाद ही रक्षा करता है, इस प्रकार वह इन संसारों की निरंतरता के लिए अपनी रक्षा करता है। क्योंकि इस प्रकार इन लोकों का निरन्तर चलना सुनिश्चित है। यही उसका दूसरा जन्म है।

II-i-4: उसका यह स्वरूप (अर्थात् पुत्र) पुण्य कर्मों के लिए (पिता द्वारा) प्रतिस्थापित किया जाता है।तब उसका यह स्वरूप (अर्थात् पुत्र का पिता) अपने कर्तव्यों का निर्वाह करके तथा आयु में वृद्धि होने पर चला जाता है। उसके चले जाने पर वह पुनः जन्म लेता है। यही उसका (अर्थात् पुत्र का) तीसरा जन्म है।

II-i-5: यह तथ्य ऋषि (अर्थात् मंत्र) द्वारा कहा गया है: "गर्भ में लेटे हुए ही मुझे सभी देवताओं के जन्म का पता चल गया था। सौ लोहे के गढ़ों ने मुझे जकड़ रखा था। तब मैं एक बाज की तरह आत्मज्ञान के बल पर उसमें से निकल गया।" वामदेव ने यह बात माता के गर्भ में लेटे हुए ही कही थी।

II-i-6: जिसने इस प्रकार जान लिया, वह परब्रह्म से एक हो गया और उसने सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लिया (यहाँ तक कि); और फिर शरीर के नाश के पश्चात ऊपर उठकर वह आत्मा के लोक में अमर हो गया। वह अमर हो गया।

III-i-1: वह क्या है जिसे हम इस आत्मा के रूप में पूजते हैं? दोनों में से आत्मा कौन है? क्या वह जिससे कोई देखता है, या जिससे कोई सुनता है, या जिससे कोई गंध सूंघता है, या जिससे कोई वाणी बोलता है, या जिससे कोई मीठा या खट्टा स्वाद लेता है?

III-i-2: यह हृदय (बुद्धि) और यह मन है, जिनका पहले उल्लेख किया गया है। यह चेतना, शासन, लौकिक ज्ञान, मन की उपस्थिति, धारणशीलता, इंद्रिय-बोध, धैर्य, विचार, प्रतिभा, मानसिक पीड़ा, स्मृति, निश्चय, संकल्प, जीवन-क्रियाएँ, लालसा, जुनून और ऐसे अन्य हैं। ये सभी वास्तव में चेतना के नाम हैं।
III-i-3: यह एक (निम्न) ब्रह्म है; यह इंद्र है, यह प्रजापति है; ये सभी देवता हैं, और ये पांच तत्व हैं, अर्थात पृथ्वी, वायु, अंतरिक्ष, जल, अग्नि, और ये सभी (बड़े जीव) हैं, साथ ही छोटे जीव भी हैं, जो दूसरों के उत्पादक हैं और जोड़े में संदर्भित हैं - अर्थात वे जो अंडे से, गर्भ से, पृथ्वी की नमी से पैदा होते हैं, अर्थात घोड़े, मवेशी, मनुष्य, हाथी, और सभी जीव जो चलते हैं या उड़ते हैं और जो नहीं चलते हैं। इन सभी में चेतना है जो उनकी वास्तविकता का दाता है, ये सभी चेतना से प्रेरित हैं, ब्रह्मांड की आंख चेतना है और चेतना ही उसका लक्ष्य है। चेतना ही ब्रह्म है।

III-i-4: इस आत्मा के द्वारा जो चेतना है, वह इस दुनिया से ऊपर चढ़ गया, और उस स्वर्गीय दुनिया में सभी इच्छाओं को पूरा करके, वह अमर हो गया, वह अमर हो गया। ॐ! मेरी वाणी मन पर आधारित (यानी उसके अनुरूप) हो न वाणी पर आधारित हो। हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए। आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें। मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो। मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिट) दूँगा।

मैं जो मौखिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा; मैं जो मानसिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा। वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें; वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करें, वह मेरी रक्षा करें; वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें। ॐ! शांति! शांति! शांति! यहाँ ऋग्वेद में निहित ऐतरेयोपनिषद समाप्त होता है।

009 - छांदोग्य उपनिषद

स्वामी स्वाहनंद द्वारा अनुवादित

ओम! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, जीवन शक्ति और सभी इंद्रियां शक्तिशाली बनें।सभी अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, न ही ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।बिलकुल भी अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।उपनिषदों में बताए गए गुण मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।

ओम! शांति! शांति! शांति!

I-i-1: व्यक्ति को ओम अक्षर का ध्यान करना चाहिए; उद्गीथ, क्योंकि व्यक्ति ॐ से शुरू होने वाले उद्गीथ का गायन करता है। इसके लिए, व्याख्या इस प्रकार है।

I-i-2: इन सभी प्राणियों का सार पृथ्वी है। पृथ्वी का सार जल है। जल का सार वनस्पति है। वनस्पति का सार मनुष्य है। मनुष्य का सार वाणी है। वाणी का सार ऋक् है। ऋक् का सार सामन है। सामन का सार उद्गीथ है।

1-1-3: ॐ अक्षर जिसे उद्गीथ कहते हैं, वह सारों का सार है, सर्वोच्च है, सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है और आठवाँ है।

1-1-4: ऋक् कौन है? सामन कौन है? उद्गीथ कौन है? इस पर अभी विचार किया जा रहा है।

1-1-5: वाणी ही ऋक् है। प्राण ही सामन है। ॐ अक्षर उद्गीथ है। वाणी और प्राण, जो ऋक् और सामन के स्रोत हैं, मिलकर युगल बनते हैं।

1-1-6: यह युगल ॐ अक्षर में जुड़ जाता है। जब भी कोई युगल साथ आता है, तो वे वास्तव में एक दूसरे की इच्छा पूरी करते हैं।

१-१-७: जो इस शब्द को उद्गीथ के रूप में ध्यान करता है, उसे इस प्रकार (पूर्ण करने वाला) जानकर, वह वास्तव में सभी इच्छित उद्देश्यों को पूरा करने वाला बन जाता है।

१-१-८: यह वास्तव में सहमति का शब्द है, क्योंकि जब भी कोई किसी चीज़ के लिए सहमति देता है, तो वह केवल 'ओम' कहता है। केवल सहमति ही समृद्धि है। जो इस शब्द को उद्गीथ के रूप में ध्यान करता है, उसे इस प्रकार (समृद्धि के गुण से संपन्न) जानकर, वह वास्तव में सभी इच्छित उद्देश्यों को बढ़ाने वाला बन जाता है।

१-१-९: इसके साथ तीन गुना ज्ञान होता है; (क्योंकि) ओम् से सुनने का कारण बनता है;ॐ का उच्चारण किया जाता है, ॐ का गान किया जाता है। इसी अक्षर की उपासना के लिए, इसकी महानता और सार के साथ (वैदिक अनुष्ठान किए जाते हैं)।

1-10: जो इसे इस प्रकार जानता है और जो नहीं जानता - दोनों ही इससे कर्म करते हैं। क्योंकि ज्ञान और अज्ञान भिन्न-भिन्न हैं। जो कुछ ज्ञान, श्रद्धा और ध्यान से किया जाता है, वह अधिक फलदायक होता है। यहीं तक इस अक्षर की महानता का स्पष्टीकरण है।

1-2-1: एक समय प्रजापति के वंशज देवता और दानव आपस में युद्ध कर रहे थे। उस युद्ध में देवताओं ने 'इसी से हम उन्हें पराजित करेंगे' का संकल्प करते हुए उदगतिर पुरोहितों का अनुष्ठान किया।

1-2-2: तब उन्होंने नासिका से जुड़े प्राण का ध्यान किया, जिसे उदगीथ कहा जाता है; दानवों ने उसे दुष्टता से छेद दिया। इसलिए, नाक से, मनुष्य सुगंधित और दुर्गंधयुक्त दोनों को सूंघ सकता है, क्योंकि यह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-3: तब उन्होंने वाणी के देवता का ध्यान किया, जो उद्गीता है; राक्षसों ने इसे बुराई से छेदा है।इसलिए, इससे मनुष्य सत्य और असत्य दोनों बोलता है, क्योंकि यह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-4: तब उन्होंने नेत्र के देवता का ध्यान किया, जो उद्गीता है; राक्षसों ने इसे बुराई से छेदा है। इसलिए, आंख से मनुष्य सुंदर और बदसूरत दोनों को देखता है, क्योंकि यह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-5: तब उन्होंने कान के देवता का ध्यान किया, जो उद्गीता है; राक्षसों ने इसे बुराई से छेदा है। इसलिए, कान से मनुष्य सुखद और अप्रिय दोनों को सुनता है, क्योंकि यह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-6: तब उन्होंने मन के देवता का ध्यान किया, जो उद्गीता है; राक्षसों ने इसे बुराई से छेदा है। अतः मन से अच्छे और बुरे दोनों विचार मन में आते हैं, क्योंकि वह बुराई से छेदा गया है।

I-ii-7: तब उन्होंने मुख में स्थित प्राण का ध्यान किया, जो उद्गीथ है। राक्षस उससे टकराकर नष्ट हो गए, जैसे मिट्टी का ढेर कठोर चट्टान से टकराकर नष्ट हो जाता है।

I-ii-8: इस प्रकार मुख में स्थित प्राण नष्ट नहीं हुआ, वह शुद्ध है। जैसे मिट्टी का ढेर कठोर चट्टान से टकराकर नष्ट हो जाता है, वैसे ही वह नष्ट हो जाएगा जो इस (प्राण की शुद्धता) को जानने वाले का अनिष्ट करना चाहता है या जो उस जानने वाले को (वास्तव में) हानि पहुँचाता है, क्योंकि वह कठोर चट्टान के समान है।

I-ii-9: मुख में स्थित इस प्राण से मनुष्य न तो मधुर गंध का अनुभव करता है, न दुर्गंध का, क्योंकि यह पाप से मुक्त है।
इस प्राण से मनुष्य जो खाता या पीता है, उससे भी वह अन्य प्राणों को बनाए रखता है। और मृत्यु के समय इसे न पाकर मुख में स्थित प्राण और उसके आश्रित चले जाते हैं; और इस प्रकार वास्तव में मृत्यु के समय मुख खुलता है।

I-ii-10: अंगिरस ने उस प्राण का उद्गीथ के रूप में ध्यान किया। ऋषिगण इसे ही अंगिरस मानते हैं जो अंगों का सार है।

I-ii-11: इसलिए बृहस्पति ने प्राण का उद्गीथ के रूप में ध्यान किया। ऋषिगण इसे ही बृहस्पति मानते हैं, क्योंकि
वाणी महान है और यह प्राण उसका स्वामी है।

I-ii-12: इसलिए अयास्य ने प्राण का उद्गीथ के रूप में ध्यान किया (इसे स्वयं के साथ पहचानते हुए)। ऋषिगण इसे ही अयास्य मानते हैं क्योंकि यह मुख से निकलता है।

I-ii-13: दलभ के पुत्र बका ने इसे इस प्रकार जाना। इसलिए वे नैमिषा में रहने वाले यज्ञियों के उद्गति-गायक बन गए। उनके लिए उन्होंने उनकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए गाया।

I-ii-14: जो इस प्रकार जानता है और ॐ अक्षर के रूप में उद्गीथ का ध्यान करता है, उसे प्राण मानता है, वह निश्चित रूप से इच्छित वस्तुओं का गायक (और प्रदायक) बन जाता है। यह शरीर के संदर्भ में ध्यान है।

I-iii-1: अब देवताओं के संदर्भ में (उद्गीथ का) ध्यान वर्णित है। जो गर्मी (अर्थात सूर्य) देता है, उसका उद्गीथ के रूप में ध्यान करना चाहिए। वास्तव में, जब वह उगता है, तो वह सभी प्राणियों के लिए उच्च स्वर में गाता है। जब वह उगता है, तो वह अंधकार और भय को दूर करता है। वास्तव में, जो सूर्य को इन गुणों से युक्त जानता है, वह अंधकार और (परिणामस्वरूप) भय को दूर करने वाला बन जाता है।

I-iii-2: मुख में यह प्राण और वह सूर्य एक ही हैं। यह गर्म है और वह गर्म है। लोग इसे स्वर (जो जा रहा है) और उसे स्वर और प्रत्यास्वर (जो जा रहा है और आ रहा है) कहते हैं। इसलिए हमें इस प्राण और उस सूर्य का उद्गीथ के रूप में ध्यान करना चाहिए

I-iii-3: अब, वास्तव में, हमें व्यान का ध्यान उद्गीथ के रूप में करना चाहिए। जो हम बाहर छोड़ते हैं, वह प्राण है और जो हम अंदर लेते हैं, वह अपान है। प्राण और अपान का मिलन व्यान है। जो व्यान है, वह भी वाणी है। इसलिए, हम न तो सांस छोड़ते हैं, न ही अंदर लेते हैं, तब भी हम वाणी बोलते हैं।

I-iii-4: जो वाणी है, वह भी ऋक् है। इसलिए, जब हम न तो सांस छोड़ते हैं, न ही अंदर लेते हैं, तब भी हम ऋक् का उच्चारण करते हैं। जो ऋक् है, वह भी समान है। इसलिए, जब हम न तो सांस छोड़ते हैं, न ही अंदर लेते हैं, तब भी हम समान गाते हैं। जो समान है, वह भी उद्गीथ है। इसलिए, जब हम न तो सांस छोड़ते हैं, न ही अंदर लेते हैं, तब भी हम उद्गीथ गाते हैं।

I-iii-5: इसलिए जो अन्य कार्य शक्ति की आवश्यकता रखते हैं, जैसे घर्षण द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करना, लक्ष्य की ओर दौड़ना, मजबूत धनुष को झुकाना, ये सभी कार्य तब किए जाते हैं, जब व्यक्ति न तो सांस लेता है

और न ही बाहर छोड़ता है। इस कारण से व्यक्ति को उद्गीथ के रूप में व्यान का ध्यान करना चाहिए।

I-iii-6: अब, व्यक्ति को 'उद्गीथ' के अक्षरों का ध्यान करना चाहिए - अर्थात, 'उत', 'गी' और 'था' अक्षरों का। प्राण 'उत' है, क्योंकि प्राण के माध्यम से व्यक्ति उत्पन्न होता है (उत-तिष्ठति)। वाणी 'गी' है, क्योंकि वाणी को शब्द (गिरह) कहा जाता है। भोजन 'था' है, क्योंकि भोजन पर यह सब स्थापित होता है (स्थितम्)।

I-iii-7: स्वर्ग उत है, आकाश गी है, पृथ्वी था है। सूर्य उत है, वायु गी है, अग्नि, था। सामवेद उत है, यजुर्वेद गी है, ऋग्वेद था। उसके लिए वाणी से दूध प्राप्त होता है, जो वाणी का लाभ है। जो व्यक्ति इस प्रकार जानता है तथा 'उद्गीथ' के अक्षरों, अर्थात् 'उत, गी तथा था' का ध्यान करता है, वह अन्न से समृद्ध होता है, तथा अन्न खाने वाला होता है।

I-iii-8: अब कामनाओं की पूर्ति होती है: व्यक्ति को अपने मन में आने वाले विषयों का ध्यान करना चाहिए। उसे उस सामन का चिंतन करना चाहिए, जिसके माध्यम से वह स्तोत्र का गायन करता है।

I-iii-9: व्यक्ति को उस ऋचा का चिंतन करना चाहिए, जिसमें वह सामन होता है, उस ऋषि का, जिसके द्वारा वह स्तोत्र का गायन करता है, तथा उस देवता का, जिसकी वह प्रार्थना करता है।

I-iii-10: व्यक्ति को उस छंद का चिंतन करना चाहिए, जिसमें वह स्तोत्र का गायन करता है, तथा उसे उस स्तोत्र का चिंतन करना चाहिए, जिसके साथ वह स्तोत्र का गायन करता है।

I-iii-11: व्यक्ति को उस दिशा (स्वर्ग) का चिंतन करना चाहिए, जिसकी ओर वह स्तोत्र का गायन करता है।
I-iii-12: अंत में, अपने बारे में सोचकर, उसे सभी दोषों से बचते हुए, अपनी इच्छित वस्तु का चिंतन करते हुए एक स्तोत्र गाना चाहिए। उसकी इच्छा बहुत जल्दी पूरी होगी, जिसकी इच्छा करते हुए वह स्तोत्र गा सकता है।

I-iv-1: व्यक्ति को ॐ अक्षर, उद्गीथ का ध्यान करना चाहिए, क्योंकि ॐ से शुरू होने वाले उद्गीथ का गायन किया जाता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है।

I-iv-2: वास्तव में, देवता मृत्यु से डरकर तीनों वेदों में शरण लेते हैं। उन्होंने खुद को छंदमय स्तोत्रों से ढक लिया। क्योंकि उन्होंने खुद को इनसे ढक लिया, इसलिए छंदमय स्तोत्र को छन्द कहा जाता है।

I-iv-3: जैसे एक मछुआरा पानी में मछली को देखता है, वैसे ही मृत्यु ने ऋक्, सामन और यजु से संबंधित (संस्कार) देवताओं को देखा। वे भी यह जानकर ऋक्, सामन और यजुस् से उठकर स्वर (ॐ अक्षर) में प्रविष्ट हो गए।

I-4-4: वास्तव में, जब कोई ऋक् सीखता है, तो वह जोर से 'ॐ' का उच्चारण करता है।सामन और यजुस् के साथ भी ऐसा ही है।यह ॐ अक्षर वास्तव में स्वर है; यह फिर अमरता और निर्भयता है।स्वर में प्रविष्ट होकर (अर्थात ध्यान करके) देवता अमर और निर्भय हो गए।

I-4-5:जो इस अक्षर को इस प्रकार जानकर उसकी उपासना करता है, वह इस स्वर में प्रविष्ट हो जाता है, जो अमरता और निर्भयता है। और इसमें प्रविष्ट होकर वह उस अमृत से अमर हो जाता है, जिससे देवता अमर हो गए थे।

I-5-1: अब, जो उद्गीथ है, वह वास्तव में प्रणव है और जो प्रणव है, वह उद्गीथ है।वह सूर्य उद्गीथ भी है और प्रणव भी, क्योंकि वह 'ॐ' का उच्चारण करता हुआ चलता है।

I-5-2:
अब ... I-v-2: 'उसके (सूर्य के) लिए मैंने गाया; इसलिए तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो' इस प्रकार कौषितकि ने अपने पुत्र से कहा।

'उद्गीथ का सूर्य की किरणों की तरह चिंतन करो, तो निश्चय ही तुम्हारे कई पुत्र होंगे। यह देवताओं के संदर्भ में ध्यान है।

I-v-3: अब (ध्यान) शरीर के संदर्भ में है: व्यक्ति को उसका ध्यान करना चाहिए जो यह है
मुख में प्राण, उदगीथ के रूप में, क्योंकि वह 'ओम' का उच्चारण करता हुआ चलता है।

I-v-4: 'उसी (प्राण के) लिए मैंने गाया है; इसलिए तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो', इस प्रकार कौषितकि ने अपने पुत्र से कहा। "मुझे बहुत से पुत्र प्राप्त होंगे", ऐसा सोचकर, अनेक प्राणों के रूप में उदगीथ की स्तुति गाओ।

I-v-5: 'अब, जो उदगीथ है, वह वास्तव में प्रणव है; और जो प्रणव है, वह उदगीथ है', ऐसा सोचना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप, भले ही वह गलत तरीके से जप करता हो, वह होत्र पुरोहित की सीट से किए गए कार्य द्वारा इसे ठीक कर देता है।

I-vi-1: पृथ्वी ऋक् है, अग्नि सामन है। यह सामन उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए सामन को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। पृथ्वी 'सा' है, अग्नि 'अमा' है, और इससे 'साम' बनता है।

I-vi-2: आकाश ऋक् है, वायु साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। आकाश 'सा' है, वायु 'अमा' है, और इससे 'साम' बनता है।

I-vi-3: स्वर्ग ऋक् है, सूर्य साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। स्वर्ग 'सा' है, सूर्य 'अमा' है, और इससे 'साम' बनता है।

I-vi-4: तारे ऋक् हैं, चंद्रमा साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। तारे 'सा' हैं, चंद्रमा 'अमा' है, और इससे 'साम' बनता है।

I-vi-5: अब, सूर्य का पूरा प्रकाश ऋक् है, नीला (प्रकाश) जो अत्यंत अंधेरा है वह साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए सामन को ऋक् पर विश्राम करते हुए गाया जाता है।
I-vi-6: फिर, सूर्य का श्वेत प्रकाश 'सा' है, नीला (प्रकाश) जो अत्यंत अंधकारमय है वह 'अमा' है, और वह 'साम' बनाता है। अब, वह व्यक्ति, सोने की तरह चमकीला, जो सूर्य के भीतर दिखाई देता है, जो सुनहरे दाढ़ी और सुनहरे बालों वाला है, अपने नाखूनों की नोक तक भी अत्यधिक तेजोमय है।

I-vi-7: उसकी आँखें लाल कमल की तरह उज्ज्वल हैं। उसका नाम 'उत' है। वह सभी बुराइयों से ऊपर उठ गया है। वास्तव में, जो इस प्रकार जानता है वह सभी बुराइयों से ऊपर उठ जाता है।

I-vi-8: ऋक् और सामन उसके दो जोड़ हैं। इसलिए वह उद्गीथ है। क्योंकि पुजारी इस 'उत' का गायक है, वह उद्गीथ है। इसके अलावा, वह (यह व्यक्ति जिसे 'उत' कहा जाता है) उन दुनियाओं को नियंत्रित करता है जो उस सूर्य से ऊपर हैं, साथ ही देवताओं की इच्छाओं को भी नियंत्रित करता है। यह देवताओं के संदर्भ में है।

I-vii-1: अब (ध्यान) शरीर के संदर्भ में है: वाणी ऋक् है, प्राण साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। वाणी 'सा' है, प्राण 'अमा' है और इससे 'साम' बनता है।

I-vii-2: आँख ऋक् है, आत्मा (आँख में प्रतिबिम्बित) साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। आँख 'सा' है, आत्मा 'अमा' है और इससे 'साम' बनता है।

I-vii-3: कान ऋक् है, मन साम है। यह साम उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए साम को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। कान 'सा' है, मन 'अमा' है, और उससे 'समा' बनता है।

I-vii-4: अब, आँख का श्वेत प्रकाश ऋक् है, नीला (प्रकाश) जो अत्यंत काला है वह समन है। यह समन उस ऋक् पर टिका हुआ है। इसलिए समन को ऋक् पर टिका हुआ गाया जाता है। आँख का श्वेत प्रकाश 'सा' है, नीला (प्रकाश) जो अत्यंत काला है वह 'अमा' है और उससे 'समा' बनता है।

I-vii-5: अब, यह व्यक्ति जो आँख के भीतर दिखाई देता है - वह वास्तव में ऋक् है, वह समन है, वह उक्त है, वह यजुस् है, वह वेद है। इसका (आँख में दिखाई देने वाले व्यक्ति का) रूप उस (सूर्य में दिखाई देने वाले व्यक्ति) के रूप के समान है। उसके जोड़ दूसरे के समान हैं; उसका नाम दूसरे के समान है।

I-vii-6: वह (आँख में दिखाई देने वाला व्यक्ति) नीचे फैले हुए सभी लोकों का स्वामी है, साथ ही मनुष्यों की इच्छित वस्तुओं में से। इसलिए जो वीणा

पर गाते हैं, वे केवल उन्हीं का गान करते हैं और इस प्रकार धन-संपत्ति से संपन्न हो जाते हैं।

I-vii-7: अब जो इस प्रकार उद्गीथ देवता को जानकर सामन गाता है, वह दोनों का गान करता है। उस (सूर्य में स्थित व्यक्ति) के द्वारा वह (वह गायक) उस सूर्य से परे के लोकों को तथा देवताओं की इच्छित वस्तुओं को भी प्राप्त करता है।

I-vii-8-9: इसी प्रकार, नेत्र में स्थित इस व्यक्ति के द्वारा, इस व्यक्ति से नीचे तक फैले हुए लोकों को तथा मनुष्यों की इच्छित वस्तुओं को भी प्राप्त करता है। इस कारण, जो उद्गीथ पुजारी इस प्रकार जानता है, उसे (यज्ञकर्ता से) पूछना चाहिए: 'सामन गाकर मैं तुम्हारे लिए क्या इच्छा प्राप्त करूँ?' क्योंकि वह अकेला ही सामन बन जाता है।गाकर कामनाओं को प्राप्त करने में समर्थ, जो इस प्रकार जानकर सामन गाता है - हाँ, सामन गाता है।

I-viii-1: प्राचीन काल में उद्गीथ में तीन निपुण थे: सलवत का पुत्र सिलक, दालभ्य कुल का कैकितायन
और जीवल का पुत्र प्रवाहन। उन्होंने कहा, 'हम उद्गीथ में निपुण हैं। यदि आप सहमत हैं, तो आइए हम उदगीथ पर चर्चा शुरू करें।

I-viii-2: 'ऐसा ही हो', यह कहकर वे बैठ गए। तब प्रवाहन जैवलि ने कहा, 'आप दोनों, श्रद्धेय महोदय, पहले बोलें; और मैं दो ब्राह्मणों के वार्तालाप के शब्द सुनूंगा।'

I-viii-3: तब सिलक सलवत्य ने कैकितायन दालभ्य से कहा, 'यदि आप अनुमति दें, तो मैं आपसे प्रश्न करूँगा।''प्रश्न', उन्होंने कहा।

I-viii-4: (शिलाका ने पूछा), 'सामन का सार क्या है?' 'धुन', (दाल्भ्य) ने कहा। 'धुन का सार क्या है?' 'प्राण', (दाल्भ्य) ने कहा। 'प्राण का सार क्या है?' 'भोजन', (दाल्भ्य) ने कहा। 'भोजन का सार क्या है?' 'पानी', (दाल्भ्य) ने कहा।
I-viii-5: 'पानी का सार क्या है?' 'वह (स्वर्गीय दुनिया)', (दाल्भ्य) ने कहा। 'दुनिया का सार क्या है?' 'कोई (सामन को) स्वर्गीय दुनिया से परे नहीं ले जा सकता है', (दाल्भ्य) ने कहा; 'हम सामन को स्वर्ग की दुनिया में पाते हैं, क्योंकि सामन को स्वर्ग के रूप में सराहा जाता है'।

I-viii-6: तब शिलाका शालवत्य ने कैकिटायन दाल्भ्य से कहा: ‘हे दाल्भ्य, तुम्हारा सामन वास्तव में स्थापित नहीं है। यदि कोई कहे, "तुम्हारा सिर गिर जाएगा", तो निश्चय ही तुम्हारा सिर गिर जाएगा।

I-viii-7: (दाल्भ्य) 'क्या आप मुझे यह सीखने की अनुमति देंगे, श्रीमान्?' 'सीखिए', (सिलक) ने कहा। 'उस (स्वर्गीय) लोक का सार क्या है?' 'यह पृथ्वी', (सिलक) ने कहा, 'इस पृथ्वी का सार क्या है?' 'कोई इस लोक से परे सामन को उसके आधार के रूप में नहीं ले जा सकता', सिलक ने कहा; 'हम इस लोक में सामन को उसके आधार के रूप में पाते हैं, क्योंकि सामन को पृथ्वी के समान महिमामंडित किया गया है।'

I-viii-8: प्रवाहण जैवलि ने उससे कहा, 'हे शालवत्य, वास्तव में तुम्हारे साम का एक और अंत है। यदि कोई अब कहे, "तुम्हारा सिर गिर जाएगा", तो निश्चय ही तुम्हारा सिर गिर जाएगा। (शालवत्य) ‘क्या आप मुझे (आपसे) यह सीखने की अनुमति देंगे?’ ‘सीखिए’, (जयवली) ने कहा।

I-ix-1: (शालवत्य) ‘इस संसार का सार क्या है?’ ‘आकाश’ ने कहा (प्रवाहन); ‘ये सभी प्राणी आकाश से ही उत्पन्न होते हैं और अंततः आकाश में ही विलीन हो जाते हैं; क्योंकि आकाश ही इन सबसे बड़ा है और आकाश ही हर समय आधार है।’

I-ix-2: यह उद्गीथ ही है जो उत्तरोत्तर उच्चतर और श्रेष्ठ है। यह भी अनंत है। जो इस प्रकार जानकर उत्तरोत्तर उच्चतर और श्रेष्ठ उद्गीथ का ध्यान करता है, वह उत्तरोत्तर उच्चतर और श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करता है और उत्तरोत्तर उच्चतर और श्रेष्ठ लोकों को जीतता है।

1-9-3: शुनक के पुत्र अतिधन्वन् ने उदरसण्डिल्य को यह उपदेश देकर कहा, ‘जब तक तुम्हारे वंशजों में उद्गीथ का यह ज्ञान रहेगा, तब तक उनका इस लोक में जीवन सामान्य जीवन से क्रमशः उच्चतर और श्रेष्ठतर होता रहेगा।’
1-9-4: ‘और उस परलोक में भी उनकी स्थिति ऐसी ही होगी।’ जो इस प्रकार जानता और ध्यान करता है, उसका इस लोक में जीवन निश्चित रूप से क्रमशः उच्चतर और श्रेष्ठतर होता है, और उसी प्रकार उस परलोक में भी उसकी स्थिति - हाँ, उस परलोक में भी।

1-9-5: जब कुरु देश में ओलावृष्टि से फसलें नष्ट हो गईं, तब चक्र का पुत्र उसस्ति अपनी युवा पत्नी के साथ हाथी-चालकों के गाँव में दयनीय स्थिति में रहता था।

1-9-6: जब वह घटिया किस्म की फलियाँ खा रहा था, तब उसने हाथी-चालक से भोजन माँगा। हाथी-चालक ने उससे कहा, ‘मेरे सामने जो रखा है, उसके अलावा और कोई भोजन नहीं है।’

I-x-7: 'मुझे उनमें से कुछ दे दो', उसास्ती ने कहा। ड्राइवर ने उन्हें उसे दे दिया और कहा, 'यहाँ पीने के लिए कुछ है, अगर तुम चाहो तो।' 'तो मैं वही पीऊँगा जो अशुद्ध है', उसास्ती ने कहा।

I-x-8: 'क्या ये फलियाँ भी अशुद्ध नहीं हैं?' 'अगर मैंने उन्हें नहीं खाया होता, तो मैं निश्चित रूप से जीवित नहीं रह सकता था', उसास्ती ने कहा, 'लेकिन पीना मेरे विकल्प पर है।'

I-x-9: उसास्ती ने खाने के बाद बचा हुआ हिस्सा अपनी पत्नी के पास लाया। उसने अपना भोजन पहले ही भिक्षा से प्राप्त कर लिया था; इसलिए इसे प्राप्त करने के बाद उसने इसे अपने पास रख लिया।

I-x-10: अगली सुबह बिस्तर छोड़ते समय उसने कहा, 'काश, मुझे थोड़ा सा भोजन मिल जाता, तो मैं एक दिन कमा सकता था।
थोड़ी सी संपत्ति है। वहाँ एक राजा यज्ञ करने जा रहा है; वह मुझे सभी पुरोहित पदों पर नियुक्त करेगा।

I-x-11: उसकी पत्नी ने उससे कहा, 'अच्छा, स्वामी, ये आपके द्वारा दी गई फलियाँ हैं।' उन्हें खाकर वह उस यज्ञ में चला गया जो किया जा रहा था।

I-x-12: वहाँ बैठे हुए गायक पुरोहितों को देखकर, वह स्तोत्र गायन के स्थान पर गायकों के पास बैठ गया। और फिर उसने प्रस्तोतिर पुजारी को संबोधित किया।

I-x-13: 'हे प्रस्तोतिर, यदि आप प्रस्तोता के देवता को जाने बिना प्रस्तोता गाते हैं, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।'

I-x-14: उसी तरह उसने उदगतिर पुजारी को संबोधित किया, हे उदगतिर, यदि आप उद्गीथ के देवता को जाने बिना उद्गीथ गाते हैं, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।

1-11: उसी प्रकार उन्होंने प्रतिहार पुरोहित को संबोधित करते हुए कहा, 'हे प्रतिहार, यदि आप प्रतिहार के देवता को जाने बिना प्रतिहार गाते हैं, तो आपका सिर झुक जाएगा।' तब वे सभी अपने कर्तव्यों को स्थगित करके चुपचाप बैठ गए।

1-11: तब यज्ञ के प्रमुख ने उससे कहा, 'मैं आपको जानना चाहता हूँ, आदरणीय महोदय, 'मैं चक्रायण उसस्ति हूँ', उसने कहा।

1-12: उसने कहा, 'मैंने आपको इन सभी पुरोहिती पदों के लिए खोजा, लेकिन आपको न पाकर, मैंने दूसरों को चुना है।'

1-13: 'आदरणीय महोदय, आप स्वयं मेरे लिए सभी पुरोहिती पद संभाल लें'। 'ऐसा ही हो; फिर, इन पुरोहितों को मेरी अनुमति से भजन गाने दें। लेकिन आपको मुझे उतना ही धन देना चाहिए जितना आप उन्हें देते हैं।' 'बहुत अच्छा', यज्ञकर्ता ने कहा।

I-xi-4: तब प्रस्तोतिर पुजारी उसके पास आया और बोला, 'पूज्य महोदय, आपने मुझसे कहा था: 'हे प्रस्तोतिर, यदि आप प्रस्तोता के देवता को जाने बिना प्रस्तोता गाते हैं, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।' वह देवता कौन है?'

I-xi-5: 'प्राण', उसस्ति ने कहा, 'ये सभी चल और अचल प्राणी प्राण में विलीन हो जाते हैं (विघटन के दौरान) और प्राण से उठते हैं (सृजन के दौरान)। यह वह देवता है जो प्रस्तोता का है। यदि आपने मेरे द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बाद भी उसे जाने बिना प्रस्तोता गाया, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।'

I-xi-6: तब उद्गतिर पुजारी उसके पास आया और बोला, 'पूज्य महोदय, आपने मुझसे कहा था: 'हे उद्गतिर, यदि आप उद्गीता के देवता को जाने बिना उद्गीता गाते हैं, तो आपका सिर नीचे गिर जाएगा।' वह देवता कौन है?’

I-xi-7: 'सूर्य', उसस्ति ने कहा, 'ये सभी चर और अचल प्राणी सूर्य के उदय होने पर उसकी स्तुति करते हैं। यह वह देवता है जो उद्गीथ से संबंधित है। यदि तुमने मेरे द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बाद भी उद्गीथ को बिना जाने गाया होता तो तुम्हारा सिर झुक जाता।'

I-xi-8: तब प्रतिहार पुजारी उसके पास गया और बोला, 'पूज्य महोदय, आपने मुझसे कहा था: 'हे प्रतिहार, यदि तुम प्रतिहार के देवता को जाने बिना प्रतिहार गाते हो, तो तुम्हारा सिर झुक जाएगा।' वह देवता कौन है?'

I-xi-9: 'भोजन', उसस्ति ने कहा, 'ये सभी चल और अचल प्राणी केवल भोजन करके जीवित रहते हैं।
यह प्रतिहार का देवता है। यदि तुमने मेरे द्वारा इस प्रकार चेतावनी दिए जाने के बाद भी प्रतिहार को बिना जाने गाया होता तो तुम्हारा सिर झुक जाता।'

I-xii-1: इसलिए आगे कुत्तों द्वारा देखी गई उद्गीथ शुरू होती है। एक बार दालभ्य बाक, जिसे मैत्रेय ग्लव भी कहा जाता है, अध्ययन के लिए (गाँव से) बाहर गया वेद।

I-xii-2: उसके सामने एक सफेद कुत्ता आया और अन्य कुत्ते उसके चारों ओर इकट्ठे हो गए और बोले, 'आदरणीय महोदय, कृपया गाकर हमारे लिए भोजन प्राप्त करें; हम भूखे हैं।'

I-xii-3: सफेद कुत्ते ने उनसे कहा, 'कल सुबह यहाँ मेरे पास आओ।' (ऋषि नाम) दालभ्य बका और मैत्रेय ग्लव ने वहाँ उनकी रखवाली की।

I-xii-4: जिस प्रकार स्तोत्र का पाठ करने वाले लोग बहिष्पवमन स्तोत्र गाते हुए एक दूसरे का हाथ थामकर चलते हैं, उसी प्रकार कुत्ते भी साथ-साथ चलते थे। फिर वे बैठ गए और 'उसे' का उच्चारण करने लगे।

I-xii-5: 'ओम, आओ खाएँ! ओम्, आओ पिएँ! ओम्, (सूर्य जो कि) देवता हैं, वरुण, प्रजापति और सविता हमारे लिए यहाँ भोजन लाएँ। हे अन्न के स्वामी, यहाँ भोजन लाएँ, हाँ, इसे लाएँ, ओम्!'

I-xiii-1: वास्तव में, यह संसार अक्षर 'हौ' (जो कि स्तोभ है) है, वायु अक्षर 'है' है, चंद्रमा अक्षर 'अथ' है, आत्मा अक्षर 'इह' है और अग्नि अक्षर 'इ' है।

I-xiii-2: सूर्य अक्षर 'उ' है (जो कि स्तोभ है), आह्वान अक्षर 'इ' है, विश्वदेव अक्षर 'औहोयि' हैं, प्रजापति अक्षर 'हिम' हैं, प्राण स्तोभ 'स्वर' हैं, भोजन स्तोभ 'य' है

और विराट स्तोभ 'वाक' है।

I-xiii-3: अपरिभाषित और परिवर्तनशील तेरहवाँ स्तोभ 'हं' अक्षर है।

I-xiii-4: उसके लिए, वाणी दूध उत्पन्न करती है, जो वाणी का लाभ है; और वह अन्न से समृद्ध होता है और अन्न खाने वाला होता है, जो इस प्रकार सामों के इस पवित्र सिद्धांत को जानता है - हाँ, सामों के पवित्र सिद्धांत को जानता है।

II-i-1: ॐ। निश्चित रूप से, पूरे साम का ध्यान अच्छा है। जो कुछ भी अच्छा है, लोग उसे साम कहते हैं, और जो कुछ भी अच्छा नहीं है, उसे असमान कहते हैं।

II-i-2: इस प्रकार, जब लोग कहते हैं, 'वह साम के साथ उसके पास गया', तो वे केवल यही कहते हैं: 'वह एक अच्छे इरादे से उसके पास गया'। और जब वे कहते हैं, 'वह असमान के साथ उसके पास आया था', तब वे केवल यही कहते हैं" 'वह उसके पास बुरी मंशा से आया था।'

II-i-3: फिर, लोग कहते हैं: 'ओह, यह हमारे लिए समान है', जब यह कुछ अच्छा होता है; तब वे केवल यही कहते हैं:

ओह, यह हमारे लिए अच्छा है'। फिर, वे कहते हैं, 'ओह, यह हमारे लिए असमान है', जब यह अच्छा नहीं होता; तब वे केवल यही कहते हैं: 'ओह, यह बुरा है।'

II-i-4: जब ऐसा जानने वाला व्यक्ति समान का अच्छे रूप में ध्यान करता है, तो सभी अच्छे गुण उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं और उसकी सेवा करते हैं।

II-ii-1: लोकों में से व्यक्ति को समान का पाँच प्रकार से ध्यान करना चाहिए। पृथ्वी उसका अक्षर है, अग्नि प्रस्रव है, आकाश उद्गीथ है, सूर्य

प्रतिहार है, और स्वर्ग निधान है। इस प्रकार यह ध्यान उच्च लोकों से संबंधित है।

II-ii-2: अब, निम्न लोकों में से। स्वर्ग वह अक्षर है, सूर्य है प्रस्तव, आकाश है उद्गीथ, अग्नि है प्रतिहार, तथा पृथ्वी है निधान।

II-ii-3: आरोही तथा अवरोही रेखाओं में स्थित लोक उसी के हैं। जो ऐसा जानकर ('शुभ' के गुण से युक्त) लोकों में पंचविध सामन का ध्यान करता है।

II-iii-1-2: वर्षा के रूप में पंचविध सामन का ध्यान करना चाहिए। उसके पहले आने वाली वायु अक्षर है प्रस्तव, बनने वाला बादल है प्रस्तव, वर्षा है उद्गीथ, बिजली तथा गरज है प्रतिहार, तथा समाप्त होना है निधान। जो ऐसा जानकर पंचविध सामन का ध्यान वर्षा के रूप में करता है, उसके लिए वर्षा होती है - वास्तव में, वही वर्षा करता है।

II-iv-1: सभी जलों में पंचविध सामन का ध्यान करना चाहिए। जब बादल घिरता है, तो वह अक्षर है वह। जब वर्षा होती है, तो वह प्रस्तव। जो (जल) पूर्व की ओर बहते हैं, वे उद्गीथ हैं। जो पश्चिम की ओर बहते हैं, वे प्रतिहार हैं। समुद्र निधान है।

II-IV-2: जो ऐसा जानकर सभी जलों में पंचविध सामन का ध्यान करता है, वह जल में नहीं डूबता और जल से समृद्ध हो जाता है।

II-V-1: ऋतुओं के समान पंचविध सामन का ध्यान करना चाहिए: वसंत ऋतु उसका अक्षर है, ग्रीष्म ऋतु प्रस्तव है, वर्षा ऋतु उद्गीथ है, शरद ऋतु प्रतिहार है और शीत ऋतु निधान है।

II-V-2: जो ऐसा जानकर ऋतुओं में पंचविध सामन का ध्यान करता है, ऋतुएँ उसकी सेवा करती हैं और वह ऋतुओं से समृद्ध हो जाता है।

II-VI-1: पशुओं के समान पंचविध सामन का ध्यान करना चाहिए। बकरियाँ उसका अक्षर हैं, भेड़ें प्रस्तव हैं, गायें उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं और मनुष्य निधान है।
II-vi-2: जो मनुष्य यह जानकर पशुओं में पंचगुण सामन का ध्यान करता है, पशु भी उसी के हैं।

II-vii-1: मनुष्य को चाहिए कि वह इन्द्रियों के समान क्रमशः उच्चतर और श्रेष्ठ पंचांगीय सामन का ध्यान करे। घ्राणेन्द्रिय शब्दांश है, वाणी इन्द्रिय प्रस्तव है, नेत्र उद्गीथ है, कान प्रतिहार है और मन निधान है। वास्तव में ये क्रमशः उच्चतर और श्रेष्ठ हैं।

II-vii-2: जो इस प्रकार जानकर इन्द्रियों में क्रमशः उच्चतर और श्रेष्ठ पंचांगीय सामन का ध्यान करता है, उसका क्रमशः उच्चतर और श्रेष्ठ जीवन होता है और वह सदैव उच्चतर और श्रेष्ठ लोकों को जीतता है। इतना ही पंचांगीय सामन का ध्यान है।

II-viii-1-2: इसके बाद सातांगीय सामन का ध्यान है। मनुष्य को सातांगीय सामन का ध्यान वाणी के समान करना चाहिए। वाणी में जो कुछ 'हम्' है, वही शब्दांश है; जो कुछ 'प्र' है, वही प्रस्तव है; जो कुछ 'अ' है, वही आदि (प्रथम) है; जो कुछ 'उत' है, वह उद्गीथ है; जो कुछ 'प्रति' है, वह प्रतिहार है; जो कुछ 'उप' है, वह उपद्रव है; और जो कुछ 'नि' है, वह निधान है।

II-viii-3: जो इस प्रकार जानकर, सात गुना (संपूर्ण) सामन का वाणी के रूप में ध्यान करता है, उसके लिए वाणी दूध अर्थात् उसका उचित लाभ देती है, और वह अन्न से समृद्ध और अन्न खाने वाला बन जाता है।

II-ix-1: इसके बाद, व्यक्ति को सात गुना सामन का ध्यान उस सूर्य के रूप में करना चाहिए। वह सामन है क्योंकि वह हमेशा एक जैसा है। वह सामन है क्योंकि वह सभी के लिए एक जैसा है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है, 'वह मेरे सामने है, वह मेरे सामने है।'

II-ix-2: व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि ये सभी प्राणी उसी पर निर्भर हैं। उदय होने से पहले वह जो है, वही हिमकार है। इसी पर पशु निर्भर हैं। जैसे ही वे इस सामन के हिमकार भाग में भाग लेते हैं, वैसे ही वे (सूर्योदय से पहले) उसका उच्चारण करते हैं।

II-ix-3: फिर, सूर्योदय के समय सूर्य का जो रूप होता है, वह प्रस्तव है। इसी पर मनुष्य आश्रित हैं।जैसे ही वे इस सामन के प्रस्तव भाग में भाग लेते हैं, वैसे ही वे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष स्तुति के इच्छुक होते हैं।
II-ix-4: और सूर्य का जो रूप उसकी किरणों के एकत्र होने के समय प्रकट होता है, वह आदि है। इसी पर पक्षी आश्रित हैं। जैसे ही वे इस सामन के

आदि भाग में भाग लेते हैं, वैसे ही वे आकाश में बिना सहारे के खड़े होकर उड़ते हैं।

II-ix-5: इसके बाद, मध्याह्न के समय सूर्य का जो रूप प्रकट होता है, वह उद्गीथ है। इसी पर देवता आश्रित हैं। जैसे ही वे इस सामन के उद्गीथ भाग में भाग लेते हैं, वैसे ही वे प्रजापति की संतानों में श्रेष्ठ हैं। II-ix-6: इसके बाद, सूर्य का वह रूप जो दोपहर के ठीक बाद और दोपहर (बाद के भाग) से पहले दिखाई देता है,वह प्रतिहार है। इस पर भ्रूण निर्भर हैं। चूंकि वे इस सामन के प्रतिहार भाग में भाग लेते हैं, (इसलिए वे गर्भ में रहते हैं) और वे नीचे नहीं गिरते।

II-ix-7: इसके बाद, सूर्य का वह रूप जो दोपहर के बाद और सूर्यास्त से पहले दिखाई देता है,उद्रव है। इस पर जंगली जानवर निर्भर हैं। जैसे वे इस सामन के उपद्रव भाग में भाग लेते हैं, वैसे ही वे जब किसी व्यक्ति को देखते हैं, तो जंगल में भाग जाते हैं, जैसे कि वे किसी सुरक्षित स्थान पर हों।

II-ix-8: अब, सूर्य का वह रूप जो सूर्यास्त के ठीक बाद दिखाई देता है, वह निधान है। इस पर पिता निर्भर हैं। चूंकि वे इस
सामन के निधान भाग में भाग लेते हैं, इसलिए लोग उन्हें अलग रख देते हैं।

II-x-1: अब, वास्तव में, हमें सात गुना सामन का ध्यान करना चाहिए, जिसके सभी भाग समान हैं, और जो मृत्यु से परे ले जाता है। 'हिमकार' में तीन अक्षर हैं; 'प्रस्तव' में तीन अक्षर हैं। इसलिए वे एक दूसरे के बराबर हैं।

II-x-2: 'आदि' में दो अक्षर हैं; 'प्रतिहार' में चार अक्षर हैं। हम प्रतिहार से आदि तक एक अक्षर लेते हैं। इसलिए वे एक दूसरे के बराबर हैं।

II-x-3: 'उद्गीथ' में तीन अक्षर हैं; 'उपद्रव' में चार अक्षर हैं। तीन और तीन बराबर हो जाते हैं। एक अक्षर बच जाता है; वह वास्तव में त्रि-अक्षर है; इसलिए यह भी बराबर हो जाता है।

II-x-4: 'निधान' में तीन अक्षर हैं, और यह भी बराबर है (बाकी के)। ये, वास्तव में, (सात गुना सामन के) बाईस अक्षर हैं।
II-x-5-6: जो इस सामन को इस प्रकार (अच्छा) जानकर, सप्तगुण सामन का ध्यान करता है, जिसके सभी अंग समान हैं और जो मृत्यु से परे ले

जाता है, वह इक्कीसवें भाव से सूर्य (मृत्यु) को प्राप्त होता है; क्योंकि,इस लोक से गिनने पर वह सूर्य सचमुच इक्कीसवाँ है। शेष बाईसवें अक्षर से वह सूर्य से परे के लोक को जीत लेता है। वह लोक आनन्दमय है, और दुःख से रहित है। (अर्थात् वह सूर्य पर विजय प्राप्त करता है, और फिर जो सात गुना सामन का ध्यान करता है, उसे और भी बड़ी विजय मिलती है।

II-xi-1: मन हिमकार है, वाणी प्रस्तव है, नेत्र उद्गीथ है, कान प्रतिहार है, और प्राण निधान है। यह प्राण और इन्द्रियों में गुँथा हुआ गायत्र सामन है।

II-xi-2: जो इस प्रकार इस गायत्र सामन को प्राण और इन्द्रियों में गुँथा हुआ जानता है, वह पूर्ण इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, यश से जीता है, संतान और पशुधन से महान बनता है, और यश से भी महान बनता है। उसका पवित्र व्रत यह है कि वह उच्च विचार वाला हो।

II-xii-1: कोई रगड़ता है, वह हिमकार है। धुआं उत्पन्न होता है, वह प्रस्तव है। यह जलता है, वह उद्गीथ है। अंगारे बनते हैं, वह प्रतिहार है। यह नीचे चला जाता है, वह निधान है। यह पूरी तरह से बुझ जाता है, वह निधान है। यह अग्नि में बुना गया रथंतर समान है।

II-xii-2: जो इस प्रकार इस रथंतर समान को अग्नि में बुना हुआ जानता है, वह पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से दीप्तिमान हो जाता है, अच्छी भूख से संपन्न होता है और जीवन की पूरी लंबाई प्राप्त करता है, गौरवशाली जीवन जीता है, संतान और मवेशियों से महान होता है, और प्रसिद्धि से भी महान होता है। उसका पवित्र व्रत यह है कि वह अग्नि के सामने न तो घूंट ले और न ही थूके।

II-xiii-1-2: वामदेव्य समान जोड़े में बुना जाता है। जो इस प्रकार इस वामदेव्य समान को जोड़े में बुना हुआ जानता है, वह जोड़े में से एक बन जाता है और संतान उत्पन्न करता है। वह पूर्ण आयु प्राप्त करता है, यशस्वी जीवन जीता है, सन्तान और पशुधन से महान बनता है, तथा यश से भी महान बनता है। उसका पवित्र व्रत यह है कि वह किसी स्त्री का तिरस्कार न करे।

II-xiv-1: उगता हुआ सूर्य हिमकर है, उगता हुआ सूर्य प्रस्तव है, मध्याह्न का सूर्य उद्गीथ है, मध्याह्न का सूर्य प्रतिहार है, तथा अस्त होता हुआ सूर्य निधान है। यह सूर्य में बुना हुआ बृहत् सामन है।

II-xiv-2: जो इस बृहत् सामन को सूर्य में बुना हुआ जानता है, वह तेजस्वी और उत्तम भूख से युक्त हो जाता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, यशस्वी जीवन जीता है, सन्तान और पशुधन से महान बनता है, तथा यश से भी महान बनता है। उसका पवित्र व्रत यह है कि वह जलते हुए सूर्य में दोष न खोजे।

II-xv-1: श्वेत बादल एकत्रित होते हैं, वह हिमकर है। (वर्षा करने वाला) बादल बनता है, वह प्रस्तव है। वर्षा होती है, वह उद्गीथ है। यह चमकता है और गरजता है, वह प्रतिहार है। यह रुक जाता है, वह निधान है। यह वर्षा-मेघ में बुना हुआ वैरूप सामन है।

II-xv-2: जो इस विरूप सामन को वर्षा-मेघ में बुना हुआ जानता है, वह सुंदर और विविध रूपों वाले पशुओं को प्राप्त करता है, जीवन की पूरी लंबाई तक पहुंचता है, गौरवशाली जीवन जीता है, संतान और पशुओं के साथ महान होता है, और प्रसिद्धि के साथ भी महान होता है। उसका पवित्र व्रत यह है कि जब वर्षा हो तो उसे वर्षा-मेघ में दोष नहीं खोजना चाहिए।

II-xvi-1: वसंत हिमकार है, ग्रीष्म प्रस्तव है, वर्षा ऋतु उद्गीथ है, शरद ऋतु प्रतिहार है, और शीत ऋतु निधान है। यह ऋतुओं में बुना हुआ वैराज सामन है।

II-xvi-2: जो इस प्रकार ऋतुओं में बुने हुए इस वैराज सामन को जानता है, वह संतान, पशुधन और पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से चमकता है, जीवन की पूरी अवधि को प्राप्त करता है, यश से जीता है, संतान और पशुधन से महान बनता है और यश से भी महान बनता है। उसका पवित्र व्रत है कि वह ऋतुओं में दोष न निकाले।

II-xvii-1: पृथ्वी हिमकर है, आकाश प्रस्तव है, स्वर्ग उद्गीथ है, दिशाएँ प्रतिहार हैं और समुद्र निधान है। यह लोकों में बुना हुआ सक्वारी सामन है।

II-xvii-2: जो इस प्रकार लोकों में बुने हुए इस सक्वारी सामन को जानता है, वह लोकों का स्वामी बन जाता है, जीवन की पूरी अवधि को प्राप्त करता है, यश से जीता है, संतान और पशुधन से महान बनता है और यश से भी महान बनता है। उसका पवित्र व्रत है कि वह लोकों में दोष न निकाले।

II-xviii-1: बकरियाँ हिमकर हैं, भेड़ें प्रस्तव हैं, गायें उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं और मनुष्य निधान हैं। यह पशुओं में बुना हुआ रेवती समान है। II-xviii-2: जो व्यक्ति पशुओं में बुने हुए इस रेवती समान को इस प्रकार जानता है, वह पशुओं का स्वामी बन जाता है, जीवन की पूरी अवधि तक पहुँचता है, यश से जीता है, संतान और पशुओं से महान बनता है, यश से भी महान बनता है। उसका पवित्र व्रत यह है कि वह पशुओं में दोष न निकाले।

II-xix-1: बाल हिमकर हैं, त्वचा प्रस्तव है, मांस उद्गीथ है, हड्डी प्रतिहार है और मज्जा निधान है। यह शरीर के अंगों में बुना हुआ यज्ञयज्ञीय समान है।

II-xix-2: जो इस प्रकार शरीर के अंगों में बुने हुए इस यज्ञयज्ञीय समान को जानता है, वह सभी अंगों से संपन्न होता है, किसी भी अंग से विकलांग नहीं होता; वह पूर्ण आयु प्राप्त करता है, यश से जीता है, संतान और पशुधन से महान होता है और यश से भी महान होता है। उसका पवित्र व्रत यह है कि वह एक वर्ष तक मछली और मांस न खाए, या यों कहें कि उसे मछली और मांस बिल्कुल नहीं खाना चाहिए।

II-xx-1: अग्नि हिमकार है, वायु प्रस्तव है, सूर्य उद्गीथ है, तारे प्रतिहार हैं, और चंद्रमा निधान है। यह देवताओं में बुना हुआ राजन समान है।

II-xx-2: जो इस प्रकार देवताओं में बुने हुए इस राजन समान को जानता है, वह उसी लोक में निवास करता है या उन्हीं देवताओं के समान समृद्धि प्राप्त करता है या उनसे मिलन प्राप्त करता है; वह पूर्ण आयु प्राप्त करता है, यश से जीता है, संतान और पशुधन से महान होता है और यश से भी महान होता है। उनका पवित्र व्रत है कि वे ब्राह्मणों में दोष न निकालें।

II-xxi-1: तीन वेद हिमकार हैं; तीन लोक प्रस्तव हैं; अग्नि, वायु और सूर्य उद्गीथ हैं; तारे, पक्षी और किरणें प्रतिहार हैं; सर्प, दिव्य गायक और पिता निधान हैं। यह सभी चीजों में बुने हुए सामनों का संग्रह है।

II-xxi-2: वास्तव में, जो इस प्रकार सभी चीजों में बुने हुए सामनों के इस संग्रह को जानता है, वह सभी चीजों का स्वामी बन जाता है।

II-xxi-3: इसके बारे में यह श्लोक है: जो तीन के समूहों में पाँच गुना है - इन (पंद्रह) से बड़ा या दूसरा कुछ नहीं है।

II-xxi-4: जो इसे जानता है वह सब कुछ जानता है। सभी दिशाएँ उसके लिए भेंट लाती हैं। उसका पवित्र व्रत है कि उसे 'मैं सब कुछ हूँ' का ध्यान करना चाहिए - हाँ, यह उसका व्रत है।

II-xxii-1: 'सामनों में से मैं उस सामन को चुनता हूँ जो मानो गर्जना करता है और पशुओं के लिए अच्छा है,' ऐसा (कुछ लोग सोचते हैं)। यह अग्नि के लिए पवित्र गायन है, प्रजापति के लिए अनिर्धारित, सोम के लिए परिभाषित, वायु के लिए कोमल और मधुर, इंद्र के लिए मधुर और मजबूत, बृहस्पति के लिए बगुले जैसा और वरुण के लिए बुरा स्वर। वास्तव में, व्यक्ति इन सभी का अभ्यास कर सकता है, लेकिन वरुण के लिए पवित्र से बचना चाहिए।

II-xxii-2: 'मैं गायन द्वारा देवताओं के लिए अमरता प्राप्त करूँ', (ऐसा सोचकर) व्यक्ति को गाना चाहिए। 'मैं अपना गायन, पितरों के लिए हवन, मनुष्यों के लिए आशा, पशुओं के लिए घास और पानी, यज्ञ करने वाले के लिए स्वर्ग और अपने लिए भोजन प्राप्त करूँ', - इस प्रकार अपने मन में इन सभी का चिंतन करते हुए, उसे स्तोत्र को ध्यानपूर्वक गाना चाहिए।

II-xxii-3: सभी स्वर इंद्र के अवतार हैं; सभी सिसकारी वाले स्वर प्रजापति के स्वरूप हैं; सभी स्पर्श व्यंजन मृत्यु के स्वरूप हैं। यदि कोई उसे उसके स्वरों के उच्चारण के लिए डांटे, तो उसे कहना चाहिए, 'मैं इंद्र की शरण में हूँ; वे तुम्हें उत्तर देंगे।'

II-xxii-4: और यदि कोई उसे सिसकारी वाले स्वरों के लिए डांटे, तो उसे कहना चाहिए, 'मैं प्रजापति की शरण में हूँ; वे तुम्हें कुचल देंगे।'और यदि कोई उसे उसके स्पर्श व्यंजनों के लिए डांटे, तो उसे कहना चाहिए, 'मैं मृत्यु की शरण में हूँ; वे तुम्हें जला देंगे।'

II-xxii-5: सभी स्वरों का उच्चारण ध्वनियुक्त और मजबूत होना चाहिए, (इस विचार के साथ), 'मैं इंद्र (प्राण) को शक्ति प्रदान करूँ'। सभी सिसकारी भरे स्वरों का उच्चारण न तो अस्पष्ट रूप से करना चाहिए, न ही ध्वनि के तत्वों को छोड़ना चाहिए, बल्कि स्पष्ट रूप से (इस विचार के साथ) कि, 'मैं अपने आप को प्रजापति (विराट) को दे दूं।' सभी स्पर्श व्यंजनों का उच्चारण धीरे-धीरे करना चाहिए, उन्हें किसी अन्य अक्षर के साथ मिलाए बिना, (इस विचार के साथ), 'मैं अपने आप को मृत्यु से दूर कर लूं।

II-xxiii-1: धार्मिक कर्तव्य की तीन शाखाएँ हैं। यज्ञ, अध्ययन और दान - ये पहली हैं। तपस्या ही दूसरी है, और ब्रह्मचारी विद्यार्थी जो गुरु के घर में जीवन भर रहता है और गुरु के घर में अपने शरीर का त्याग करता है, वह तीसरी है। ये सभी पुण्य लोकों के अधिकारी होते हैं; लेकिन जो ब्रह्म में दृढ़ रूप से स्थित है, वह अमरता प्राप्त करता है।

II-xxiii-2: प्रजापति ने लोकों का चिंतन किया। इस प्रकार चिंतन करते हुए, उनसे तीन गुना वेद (उनके सार के रूप में) निकले। उन्होंने इस पर चिंतन किया। इस प्रकार चिंतन करते हुए, इससे भूः, भुवः और स्वः अक्षर निकले।

II-xxiii-3: उन्होंने उन पर चिंतन किया। इस प्रकार चिंतन करते हुए, उनसे (उनके सार के रूप में) ॐ अक्षर (ब्रह्म) निकला। जैसे पत्ते के सभी भाग पत्ते की पसलियों से व्याप्त हैं, वैसे ही सभी शब्द ॐ अक्षर से व्याप्त हैं। वास्तव में ॐ अक्षर ही सब कुछ है - हाँ, ॐ अक्षर ही सब कुछ है।

2-24-1-2: ब्रह्म के व्याख्याता कहते हैं, 'प्रातःकाल का अर्घ्य वसुओं का है, मध्याह्न का अर्घ्य रुद्रों का है और तीसरा अर्घ्य आदित्यों और विश्वदेवों का है। यज्ञकर्ता का संसार कहाँ है?' जो इसे नहीं जानता, वह (यज्ञ) कैसे कर सकता है? इसे जानने के बाद ही उसे (यज्ञ) करना चाहिए।

II-xxiv-3-4: प्रातःकाल के मंत्र के आरंभ से पहले, यज्ञकर्ता गार्हपत्य अग्नि के पीछे उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठता है और वसुओं के लिए पवित्र समन गाता है: '(अग्नि), इस संसार का द्वार खोलो ताकि हम राज्य प्राप्ति हेतु तुम्हारा दर्शन कर सकें।'

II-xxiv-5-6: फिर वह (मंत्र के साथ) आहुति देता है - 'पृथ्वी के क्षेत्र में निवास करने वाले अग्नि को नमस्कार है। मेरे लिए, यज्ञकर्ता, इस क्षेत्र को प्राप्त करो। यह क्षेत्र, वास्तव में, यज्ञकर्ता को ही प्राप्त होना है। इस जीवन की अवधि के अंत में, मैं, यज्ञकर्ता, यहाँ आने को तैयार हूँ - स्वाहा।' 'क्षेत्र का द्वार खोल दो', ऐसा कहकर वह उठ जाता है। (परिणामस्वरूप) वसुओं ने उसे (प्रातःकाल के आहुति से संबंधित क्षेत्र) प्रदान कर दिया।

II-xxiv-7-8: मध्यान्ह आहुति आरंभ होने से पहले, यज्ञकर्ता अग्निध्रिया अग्नि के पीछे उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठता है और रुद्रों के लिए पवित्र समन गाता है: '(अग्नि), आकाश के क्षेत्र का द्वार खोलो ताकि हम आकाश की प्रभुता प्राप्त करने के लिए तुम्हारा दर्शन कर सकें।'

II-xxiv-9-10: फिर वह मंत्र के साथ आहुति देता है: 'वायु को नमस्कार है, जो आकाश के क्षेत्र में निवास करते हैं। मेरे लिए, यज्ञकर्ता के लिए यह क्षेत्र प्राप्त करें। यह क्षेत्र, वास्तव में, यज्ञकर्ता को प्राप्त होना है। इस जीवन की अवधि के अंत में, मैं, यज्ञकर्ता, वहाँ जाने को तैयार हूँ - स्वाहा'। 'क्षेत्र का द्वार खोल दो', ऐसा कहकर वह उठ जाता है। (परिणामस्वरूप) रुद्र उसे (मध्यान्ह आहुति से संबंधित आकाश का क्षेत्र) प्रदान करते हैं।

II-xxiv-11-13: तीसरा आहुति देने से पहले, यज्ञकर्ता आहवनीय अग्नि के पीछे उत्तर की ओर मुख करके बैठता है, और आदित्यों के लिए पवित्र समन और विश्वदेवों के लिए पवित्र समन गाता है: '(हे अग्नि), स्वर्ग के क्षेत्र का द्वार खोलो ताकि हम स्वर्ग की प्रभुता प्राप्त करने के लिए आपको देख सकें'। यह आदित्यों के लिए पवित्र समन है। अगला विश्वदेवों के लिए पवित्र समन है; '(हे अग्नि), स्वर्ग के क्षेत्र का द्वार खोलो ताकि हम सर्वोच्च प्रभुता प्राप्त करने के लिए आपको देख सकें।'

II-xxiv-14-15: फिर यज्ञकर्ता (मंत्र के साथ) आहुति देता है: 'आदित्यों और विश्वदेवों को नमस्कार, जो स्वर्ग के क्षेत्र के निवासी हैं। मेरे लिए, यज्ञकर्ता के लिए स्वर्ग का क्षेत्र प्राप्त करें। यह क्षेत्र, वास्तव में, यज्ञकर्ता को प्राप्त करना है। इस जीवन की अवधि के अंत में, मैं, यज्ञकर्ता, वहाँ जाने को तैयार हूँ - स्वाहा। 'क्षेत्र के द्वार खोल दो', ऐसा कहकर वह उठ जाता है।

II-xxiv-16: आदित्य और विश्वदेव उसे (तृतीय आहुति के लिए उपयुक्त क्षेत्र) प्रदान करते हैं। केवल वही यज्ञ का वास्तविक स्वरूप जानता है, जो ऐसा जानता है।

III-i-1: ॐ। वहाँ का सूर्य वास्तव में देवताओं का मधु है। इस मधु में, स्वर्ग क्रॉस-बीम है, आकाश मधु का छत्ता है, और (जल के कण) किरणें अंडे हैं।

III-i-2-3: उस सूर्य की पूर्वी किरणें इसकी पूर्वी मधु-कोशिकाएँ हैं; ऋक् मधुमक्खियाँ हैं, ऋग्वेद का अनुष्ठान फूल है और वे जल अमृत हैं। उन्हीं ऋक् (मधुमक्खियों) ने इस ऋग्वेद को दबाया। इस प्रकार दबाने पर उसमें से रस, यश, अंगों का तेज, इन्द्रियों की जागृति,पुरुषत्व और खाने के लिए भोजन।

III-i-4: वह रस बह निकला; वह सूर्य के किनारे बस गया। वास्तव में, यह ही है जो सूर्य के लाल रंग के रूप में प्रकट होता है।

III-ii-1: और इसकी दक्षिणी किरणें इसकी दक्षिणी मधु कोशिकाएँ हैं। यजु के छंद मधुमक्खियाँ हैं। यजुर्वेद फूल है; और वे जल अमृत हैं।
III-ii-2: उन्हीं यजु के छंदों ने इस यजुर्वेद को दबाया। और उससे, इस प्रकार दबाने पर, रस, यश, अंगों की शोभा, इंद्रियों की सतर्कता, पुरुषत्व और खाने के लिए भोजन निकला।

III-ii-3: वह बह निकला; वह सूर्य के किनारे बस गया। वास्तव में, यह वही है जो सूर्य के सफेद रंग के रूप में प्रकट होता है।

III-iii-1: और इसकी पश्चिमी किरणें इसकी पश्चिमी मधु कोशिकाएँ हैं। सामन मधुमक्खियाँ हैं। सामवेद फूल है; और वे जल अमृत हैं।

III-III-2: उन्हीं सामंतों ने इस सामवेद को दबाया। इस प्रकार दबाने पर उसमें से रस, यश, अंगों की शोभा, इन्द्रियों की सजगता, पौरुष और खाने के लिए भोजन निकला।

III-III-3: वह बह निकला; वह सूर्य के पास जाकर बस गया। वास्तव में, यह वही है जो सूर्य के काले रंग के रूप में प्रकट होता है।

III-IV-1: और इसकी उत्तरी किरणें इसकी उत्तरी मधु कोशिकाएँ हैं। अथर्ववेद के मंत्र मधुमक्खियाँ हैं। इतिहास और पुराण फूल हैं; और वे जल अमृत हैं।

III-IV-2: अथर्ववेद के उन मंत्रों ने इस इतिहास-पुराण को दबाया। इस प्रकार दबाने पर उसमें से रस, यश, अंगों की शोभा, इन्द्रियों की सजगता, पौरुष और खाने के लिए भोजन निकला।

III-IV-3: यह बहकर सूर्य के पास जाकर बस गया। वास्तव में, यह वही है जो सूर्य के गहरे काले रंग के रूप में दिखाई देता है।

III-V-1: और इसकी ऊपरी किरणें इसकी ऊपरी मधु कोशिकाएँ हैं। गुप्त शिक्षाएँ मधुमक्खियाँ हैं। ब्रह्म (प्रणव) फूल है। वे जल (प्रणव पर ध्यान के परिणाम) अमृत हैं।

III-V-2: उन गुप्त शिक्षाओं ने इस प्रणव को दबाया। इस प्रकार दबाने पर, इससे रस, यश, अंगों की शोभा, इन्द्रियों की सतर्कता, पौरुष और खाने के लिए भोजन निकला।

III-V-3: यह बहकर सूर्य के पास आकर बस गया। वास्तव में, यह वही है जो सूर्य के बीच में कंपन के रूप में दिखाई देता है।

III-V-4: वास्तव में, ये रंग रसों के रस हैं, क्योंकि वेद सार हैं और ये उनका सार हैं। ये रंग वास्तव में अमृतों के भी अमृत हैं, क्योंकि वेद अमृत हैं और ये उनके अमृत हैं।

तृतीय-छठी-१: जो पहला अमृत है (अर्थात लाल रूप), उसे वसु अग्नि को अपना नायक मानकर भोगते हैं। देवता न तो खाते हैं, न पीते हैं, केवल इस अमृत को देखकर ही वे तृप्त हो जाते हैं।

तृतीय-छठी-२: वे इसी रूप (रंग) में प्रवेश करते हैं और इसी रूप से निकलते हैं।

तृतीय-छठी-३: जो इस अमृत को इस प्रकार जानता है, वह वसु बन जाता है और अग्नि को नायक मानकर, केवल इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाता है। वह इसी रूप में प्रवेश करता है और इसी रूप से निकलता है।

तृतीय-छठी-४: जब तक सूर्य पूर्व में उदय होता है और पश्चिम में अस्त होता है, तब तक वह वसुओं की प्रभुता और स्वर्ग का राज्य (या उसके समान) बनाए रखता है।

तृतीय-सप्तम-१: और जो दूसरा अमृत है (अर्थात श्वेत रूप), उसी का भोग रुद्र इन्द्र को अपना नेता मानकर करते हैं। देवता न तो खाते हैं, न पीते हैं; केवल इस अमृत को देखने से ही वे तृप्त हो जाते हैं।

तृतीय-सप्तम-२: वे इसी रूप में प्रवेश करते हैं और इसी रूप से निकलते हैं।

तृतीय-सप्तम-३: जो इस अमृत को इस प्रकार जानता है, वह रुद्रों में से एक हो जाता है और इन्द्र को अपना नेता मानकर केवल इस अमृत को देखने से ही तृप्त हो जाता है। वह इसी रूप में प्रवेश करता है और इसी रूप से निकलता है।

तृतीय-सप्तम-४: जितने समय तक सूर्य पूर्व में उदय होता है और पश्चिम में अस्त होता है, उससे दुगुना समय तक वह (सूर्य) दक्षिण में उदय होता है

और उत्तर में अस्त होता है और तब तक वह रुद्रों की प्रभुता और स्वर्ग का राज्य बनाए रखता है।

III-viii-1: और वह जो तीसरा अमृत है (अर्थात काला रूप), जिसका आदित्यगण वरुण को अपना नेता मानकर आनंद लेते हैं। देवता, वास्तव में, न तो खाते हैं और न ही पीते हैं; केवल इस अमृत को देखने से ही वे संतुष्ट हो जाते हैं।

III-viii-2: वे इसी रूप में प्रवेश करते हैं और इसी रूप से निकलते हैं।

III-viii-3: जो इस अमृत को इस प्रकार जानता है, वह आदित्यों में से एक बन जाता है, और वरुण को नेता बनाकर, इस अमृत को देखने से ही संतुष्ट हो जाता है। वह इसी रूप में प्रवेश करता है और इसी रूप से निकलता है।

III-viii-4: जब तक सूर्य दक्षिण में उदय होता है और उत्तर में अस्त होता है, उससे दुगुना समय तक वह (सूर्य) पश्चिम में उदय होता है और पूर्व में अस्त होता है और उतनी ही अवधि तक वह आदित्यों की प्रभुता और स्वर्ग का राज्य रखता है।

III-ix-1: और जो चौथा अमृत है (अर्थात गहरा काला रंग), उसका आनंद मरुतगण सोम को अपना नेता बनाकर लेते हैं। देवता न तो खाते हैं और न ही पीते हैं; केवल इस अमृत को देखने से ही वे संतुष्ट हो जाते हैं।

III-ix-2: वे इसी रूप में प्रवेश करते हैं और इसी रूप से निकलते हैं।

III-ix-3: जो इस अमृत को इस प्रकार जानता है, वह मरुतों में से एक बन जाता है, और सोम को नेता बनाकर वह केवल इस अमृत को देखने से ही संतुष्ट हो जाता है।

III-ix-4: जितने समय तक सूर्य पश्चिम में उदय होता है और पूर्व में अस्त होता है, उससे दुगुना समय तक वह (सूर्य) उत्तर में उदय होता है और दक्षिण में अस्त होता है और उतने समय तक ही वह मरुतों की प्रभुता और स्वर्ग का राज्य रखता है।

III-x-1: और जो पाँचवाँ अमृत है (अर्थात सूर्य के भीतर का तरकश रूप), उसी का सेवन साध्य लोग प्रणव को अपना नेता बनाकर करते हैं। देवता न तो खाते हैं, न पीते हैं; वे केवल इस अमृत को देखकर ही संतुष्ट हो जाते हैं।

III-x-2: वे इसी रूप में प्रवेश करते हैं और इसी रूप से निकलते हैं।

III-x-3: जो इस अमृत को इस प्रकार जानता है, वह साध्यों में से एक हो जाता है और प्रणव को अपना नेता बनाकर वह केवल इस अमृत को देखकर ही संतुष्ट हो जाता है।

III-x-4: जब तक सूर्य उत्तर में उदय होता है और दक्षिण में अस्त होता है, उससे दुगुना समय तक वह (सूर्य) ऊपर उदय होता है और नीचे अस्त होता है और उतनी ही अवधि तक वह साध्यों की प्रभुता और दिव्य राज्य को धारण करता है।

III-xi-1: फिर वहाँ से ऊपर की ओर उठकर वह न तो उदय होगा और न ही अस्त। वह बीच में अकेला रहेगा। इसके बारे में यह श्लोक है:

III-xi-2: 'ऐसा वहाँ कभी नहीं होता। वहाँ कभी सूर्य अस्त नहीं हुआ और न ही उदय हुआ। हे देवताओं, मेरे इस सत्य के कथन से मैं ब्रहम से च्युत न होऊँ।

III-xi-3: निश्चय ही उसके लिए सूर्य न तो उदय होता है और न ही अस्त। जो इस प्रकार वेदों के इस रहस्य को जानता है, उसके लिए नित्य दिन है।

III-xi-4: हिरण्यगर्भ ने मधु का यह सिद्धांत प्रजापति को दिया, प्रजापति ने मनु को और मनु ने अपनी संतानों को। और पिता ने अपने ज्येष्ठ पुत्र उद्दालक अरुणी को ब्रहम का यही ज्ञान बताया।

III-xi-5: पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र अथवा किसी अन्य योग्य शिष्य को मधु का यही ज्ञान बता सकता है।

III-xi-6: और किसी को नहीं, चाहे उसे समुद्र से घिरी हुई यह धन-धान्य से भरी हुई पृथ्वी ही क्यों न दे दी जाए। यह (सिद्धांत) निश्चय ही उससे भी महान है। यह निश्चय ही उससे भी महान है।

III-xii-1: गायत्री ही सब कुछ है, चाहे जो भी प्राणी हो। वाणी ही गायत्री है; क्योंकि वाणी ही गाती है और इस सबका भय दूर करती है।

III-xii-2: जो यह गायत्री है, वही यह पृथ्वी है; क्योंकि इस पृथ्वी पर सभी प्राणी स्थित हैं और वे इससे परे नहीं हैं।

III-xii-3: जो यह पृथ्वी है (गायत्री के रूप में), वही यह है, अर्थात् इस व्यक्ति के संबंध में यह शरीर; क्योंकि ये इन्द्रियाँ वास्तव में इसी शरीर में स्थित हैं और वे इससे परे नहीं हैं।

III-xii-4: जो व्यक्ति के संबंध में शरीर है, वह भी इस शरीर के भीतर हृदय के समान है; क्योंकि ये इन्द्रियाँ वास्तव में इसी में स्थित हैं और वे इससे परे नहीं हैं।

III-xii-5: यह सुप्रसिद्ध गायत्री चार पैरों वाली और छः गुना है। गायत्री ब्रह्म इस प्रकार निम्नलिखित ऋचा में व्यक्त किया गया है:

III-xii-6: ऐसी है इस (गायत्री नामक ब्रह्म) की महानता। व्यक्ति इससे भी महान है। यह सारा संसार उसका एक चौथाई है, उसके शेष तीन चौथाई भाग स्वर्ग में अमरता का निर्माण करते हैं।

III-xii-7-9: जो ब्रह्म है, वही शरीर के बाहर यह आकाश है। जो शरीर के बाहर आकाश है, वही शरीर के अन्दर भी आकाश है। जो शरीर के अन्दर आकाश है, वही हृदय के कमल में भी आकाश है। यह ब्रह्म सर्वव्यापी और अपरिवर्तनशील है। जो इस प्रकार ब्रह्म को जानता है, वह सर्वव्यापी और अपरिवर्तनशील समृद्धि को प्राप्त करता है।

तृतीय-तेरह-१: इस हृदय के पाँच द्वार हैं, जिनकी रक्षा देवता करते हैं। जो इस हृदय के पूर्व द्वार में है, वह प्राण है। वह नेत्र है, वह सूर्य है। इस (प्राण नामक ब्रह्म) का ध्यान तेजस्विता और अन्न के स्रोत के रूप में करना चाहिए। जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह तेजस्वी और अन्न खाने वाला बन जाता है।

तृतीय-तेरह-२: और जो इस हृदय के दक्षिण द्वार में है, वह व्यान है। वह कान है, वह चन्द्रमा है। इस (व्यान नामक ब्रह्म) का ध्यान समृद्धि और

यश के रूप में करना चाहिए। जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह समृद्ध और प्रसिद्ध हो जाता है।

III-xiii-3: और (वह जो) इस (हृदय) के पश्चिमी द्वार में स्थित है, वह अपान है। वह वाणी है, वह अग्नि है। इस (ब्रह्म जिसे अपान कहते हैं) का ध्यान पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज और अन्न के स्रोत के रूप में करना चाहिए। जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से दीप्तिमान हो जाता है और अन्न खाने वाला भी हो जाता है।

III-xiii-4: और (वह जो) इस (हृदय) के उत्तरी द्वार में स्थित है, वह समान है। वह मन है, वह पर्जन्य (वर्षा-देवता) है। इस (ब्रह्म जिसे समान कहते हैं) का ध्यान यश और कृपा के रूप में करना चाहिए। जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह प्रसिद्ध और शोभायमान हो जाता है।

III-xiii-5: और (वह जो) इस (हृदय) के ऊपरी द्वार में स्थित है, वह उदान है। वह वायु है, वह आकाश है। इस (उदान नामक ब्रह्म) का ध्यान बल और श्रेष्ठता के रूप में करना चाहिए। जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह बलवान और श्रेष्ठ बन जाता है।

III-xiii-6: ये वास्तव में ब्रह्म के अधीन पाँच व्यक्ति हैं, जो स्वर्ग के प्रहरी हैं। जो ब्रह्म के अधीन इन पाँच व्यक्तियों, स्वर्ग के प्रहरी की इस प्रकार पूजा करता है, वह अपने परिवार में जन्मा हुआ वीर होता है। जो ब्रह्म के अधीन इन पाँच व्यक्तियों, स्वर्ग के प्रहरी की इस प्रकार पूजा करता है, वह स्वर्ग को प्राप्त होता है।

III-xiii-7: फिर, ब्रह्म का प्रकाश जो इस स्वर्ग के ऊपर, सभी चीज़ों के ऊपर, सभी के ऊपर, अतुलनीय रूप से अच्छे और उच्चतम लोकों में चमकता है, वह भी मनुष्य के शरीर के भीतर का प्रकाश है। यह प्रकाश तब तक देखा जा सकता है जब तक कि कोई व्यक्ति शरीर को छूता है तो उसे गर्मी का एहसास होता है। इसे सुना जा सकता है, क्योंकि कान बंद करने पर रथ की ध्वनि, बैल की गरज या धधकती आग की ध्वनि जैसी आवाज सुनाई देती है। व्यक्ति को दृश्य और श्रव्य प्रकाश का ध्यान करना चाहिए। जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह सुंदर और तेजस्वी बन जाता है - हाँ, जो इस प्रकार ध्यान करता है।

III-xiv-1: वास्तव में, यह सारा जगत ब्रह्म है। उसी से सभी चीजें उत्पन्न होती हैं, उसी में विलीन हो जाती हैं और उसी से टिकी रहती हैं। उसी का

ध्यान शांतिपूर्वक करना चाहिए। क्योंकि जैसी श्रद्धा है, वैसा ही व्यक्ति है; और जैसी इस संसार में श्रद्धा है, वैसा ही व्यक्ति यहाँ से जाने पर बन जाता है। इसलिए, व्यक्ति को श्रद्धा विकसित करनी चाहिए।

III-xiv-2-3: वह, जो मन में व्याप्त है, जिसके शरीर में प्राण है, जिसका स्वभाव चेतना है, जिसका संकल्प अचूक है, जिसका अपना स्वरूप आकाश के समान है, जिसकी रचना ही सब कुछ है, जिसकी सभी शुद्ध इच्छाएँ हैं, जो सभी सुखद गंधों और सभी सुखद स्वादों का स्वामी है, जो इन सब में व्याप्त है, जो वाणी (और अन्य इंद्रियों) से रहित है, जो उत्तेजना और भय से मुक्त है।

उत्सुकता - यह मेरा आत्मा, जो हृदय कमल में स्थित है - धान के दाने से, जौ के दाने से, सरसों के दाने से, बाजरे के दाने से तथा बाजरे के दाने से भी छोटा है। यह मेरा आत्मा जो हृदय कमल में स्थित है, पृथ्वी से भी बड़ा है, आकाश से भी बड़ा है, स्वर्ग से भी बड़ा है, इन सब लोकों से भी बड़ा है।

III-xiv-4: वह, जिसकी रचना ही सब कुछ है, जिसकी सभी शुद्ध इच्छाएँ हैं, जो सभी मनभावन गंधों और सभी सुखद स्वादों से युक्त है, जो इस सब में व्याप्त है, जो वाणी (और अन्य इन्द्रियों) से रहित है, जो व्याकुलता और उत्सुकता से मुक्त है, वह मेरा आत्मा हृदय कमल में स्थित है; वह ब्रहम है। यहाँ से प्रस्थान करने पर मैं उसी को प्राप्त करूँगा। केवल वही जो इस विश्वास को रखता है और इसमें कोई संदेह नहीं करता है (वही परिणाम प्राप्त करेगा)। इस प्रकार शांडिल्य ने कहा - हाँ, शांडिल्य।

तृतीय-पंद्रह-१: आकाश को खोखला और पृथ्वी को नीचे की ओर रखने वाला यह वक्ष (अर्थात् ब्रहमाण्ड) कभी नष्ट नहीं होता। दिशाएँ ही इसके कोने हैं और स्वर्ग इसका ऊपरी ढक्कन है। यह प्रसिद्ध वक्ष धन का भण्डार है। इसमें सभी वस्तुएँ स्थित हैं।

तृतीय-पंद्रह-२: उस वक्ष का पूर्व दिशा का नाम जुहू, दक्षिण दिशा का नाम सहमना, पश्चिम दिशा का नाम रजनी और उत्तर दिशा का नाम सुभूत है। वायु उनका बछड़ा है। जो इस वायु को, दिशाओं के बछड़े को, इस प्रकार (अमर) जानता है, वह अपने पुत्र के लिए शोक में कभी नहीं रोता। मैं अपने पुत्र की दीर्घायु की कामना करते हुए, दिशाओं के बछड़े की इस वायु की इस प्रकार पूजा करता हूँ। मैं अपने पुत्र के लिए शोक में कभी न रोऊँ।

तृतीय-पंद्रह-३: मैं अमुक के लिए अविनाशी वक्ष की शरण लेता हूँ। अमुक के लिए मैं प्राण की शरण लेता हूँ। अमुक के लिए मैं भूः की शरण लेता हूँ। मैं ऐसे-ऐसे के लिए भुवः की शरण लेता हूँ। मैं ऐसे-ऐसे के लिए स्वः की शरण लेता हूँ।

III-xv-4: जब मैंने कहा, 'मैं प्राण की शरण लेता हूँ', (ऐसा इसलिए था) क्योंकि ये सभी प्राणी, जो कुछ भी मौजूद हैं, वास्तव में प्राण हैं। इसलिए यह केवल इसी में शरण थी।

III-xv-5: फिर जब मैंने कहा, 'मैं भुवः की शरण लेता हूँ', मैंने केवल इतना ही कहा: 'मैं पृथ्वी की शरण लेता हूँ, मैं आकाश की शरण लेता हूँ, मैं स्वर्ग की शरण लेता हूँ'।

III-xv-6: फिर जब मैंने कहा, 'मैं भुवः की शरण लेता हूँ', तो मैंने केवल यही कहा: 'मैं अग्नि की शरण लेता हूँ, मैं वायु की शरण लेता हूँ, मैं सूर्य की शरण लेता हूँ।'

III-xv-7: फिर, जब मैंने कहा, 'मैं स्वः की शरण लेता हूँ', तो मैंने केवल यही कहा: 'मैं ऋग्वेद की शरण लेता हूँ, मैं यजुर्वेद की शरण लेता हूँ, मैं सामवेद की शरण लेता हूँ' - हाँ, मैंने यही कहा था।

III-xvi-1: मनुष्य, वास्तव में, यज्ञ है। उसके (पहले) चौबीस वर्ष प्रातःकाल का अर्घ्य है, क्योंकि गायत्री छन्द चौबीस अक्षरों से बना है, और प्रातःकाल का अर्घ्य गायत्री छन्द से संबंधित है। इसके साथ वसु जुड़े हुए हैं। प्राण वास्तव में वसु हैं, क्योंकि वे इस सब को स्थिर करते हैं।

III-xvi-2: जीवन के इस काल में यदि कोई चीज (जैसे बीमारी) उसे पीड़ा पहुँचाती है, तो उसे दोहराना चाहिए: 'हे प्राणों, वसुओं, इस सुबह के मन के अर्घ्य को मध्याह्न के अर्घ्य के साथ मिला दो। मैं जो एक यज्ञ हूँ, प्राण रूपी वसुओं के बीच में खो न जाऊँ।' वह निश्चित रूप से इससे उबर जाता है और स्वस्थ हो जाता है।

III-xvi-3: अब, (उसके अगले) चौवालीस वर्ष मध्याह्न के अर्घ्य हैं, (क्योंकि) त्रिष्टुभ छन्द चौवालीस अक्षरों से बना है, और मध्याह्न का अर्घ्य त्रिष्टुभ छन्द से संबंधित है। इसके साथ रुद्र जुड़े हुए हैं। प्राण वास्तव में रुद्र हैं, क्योंकि वे इस (ब्रह्मांड) को रुलाते हैं।

III-xvi-4: जीवन के इस काल में यदि कोई चीज (जैसे बीमारी) उसे पीड़ा पहुँचाती है, तो उसे दोहराना चाहिए: 'हे प्राणों, रुद्रों, मेरे इस मध्याह्न के अर्घ्य को तीसरे अर्घ्य के साथ मिला दो। मैं जो एक यज्ञ हूँ, प्राणस्वरूप रुद्रों के बीच में लुप्त न हो जाऊँ। वह अवश्य ही उससे उबर जाता है और स्वस्थ हो जाता है।

III-xvi-5: फिर (उसके अगले) अड़तालीस वर्ष तीसरे अर्घ्य हैं। जगती छंद अड़तालीस अक्षरों से बना है और तीसरा अर्घ्य जगती छंद से संबंधित है। इसके साथ, आदित्य जुड़े हुए हैं। प्राण वास्तव में आदित्य हैं, क्योंकि वे यह सब स्वीकार करते हैं।

III-xvi-6: जीवन की इस अवधि के दौरान यदि कोई चीज (जैसे बीमारी) उसे पीड़ा देती है, तो उसे दोहराना चाहिए: 'हे प्राणों, आदित्यों, मेरे इस तीसरे अर्घ्य को जीवन की पूरी अवधि तक बढ़ाओ। मैं जो एक यज्ञ हूँ, प्राणस्वरूप आदित्यों के बीच में लुप्त न हो जाऊँ।' वह अवश्य ही उससे उबर जाता है और स्वस्थ हो जाता है।
स्वस्थ।

III-xvi-7: इस सुप्रसिद्ध (यज्ञ सिद्धांत) को जानकर ऐतरेय महिदास ने कहा, 'आप मुझे इस प्रकार क्यों कष्ट दे रहे हैं, जबकि मैं इस प्रकार मारा नहीं जा सकता।' वे एक सौ सोलह वर्ष तक जीवित रहे। जो इस प्रकार जानता है, वह भी एक सौ सोलह वर्ष तक शक्ति से जीता है।

III-xvii-1: वह (जो पुरुष यज्ञ करता है) भूख महसूस करता है, प्यास महसूस करता है, प्रसन्न नहीं होता - ये सभी इस यज्ञ के आरंभिक संस्कार हैं।

III-xvii-2: और, वह खाता है, पीता है, प्रसन्न होता है - ये सभी उपासदों के निकट आते हैं।

III-xvii-3: और, वह हंसता है, खाता है, युगल की तरह व्यवहार करता है - ये सभी स्तोत्र और शास्त्र के निकट आते हैं।

तृतीय-सप्तम-4: और उसकी तपस्या, दान, सदाचार, अहिंसा और सत्य - ये सब इस यज्ञ के दान हैं।

तृतीय-सप्तम-5: इसलिए लोग कहते हैं 'सोश्यति' (प्रजनन करेगा) और 'असोष्ट' (प्रजनन किया है)। फिर, यह भी इसी का प्रजनन है, और मृत्यु अवभृत स्नान है।

तृतीय-सप्तम-6: घोर अंगिरस ने देवकी के पुत्र कृष्ण को यह सुप्रसिद्ध सिद्धांत समझाया और कहा, 'ऐसे ज्ञानी को मृत्यु के समय इस त्रय का जाप करना चाहिए - 'तू अविनाशी है, तू अपरिवर्तनीय है, तू प्राण का सूक्ष्म सार है।' (उपर्युक्त सुनकर) उसकी प्यास समाप्त हो गई। इस संबंध में ये दो ऋचाएँ हैं।

तृतीय-सप्तम-७: (ब्रह्म के वे ज्ञाता जिन्होंने इन्द्रियों के निग्रह तथा ब्रह्मचर्य आदि उपायों से अपने मन को शुद्ध कर लिया है) सर्वत्र उस आदिपुरुष (जो ब्रह्माण्ड का बीज है) (जो तेजोमय ब्रह्म में चमकता है) को देखते हैं। हम भी अंधकार को दूर करने वाले उस परम प्रकाश को देखकर उस तक पहुँचें। अपने हृदय में उस परम प्रकाश को देखकर हम उस परम प्रकाश को प्राप्त हो गए हैं, जो (जल, प्रकाश की किरणों तथा प्राणों का) नाश करने वाला है, तथा सभी देवताओं में प्रकाशित हो रहा है - हाँ, हम उस परम प्रकाश को प्राप्त हो गए हैं।

तृतीय-सप्तम-१: मन ही ब्रह्म है, अतः ध्यान करना चाहिए - यह शरीर (मन सहित) के सम्बन्ध में (ध्यान) है। इसके बाद देवताओं के सम्बन्ध में ध्यान - आकाश ही ब्रह्म है, अतः ध्यान करना चाहिए। शरीर तथा देवताओं के सम्बन्ध में दोनों ध्यानों का आदेश दिया जा रहा है।

तृतीय-अठारह-2: इसी ब्रह्म के चार पैर हैं। वाणी का अंग एक पैर है। प्राण (गंध का अंग) एक पैर है, आंख एक पैर है और कान एक पैर है। यह शरीर के संदर्भ में है। अगला, देवताओं के संदर्भ में। अग्नि एक पैर है, वायु एक पैर है, आदित्य एक पैर है और तिमाही एक पैर हैं। इस प्रकार शरीर के संदर्भ में और देवताओं के संदर्भ में दोनों ध्यान का आदेश दिया गया है।

तृतीय-अठारह-3: वाणी का अंग ब्रह्म के चार पैरों में से एक है (जिसे मन कहा जाता है)। अग्नि के प्रकाश से यह चमकता है और गर्म होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह प्रसिद्धि और प्रसिद्धि के साथ और पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज के साथ चमकता है और गर्म होता है।

तृतीय-अठारह-4: गंध का अंग ब्रह्म के चार पैरों में से एक है। हवा के प्रकाश से यह चमकता है और गर्म होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह

यश और प्रसिद्धि से चमकता है और पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से गर्म होता है।

III-xviii-5: आँख ब्रह्म के चार पैरों में से एक है। सूर्य के प्रकाश से यह चमकती है और गर्म होती है।जो इस प्रकार जानता है, वह यश और प्रसिद्धि से चमकता है और पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से गर्म होता है।

III-xviii-6: कान ब्रह्म के चार पैरों में से एक है। दिशाओं के प्रकाश से यह चमकता है और गर्म होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह यश और प्रसिद्धि से चमकता है और पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से गर्म होता है - हाँ, वह जो इस प्रकार जानता है।

III-xix-1: सूर्य ब्रह्म है - यह शिक्षा है। इसकी आगे की व्याख्या (यहाँ दी गई है)।उस अंडे के छिलके के दो हिस्सों में से एक था तीसरा चाँदी का और दूसरा सोने का।

III-xix-2: इनमें से जो चाँदी का था वह यह पृथ्वी है। जो सोने का था वह स्वर्ग है। जो बाहरी झिल्ली थी वह पर्वत है। जो भीतरी झिल्ली थी वह बादलों सहित कोहरा है। जो शिराएँ थीं वे नदियाँ हैं। जो पेट के निचले भाग में जल था वह महासागर है।

III-xix-3: और जो पैदा हुआ वह दूर का सूर्य है। उसके पैदा होने के बाद, ऊँची आवाज़ के रूप में ध्वनियाँ उठीं, साथ ही सभी प्राणी और सभी इच्छित वस्तुएँ भी उठीं। इसलिए उसके उदय और उसके हर बार लौटने (या उसके अस्त होने) पर, ऊँची आवाज़ के रूप में ध्वनियाँ उठती हैं, साथ ही सभी प्राणी और सभी इच्छित वस्तुएँ भी।

III-xix-4: जो सूर्य को इस प्रकार जानता है और उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता है, शुभ ध्वनियाँ उसके पास जल्दी से आएँगी और उसे प्रसन्न करती रहेंगी - हाँ, प्रसन्न करती रहेंगी।

IV-i-1: ॐ। जनश्रुति पौत्रयान रहते थे जो आदरपूर्वक दान देते थे, उदारता से देते थे और दूसरों के लिए खूब भोजन पकाते थे। उन्होंने चारों ओर विश्रामगृह बनवाए, यह सोचकर कि 'सब जगह लोग मेरा भोजन खाएंगे'।

IV-i-2: एक बार रात के समय हंस उड़ रहे थे। तब एक हंस ने दूसरे हंस से इस प्रकार कहा, ‘हो, हो, हे भल्लाक्ष, भल्लाक्ष, जनश्रुति पौत्रयान का तेज स्वर्ग की तरह फैल गया है। इसके संपर्क में मत आना, नहीं तो यह तुम्हें झुलसा देगा।’

IV-i-3: भल्लाक्ष ने उससे कहा, ‘देखो, तुम उसका ऐसा वर्णन कैसे कर सकते हो मानो वह गाड़ी वाला रैक्वा हो?’ ‘गाड़ी वाला यह रैक्वा किस प्रकार का है?’

IV-i-4: ‘जिस प्रकार कृत-कास्ट जीतने वाले के पास सभी निचले पासे चले जाते हैं, उसी प्रकार जो भी प्राणी अच्छा करता है वह रैक्वा के पास चला जाता है; उसी प्रकार जो जानता है कि रैक्वा क्या जानता है। ऐसा ही वह है जिसके बारे में मैंने ऐसा कहा है।’

IV-i-5-6: जनश्रुति पौत्रयण ने उन शब्दों को सुन लिया। उठते ही उसने सेवक से कहा, 'देखो, क्या तुमने मुझे गाड़ी वाले रैक्व की तरह सराहा है?' 'गाड़ी वाला यह रैक्व कैसा आदमी है?' (जनश्रुति ने हंस के शब्दों को दोहराया): 'जिस तरह पासों के सभी निचले पासे उस व्यक्ति के पास जाते हैं जिसने कृत-कास्ट जीता है, उसी तरह जो भी प्राणी अच्छा करता है वह रैक्व के पास जाता है; और जो रैक्व जो जानता है उसे जानता है। ऐसा ही वह है जिसके बारे में मैंने ऐसा कहा है।'

IV-i-7: सेवक, उसे खोजते हुए वापस आया, यह सोचकर कि, 'मैं उसे नहीं पा सका'। जनश्रुति ने उससे कहा, 'ठीक है, जहाँ ब्रह्म के ज्ञाता को खोजना चाहिए, वहाँ उसे खोजो'।

IV-i-8: (खोजने के बाद) वह एक व्यक्ति के पास आया जो एक गाड़ी के नीचे बैठा था और अपनी त्वचा पर फोड़े खुजला रहा था और उसके पास बैठकर उससे पूछा, 'आदरणीय महोदय, क्या आप गाड़ी वाले रैक्व हैं?' 'अच्छा साथी, हाँ, मैं हूँ', उसने स्वीकार किया। यह सोचकर कि 'मैंने उसे पा लिया है', सेवक लौट गया।

IV-ii-1-2: यह सुनकर, जनश्रुति पौत्रयान अपने साथ छह सौ गायें, एक सोने का हार और खच्चरों द्वारा खींचा जाने वाला एक रथ लेकर रैक्व के पास गया और उससे इस प्रकार संबोधित किया: 'हे रैक्व, (यहाँ आपके लिए) ये छह सौ गायें, यह सोने का हार और खच्चरों द्वारा खींचा जाने

वाला यह रथ है। अब, पूज्य महोदय, मुझे उस देवता के विषय में बताइए जिसकी आप पूजा करते हैं।'

IV-ii-3: दूसरे व्यक्ति ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया: 'अरे, हे शूद्र, यह सोने का हार, रथ और गायें तुम्हारे पास ही रहने दो।' इसके बाद जनश्रुति पौत्रयान ने फिर एक हजार गायें, एक सोने का हार, खच्चरों द्वारा खींचा जाने वाला रथ और अपनी पुत्री को साथ लिया और रैक्व के पास गया।

IV-ii-4: जनश्रुति ने उससे कहा: 'हे रैक्व, (ये तुम्हारे लिए हैं) ये एक हजार गायें, यह सोने का हार, यह खच्चरों द्वारा खींचा जाने वाला रथ, यह पत्नी और यह गाँव जिसमें तुम रहते हो। अब, पूज्य महोदय, कृपया मुझे बताइए'।

IV-ii-5: उस राजकुमारी को ज्ञान के संचार का द्वार मानकर रैक्व ने कहा, 'हे शूद्र, ये सब तुम ही लाए हो! इस माध्यम से भी (यानी राजकुमारी के माध्यम से) तुम मुझसे बात करवाओगे।' राजा ने उसे महावृष देश के वे सभी गाँव दे दिए जिन्हें राइक्वापर्णा के नाम से जाना जाता था जहाँ राइक्वा रहता था। राइक्वा ने उससे कहा:

IV-iii-1: वायु वास्तव में अवशोषक है। क्योंकि जब आग बुझती है, तो वह हवा में ही विलीन हो जाती है; जब सूरज डूबता है, तो वह हवा में ही विलीन हो जाती है; जब चाँद डूबता है, तो वह हवा में ही विलीन हो जाती है।

IV-iii-2: जब जल सूख जाता है, तो वह वायु में मिल जाता है, क्योंकि वायु इन सभी को अवशोषित कर लेती है। यह देवताओं के संदर्भ में (संवर्ग का सिद्धांत) है।

IV-iii-3: अगला (संवर्ग का सिद्धांत) शरीर के संदर्भ में है: प्राण ही अवशोषक है। जब कोई सोता है, तो वाणी प्राण में विलीन हो जाती है, आंख प्राण में विलीन हो जाती है, कान प्राण में विलीन हो जाता है, मन प्राण में विलीन हो जाता है: क्योंकि प्राण ही इन सभी को अवशोषित कर लेता है।

IV-iii-4: ये, वास्तव में, दो अवशोषक हैं: देवताओं में वायु और इंद्रियों में प्राण।

IV-iii-5: एक बार की बात है, जब कपेय सौनक और कक्षसेनी अभिप्रतारिन को भोजन परोसा जा रहा था, तो पवित्र ज्ञान का एक ब्रह्मचारी छात्र उनसे भीख माँग रहा था। उन्होंने उसे कुछ नहीं दिया।

IV-iii-6: ब्रह्मचारिन ने कहा, 'प्रजापति, एक देवता ने चार महान लोगों को निगल लिया; हे कपेय, हे अभिप्रतारिण! जो नाना प्रकार से निवास करता है, उसे मनुष्य नहीं देखते। जिसके लिए यह सारा भोजन है, उससे भी तुमने उसे रोक रखा है।'

IV-iii-7: कपेय शौनक उन वचनों पर विचार करते हुए उनके पास गए (और कहा): 'जो सब देवताओं का आत्मा है और सब प्राणियों का रचयिता है, जिसके दांत कभी क्षय नहीं होते, जो भक्षक है, जो बुद्धिमान है, जो स्वयं कभी खाया नहीं जाता (परन्तु) जो अन्न न खाने वालों को भी खा जाता है; और इसलिए (ज्ञानी) उसकी महिमा को अपरिमित बताते हैं - हे ब्रह्मचारिण, हम जिसकी पूजा करते हैं, वह ब्रह्म ही है।' (तब उन्होंने सेवकों से कहा): 'उसे भोजन दो।'

IV-iii-8: उन्होंने उसे भोजन दिया। अब ये पाँच और अन्य पाँच मिलकर दस हो जाते हैं, जो कृत (पासे) बनते हैं। अतः (अर्थात् क्योंकि संख्या दस दोनों पर लागू होती है) ये दस अन्न या विराट हैं जो दस दिशाओं में निवास करते हैं और ये (भोक्ता) कृत हैं। ये विराट, दस देवताओं के रूप में, पुनः अन्न का भक्षक (कृत के रूप में) हैं; उसी के द्वारा यह सब देखा जाता है। जो इस प्रकार देखता है, उसके द्वारा भी यह सब देखा जाता है और वह अन्न खाने वाला बन जाता है।

IV-IV-1: एक बार सत्यकाम जाबाल ने अपनी माता जाबाल से कहा, 'माता, मैं गुरु के घर में ब्रह्मचारी ज्ञान का विद्यार्थी बनकर जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। मैं किस वंश का हूँ?'

IV-IV-2: उसने उससे कहा, 'मेरे पुत्र, मैं नहीं जानती कि तुम किस वंश के हो। मैं, जो अनेक कार्यों में तथा दूसरों की सेवा में लगी रहती थी, युवावस्था में ही तुम्हें प्राप्त कर चुकी थी। ऐसा होने के कारण मैं नहीं जान सकी कि तुम किस वंश के हो। तथापि, मेरा नाम जाबाल है और तुम्हारा नाम सत्यकाम है। अतः आप अपने बारे में केवल सत्यकाम जाबाला ही बोलते हैं।'

IV-IV-3: वह हरिद्रुमता गौतम के पास गया और बोला, 'मैं आपके अधीन ब्रह्मचारी के रूप में रहना चाहता हूँ; क्या मैं आपके पूज्य स्वरुप के पास (उसी हेतु) आ सकता हूँ?'

IV-IV-4: गौतम ने उससे पूछा, 'प्रिय बालक, तुम किस वंश से हो?' उसने उत्तर दिया, 'श्रीमान्, मैं नहीं जानता कि मैं किस वंश से हूँ। मैंने अपनी माँ से पूछा; उसने उत्तर दिया, "मैं, जो अनेक कार्यों में संलग्न थी और दूसरों की सेवा में लगी हुई थी, अपनी युवावस्था में तुम्हें प्राप्त हुई। ऐसी होने के कारण, मैं नहीं जान सकी कि तुम किस वंश से हो।हालाँकि, मेरा नाम जाबाला है और आपका नाम सत्यकाम है।' अतः, श्रीमान्, मैं सत्यकाम जाबाला हूँ।'

IV-IV-5: गुरु ने उससे कहा, 'कोई भी व्यक्ति जो ब्राह्मण नहीं है, ऐसा नहीं बोल सकता। हे बालक, हवन सामग्री लाओ, मैं तुम्हें ब्रह्मचारी बनाऊंगा, क्योंकि तुम सत्य से विचलित नहीं हुए हो।' उसे दीक्षा देकर उन्होंने चार सौ दुबली-पतली और कमजोर गायों को छांटकर कहा, 'हे बालक, इनके पीछे-पीछे चलो।' जब वे उन्हें वन की ओर ले जा रहे थे, तब सत्यकाम ने कहा, 'मैं तब तक नहीं लौटूंगा, जब तक इनकी संख्या एक हजार न हो जाए।' वे बहुत समय तक दूर रहे, जब तक कि उनकी संख्या एक हजार नहीं हो गई।

चौथे-पांचवें-1: तब बैल ने उससे इस प्रकार कहा, 'सत्यकाम !' 'हां, पूज्य महाराज', इस प्रकार उसने उत्तर दिया, 'प्रिय बालक, हमारी संख्या एक हजार हो गई है, हमें गुरु के घर ले चलो।'

चौथे-पांचवें-2: 'मैं तुम्हें ब्रह्म के एक पैर के बारे में भी शिक्षा देता हूं।' 'कृपया मुझे शिक्षा दीजिए, पूज्य महाराज।' (बैल ने) उससे कहा, 'पूर्व दिशा एक भाग है, पश्चिम दिशा एक भाग है, दक्षिण दिशा एक भाग है, उत्तर दिशा एक भाग है। हे प्रिय बालक, यह वास्तव में ब्रह्म का एक पैर है, जिसमें चार भाग हैं, जिसका नाम दीप्तिमान है।

IV-v-3: 'जो व्यक्ति ब्रह्म के इस एक पैर को इस प्रकार जानता है, जिसमें चार भाग हैं, तथा उसका दीप्तिमान रूप में ध्यान करता है, वह इस संसार में दीप्तिमान हो जाता है। जो व्यक्ति ब्रह्म के इस एक पैर को इस प्रकार जानता है, जिसमें चार भाग हैं, तथा उसका दीप्तिमान रूप में ध्यान करता है, वह दीप्तिमान लोकों (अगले संसार में) को जीतता है।

IV-vi-1: 'अग्नि तुम्हें ब्रह्म के एक पैर के बारे में बताएगी'। अगले दिन भोर में उसने गायों को गुरु के घर की ओर हांक दिया। शाम को, जिस स्थान पर वे गायें इकट्ठी हुई थीं, उसने वहाँ अग्नि जलाई, गायों को बाँधा, ईंधन डाला और अग्नि के पीछे उनके पास पूर्व की ओर मुँह करके बैठ गया।
IV-vi-2: अग्नि ने उससे कहा, 'सत्यकाम!' 'हाँ, आदरणीय महोदय', उसने उत्तर दिया।

IV-vi-3: 'प्रिय बालक, मैं तुम्हें ब्रह्म के एक पैर के बारे में बताती हूँ'। 'कृपया मुझे बताएँ, आदरणीय महोदय।' (अग्नि ने) उससे कहा, 'पृथ्वी एक भाग है, आकाश एक भाग है, स्वर्ग एक भाग है, और समुद्र एक भाग है। यह वास्तव में, प्रिय बालक, ब्रह्म का एक पैर है, जिसमें चार भाग हैं, जिन्हें अनंत कहा जाता है।

चतुर्थ-छठी-४: 'जो व्यक्ति इस चार भागों वाले ब्रह्म के एक चरण को इस प्रकार जानता है और उसका अनंत रूप में ध्यान करता है, वह इस संसार में अनंत हो जाता है। जो व्यक्ति इस चार भागों वाले ब्रह्म के एक चरण को इस प्रकार जानता है और उसका अनंत रूप में ध्यान करता है, वह अनंत लोकों को जीत लेता है।'

चतुर्थ-सप्तम-१: 'हंस तुम्हें ब्रह्म के एक चरण के बारे में बताएगा।' अगले दिन भोर होते ही वह गायों को गुरु के घर की ओर ले गया। शाम के समय, जिस स्थान पर गायें एकत्रित हुई थीं, उसने वहाँ अग्नि जलाई, गायों को बाँधा, ईंधन रखा और उनके पास अग्नि के पीछे पूर्व की ओर मुख करके बैठ गया।

चतुर्थ-सप्तम-२: हंस उसके पास उड़कर आया और उससे कहा, 'सत्यकाम!' 'हाँ, आदरणीय महोदय', उसने उत्तर दिया। चतुर्थ-सप्तम-३: 'प्रिय बालक, मैं तुम्हें ब्रह्म के एक चरण के बारे में बताता हूँ।' 'आदरणीय महोदय, कृपया मुझे उपदेश दीजिए।' (हंस) ने उससे कहा, 'अग्नि एक भाग है, सूर्य एक भाग है, चंद्रमा एक भाग है, और बिजली एक भाग है। हे प्रिय बालक, यह वास्तव में ब्रह्म का एक पैर है, जिसमें चार भाग हैं, जिसे तेजोमय कहा जाता है।

IV-vii-4: 'जो व्यक्ति ब्रह्म के इस एक पैर को इस प्रकार जानता है, और तेजोमय के रूप में इसका ध्यान करता है, वह इस संसार में तेजोमय हो

जाता है। जो व्यक्ति ब्रह्म के इस एक पैर को इस प्रकार जानता है, और तेजोमय के रूप में इसका ध्यान करता है, वह परलोक में तेजोमय लोकों (सूर्य, चंद्रमा आदि) को जीतता है।'

IV-viii-1: 'मद्गु तुम्हें ब्रह्म के एक पैर के बारे में बताएगा।' अगले दिन भोर होते ही वह गायों को हाँककर गुरु के घर की ओर चल पड़ा। शाम के समय जिस स्थान पर गायें एकत्र होती थीं, वहाँ उसने अग्नि प्रज्वलित की, गायों को बाँधा, ईंधन बिछाया और पूर्व की ओर मुख करके अग्नि के पीछे उनके पास बैठ गया।

IV-viii-2: मद्गु पक्षी उसके पास उड़कर आया और उससे कहा, 'सत्यकाम!' 'हाँ, पूज्य महोदय', उसने उत्तर दिया।

IV-viii-3: 'प्रिय बालक, मैं तुम्हें ब्रह्म के एक पाद के विषय में उपदेश देता हूँ।' 'कृपया मुझे उपदेश दीजिए, पूज्य महोदय'।(मद्गु पक्षी) ने उससे कहा, 'प्राण एक भाग है, आँख एक भाग है, कान एक भाग है, और मन एक भाग है। हे बालक, यह वास्तव में ब्रह्म का एक पाद है, जिसके चार भाग हैं, जिसे भण्डार कहा गया है।

IV-viii-4: 'जो इस चार भागों वाले ब्रह्म के एक पाद को इस प्रकार जानता है, और इसे भण्डार के रूप में ध्यान करता है, वह इस संसार में भण्डार (अर्थात उचित निवास वाला) हो जाता है। जो इस चार भागों वाले ब्रह्म के एक पाद को इस प्रकार जानता है और उसी को भण्डार मानकर उसका ध्यान करता है, वह भण्डार (अर्थात् विस्तृत) लोकों (परलोक) को जीतता है।'

IV-ix-1: सत्यकाम गुरु के घर पहुँचा। गुरु ने उसे संबोधित किया, 'सत्यकाम !' उसने उत्तर दिया, 'हाँ, पूज्य महाराज'।

IV-ix-2: 'प्रिय बालक, तुम ब्रह्म के ज्ञाता की तरह चमकते हो; तुम्हें किसने शिक्षा दी है ?' सत्यकाम ने उसे आश्वस्त किया, 'मनुष्यों के अलावा अन्य लोग। लेकिन मेरी इच्छा है, पूज्य महाराज, कि आप इसे मुझे समझाएँ।

IV-ix-3: 'मैंने आपके जैसे पूज्य व्यक्तियों से अवश्य सुना है कि अपने गुरु से सीधे सीखा हुआ ज्ञान सबसे अधिक लाभकारी होता है'। गुरु ने उसे वही बात सिखाई, और इसमें कुछ भी छूटा नहीं - हाँ, कुछ भी छूटा नहीं।

IV-x-1: एक बार उपकोशल कमलायन सत्यकाम जाबाल के साथ ब्रह्मचारी का जीवन जी रहे थे। उन्होंने बारह वर्षों तक उनकी अग्नि को संभाला। सत्यकाम ने अन्य शिष्यों के लिए अध्ययन पूरा करने और घर लौटने का समारोह किया, लेकिन उपकोशल के लिए समारोह नहीं किया।
IV-x-2: गुरु की पत्नी ने उनसे कहा, 'इस ब्रह्मचारी ने कठोर तपस्या की है और अग्नि को ठीक से संभाला है; आपको इसे शिक्षा देनी चाहिए ताकि अग्नि आपको दोष न दे।' लेकिन गुरु उसे निर्देश दिए बिना यात्रा पर चले गए।

चतुर्थ-x-3: मानसिक कष्टों के कारण उपकोशल ने उपवास करना आरम्भ कर दिया। गुरु की पत्नी ने उनसे कहा, 'हे ब्रह्मचारी, भोजन करो; तुम क्यों नहीं खाते?' उन्होंने उत्तर दिया, 'इस (अत्यंत साधारण और निराश) मनुष्य (अर्थात् मुझमें) अनेक इच्छाएँ विभिन्न दिशाओं में दौड़ रही हैं; मैं मानसिक कष्टों से भरा हुआ हूँ; इसलिए मैं भोजन नहीं करूँगा।'

चतुर्थ-x-4: तब अग्नियों ने आपस में कहा, 'इस ब्रह्मचारी ने कठोर तपस्या की है और हमारा पालन-पोषण किया है; आओ हम इसे शिक्षा दें।' फिर उन्होंने उससे कहा, 'प्राण (जीवन) ब्रह्म है, क (आनंद) ब्रह्म है, ख (आकाश) ब्रह्म है।'

चतुर्थ-x-5: उन्होंने कहा, 'मैं समझता हूँ कि प्राण ब्रह्म है; लेकिन मैं क और ख को नहीं समझता।' उन्होंने कहा, 'जो क है, वह भी ख है; और जो ख है, वह भी क है।' तब अग्नि ने उसे प्राण (ब्रह्म) और उससे संबंधित हृदय के भीतर आकाश के बारे में बताया।

IV-xi-1: तब गार्हपत्य अग्नि ने उसे बताया: 'पृथ्वी, अग्नि, अन्न और सूर्य (मेरे रूप हैं)। जो व्यक्ति सूर्य में दिखाई देता है, मैं ही हूँ, मैं ही हूँ।'

IV-xi-2: 'जो इसे इस प्रकार जानता है और इसका ध्यान करता है, वह पाप कर्मों का नाश करता है, अग्नि क्षेत्र को जीतता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, यशस्वी जीवन जीता है और उसके वंशज कभी नष्ट नहीं होते। जो इसे इस प्रकार जानता है और इसका ध्यान करता है, हम उसकी इस लोक और परलोक में रक्षा करते हैं।'

IV-xii-1: तब अन्वहार्यपचन अग्नि ने उसे बताया: 'जल, दिशाएँ, तारे और चंद्रमा (मेरे रूप हैं)। जो व्यक्ति चंद्रमा में दिखाई देता है, मैं ही हूँ, मैं ही हूँ।'

IV-xii-2: 'जो इसे इस प्रकार जानता है और इसका ध्यान करता है, वह पाप कर्मों का नाश करता है, अग्नि लोक को जीतता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, यशस्वी जीवन जीता है और उसके वंशज कभी नष्ट नहीं होते। जो इसे इस प्रकार जानता है और इसका ध्यान करता है, हम उसकी इस लोक और परलोक में रक्षा करते हैं।'

IV-xiii-1: तब आहवनीय अग्नि ने उसे निर्देश दिया, 'प्राण, आकाश, स्वर्ग और बिजली (मेरे रूप हैं)। जो व्यक्ति बिजली में दिखाई देता है, वह मैं हूँ; वास्तव में मैं ही हूँ।

IV-xiii-2: 'जो इसे इस प्रकार जानता है और इसका ध्यान करता है, वह पाप कर्मों का नाश करता है, अग्नि लोक को जीतता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, यशस्वी जीवन जीता है और उसके वंशज कभी नष्ट नहीं होते। जो इस प्रकार जानता है और इसका ध्यान करता है, हम उसकी इस लोक में तथा परलोक में रक्षा करते हैं।'

IV-xiv-1: अग्नियों ने कहा, 'हे उपकोसल, प्रिय बालक, अग्नियों का यह ज्ञान तथा आत्मा का ज्ञान तुम्हें (प्रकट हुआ है), किन्तु गुरु तुम्हें मार्ग बताएँगे।' उसका गुरु वापस आया। गुरु ने उसे संबोधित किया, 'उपकोसल!'

IV-xiv-2: 'हाँ, आदरणीय महोदय', उसने उत्तर दिया। 'प्रिय बालक, तुम्हारा मुख ब्रह्मज्ञ के समान चमक रहा है! तुम्हें किसने शिक्षा दी है?' 'मुझे कौन शिक्षा देगा महोदय?', उसने कहा। यहाँ उसने मानो सत्य को छिपा दिया। 'इसी कारण से यद्यपि वे (पहले) अन्यथा थे, किन्तु अब वे इतने बुद्धिमान हैं।' ऐसा कहकर, उसने इस मामले में अग्नियों की (भूमिका) की ओर संकेत किया। 'उन्होंने तुमसे क्या कहा, प्यारे बालक?'

IV-xiv-3: 'यह', इस प्रकार उन्होंने स्वीकार किया। 'प्यारे बालक, उन्होंने तुम्हें केवल क्षेत्रों के बारे में बताया है; लेकिन मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छा का विषय (अर्थात ब्रह्म) बताऊंगा। जैसे कमल के पत्ते पर जल नहीं चिपकता, वैसे ही जो ब्रह्म को इस प्रकार जानता है, उस पर पाप नहीं चिपकता।'

'पूज्य महोदय, कृपया मुझे आगे बताएं।' (शिक्षक) ने उससे कहा:

IV-xv-1: 'यह व्यक्ति जो आंख में दिखाई देता है, वह आत्मा है', शिक्षक ने कहा; 'यह अमर है, निर्भय है। यह ब्रह्म है। इसलिए, अगर कोई आंख में घी या पानी छिड़कता है, तो वह किनारे पर चला जाता है।'

IV-xv-2: 'ब्रह्म के जानने वाले उसे आशीर्वाद का केंद्र कहते हैं; क्योंकि सभी आशीर्वाद उसी में एकत्रित होते हैं। जो इस प्रकार जानता है, उसमें सभी आशीर्वाद एकत्रित हो जाते हैं।'

IV-xv-3: 'वह, फिर से, आशीर्वाद का वाहन है; क्योंकि वह सभी आशीर्वादों को वहन करता है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह सभी आशीर्वादों को वहन करता है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह सभी आशीर्वादों को वहन करता है।'

IV-xv-4: 'वह फिर से, प्रकाश का वाहन है; क्योंकि वह सभी क्षेत्रों में चमकता है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह चमकता है
सभी क्षेत्रों में।'

IV-xv-5: 'अब, ऐसे लोगों के लिए, चाहे दाह संस्कार किए जाएं या नहीं, वे प्रकाश में जाते हैं; प्रकाश से दिन में; दिन से शुक्ल पक्ष में; शुक्ल पक्ष से उन छह महीनों में जिनमें (सूर्य) उत्तर की ओर उदय होता है; महीनों से वर्ष में; वर्ष से सूर्य में; सूर्य से चंद्रमा में; चंद्रमा से बिजली में। (ब्रह्म के क्षेत्र से) एक व्यक्ति, जो मनुष्य से भिन्न है, (आता है और) उन्हें वहां विद्यमान करके ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है। यह देवताओं का मार्ग है और ब्रह्म का मार्ग है। जो इस मार्ग से जाते हैं वे इस मानव भंवर में वापस नहीं आते - हाँ, वे वापस नहीं आते।'

IV-xvi-1: वह जो उड़ाता है (यानी हवा) वास्तव में यज्ञ है, वह चलते हुए इस सब को शुद्ध करता है। और क्योंकि वह चलते हुए इस सब को शुद्ध करता है, वह यज्ञ है। मन और वाणी इस यज्ञ के दो मार्ग हैं।

चतुर्थ-सोलह-२-३: इन दो मार्गों में से एक को ब्राह्मण पुरोहित मन से सुशोभित करता है। होतीर, अध्वर्यु और उद्गतिर पुरोहित दूसरे को वाणी से सुशोभित करते हैं। प्रातर्नुवाक (प्रातःकाल का पाठ) आरंभ होने के पश्चात् और परिधानीय ऋक आरंभ होने के पूर्व यदि ब्राह्मण पुरोहित मौन तोड़ते हुए बोलता है, तो वह केवल एक मार्ग (अर्थात वाणी) को सुशोभित करता है और दूसरा मार्ग क्षतिग्रस्त हो जाता है।

जैसे एक पैर से चलने वाला मनुष्य या एक पहिये से चलने वाला रथ क्षतिग्रस्त हो जाता है, वैसे ही इस यज्ञ को भी क्षति पहुँचती है और जब यज्ञ को क्षति पहुँचती है, तो यज्ञकर्ता को भी क्षति पहुँचती है। (दोषपूर्ण) यज्ञ को पूर्ण करने के कारण वह और भी अधिक पापी हो जाता है।

चतुर्थ-सप्तम-4: किन्तु, प्रतार्णुवाक के आरम्भ होने के पश्चात् तथा परिधानीय ऋक् के आरम्भ होने के पूर्व, यदि ब्राह्मण पुरोहित अपना मौन न तोड़े, तो दोनों मार्ग सुशोभित हो जाते हैं, तथा कोई भी आहत नहीं होता।

चतुर्थ-सप्तम-5: और जिस प्रकार दोनों पैरों से चलने वाला मनुष्य, या दोनों पहियों से चलने वाला रथ अक्षुण्ण रहता है, उसी प्रकार इसका यज्ञ भी अक्षुण्ण रहता है। यदि यज्ञ अक्षुण्ण रहता है, तो यज्ञकर्ता भी अक्षुण्ण रहता है। वह यज्ञ करने से महान हो जाता है।

चतुर्थ-सप्तम-1: प्रजापति ने लोकों का चिन्तन किया। इस प्रकार चिन्तन करते हुए, उन्होंने उनके सार निकाले; पृथ्वी से अग्नि, आकाश से वायु तथा स्वर्ग से सूर्य।

चतुर्थ-सप्तम-2: उन्होंने इन तीन देवताओं का चिन्तन किया। इस प्रकार उन पर विचार करके उन्होंने उनके सार निकाले: अग्नि से ऋक्, वायु से यजुः मंत्र तथा सूर्य से सामन।

IV-xvii-3: उन्होंने तीनों वेदों पर विचार किया। इस प्रकार उन पर विचार करके उन्होंने उनके अस्तित्व निकाले;ऋक् से भूः, यजुः मंत्र से भुवः तथा सामन से स्वः।

IV-xvii-4: अतः यदि ऋक् के कारण यज्ञ दोषपूर्ण हो जाता है, तो 'भूः स्वः' मंत्र से (ब्राह्मण पुरोहित) गार्हपत्य अग्नि में आहुति दे। इस प्रकार वास्तव में, ऋक् के सार के द्वारा, ऋक् के पौरुष के द्वारा, वह ऋक् के संबंध में यज्ञ की क्षति को पूरा करता है।

चतुर्थ-सप्तम-5: और यदि यज्ञ यजुओं के कारण दोषपूर्ण हो, तो 'भुवः स्वाहा' मंत्र से (ब्राह्मण पुजारी) दक्षिणाग्नि में आहुति दे। इस प्रकार वास्तव में, यजु-मंत्रों के सार के माध्यम से, यजु-मंत्रों के पुरुषत्व के माध्यम से, वह यजु-मंत्रों के संबंध में यज्ञ की क्षति को पूरा करता है।

चतुर्थ-सप्तम-6: और यदि यज्ञ सामनों के कारण दोषपूर्ण हो, तो 'स्वाः स्वाहा' मंत्र से (ब्राह्मण पुजारी) आहवनीय अग्नि में आहुति दे। इस प्रकार वास्तव में, सामनों के सार के माध्यम से, सामनों के पुरुषत्व के माध्यम से, वह सामनों के संबंध में यज्ञ की क्षति को पूरा करता है।

चतुर्थ-सप्तम-7-8: जिस प्रकार नमक के साथ सोना, सोने के साथ चांदी, टिन के साथ टिन, लोहे के साथ सीसा, लोहे के साथ लकड़ी, तथा चमड़े के साथ लकड़ी को जोड़ा जाता है, उसी प्रकार (ब्राह्मण पुरोहित) इन क्षेत्रों, इन देवताओं तथा तीनों वेदों के पौरुष के माध्यम से यज्ञ की क्षति को पूरा करता है। वह यज्ञ वास्तव में ठीक हो जाता है, जहाँ ऐसा जानने वाला ब्राह्मण पुरोहित होता है।

चतुर्थ-सप्तम-9: वह यज्ञ वास्तव में उत्तर की ओर झुक जाता है, जहाँ ब्राह्मण पुरोहित होता है।इस प्रकार जानना। ब्राह्मण पुरोहित के इस प्रकार जानने के संदर्भ में ही यह गीत है: 'जहाँ से भी यज्ञ वापस आता है, वहाँ ब्राह्मण पुरोहित अवश्य ही (उपचार के लिए) जाता है।'

IV-xvii-10: जिस प्रकार घोड़ी (सैनिक) की रक्षा करती है, उसी प्रकार मौन ब्राह्मण पुरोहित ही एकमात्र पुजारी है जो अनुष्ठान करने वाले लोगों की रक्षा करता है। जो ब्राह्मण पुरोहित इस प्रकार जानता है, वह वास्तव में यज्ञ, यज्ञकर्ता और सभी पुरोहितों की रक्षा करता है। इसलिए ब्राह्मण पुरोहित के रूप में केवल उसी को नियुक्त करना चाहिए जो इस प्रकार जानता हो, न कि जो इस प्रकार न जानता हो - हाँ, वह नहीं जो इस प्रकार न जानता हो।

V-i-1: ॐ, वास्तव में, जो सबसे बड़े और सबसे अच्छे को जानता है, वह निश्चित रूप से सबसे बड़ा और सबसे अच्छा बन जाता है। प्राण वास्तव में सबसे बड़ा और सबसे अच्छा (इंद्रियों में) है।

V-i-2: वास्तव में, जो सबसे अमीर को जानता है, वह अपने लोगों में सबसे अमीर बन जाता है। वाणी वास्तव में सबसे अमीर है।

V-i-3: जो स्थिर आधार को जानता है, वह इस लोक में तथा परलोक में स्थिर हो जाता है। आँख ही स्थिर आधार है।

V-i-4: जो समृद्धि को जानता है, वह दैवी तथा मानवीय सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। कान ही समृद्धि है।

V-i-5: जो धाम को जानता है, वह अपने लोगों का धाम बन जाता है। मन ही धाम है।

V-i-6: अब एक बार पाँचों इन्द्रियाँ आपस में अपनी-अपनी श्रेष्ठता के विषय में विवाद करने लगीं, और कहने लगीं, 'मैं श्रेष्ठ हूँ।'

V-i-7: वे इन्द्रियाँ पिता प्रजापति के पास गईं और उनसे पूछा, 'पूज्यवर, हम लोगों में श्रेष्ठ कौन है?' उन्होंने उत्तर दिया, 'तुम लोगों में वह श्रेष्ठ है, जिसके चले जाने पर शरीर निकृष्टतम प्रतीत होगा।'

V-i-8: वाणी चली गई। एक वर्ष बाहर रहकर वह वापस आया और पूछा, 'तुम मेरे बिना कैसे रह पाए हो?' (दूसरों ने उत्तर दिया,) 'जैसे गूंगा, यद्यपि बोल नहीं पाता, फिर भी सांस के साथ रहता है, आंखों से देखता है, कानों से सुनता है और मन से सोचता है।' (इस पर) वाणी (शरीर) में प्रवेश कर गई।

V-i-9: आंख चली गई। एक वर्ष बाहर रहकर वह वापस आया और पूछा, 'तुम मेरे बिना कैसे रह पाए हो?' (दूसरों ने उत्तर दिया,) 'जैसे अंधा, यद्यपि देख नहीं पाता, फिर भी सांस के साथ रहता है, वाणी के अंग से बोलता है, कानों से सुनता है और मन से सोचता है।' (इस पर) आंख (शरीर) में प्रवेश कर गई।

V-i-10: कान चले गए। एक वर्ष बाहर रहकर वह वापस आया और पूछा, 'तुम मेरे बिना कैसे रह पाए हो?' (अन्य लोगों ने उत्तर दिया,) 'जैसे बहरा सुनता तो नहीं, फिर भी सांस के साथ रहता है, वाणी के अंग से बोलता है, आंख से देखता है और मन से सोचता है।' (इस पर) कान (शरीर) में प्रवेश कर गया।

वि-11: मन चला गया। एक वर्ष बाहर रहकर वह वापस आया और पूछा, 'तुम मेरे बिना कैसे रह पाए हो?' (अन्य लोगों ने उत्तर दिया,) 'जैसे विकसित मस्तिष्क के बिना शिशु, फिर भी सांस के साथ रहते हैं, वाणी के अंग से बोलते हैं, आंख से देखते हैं और कान से सुनते हैं।' (इस पर) मन (शरीर) में प्रवेश कर गया।

वि-12: फिर, जब प्राण जाने वाला था, तो उसने अन्य इंद्रियों को उखाड़ फेंका, जैसे कि साहस का घोड़ा उन खूंटों को उखाड़ देता है जिनसे वह बंधा होता है। तब सब उसके पास आए और बोले, 'हे पूज्य महाराज, आप हमारे

स्वामी हो, आप हम सब में श्रेष्ठ हैं, आप शरीर से विदा न हों।' तब वाणी ने उससे कहा, 'जैसे मैं सबसे धनवान हूँ, वैसे ही आप भी सबसे धनवान हैं।' तब नेत्र ने उससे कहा, 'जैसे मैं स्थिर आधार हूँ, वैसे ही आप भी स्थिर आधार हैं।' तब कान ने उससे कहा, 'जैसे मैं समृद्धि हूँ, वैसे ही आप भी समृद्धि हैं।' तब मन ने उससे कहा, 'जैसे मैं निवास हूँ, वैसे ही आप भी निवास हैं।' तब लोग उन्हें वाणी, आँख, कान या मन नहीं कहते। वे उन्हें केवल प्राण कहते हैं, क्योंकि प्राण ही ये सब हैं।

V-ii-1: उसने (प्राण ने) पूछा, 'मेरा भोजन क्या होगा?' 'यहाँ जो कुछ भी है, यहाँ तक कि कुत्तों और पक्षियों का भोजन भी', इंद्रियों ने उत्तर दिया। जो कुछ भी खाया जाता है, वह सब अना का भोजन है। 'अना' नाम स्वयंसिद्ध है। जो इस प्रकार जानता है, उसके लिए भोजन के अलावा कुछ भी नहीं है।

V-ii-2: उसने पूछा, 'मेरे वस्त्र क्या होंगे?' 'जल', इंद्रियों ने उत्तर दिया। इसलिए, जो लोग खाने वाले हैं, उन्हें पहले और बाद में, इसे पानी से ढंकना चाहिए। (जो इस प्रकार जानता है) वह कपड़े और ऊपरी वस्त्र का प्राप्तकर्ता बन जाता है।

V-ii-3: सत्यकाम जाबाल ने यह (प्राण का सिद्धांत) व्याघ्रपाद के पुत्र गोश्रुति को दिया, और कहा, 'यदि कोई इसे सूखे तने में भी दे, तो निश्चित रूप से शाखाएँ निकल आएंगी और उसमें से पत्ते निकल आएंगे।'

V-ii-4: इसके बाद, यदि प्राण का वह ज्ञाता महानता प्राप्त करना चाहता है, तो उसे अमावस्या के दिन खुद को पवित्र करने के बाद, पूर्णिमा की रात को दही और शहद के बर्तन में सभी जड़ी-बूटियों का रस घोलना चाहिए और फिर अग्नि में आहुति देनी चाहिए। 'स्वाहा ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को' मंत्र के साथ आहुति के लिए निर्धारित स्थान पर आहुति देनी चाहिए और जो कुछ कलछी से जुड़ा हुआ है उसे मटके में डालना चाहिए।

'स्वाहा स्थाई को' मंत्र के साथ उसे आहुति के लिए निर्धारित स्थान पर अग्नि में आहुति देनी चाहिए और जो कुछ कलछी से जुड़ा हुआ है उसे मटके में डालना चाहिए। 'स्वाहा स्थाई को' मंत्र के साथ उसे आहुति के लिए निर्धारित स्थान पर अग्नि में आहुति देनी चाहिए और जो कुछ कलछी से जुड़ा हुआ है उसे मटके में डालना चाहिए। 'स्वाहा स्त्रैण को' मंत्र के साथ उसे आहुति के लिए निर्धारित स्थान पर अग्नि में आहुति देनी चाहिए और जो कुछ कलछी से जुड़ा हुआ है उसे मटके में डालना चाहिए। 'स्वाहा धाम' मंत्र

से, उसे हवन के लिए निर्धारित स्थान पर अग्नि में आहुति देनी चाहिए, और जो कुछ कलछी में लगा रह जाए उसे मटके में डाल देना चाहिए।

पंचम-द्वितीय-६: फिर, थोड़ा दूर जाकर मटके को हाथ में लेकर, उसे (मंत्र) पढ़ना चाहिए: 'आप नाम से अमा हैं, क्योंकि यह सब (ब्रह्मांड) आप में निहित है। वह (अर्थात आप प्राण के रूप में) सबसे बड़े, सबसे अच्छे, सबसे तेजवान और सबसे प्रभु हैं। वह (अर्थात आप प्राण के रूप में) मुझे सबसे बड़ी आयु, सबसे अच्छे स्थान, सबसे तेज और सबसे प्रभुता की ओर ले जाए। वास्तव में मैं यह सब बनना चाहता हूँ।'

पंचम-द्वितीय-७: फिर, इस ऋक्-मंत्र को पैर से पैर तक पढ़ते हुए, उसे चुसना चाहिए। 'हम उस भोजन के लिए प्रार्थना करते हैं जो कि जनक से संबंधित है', यह (पंक्ति) कहकर उसे चुसना चाहिए। 'हम तेजोमय भगवान के भोजन के लिए प्रार्थना करते हैं', ऐसा कहकर उसे घूंट-घूंट करके पीना चाहिए। 'जो कि सर्वश्रेष्ठ और सब को पोषण देने वाला है', ऐसा कहकर उसे घूंट-घूंट करके पीना चाहिए। हम भग (देवता के रूप) का ध्यान करते हैं', ऐसा कहकर और कंस (प्याला) या कामसा (कप) के आकार के बर्तन को धोकर, उसे सब पी लेना चाहिए।

फिर उसे वाणी और मन को नियंत्रित करते हुए, अग्नि के पीछे चमड़े या भूमि पर लेट जाना चाहिए। यदि वह (स्वप्न में) किसी स्त्री को देखे, तो उसे जानना चाहिए कि उसका अनुष्ठान सफल हुआ।

V-ii-8: इसके बारे में यह श्लोक है: इच्छित परिणामों के लिए अनुष्ठान करते समय यदि कर्ता स्वप्न में किसी स्त्री को देखता है, तो उसे स्वप्न में इस दर्शन में - हाँ, स्वप्न में इस दर्शन में - पूर्ति को पहचानना चाहिए।

V-iii-1: एक बार अरुण के पोते श्वेतकेतु पांचालों की सभा में आए। जीवल के पुत्र प्रवाहन ने उससे पूछा, 'मेरे बेटे, क्या तुम्हारे पिता ने तुम्हें शिक्षा दी है?' 'उन्होंने वास्तव में दी है, आदरणीय महोदय'।

V-iii-2: 'क्या तुम जानते हो कि यहाँ से सृजित प्राणी ऊपर कहाँ जाते हैं?' नहीं, आदरणीय महोदय'। 'क्या तुम जानते हो कि दो मार्गों - देवताओं का मार्ग और पितरों का मार्ग - के विभाजन का स्थान कहाँ है?' 'नहीं, आदरणीय महोदय'।

V-iii-3: 'क्या तुम जानते हो कि दूसरी दुनिया क्यों नहीं भरी जाती है?' 'नहीं, आदरणीय महोदय'। 'क्या तुम जानते हो कि पाँचवें आहुति में, द्रव आहुति (या क्रिया के अदृश्य परिणाम) को मनुष्य के रूप में कैसे नामित किया जाता है?"नहीं, वास्तव में, आदरणीय महोदय'।
V-iii-4: 'फिर तुमने यह क्यों कहा, "मुझे शिक्षा दी गई है"? हे फ़ोज़, जो इन बातों को नहीं जानता, वह कैसे कह सकता है कि, "मुझे शिक्षा दी गई है"?' वह व्यथित होकर अपने पिता के घर आया और उनसे कहा,'पूज्य महोदय, आपने मुझे ठीक से शिक्षा दिए बिना ही कह दिया कि, "मैंने तुम्हें शिक्षा दी है"।'

V-iii-5: 'उस नाममात्र के क्षत्रिय ने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे, और मैं उनमें से एक का भी उत्तर नहीं दे सका'। पिता ने कहा, 'जैसा कि आपने मुझसे उनके बारे में कहा है, वैसे ही मैं उनमें से एक को भी नहीं जानता। यदि मैं उन्हें जानता होता, तो मैं आपको क्यों नहीं बताता?

V-iii-6: तब गौतम राजा के यहाँ गया। जब वह पहुँचा, तो राजा ने उसे आदरपूर्वक प्रसाद चढ़ाया। प्रातःकाल जब राजा सभा में था, तब वह उसके सामने उपस्थित हुआ। राजा ने उससे कहा, 'हे पूज्य गौतम, कृपया मानव-धन का वरदान माँगिए।' उसने उत्तर दिया, 'हे राजन, मानव-धन को अपने पास रहने दीजिए, मुझे वे शब्द बताइए जो आपने मेरे लड़के से कहे थे।' राजा व्याकुल हो गया।

V-iii-7: राजा ने उसे आज्ञा दी, 'यहाँ बहुत दिनों तक रहो।' अवधि के अंत में उसने उससे कहा, 'हे गौतम, जैसा तुमने मुझे बताया था, तुमसे पहले यह ज्ञान कभी ब्राह्मणों के पास नहीं गया था। यही कारण है कि इस ज्ञान की व्याख्या सभी लोकों में पहले के समय में क्षत्रियों के पास थी।' तब उसने उसे निर्देश दिया।

V-iv-1: हे गौतम, वहाँ का संसार वास्तव में अग्नि है। सूर्य उसमें ईंधन है, किरणें धुआँ हैं, दिन ज्वाला है, चन्द्रमा अंगारे हैं, और तारे चिंगारियाँ हैं।

4-5-2: इस अग्नि में देवता श्रद्धा की आहुति देते हैं। उस आहुति से राजा सोम उत्पन्न होते हैं।

1-5-1: हे गौतम, पर्जन्य वास्तव में अग्नि है। उसमें वायु ईंधन है, बादल धुआँ है, बिजली ज्वाला है, वज्र अंगारे हैं, और गड़गड़ाहट चिंगारियाँ हैं।

2-5-2: इस अग्नि में देवता राजा सोम की आहुति देते हैं। उस आहुति से वर्षा होती है।

6-7-1: हे गौतम, पृथ्वी वास्तव में अग्नि है। उसमें वर्ष ईंधन है, आकाश अग्नि है, रात्रि ज्वाला है, दिशाएँ अंगारे हैं, और बीच की दिशाएँ चिंगारियाँ हैं।

पंचम-छठी-2: इस अग्नि में देवता वर्षा की आहुति देते हैं। उस आहुति से अन्न (अन्न के रूप में) उत्पन्न होता है। पंचम-सप्तम-1: हे गौतम, मनुष्य अग्नि ही है। उसमें वाणी ईंधन है, प्राण धुआँ है, जिह्वा ज्वाला है, आँख अंगारे हैं और कान चिंगारियाँ हैं।

पंचम-सप्तम-2: इस अग्नि में देवता अन्न की आहुति देते हैं। उस आहुति से बीज उत्पन्न होता है। पंचम-आठवीं-

1-2: हे गौतम, स्त्री ही अग्नि है। इस अग्नि में देवता बीज की आहुति देते हैं। उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है।

पंचम-नौवीं-1: इस प्रकार पाँचवीं आहुति में जल (आहुति नामक) को मनुष्य कहा जाता है। वह गर्भ झिल्ली से ढका हुआ नौ या दस महीने तक लेटा रहता है और फिर जन्म लेता है।

पंचम-नौवीं-2: जन्म लेने के बाद, वह अपने जीवन की जितनी भी अवधि हो, जीता है। जब वह (लोक को प्राप्त करने के लिए) मर जाता है, तो वे उसे यहाँ से (दाह संस्कार के लिए) अग्नि के पास ले जाते हैं, जहाँ से वह आया था और जहाँ से वह उत्पन्न हुआ था। उनमें से, जो इस प्रकार (पाँच अग्नियों का ज्ञान) जानते हैं और जो वन में श्रद्धा और तपस्या में लीन हैं - वे प्रकाश में जाते हैं; प्रकाश से दिन में, दिन से शुक्ल पक्ष में, शुक्ल पक्ष से उन छह महीनों में, जिनमें सूर्य उत्तर दिशा में यात्रा करता है; महीनों से वर्ष में, वर्ष से सूर्य में, सूर्य से चंद्रमा में और चंद्रमा से बिजली में। (ब्रह्म के क्षेत्र से) एक व्यक्ति, जो मनुष्य से भिन्न है, वहाँ आकर उन्हें, वहाँ स्थित होकर, ब्रह्म की प्राप्ति कराता है। यह देवताओं का मार्ग है।

V-x-3: किन्तु जो लोग गाँवों में रहकर (गृहस्थ होकर) यज्ञ तथा लोकोपयोगी कार्य करते हैं, वे धुएँ में चले जाते हैं, धुएँ से रात्रि में, रात्रि से कृष्णपक्ष में, कृष्णपक्ष से उन महीनों में, जिनमें सूर्य दक्षिणायन होता है। वहाँ से वे वर्ष में नहीं पहुँचते (जैसे देवताओं के मार्ग पर चलने वाले)।

V-x-4: महीनों से (वे) पितरों के लोक में जाते हैं, पितरों के लोक से आकाश में, आकाश से चन्द्रमा में। यह (अर्थात् यह चन्द्रमा) राजा सोम (ब्राह्मणों का राजा) है। यह देवताओं का भोजन है। इसे देवता खाते हैं।

V-x-5: वे (कर्मफलों को) क्षीण करने तक उस (चन्द्रमा के लोक में) निवास करते हैं, फिर जिस मार्ग से आए थे, उसी मार्ग से (जिस मार्ग का उल्लेख किया जा रहा है) लौट जाते हैं। वे आकाश में आते हैं, और आकाश से वायु में। वायु बनकर वे धुआँ बन जाते हैं। धुआँ बनकर वे बन जाते हैं श्वेत मेघ।

V-x-6: श्वेत मेघ बनकर वे (वर्षा करने वाले) मेघ बन जाते हैं। मेघ बनकर वे वर्षा के रूप में बरसते हैं। फिर वे इस संसार में चावल और जौ, शाक और वृक्ष, तिल और फलियाँ बनकर जन्म लेते हैं। किन्तु इनसे मुक्ति अधिक कठिन है, क्योंकि जो अन्न खाता है और बीज बोता है, वे उसी के समान हो जाते हैं।

V-x-7: उनमें से जिनके यहाँ कर्मों का अच्छा अवशिष्ट फल होता है (जो इस लोक में अर्जित होता है और चन्द्रलोक में भोगने के पश्चात अवशेष के रूप में बच जाता है), वे शीघ्र ही अच्छे गर्भ में पहुँच जाते हैं, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य का गर्भ। किन्तु जिनके कर्मों का बुरा अवशिष्ट फल होता है, वे शीघ्र ही बुरे गर्भ में पहुँच जाते हैं, अर्थात् कुत्ते, सूअर या चाण्डाल का गर्भ।

V-x-8: तब वे इन दोनों में से किसी भी मार्ग से नहीं जाते। वे छोटे जीव हैं, जो बार-बार घूमते रहते हैं, 'जन्म लो और मरो' कहावत के अधीन। यह तीसरी अवस्था है। इसलिए वह क्षेत्र (चंद्रमा का) कभी नहीं भरता। इसलिए मनुष्य को (इस अवस्था से) घृणा करनी चाहिए। इसके बारे में यह श्लोक है।

V-x-9: जो सोना चुराता है, जो शराब पीता है, जो गुरु की शय्या का अपमान करता है, और जो ब्राह्मण को चोट पहुँचाता है - ये चारों गिर जाते हैं, और जो पाँचवाँ व्यक्ति इनके साथ संगति करता है वह भी गिर जाता है।

V-x-10: इसके अलावा, जो इन पाँच अग्नियों को इस प्रकार जानता है (उनकी पूजा करता है), भले ही वह उन पापियों के साथ संगति करता है, पाप से कलंकित नहीं होता है। जो इनको इस प्रकार जानता है वह शुद्ध

और पवित्र हो जाता है और पुण्य लोक को प्राप्त करता है - हाँ, जो ऐसा जानता है वह।

पंचम-1: उपमन्यु के पुत्र प्राचीनशाल, पुलुशा के पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवी के पुत्र इंद्रद्युम्न, सरकारक्ष के पुत्र जन और अश्वतरश्व के पुत्र बुदिल - ये पांच महान गृहस्थ और महान वैदिक विद्वान एक साथ आए और इस विषय पर चर्चा करने लगे कि 'हमारा आत्मा क्या है? ब्रह्म क्या है?'

पंचम-2: उन्होंने आपस में विचार किया, 'आदरणीय सज्जनों, अरुण के पुत्र उद्दालक इस वैश्वानर आत्मा को अच्छी तरह जानते हैं। अच्छा, चलो हम उनके पास चलते हैं।' और वे उनके पास गए।

पंचम-3: उद्दालक ने विचार किया, 'ये महान गृहस्थ और महान वैदिक विद्वान मुझसे प्रश्न करने जा रहे हैं; लेकिन संभवतः मैं उन्हें सब कुछ नहीं बता पाऊंगा। हालाँकि, मैं उन्हें किसी अन्य शिक्षक के पास भेजूँगा।'

पाँचवें-चौथे: उद्दालक ने कहा, 'पूज्य महाराज, इस समय केकयपुत्र अश्वपति इस वैश्वानर आत्मा का अध्ययन कर रहे हैं। अच्छा, हम उनके पास चलें।' तब वे उनके पास गए। पाँचवें-पांचवें: जब वे वहाँ पहुँचे, तो राजा ने प्रत्येक के लिए अलग-अलग विधि-विधान से स्वागत की व्यवस्था की। अगली सुबह उठकर उसने उनसे कहा, 'मेरे राज्य में न कोई चोर है, न कोई कंजूस, न कोई शराबी, न कोई ऐसा व्यक्ति जिसने अग्नि न जलाई हो, न कोई अज्ञानी, न कोई व्यभिचारी, फिर कोई व्यभिचारिणी कैसे हो सकती है?

पूज्य महाराज, मैं एक यज्ञ करने जा रहा हूँ। उसमें जितना धन मैं प्रत्येक पुजारी को देता हूँ, उतना ही आपको भी दूँगा। पूज्य महाराज, कृपया रुकें।' पाँचवें-छठे: उन्होंने कहा, 'जिस उद्देश्य से मनुष्य दूसरे के पास जाता है, उसी के बारे में उससे बात करनी चाहिए। आप इस समय वैश्वानर आत्मा का अध्ययन कर रहे हैं, कृपया हमें उसके बारे में बताएँ।

V-xi-7: राजा ने उनसे कहा, ‘मैं प्रातःकाल आपको उत्तर दूँगा।’ प्रातःकाल वे अपने हाथों में हवन सामग्री लेकर राजा के पास पहुँचे। राजा ने उन्हें दीक्षित शिष्य के रूप में ग्रहण न करते हुए इस प्रकार कहा:

V-xii-1: ‘हे औपमन्यव, आप किस आत्मा का ध्यान करते हैं?’ उन्होंने उत्तर दिया, ‘हे पूज्य राजा, केवल स्वर्ग’। राजा ने कहा, ‘आप जिस आत्मा

का ध्यान करते हैं, वह वैश्वानर आत्मा है, जिसे "अत्यंत प्रकाशवान" कहा जाता है। इसलिए आपके परिवार में सोम-रस से सुत, प्रसूत और असुत आहुति देखी जाती हैं।'

V-xii-2: 'इसलिए आप भोजन करें और देखें कि क्या प्रिय है। जो इस वैश्वानर आत्मा का इस प्रकार ध्यान करता है, वह भोजन करता है और देखता है कि क्या प्रिय है, और उसके परिवार में पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज होता है। लेकिन यह तो आत्मा का केवल सिर है। यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा सिर (एक भाग) गिर जाता।' तब राजा ने सत्ययज्ञ पौलूसी से पूछा, 'हे प्रचिनायोग, वह आत्मा क्या है जिसका तुम ध्यान करते हो?' उसने उत्तर दिया, 'केवल सूर्य, हे आदरणीय राजा।' राजा ने कहा, 'यही जिसका तुम ध्यान करते हो क्योंकि आत्मा वैश्वानर आत्मा है, जिसे "बहुरूप" कहा जाता है। इसलिए तुम्हारे परिवार में सभी प्रकार की आनंददायक चीजें देखी जाती हैं।

V-xiii-2: 'इसलिए, क्योंकि आपको खच्चरों द्वारा खींचा जाने वाला रथ, दास-दासियाँ और एक सोने का हार प्रदान किया गया है; इसलिए आप भोजन करते हैं और देखते हैं कि क्या प्रिय है। जो इस वैश्वानर आत्मा का इस प्रकार ध्यान करता है, वह भोजन करता है और देखता है कि क्या प्रिय है, और उसके परिवार में पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज होता है। लेकिन यह केवल आत्मा की आंख है। यदि आप मेरे पास नहीं आते, तो आप अंधे हो जाते।'

V-xiv-1: तब राजा ने इंद्रद्युम्न भल्लवेय से कहा, 'हे व्याघ्रपाद के वंशज, वह आत्मा क्या है जिसका आप ध्यान करते हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'केवल वायु, हे आदरणीय राजा।' राजा ने कहा, 'यह जिसका आप आत्मा के रूप में ध्यान करते हैं, वह वैश्वानर आत्मा है जिसे "विविध मार्ग वाले" के रूप में जाना जाता है। इसलिए विविध दिशाओं से आपके पास प्रसाद आता है, और रथों की विभिन्न पंक्तियाँ आपके पीछे चलती हैं।

V-xiv-2: 'इसलिए आप भोजन करें और देखें कि क्या प्रिय है। जो इस प्रकार इस वैश्वानर आत्मा का ध्यान करता है, वह भोजन करता है और देखता है कि क्या प्रिय है, और उसके परिवार में पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज होता है।लेकिन यह केवल आत्मा का प्राण है। यदि आप मेरे पास नहीं आते, तो आपका प्राण चला गया होता।'

V-xv-1: तब राजा ने जन से कहा, 'हे सरकारक्ष्य, वह आत्मा क्या है जिसका आप ध्यान करते हैं?' उन्होंने उत्तर दिया, 'केवल आकाश, हे आदरणीय राजा'। राजा ने कहा, 'यह जिसका आप आत्मा के रूप में ध्यान करते हैं, वह वैश्वानर आत्मा है जिसे "बहुविध" कहा जाता है। इसलिए आपकी संतान और धन बहुविध हैं।

V-xv-2: 'इसलिए आप भोजन करें और देखें कि क्या प्रिय है। जो इस प्रकार इस वैश्वानर आत्मा का ध्यान करता है,भोजन करता है और प्रिय वस्तुएँ देखता है, तथा उसके परिवार में पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज होता है।परन्तु यह तो केवल आत्मा का धड़ है। यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा धड़ चकनाचूर हो जाता।

V-xvi-1: तब राजा ने बुदिल अश्वतरस्वी से कहा, ‘हे वैयाघ्रपद्य, वह आत्मा क्या है जिसका तुम ध्यान करते हो?’ उसने उत्तर दिया, ‘केवल जल, हे पूज्य राजा।’ राजा ने कहा, ‘यह जिसका तुम आत्मा के रूप में ध्यान करते हो,
वह वैश्वानर आत्मा है जिसे "धन" कहते हैं। इसलिए तुम धन और शारीरिक शक्ति से संपन्न हो।

V-xvi-2: ‘इसलिए तुम भोजन करते हो और प्रिय वस्तुएँ देखते हो। जो इस प्रकार इस वैश्वानर आत्मा का ध्यान करता है,भोजन करता है और प्रिय वस्तुएँ देखता है, तथा उसके परिवार में पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज होता है।लेकिन यह तो आत्मा का निचला पेट ही है। यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा निचला पेट फट जाता।

तब राजा ने उद्दालक अरुणी से कहा, 'हे गौतम, वह आत्मा क्या है जिसका तुम ध्यान करते हो?' उसने उत्तर दिया, 'हे पूज्य राजा, केवल पृथ्वी'। राजा ने कहा, 'यह जिसका तुम आत्मा के रूप में ध्यान करते हो, वह वैश्वानर आत्मा है जिसे "आधार" कहा जाता है। इसलिए तुम संतान और पशुओं में अच्छी तरह से स्थापित हो।' इस प्रकार जो इस वैश्वानर आत्मा का ध्यान करता है, वह भोजन करता है और प्रिय को देखता है, और उसके परिवार में पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज होता है। लेकिन यह तो आत्मा के केवल चरण हैं। यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारे चरण सूख जाते।

पाँचवें-अठारहवें-१: राजा ने उनसे कहा, 'तुम सब (आंशिक ज्ञान से) वैश्वानर आत्मा को भिन्न-भिन्न रूप से जानते हुए भोजन करते हो।

किन्तु जो इस प्रकार इस वैश्वानर आत्मा का ध्यान करता है, जो अंशों से युक्त तथा आत्म-चेतन है, वह सभी लोकों में, सभी प्राणियों में तथा सभी आत्माओं में भोजन करता है।

पाँचवें-अठारहवें-२: उक्त वैश्वानर आत्मा का सिर 'अत्यंत प्रकाशवान' है, आँख 'अनेक रूपवान' है, श्वास 'विविध रूपवान' है, धड़ 'विशाल' है, पेट 'धन' है, पैर पृथ्वी ('आधार') हैं। (वैश्वानर के रूप में भोगी का) वक्षस्थल वेदी है, वक्षस्थल के रोम कुश हैं, हृदय गार्हपत्य अग्नि है, मन अन्वहार्यपाचन अग्नि है, तथा मुख आहवनीय अग्नि है।

V-xix-1: इसलिए, जो भोजन पहले आता है, उसे आहुति देनी चाहिए। वह खाने वाला, जब वह अर्पण करता है प्रथम आहुति को 'स्वाहा ते प्राण' मंत्र के साथ अर्पित करना चाहिए; इससे प्राण संतुष्ट होता है।

V-xix-2: प्राण संतुष्ट होने पर आंख संतुष्ट होती है; आंख संतुष्ट होने पर सूर्य संतुष्ट होता है; सूर्य संतुष्ट होने पर स्वर्ग संतुष्ट होता है; स्वर्ग संतुष्ट होने पर, जो कुछ भी स्वर्ग के नीचे है और सूर्य संतुष्ट होता है। इसकी संतुष्टि से खाने वाला स्वयं संतुष्ट होता है। (वह) संतान, मवेशी, भोजन, तेज और पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से भी संतुष्ट होता है।

V-xx-1: फिर, जब वह दूसरी आहुति अर्पित करता है, तो उसे 'स्वाहा ते व्यान' मंत्र के साथ अर्पित करना चाहिए; इससे व्यान संतुष्ट होता है।

V-xx-2: व्यान संतुष्ट होने पर कान संतुष्ट होता है; कान संतुष्ट होने पर चंद्रमा संतुष्ट होता है; चंद्रमा संतुष्ट होने पर दिशाएं संतुष्ट होती हैं; दिशाएं संतुष्ट होने पर, चंद्रमा और दिशाएं संतुष्ट होती हैं। इसकी संतुष्टि से खाने वाला स्वयं संतुष्ट होता है। (वह) संतान, पशुधन, अन्न, तेज और पवित्र बुद्धि से उत्पन्न पवित्र तेज से भी तृप्त होता है।

V-xxi-1: फिर, जब वह तीसरी आहुति दे, तो उसे ‘स्वाहा तो अपान’ मंत्र के साथ आहुति देनी चाहिए;
इससे अपान तृप्त होता है।

V-xxi-2: अपान तृप्त होने पर वाणी तृप्त होती है; वाणी तृप्त होने पर अग्नि तृप्त होती है; अग्नि तृप्त होने पर पृथ्वी तृप्त होती है; पृथ्वी तृप्त होने पर, पृथ्वी के नीचे जो कुछ भी है और अग्नि तृप्त होती है।इसकी

तृप्ति से भक्षक स्वयं तृप्त होता है। (वह) संतान, पशुधन, अन्न, तेज और पवित्र बुद्धि से उत्पन्न पवित्र तेज से भी तृप्त होता है।

V-xxii-1: फिर, जब वह चौथी आहुति दे, तो उसे ‘स्वाहा तो समाना’ मंत्र के साथ आहुति देनी चाहिए;इससे समान तृप्त होता है।

V-xxii-2: समान तृप्त होने पर मन तृप्त होता है; मन तृप्त होने पर पर्जन्य (वर्षा देवता) तृप्त होते हैं; पर्जन्य के संतुष्ट होने पर बिजली संतुष्ट होती है; बिजली संतुष्ट होने पर बिजली और पर्जन्य के नीचे जो कुछ भी है वह संतुष्ट होता है। इसकी संतुष्टि से खाने वाला स्वयं संतुष्ट होता है। (वह) संतान, मवेशी, भोजन, तेज और पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से भी संतुष्ट होता है।

V-xxiii-1: फिर, जब वह पांचवां आहुति देता है, तो उसे 'स्वाहा तो उदान' मंत्र के साथ इसे अर्पित करना चाहिए;
इससे उदान संतुष्ट होता है।

V-xxiii-2: उदान संतुष्ट होने पर, त्वचा संतुष्ट होती है; त्वचा संतुष्ट होने पर, वायु संतुष्ट होती है; वायु संतुष्ट होने पर, आकाश संतुष्ट होता है; आकाश संतुष्ट होने पर, जो कुछ भी हवा के नीचे है और आकाश संतुष्ट होता है। इसकी संतुष्टि से खाने वाला स्वयं संतुष्ट होता है। (वह) संतान, मवेशी, भोजन, तेज और पवित्र ज्ञान से उत्पन्न पवित्र तेज से भी संतुष्ट होता है।

5-24-1: यदि कोई व्यक्ति यह जाने बिना अग्निहोत्र करता है, तो वह केवल एक व्यक्ति है जो जलते हुए अंगारों को हटाकर राख पर आहुति डालता है।

5-24-2: लेकिन यदि कोई ऐसा जानकर प्राण को अग्निहोत्र करता है, तो उसकी आहुति सभी लोकों, सभी प्राणियों और सभी आत्माओं में डाल दी जाती है।

5-24-3: इसलिए, जैसे ईख की रूई को आग में डालने से वह जल जाती है, वैसे ही जो व्यक्ति यह जानकर अग्निहोत्र करता है, उसके सभी पाप जल जाते हैं।

5-24-4: इसलिए, यदि कोई ऐसा जानकर अपने भोजन का बचा हुआ भाग चांडाल को अर्पित करता है, तो भी वह भोजन वैश्वानर आत्मा को ही अर्पित हो जाता है। इसके बारे में यह श्लोक है।

5-24-5: जैसे इस संसार में भूखे बच्चे अपनी माँ के चारों ओर इकट्ठे होते हैं, वैसे ही सभी प्राणी अग्निहोत्र की प्रतीक्षा करते हैं।

6-1-1: ॐ। एक समय की बात है, अरुण के पौत्र श्वेतकेतु थे। उनके पिता ने उनसे कहा, 'हे श्वेतकेतु, ब्रह्मचारी का जीवन जियो। प्रिय बालक, हमारे परिवार में ऐसा कोई नहीं है जो अध्ययन न करता हो और केवल नाममात्र का ब्राह्मण हो।'
VI-i-2-3: बारह वर्ष की आयु में (गुरु के घर) गए, चौबीस वर्ष की आयु में वापस आए, सभी वेदों का अध्ययन कर चुके, अभिमानी, अभिमानी और अपने आप को बहुत बड़ा समझते थे।विद्वान। उसके पिता ने उससे कहा, 'श्वेतकेतु, प्रिय बालक, मैं देख रहा हूँ कि तुम अहंकारी हो, अभिमानी हो, अपने को बहुत विद्वान समझते हो; क्या तुमने वह शिक्षा (परम ब्रह्म के विषय में) माँगी है जिसके द्वारा जो अनसुना है वह सुना जाता है, जो अनसोचा है वह विचार में आता है, जो अज्ञात है वह ज्ञात हो जाता है?' 'आदरणीय महोदय, वह शिक्षा किस प्रकार की है?'

VI-i-4: 'प्रिय बालक, जिस प्रकार मिट्टी के एक ढेले से मिट्टी से बनी हुई सभी वस्तुएँ ज्ञात हो जाती हैं, क्योंकि सभी परिवर्तन शब्दों पर आधारित नाम मात्र हैं और केवल मिट्टी ही वास्तविक है;

VI-i-5: प्रिय बालक, जिस प्रकार सोने के एक ढेले से सोने से बनी हुई सभी वस्तुएँ ज्ञात हो जाती हैं, क्योंकि सभी परिवर्तन शब्दों पर आधारित नाम मात्र हैं और केवल सोना ही वास्तविक है;

VI-i-6: प्रिय बालक, जिस प्रकार एक कील छीलने वाले से लोहे से बनी हुई सभी चीजें ज्ञात हो जाती हैं, क्योंकि सभी परिवर्तन शब्दों पर आधारित नाम मात्र हैं और केवल लोहा ही वास्तविक है - ऐसी है, प्रिय बालक, वह शिक्षा।'

VI-i-7: 'निश्चित रूप से, मेरे पूज्य शिक्षकों को यह नहीं पता था, क्योंकि यदि उन्हें पता होता, तो वे मुझे क्यों नहीं बताते? तथापि, पूज्य पिता, इसे मुझे सिखाइए।' 'ऐसा ही हो, प्रिय बालक', (पिता ने) कहा।

VI-ii-1: 'आरंभ में, प्रिय बालक, यह अकेली सत्ता थी, केवल एक, कोई दूसरा नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि, प्रारंभ में, यह अकेली सत्ता थी, केवल एक, कोई दूसरा नहीं। उस सत्ता से सत्ता उत्पन्न हुई।'

VI-ii-2: अरुणी ने कहा, 'लेकिन अब, वास्तव में, प्रिय बालक, क्या ऐसा हो सकता है? सत्ता कैसे सत्ता से उत्पन्न हो सकती है? वास्तव में, प्रिय बालक, आदि में (सृष्टि से पहले) केवल एक ही सत्ता थी, कोई दूसरा नहीं था।

VI-ii-3: ‘उस सत्ता ने इच्छा की, “मैं अनेक हो जाऊँ, मैं आगे बढ़ूँ।” उसने अग्नि उत्पन्न की। उस अग्नि ने इच्छा की, “मैं अनेक हो जाऊँ, मैं आगे बढ़ूँ।” उसने जल उत्पन्न किया। इसलिए जब भी कोई मनुष्य शोक करता है या पसीना बहाता है, तो अग्नि से ही जल उत्पन्न होता है।

VI-ii-4: ‘उस जल ने इच्छा की, “मैं अनेक हो जाऊँ, मैं आगे बढ़ूँ।” उसने अन्न उत्पन्न किया। इसलिए जहाँ भी वर्षा होती है, वहाँ प्रचुर अन्न उगता है; जल से ही खाने योग्य अन्न उत्पन्न होता है।

VI-iii-1: ‘उपर्युक्त सत्ताओं में से केवल तीन ही मूल हैं: अण्डों से उत्पन्न, जीवों से उत्पन्न और अंकुरों से उत्पन्न।

VI-iii-2: ‘उस देवता ने इच्छा की, ‘अच्छा, मैं इस जीवित आत्मा (जीवात्मा) के माध्यम से इन तीनों देवताओं में प्रवेश करके नाम और रूप का भेद करूँ।

VI-iii-3: "इनमें से, मैं प्रत्येक को तीन-तीन बना दूँ", इस प्रकार इच्छा करके, यह देवता इस जीवित आत्मा के माध्यम से इन तीन देवताओं में प्रविष्ट हुआ और नामों और रूपों में भेद किया।

VI-iii-4: 'इसने उनमें से प्रत्येक को तीन गुना बना दिया। लेकिन, प्यारे लड़के, इन तीनों देवताओं में से प्रत्येक कैसे तीन गुना हो जाता है (शरीर के बाहर), यह मुझसे जानो।

VI-iv-1: 'अग्नि में, लाल रंग अग्नि का रंग है; जो सफेद है वह पानी का है और जो काला है वह अन्न (पृथ्वी) का है। इस प्रकार अग्नि से अग्नि की गुणवत्ता का (विचार) लुप्त हो जाता है; क्योंकि सभी परिवर्तन शब्दों पर आधारित नाम हैं, केवल तीन रूप वास्तविक हैं।

VI-iv-2: 'सूर्य में, लाल रंग अग्नि का रंग है, जो सफेद है वह पानी का है और जो काला है वह पृथ्वी का है। इस प्रकार सूर्य से सूर्य की गुणवत्ता का (विचार) लुप्त हो जाता है; क्योंकि सभी परिवर्तन शब्दों पर आधारित नाम हैं, केवल तीन रूप वास्तविक हैं।

VI-iv-3: 'चंद्रमा में, लाल रंग अग्नि का रंग है, जो सफेद है वह जल का है और जो काला है वह पृथ्वी का है। इस प्रकार चंद्रमा से चंद्रमा की गुणवत्ता का विचार गायब हो जाता है; क्योंकि सभी संशोधन शब्दों पर आधारित नाम हैं, केवल तीन रूप वास्तविक हैं।

VI-iv-4: 'बिजली में, लाल रंग अग्नि का रंग है, जो सफेद है वह जल का है और जो काला है वह पृथ्वी का है। इस प्रकार बिजली से बिजली की गुणवत्ता का विचार गायब हो जाता है; क्योंकि सभी संशोधन शब्दों पर आधारित नाम हैं, केवल तीन रूप वास्तविक हैं।

VI-iv-5: 'यह वास्तव में यह (त्रिगुण) जानने पर था कि प्राचीन महान गृहस्थ और महान वैदिक विद्वानों ने कहा, 'वर्तमान में, ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे कोई भी हमें अनसुना, अनसोचा या अज्ञात बता सके"; क्योंकि इनसे उन्होंने सब कुछ समझ लिया।

VI-iv-6: 'जो कुछ भी लाल दिखाई देता था, उसे भी वे (अखंड) अग्नि का रंग समझते थे; जो कुछ भी सफेद दिखाई देता था, उसे भी वे जल का रंग समझते थे; जो कुछ भी काला दिखाई देता था, उसे भी वे पृथ्वी का रंग समझते थे।

VI-iv-7: 'जो कुछ भी अज्ञात दिखाई देता था, उसे भी वे इन्हीं देवताओं का संयोजन समझते थे। लेकिन, प्यारे लड़के, मुझसे जान लो कि मनुष्य के पास पहुँचने पर ये तीनों देवता तीन गुना कैसे हो जाते हैं।

VI-v-1: 'भोजन, जब खाया जाता है, तो तीन भागों में विभाजित हो जाता है। इसका सबसे स्थूल तत्व क्या है, जो मल बन जाता है; मध्यम तत्व क्या है, जो मांस बन जाता है; और सबसे सूक्ष्म तत्व क्या है, जो मन बन जाता है।

VI-v-2: 'पानी, जब पीया जाता है, तो तीन भागों में विभाजित हो जाता है। इसका सबसे स्थूल तत्व क्या है, जो मूत्र बन जाता है; मध्यम तत्व क्या है, जो रक्त बन जाता है; और सबसे सूक्ष्म तत्व क्या है, जो प्राण बन जाता है।

VI-v-3: 'अग्नि, जब खाई जाती है, तो तीन भागों में विभाजित हो जाती है। इसका सबसे स्थूल घटक क्या है, जो अस्थि बन जाता है; मध्यम घटक क्या है, जो मज्जा बन जाता है; और सबसे सूक्ष्म घटक क्या है, जो वाणी बन जाता है।

VI-v-4: 'इसलिए, प्रिय बालक, मन अन्न से बना है, प्राण जल से बना है, और वाणी अग्नि से बनी है। 'इसे मुझे और विस्तार से समझाइए, पूज्य महोदय'। 'ऐसा ही हो, प्रिय बालक', पिता ने कहा।

VI-vi-1: 'प्रिय बालक, जो दही मथ रहा है, उसका सूक्ष्मतम भाग ऊपर की ओर उठता है और वह मक्खन बन जाता है।

VI-vi-2: 'इसी प्रकार, प्रिय बालक, जो भोजन खाया जाता है, उसका सूक्ष्मतम भाग ऊपर की ओर उठता है और वह मन बन जाता है।

VI-vi-3: 'प्रिय बालक, जो पानी पिया जाता है, उसका सूक्ष्मतम भाग ऊपर की ओर उठता है और वह प्राण बन जाता है।

VI-vi-4: 'प्रिय बालक, जो अग्नि खाई जाती है, उसका सूक्ष्मतम भाग ऊपर की ओर उठता है और वही वाणी बन जाती है।

VI-vi-5: 'अतः प्रिय बालक, मन अन्न से बना है, प्राण जल से बना है और वाणी अग्नि से बनी है।' 'इसका और अधिक स्पष्टीकरण करें, पूज्य महोदय।' 'ऐसा ही हो, प्रिय बालक', पिता ने कहा।

VI-vii-1: 'प्रिय बालक, मनुष्य सोलह अंगों से बना है। पंद्रह दिन तक कुछ मत खाओ; जितना चाहो उतना जल पियो। प्राण जल से बना है और जल पीने वाले का प्राण नष्ट नहीं होता।

VI-vii-2: श्वेतकेतु ने पंद्रह दिन तक कुछ नहीं खाया। तब वह उसके पास आया और बोला, 'मैं क्या कहूँ?' पिता ने कहा, 'ऋक्, यजु और सामन, प्रिय बालक।' 'वे मेरे अन्दर उत्पन्न ही नहीं होते, श्रीमान्।'

VI-vii-3: पिता ने उससे कहा, 'प्रिय बालक, जैसे बड़ी जलती हुई आग में से जुगनू के आकार का एक अंगारा बच जाता है, वह उससे अधिक नहीं जला

सकता, वैसे ही हे बालक, तेरे सोलह अंगों में से केवल एक अंग बचा है, अब उससे तू वेदों को नहीं समझ सकता। खा, तब तू मुझे समझ सकेगा।'

VI-vii-4: उसने खाया और फिर अपने पिता के पास गया। उन्होंने उससे जो कुछ पूछा, उसने सब उत्तर दिए।

VI-vii-5-6: पिता ने उससे कहा, 'प्रिय बालक, जैसे बड़ी जलती हुई आग में से जुगनू के आकार का एक अंगारा बच जाता है, उसमें पुआल डालकर उसे जलाने पर वह पहले से कहीं अधिक जलता है, वैसे ही हे बालक, तेरे सोलह अंगों में से केवल एक अंग बचा है, वह भी भोजन से पोषित होकर जल गया है, और उससे अब तू वेदों को समझ सकता है। अतः हे बालक, मन अन्न से बना है, प्राण जल से बना है, और वाणी अग्नि से बनी है। उसके शब्दों से (श्वेतकेतु) ने इसे समझ लिया - हाँ, उसने इसे समझ लिया।

VI-viii-1: एक बार उद्दालक अरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा, 'प्रिय बालक, मुझसे नींद का वास्तविक स्वरूप जानो। जब किसी व्यक्ति को सोया हुआ कहा जाता है, तो हे बालक, वह सत्ता के साथ एक हो जाता है और अपने स्वभाव को प्राप्त कर लेता है। इसलिए लोग उसे सोया हुआ कहते हैं, उनके लिए वह अपने स्वभाव को प्राप्त कर लेता है।

VI-viii-2: 'जैसे पक्षी रस्सी से बँधा हुआ विभिन्न दिशाओं में उड़ने के बाद और कहीं विश्राम का स्थान न पाकर उसी स्थान पर शरण लेता है, जहाँ उसे बाँधा गया है, वैसे ही हे बालक, वह मन भी विभिन्न दिशाओं में उड़ने के बाद और कहीं विश्राम का स्थान न पाकर केवल प्राण में ही शरण लेता है; क्योंकि हे बालक, मन प्राण से बँधा हुआ है।

VI-viii-3: 'हे बालक, मुझसे भूख और प्यास का वास्तविक स्वरूप जान। जब मनुष्य को भूखा कहा जाता है, तब (यह समझना चाहिए कि) जल खाए हुए को दूर ले जाता है; (इसलिए जल को भूख कहा जा सकता है)। जैसे लोग गायों का नेता, घोड़ों का नेता और मनुष्यों का नेता कहते हैं, वैसे ही वे जल को अन्न का नेता कहते हैं। इसलिए, हे बालक, इस अंकुर (शरीर) को (जड़ से) निकला हुआ जानो, क्योंकि यह जड़ के बिना नहीं हो सकता।

VI-viii-4: 'अन्न के बिना इसकी जड़ कहाँ हो सकती है? इसी प्रकार, हे बालक, तू अन्न को अंकुर मानकर जल को मूल के रूप में देख; हे बालक, तू जल को अंकुर मानकर अग्नि को मूल के रूप में देख; हे बालक, तू अग्नि

को अंकुर मानकर सत्ता को मूल के रूप में देख। हे बालक, इन सभी प्राणियों का मूल सत्ता ही है, सत्ता ही उनका निवास है और सत्ता ही उनका आधार है।

VI-viii-5: 'फिर, जब किसी मनुष्य को प्यासा कहा जाता है, तब (यह समझना चाहिए कि) अग्नि पीये हुए को दूर ले जाती है: (इसलिए अग्नि को प्यास कहा जा सकता है)। जैसे लोग गायों के नेता, घोड़ों के नेता और मनुष्यों के नेता के बारे में कहते हैं, वैसे ही वे उस अग्नि को जल के नेता के रूप में भी कहते हैं। इसलिए, हे बालक, इस अंकुर (जल) को (जड़ द्वारा) प्रगट हुआ जानो, क्योंकि यह जड़ के बिना नहीं हो सकता।

VI-viii-6: 'इसकी जड़ जल के बिना कहाँ हो सकती है? हे बालक, तू जल को अंकुर मानकर अग्नि को मूल के रूप में देख; अग्नि को अंकुर मानकर, मूल रूप में सत्ता को देखो। हे बालक, इन सभी प्राणियों का मूल सत्ता ही है, निवास सत्ता ही है और आधार सत्ता ही है। हे बालक, इन तीनों देवताओं में से प्रत्येक मनुष्य के पास पहुँचकर तीन-तीन हो जाते हैं, यह तुम्हें पहले ही समझाया जा चुका है। हे बालक, जब यह मनुष्य जाने वाला होता है, तब उसकी वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अग्नि में और अग्नि परम देवता में लीन हो जाती है।

VI-viii-7: 'वह सत्ता जो यह सूक्ष्म सार (कारण) है, यहाँ तक कि इस सारे जगत में भी वही है। वही सत्य है। वही आत्मा है। वही तुम हो, हे श्वेतकेतु।'
'पूज्य महोदय, कृपया इसे मुझे और अधिक स्पष्ट करें।'

'ऐसा ही हो, प्रिय बालक', (पिता) ने कहा।

VI-ix-1-2: 'जैसे, प्यारे बालक, मधुमक्खियाँ विभिन्न वृक्षों से रस एकत्रित करके शहद बनाती हैं और उन्हें एक सार में बदल देती हैं, और वहाँ, चूँकि इन रसों में ऐसा कोई भेदभाव नहीं होता कि "मैं इस वृक्ष का रस हूँ, मैं उस वृक्ष का रस हूँ"; वैसे ही, प्यारे बालक, ये सभी प्राणी, सत्ता में विलीन हो जाने के बाद, यह नहीं जानते कि, "हम सत्ता में विलीन हो गए हैं।"

VI-ix-3: 'यहाँ जो भी प्राणी हैं, बाघ या सिंह या भेड़िया या सूअर या कीड़ा या उड़ने वाला कीड़ा या मच्छर, वे फिर से वही बन जाते हैं।

VI-ix-4: 'वह सत्ता जो यह सूक्ष्म सार (कारण) है, यहाँ तक कि जो इस सारे जगत का अपना सार है। वही सत्य है। वही आत्मा है। वही तुम हो, हे

श्वेतकेतु।' 'पूज्य महोदय, कृपया इसे मुझे और स्पष्ट करें'। 'ऐसा ही हो, प्यारे बालक', (पिता) ने कहा।

VI-x-1-2: 'ये पूर्वी नदियाँ, प्यारे लड़के, पूर्व की ओर बहती हैं और पश्चिमी नदियाँ पश्चिम की ओर। वे समुद्र से निकलती हैं और समुद्र में विलीन हो जाती हैं, और स्वयं समुद्र बन जाती हैं। और वहाँ जैसे ये नदियाँ स्वयं को "मैं यह नदी हूँ, मैं वह नदी हूँ" के रूप में नहीं जानती हैं, वैसे ही, प्यारे लड़के, ये सभी प्राणी, जो कि सत् से आए हैं, वे नहीं जानते हैं, "हम सत् से आए हैं"। और ये प्राणी यहाँ जो भी थे, बाघ या शेर या भेड़िया या सूअर या कीड़ा या उड़ने वाला कीड़ा या गद-मक्खी या मच्छर, वे फिर से बन जाते हैं।

VI-x-3: 'वह सत्ता जो यह सूक्ष्म सार (कारण) है, यहाँ तक कि जो इस सारे संसार का अपना है। वही सत्य है। वही आत्मा है। वही तुम हो, हे श्वेतकेतु।' 'पूज्य महोदय, कृपया इसे मुझे और स्पष्ट करें'। 'ऐसा ही हो, प्यारे लड़के', (पिता) ने कहा।

VI-xi-1: 'इस बड़े पेड़ में से, प्यारे लड़के, अगर कोई जड़ पर प्रहार करे, तो यह रस छोड़ेगा, हालांकि अभी भी जीवित है; अगर कोई बीच में प्रहार करे, तो यह रस छोड़ेगा, हालांकि अभी भी जीवित है; अगर कोई ऊपर प्रहार करे, तो यह रस छोड़ेगा, हालांकि अभी भी जीवित है। चूंकि वह पेड़ जीवित से व्याप्त है आत्मा, वह दृढ़ रहती है, निरंतर पीती रहती है और आनंदित रहती है।

VI-xi-2: 'यदि प्राण इस वृक्ष की एक शाखा छोड़ दे, तो वह शाखा सूख जाती है; यदि प्राण दूसरी छोड़ दे, तो वह सूख जाती है; यदि प्राण सारा वृक्ष छोड़ दे, तो सारा वृक्ष सूख जाता है।'

VI-xi-3: पिता ने कहा, 'प्रिय बालक, जान ले कि इसी प्रकार जीवात्मा द्वारा छोड़े जाने पर यह शरीर अवश्य मरता है, परंतु जीवात्मा नहीं मरती। वह सत्ता जो यह सूक्ष्म सार (कारण) है, वह भी इस सारे जगत का अपना है। वही सत्य है। वही आत्मा है। वही तुम हो, हे श्वेतकेतु।' 'पूज्य महोदय, कृपया इसे मुझे और समझाइए।' 'ऐसा ही हो, प्रिय बालक', (पिता ने) कहा।

VI-xii-1: 'इस बरगद के वृक्ष से एक फल ले आओ।' 'यह रहा, पूज्य महोदय।' 'इसे तोड़ दो।' 'यह टूट गया है, पूज्य महोदय।' 'इसमें तुम्हें क्या दिखाई देता है ?' 'ये बीज, कणों जैसे छोटे, आदरणीय महोदय'। 'इनमें से

एक को तोड़ दो, मेरे बच्चे'। 'यह टूट गया है, आदरणीय महोदय'। 'इसमें तुम्हें क्या दिखाई देता है ?' 'कुछ नहीं, आदरणीय महोदय'।

VI-xii-2: पिता ने उससे कहा, 'प्रिय बालक, यह सूक्ष्म सार, जिसे तुम नहीं समझ पाते, इस सूक्ष्म सार से विकसित होकर विशाल बरगद का पेड़ इस प्रकार खड़ा है। विश्वास रखो, प्रिय बालक।'

VI-xii-3: 'वह सत्ता जो यह सूक्ष्म सार (कारण) है, यहाँ तक कि जो इस सारे संसार का अपना स्वरूप है। वही सत्य है। वही आत्मा है। वही तुम हो, हे श्वेतकेतु।' 'आदरणीय महोदय, कृपया इसे मुझे और समझाओ'।

'ऐसा ही हो, प्रिय बालक', (पिता ने) कहा।

VI-xiii-1-2: 'इस नमक को पानी में डाल दो और फिर सुबह मेरे पास आओ'। उसने ऐसा ही किया। पिता ने उससे कहा, 'मेरे बच्चे, वह नमक लाओ, जिसे तुम रात को पानी में डालते हो'। उसे खोजने पर भी वह नहीं मिला, क्योंकि वह पूरी तरह से घुल चुका था। 'मेरे बच्चे, इस पानी के ऊपर से एक घूंट लो। यह कैसा है?' 'यह नमक है'। 'बीच से एक घूंट लो। यह कैसा है?' 'यह नमक है'। 'नीचे से एक घूंट लो। यह कैसा है?' 'यह नमक है'। 'इस पानी को फेंक दो और फिर मेरे पास आओ'। उसने ऐसा ही किया (और यह कहते हुए लौट आया), 'यह हमेशा वहाँ है'।

पिता ने उससे कहा, 'प्रिय बालक, जैसे तुम यह नहीं देख सकते कि इस पानी में क्या मौजूद है, यद्यपि वह वास्तव में इसमें मौजूद है, वैसे ही, (सत्ता) वास्तव में इस शरीर में मौजूद है। VI-xiii-3: 'वह सत्ता जो यह सूक्ष्म सार (कारण) है, यहाँ तक कि जो इस सारे संसार में है। वही सत्य है। वही आत्मा है। हे श्वेतकेतु, तुम वही हो।' 'पूज्य महोदय, कृपया इसे मुझे और स्पष्ट करें।''ऐसा ही हो, प्रिय बालक', (पिता) ने कहा।

VI-xiv-1: 'जैसे, प्रिय बालक, (कोई डाकू) किसी व्यक्ति को गांधार क्षेत्र से उसकी आंखें बांधकर ले आता है, और उसे बहुत निर्जन स्थान पर छोड़ देता है, और जैसे वह व्यक्ति पूर्व की ओर, या उत्तर की ओर, या दक्षिण की ओर, या पश्चिम की ओर चिल्लाता है, (कहता है) "मुझे यहां आंखें बांधकर लाया गया है, मुझे यहां आंखें बांधकर छोड़ दिया गया है।"

VI-xiv-2: 'और जैसे कोई उसकी पट्टी हटाकर उससे कहता है, "गांधार क्षेत्र इस दिशा में है, इस दिशा में आगे बढ़ो" और जैसे वह गांव-गांव का रास्ता

पूछता हुआ और स्वयं ही शिक्षा प्राप्त करके और स्वयं निर्णय करने में सक्षम होकर गांधार क्षेत्र में पहुंच जाता है, वैसे ही इस संसार में वह व्यक्ति जानता है जिसके पास गुरु है। और उसके लिए, केवल उतनी ही देर है, जितनी देर तक वह (शरीर से) मुक्त नहीं होता और फिर तुरंत ही वह सत्ता में विलीन हो जाता है।

VI-xiv-3: 'वह सत्ता जो यह सूक्ष्म सार (कारण) है, यहाँ तक कि जो इस सारे जगत का अपना स्वरूप है। वही सत्य है। वही आत्मा है। वही तुम हो, हे श्वेतकेतु।' 'पूज्य महोदय, कृपया इसे मुझे और स्पष्ट करें'।
'ऐसा ही हो, प्यारे बालक', (पिता) ने कहा।

VI-xv-1: 'प्यारे बालक, बीमार व्यक्ति के सम्बन्धी उसके चारों ओर इकट्ठे होते हैं और पूछते हैं, "क्या तुम मुझे पहचानते हो? क्या तुम मुझे पहचानते हो?" जब तक उसकी वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अग्नि में और अग्नि परम देवता में विलीन नहीं हो जाती, तब तक वह उन्हें नहीं जानता।

VI-xv-2: 'फिर जब उसकी वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अग्नि में और अग्नि परम देवता में विलीन हो जाती है, तब वह उन्हें नहीं जानता।

VI-xv-3: 'वह सत्ता जो यह सूक्ष्म सार (कारण) है, यहाँ तक कि जो इस सारे जगत का अपना स्वरूप है। वही सत्य है। वही आत्मा है। वही तुम हो, हे श्वेतकेतु।' 'पूज्य महोदय, कृपया इसे मुझे और स्पष्ट करें।' 'ऐसा ही हो, प्रिय बालक', (पिता) ने कहा।

VI-xvi-1: 'प्रिय बालक, (राजा के अधिकारी) एक व्यक्ति को लाते हैं, उसका हाथ पकड़ते हुए (यह कहते हुए) कि 'इसने कुछ चुराया है, इसने चोरी की है, इसके लिए कुल्हाड़ी गरम करो'। यदि वह ऐसा करने वाला है, तो वह स्वयं को मिथ्या बनाता है। और मिथ्यात्व में आसक्त होने के कारण, वह स्वयं को मिथ्यात्व से ढँक लेता है और गरम कुल्हाड़ी पकड़ लेता है; वह जलता है, और फिर उसे दण्ड मिलता है।

VI-xvi-2: 'यदि, तथापि, वह ऐसा करने वाला नहीं है, तो वह स्वयं को सत्य बनाता है। और सत्य में आसक्त होने के कारण, वह स्वयं को सत्य से ढँक लेता है और गरम कुल्हाड़ी पकड़ लेता है; वह जलता नहीं है और फिर उसे मुक्त कर दिया जाता है।

VI-xvi-3: 'और जैसे इस मामले में वह (सत्य में आसक्त व्यक्ति) जलता नहीं है, (इसी प्रकार ज्ञान वाला व्यक्ति फिर से जन्म नहीं लेता है)। इस प्रकार यह सारा संसार अपने आप में वही है। वही सत्य है। वही आत्मा है। हे श्वेतकेतु, तुम वही हो।' उनके शब्दों से श्वेतकेतु समझ गए कि - हाँ, उन्होंने समझ लिया।

सात-एक-1: ॐ। 'पूज्य महोदय, मुझे सिखाओ,' ऐसा कहकर नारद सनत्कुमार के पास गए। सनत्कुमार ने उनसे कहा, 'जो तुम पहले से जानते हो, उसे मुझे बताकर मेरे शिष्य बनो। इसके आगे जो है, वह मैं आपको बताता हूँ।' नारद ने कहा:

VII-i-2: 'पूज्य महोदय, मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को जानता हूँ, चौथा, इतिहास पुराण को पाँचवाँ, व्याकरण, पितरों की पूजा के नियम, गणित, शकुन-विज्ञान, कोष-विज्ञान, तर्कशास्त्र, नीति-विज्ञान, व्युत्पत्ति-विज्ञान, वेदों का सहायक ज्ञान, भौतिक विज्ञान, युद्ध-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, सर्प-संबंधी विज्ञान और ललित कलाएँ - यह सब मैं जानता हूँ, पूज्य महोदय।'

VII-i-3: 'पूज्य महोदय, तथापि, मैं केवल मौखिक ग्रंथों का ज्ञाता हूँ, आत्मा का ज्ञाता नहीं हूँ। वास्तव में मैंने आपके जैसे लोगों से सुना है कि आत्मा का ज्ञाता दुःख से परे हो जाता है। मैं ऐसे दुःख की स्थिति में हूँ। आपका पूजनीय स्वरूप मुझे उस पार ले जाए।' सनत्कुमार ने उत्तर दिया, 'आपने जो कुछ भी यहाँ पढ़ा है, वह वास्तव में नाम ही है।'

VII-i-4: 'नाम ही ऋग्वेद है, (इसी प्रकार) यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद, पाँचवाँ इतिहास-पुराण, व्याकरण, पितरों की पूजा के नियम, गणित, शकुनों का विज्ञान, कोषों का विज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, व्युत्पत्ति, वेदों का सहायक ज्ञान, भौतिक विज्ञान, युद्ध का विज्ञान, नक्षत्रों का विज्ञान, सर्पों से संबंधित विज्ञान और ललित कलाएँ - यह सब नाम ही है। नाम की पूजा करो।

VII-i-5: 'जो नाम को ब्रह्म मानकर उसकी पूजा करता है, वह नाम की पहुँच के भीतर अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है, जो नाम को ब्रह्म मानकर उसकी पूजा करता है।' (नारद) 'पूज्यवर, क्या नाम से भी बड़ी कोई चीज़ है?' (सनत्कुमार) 'निश्चित रूप से नाम से भी बड़ी कोई चीज़ है।' (नारद) 'पूज्यवर, मुझे बताइए।'

VII-ii-1: 'वाणी निश्चित रूप से नाम से भी बड़ी है। वाणी हमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्ववेद, पंचम इतिहासपुराण, व्याकरण, पितरों की पूजा के नियम, गणित, शकुन-विज्ञान, कोष-विज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, व्युत्पत्ति, वेदों का सहायक ज्ञान, भौतिक विज्ञान, युद्ध विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, सर्प-संबंधी विज्ञान, ललित कलाएँ, स्वर्ग और पृथ्वी, वायु और आकाश, जल और अग्नि, देवता और मनुष्य, पशु और पक्षी, घास और वृक्ष, पशु-पक्षी से लेकर कीड़े-मकौड़े, उड़ने वाले कीड़े-मकोड़े, पुण्य और पाप, सत्य और असत्य, अच्छा और बुरा, सुखद और अप्रिय, इन सबका बोध कराती है।

वास्तव में, यदि वाणी न होती, तो न पुण्य और न पाप, न सत्य और न असत्य, न अच्छा और न बुरा, न सुखद और न अप्रिय, इन सबका बोध कराती है। वाणी ही हमें यह सब समझाती है। (अतः) वाणी की पूजा करो।

VII-ii-2: 'जो वाणी को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह वाणी की पहुंच के भीतर अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है, जो वाणी को ब्रह्म के रूप में पूजता है।' 'पूज्य महोदय, क्या वाणी से भी बड़ी कोई चीज है?' 'निश्चित रूप से, वाणी से भी बड़ी कोई चीज है'। 'पूज्य महोदय, इसे मुझे बताएं'।

VII-iii-1: 'मन निश्चित रूप से वाणी से बड़ा है। जैसे बंद हाथ दो आमलक, या दो कोला, या दो अक्ष फलों को घेरता है, वैसे ही मन वाणी और नाम को घेरता है। जब मन से कोई यह इरादा करता है कि 'मैं मंत्र सीखूं', तो वह सीखता है; मैं यज्ञ कर्म करूं', तो वह करता है; 'मैं संतान और पशुधन की इच्छा करूं', तो वह इच्छा करता है; 'मैं इस दुनिया और परलोक की इच्छा करूं', तो वह इच्छा करता है।मन ही आत्मा है। मन ही जगत है। मन ही ब्रह्म है। मन की पूजा करो।

VII-III-2: 'जो मन को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह मन की पहुंच के भीतर के क्षेत्र में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है, जो मन को ब्रह्म के रूप में पूजता है'। 'पूज्य महोदय, क्या मन से भी बड़ी कोई चीज है?' 'निश्चित रूप से, मन से भी बड़ी कोई चीज है'। 'पूज्य महोदय, इसे मुझे बताइए'।

VII-IV-1: 'इच्छा निश्चित रूप से मन से बड़ी है। वास्तव में, जब कोई इच्छा करता है, तो वह अपने मन में इरादा करता है, फिर वह वाणी भेजता

है, और वह इसे नाम में भेजता है। नाम में पवित्र सूत्र और पवित्र सूत्रों में यज्ञ एक हो जाते हैं।'

VII-IV-2: 'ये सभी, वास्तव में, इच्छा में विलीन हो जाते हैं, इच्छा से बने होते हैं, और इच्छा में रहते हैं। स्वर्ग और पृथ्वी ने इच्छा की, वायु और आकाश ने इच्छा की, जल और अग्नि ने इच्छा की। इनकी इच्छा से वर्षा होती है। वर्षा की इच्छा से अन्न होता है। अन्न की इच्छा से प्राण होता है। प्राण की इच्छा से पवित्र सूत्र होता है। पवित्र सूत्रों (यज्ञ) की इच्छा से कर्म होता है। (यज्ञ) की इच्छा से संसार होता है। संसार की इच्छा से सभी चीजें होती हैं। यही इच्छा है। इच्छा की उपासना।

VII-IV-3: 'जो व्यक्ति इच्छा को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह वास्तव में अपने द्वारा इच्छित लोकों को प्राप्त करता है - स्वयं स्थायी होने के कारण स्थायी लोक; स्वयं सुस्थिर होने के कारण सुस्थिर लोक; स्वयं तनावरहित होने के कारण तनावरहित लोक। जो व्यक्ति इच्छा को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह इच्छा की पहुंच के भीतर के क्षेत्र में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।' 'आदरणीय महोदय, क्या इच्छा से भी बड़ी कोई चीज है?' 'निश्चित रूप से, इच्छा से भी बड़ी कोई चीज है।' 'आदरणीय महोदय, इसे मुझे बताएं।'

VII-v-1: 'बुद्धि निश्चय ही इच्छा से बड़ी है। वास्तव में, जब कोई समझता है, तब वह इच्छा करता है, तब वह मन में इरादा करता है, तब वह वाणी भेजता है, और वह उसे नाम से भेजता है। नाम में पवित्र सूत्र और पवित्र सूत्रों में बलिदान एक हो जाता है।

VII-v-2: 'ये सभी, वास्तव में, बुद्धि में विलीन हो जाते हैं, बुद्धि से बने होते हैं और बुद्धि में रहते हैं। इसलिए, भले ही एक आदमी जो बहुत कुछ जानता है, बुद्धि के बिना हो, लोग उसके बारे में इस तरह बोलते हैं, 'वह मौजूद नहीं है, न ही उसने जो जाना है; यदि वह सचमुच विद्वान होता, तो वह बुद्धि से रहित न होता। दूसरी ओर, यदि कम जानने वाला व्यक्ति बुद्धि से संपन्न है, तो लोग उसकी बात भी सुनना चाहते हैं।

बुद्धि ही इन सबका एक ही विलयन है, बुद्धि ही उनकी आत्मा है, बुद्धि ही उनका आधार है। बुद्धि की पूजा करो। सप्तम-पंचम: 'जो बुद्धि को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह बुद्धि के लोकों को प्राप्त करता है - स्वयं स्थायी होने से स्थायी लोक; स्वयं सुस्थित होने से सुस्थित लोक; स्वयं निर्बल होने से निर्बल लोक। जो बुद्धि को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह

बुद्धि की पहुंच के भीतर के क्षेत्र में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।'

'पूज्य महोदय, क्या बुद्धि से भी बड़ी कोई चीज है?' 'निश्चित रूप से बुद्धि से भी बड़ी कोई चीज है।' 'पूज्य महोदय, मुझे बताइए।' सप्तम-पंचम: 'चिंतन निश्चित रूप से बुद्धि से भी बड़ी चीज है। पृथ्वी मानो चिंतन करती है। आकाश मानो चिंतन करता है। स्वर्ग मानो चिंतन करता है। जल मानो चिंतन करता है। पर्वत मानो चिंतन करते हैं। देवता और मनुष्य मानो चिंतन करते हैं। अतः यहाँ मनुष्यों में जो महान् पद प्राप्त करते हैं, वे चिंतन के फल में से कुछ अंश प्राप्त करते हैं। और जो छोटे लोग हैं, वे झगड़ालू, गाली देने वाले और निंदा करने वाले होते हैं; परन्तु जो महान् व्यक्ति हैं, वे चिंतन के फल में से कुछ अंश प्राप्त करते हैं। चिंतन की पूजा करो।

VII-vi-2: 'जो चिंतन को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह चिंतन की पहुँच के भीतर अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है, जो चिंतन को ब्रह्म के रूप में पूजता है'। 'पूज्य महोदय, क्या चिंतन से भी बड़ी कोई चीज़ है?' 'निश्चित रूप से, चिंतन से भी बड़ी कोई चीज़ है'। 'पूज्य महोदय, इसे मुझे बताएँ'।

VII-vii-1: 'समझ निश्चित रूप से चिंतन से बड़ी है। केवल समझ से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्ववेद, पांचवां इतिहास पुराण, व्याकरण, पूर्वजों की पूजा के नियम, गणित, शकुनों का विज्ञान,खजाने, तर्क, वेद, भौतिक विज्ञान, युद्ध का विज्ञान, सितारों का विज्ञान, नागों से संबंधित विज्ञान और ललित कलाएँ - साथ ही स्वर्ग और पृथ्वी, वायु और आकाश, जल और अग्नि, देवता और मनुष्य, मवेशी और पक्षी, घास और पेड़, जानवर से लेकर कीड़े, उड़ने वाले कीड़े और चींटियाँ, पुण्य और पाप, सच और झूठ, अच्छा और बुरा, सुखद और अप्रिय, भोजन और पेय, यह दुनिया और परलोक - (यह सब) केवल समझ से ही समझा जा सकता है। समझ की पूजा करें।

VII-vii-2: 'जो व्यक्ति समझ को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह शास्त्रों और अन्य विषयों के ज्ञान से युक्त लोकों को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति समझ को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह समझ के दायरे में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।' 'आदरणीय महोदय, क्या समझ से बड़ी कोई चीज़ है?' 'निश्चित रूप से, समझ से बड़ी कोई चीज़ है'। 'आदरणीय महोदय, इसे मुझे बताएँ'।

सातवीं-आठवीं-1: 'बल निश्चय ही बुद्धि से बड़ा है। बलवान एक भी मनुष्य सौ बुद्धिवान मनुष्यों को भी काँपने पर मजबूर कर देता है। जब मनुष्य बलवान होता है, तब वह ऊपर उठता है; ऊपर उठकर वह सेवा करता है; सेवा करते हुए वह समीप पहुँचता है; समीप पहुँचकर वह देखता है, सुनता है, विचार करता है, समझता है, कार्य करता है और अनुभव करता है। बल से ही पृथ्वी खड़ी है; बल से ही आकाश; बल से ही स्वर्ग; बल से ही पर्वत; बल से ही देवता और मनुष्य; बल से ही पशु और पक्षी, घास और वृक्ष, पशु से लेकर कीड़े-मकौड़े और चींटियाँ; बल से ही संसार खड़ा है। बल की आराधना करो।

सातवीं-आठवीं-2: 'जो बल को ब्रहम मानकर पूजता है, वह बल की पहुँच के भीतर अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है, जो बल को ब्रहम मानकर पूजता है।' 'आदरणीय महोदय, क्या बल से भी बड़ा कुछ है?' 'निश्चित रूप से, बल से भी बड़ा कुछ है।' 'पूज्य महाराज, इसे मुझे बताएँ'।

सात-नौ-१: 'भोजन निश्चित रूप से शक्ति से बड़ा है। इसलिए, यदि कोई दस दिन तक नहीं खाता है, भले ही वह जीवित रह सकता है, फिर भी, वास्तव में, वह नहीं देखता है, नहीं सुनता है, नहीं सोचता है, नहीं करता है, और नहीं समझता है। लेकिन भोजन के आने पर, वह देखता है, सुनता है, सोचता है, समझता है, करता है और समझता है। भोजन की पूजा करें।

सात-नौ-२: 'जो व्यक्ति अन्न को ब्रहम के रूप में पूजता है, वह वास्तव में भोजन और पेय से युक्त लोकों को प्राप्त करता है। वह व्यक्ति जो अन्न को ब्रहम के रूप में पूजता है, वह अन्न की पहुँच के भीतर अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र है।'

'पूज्य महाराज, क्या अन्न से बड़ा कुछ है?'

'निश्चित रूप से, अन्न से बड़ा कुछ है'।

'पूज्य महाराज, इसे मुझे बताएँ'।

सात-नौ-१: 'पानी निश्चित रूप से अन्न से बड़ा है। इसलिए जब अच्छी वर्षा नहीं होती तो जीव-जंतु व्यथित हो जाते हैं (सोचते हैं), "अन्न की कमी हो जाएगी"। लेकिन जब अच्छी वर्षा होती है तो जीव-जंतु प्रसन्न हो जाते हैं

(सोचते हैं), "अन्न की प्रचुरता हो जाएगी"। जल ने ये सभी रूप धारण किए हैं - यह धरती, यह आकाश, यह स्वर्ग, ये पहाड़, ये देवता और मनुष्य, ये मवेशी और पक्षी, घास और पेड़, जानवर से लेकर कीड़े, उड़ने वाले कीड़े और चींटियाँ। जल ने ये सभी रूप धारण किए हैं। जल की पूजा करें।

VII-x-2: 'जो जल को ब्रह्म मानकर उसकी पूजा करता है, उसे सभी इच्छाएँ प्राप्त होती हैं और वह संतुष्ट हो जाता है। जो जल को ब्रह्म मानकर उसकी पूजा करता है, वह जल की पहुँच के भीतर अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।' 'आदरणीय महोदय, क्या जल से भी बड़ी कोई चीज़ है?' 'ज़रूर, जल से भी बड़ी कोई चीज़ है।' 'आदरणीय महोदय, मुझे बताइए।'

VII-xi-1: 'अग्नि ज़रूर जल से भी बड़ी है। यही अग्नि है जो वायु को अपने में समाहित करके आकाश को गर्म करती है। तब लोग कहते हैं, "यह गर्म है, यह जल रहा है, अवश्य ही वर्षा होगी।" वहाँ, यह अग्नि ही है जो पहले प्रकट होती है, फिर जल उत्पन्न करती है। इसी अग्नि के कारण गरजती है, बिजली चमकती है, तथा ऊपर-नीचे चमकती है; इसलिए लोग कहते हैं, "बिजली चमक रही है, यह गरज रही है, अवश्य ही वर्षा होगी"। वहाँ, यह अग्नि ही है जो पहले प्रकट होती है, फिर जल उत्पन्न करती है। अग्नि की पूजा करो।

VII-xi-2: 'जो ब्रह्म के रूप में अग्नि की पूजा करता है, वह स्वयं तेजस्वी होकर, प्रकाश से परिपूर्ण तथा अंधकार से मुक्त तेजस्वी लोकों को प्राप्त करता है। जो ब्रह्म के रूप में अग्नि की पूजा करता है, वह अग्नि की पहुँच के भीतर के क्षेत्र में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है।' 'आदरणीय महोदय, क्या अग्नि से भी बड़ी कोई चीज़ है?' 'निश्चित रूप से, अग्नि से भी बड़ी कोई चीज़ है'। 'आदरणीय महोदय, मुझे बताइए'

VII-xii-1: आकाश निश्चित रूप से अग्नि से भी महान है। आकाश में सूर्य और चंद्रमा, बिजली, तारे और अग्नि दोनों विद्यमान हैं। आकाश के माध्यम से ही पुकारा जाता है, आकाश के माध्यम से ही सुना जाता है, आकाश के माध्यम से ही उत्तर सुना जाता है। आकाश में ही आनन्द होता है, आकाश में ही आनन्द नहीं होता। आकाश में ही कोई वस्तु जन्म लेती है और आकाश की ओर ही बढ़ती है। आकाश की पूजा करो।

VII-xii-2: 'जो आकाश को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह वास्तव में प्रकाश से भरे, असीम और विशाल संसार को प्राप्त करता है। जो आकाश को ब्रह्म

के रूप में पूजता है, वह आकाश की पहुंच के भीतर अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र है।' 'आदरणीय महोदय, क्या आकाश से भी महान कुछ है?' 'निश्चित रूप से, आकाश से भी महान कुछ है'। 'आदरणीय महोदय, मुझे बताइए'।

VII-xiii-1: 'स्मृति निश्चित रूप से आकाश से भी महान है। अतः यदि बहुत से लोग इकट्ठे हो जाएँ और उन्हें स्मृति न हो, तो निश्चय ही वे कोई ध्वनि नहीं सुनेंगे, विचार नहीं करेंगे, ज्ञान नहीं प्राप्त करेंगे। किन्तु निश्चय ही, यदि उन्हें स्मृति हो, तो वे सुनेंगे, विचार करेंगे, ज्ञान प्राप्त करेंगे। स्मृति से ही मनुष्य अपने पुत्रों को, स्मृति से ही पशुओं को पहचानता है। स्मृति की पूजा करें।

VII-xiii-2: 'जो स्मृति को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह स्मृति के दायरे में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है, जो स्मृति को ब्रह्म के रूप में पूजता है।' 'पूज्य महोदय, क्या स्मृति से भी बड़ी कोई चीज़ है?' 'निश्चित रूप से स्मृति से भी बड़ी कोई चीज़ है।' 'पूज्य महोदय, मुझे बताएँ।'

VII-xiv-1: 'आकांक्षा निश्चय ही स्मृति से बड़ी है। आकांक्षा से प्रज्वलित होकर स्मृति भजन करती है, अनुष्ठान करती है, पुत्र और पशुओं की इच्छा करती है, इस लोक और परलोक की इच्छा करती है। आकांक्षा की पूजा करें।'

VII-xiv-2: 'जो व्यक्ति अभीप्सा को ब्रह्म के रूप में पूजता है, उसकी सभी इच्छाएं अभीप्सा से सफल होती हैं, उसकी प्रार्थनाएं अचूक हो जाती हैं। जो व्यक्ति अभीप्सा को ब्रह्म के रूप में पूजता है, वह अभीप्सा की पहुंच के भीतर अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र है।' 'पूज्य महोदय, क्या अभीप्सा से भी बड़ी कोई चीज है?' 'निश्चित रूप से, अभीप्सा से भी बड़ी कोई चीज है'। 'पूज्य महोदय, इसे मुझे बताएं'।

VII-xv-1: 'प्राण निश्चित रूप से अभीप्सा से भी बड़ी चीज है। जिस प्रकार पहिये की तीलियां नाभि से जुड़ी होती हैं, उसी प्रकार यह सब इस प्राण से जुड़ा हुआ है। प्राण प्राण से चलता है, प्राण प्राण देता है और प्राण प्राण देता है। प्राण पिता है, प्राण माता है, प्राण भाई है, प्राण बहन है, प्राण गुरु है, प्राण ब्रह्म है।

VII-xv-2: 'यदि कोई अपने पिता, माता, भाई, बहन, गुरु या ब्राह्मण को कुछ कठोर उत्तर देता है, तो लोग उससे कहते हैं, "धिक्कार है तुझ पर! तू वास्तव में अपने पिता का हत्यारा है, तू वास्तव में अपनी माँ का हत्यारा है, तू वास्तव में अपने भाई का हत्यारा है, तू वास्तव में अपनी बहन का हत्यारा है, तू वास्तव में अपने गुरु का हत्यारा है, तू वास्तव में एक ब्राह्मण का हत्यारा है।"

VII-xv-3: 'इसके विपरीत, जब प्राण उनसे विदा हो जाता है, तो भले ही कोई उन्हें एक साथ रख दे, कांटे से उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर दे और जला दे, तो भी लोग उससे यह नहीं कहेंगे कि 'तू अपने पिता का वध करनेवाला है', न 'तू अपनी माता का वध करनेवाला है', न 'तू अपने भाई का वध करनेवाला है', न 'तू अपनी बहन का वध करनेवाला है', न 'तू अपने गुरु का वध करनेवाला है', न 'तू किसी ब्राह्मण का वध करनेवाला है'।

VII-xv-4: 'प्राण वास्तव में ये सब बन जाता है। जो इस प्रकार देखता है, इस प्रकार सोचता है और इस प्रकार जानता है, वह श्रेष्ठ वक्ता बन जाता है। यदि कोई उससे कहे कि 'तू श्रेष्ठ वक्ता है', तो उसे कहना चाहिए कि 'हाँ, मैं श्रेष्ठ वक्ता हूँ', उसे इससे इनकार नहीं करना चाहिए।

VII-xvi-1: 'परन्तु जो सत्य के साथ श्रेष्ठ बोलता है, वही श्रेष्ठ बोलता है।' 'आदरणीय महोदय, ऐसा होने के नाते, मैं सत्य के साथ बहुत बढ़िया बात करूंगा'। 'लेकिन सत्य को समझने की इच्छा होनी चाहिए'। 'आदरणीय महोदय, मैं सत्य को समझना चाहता हूं'।

VII-XVII-1: 'जब कोई समझता है, तभी वह सत्य की घोषणा करता है। समझ के बिना, कोई सत्य की घोषणा नहीं करता है। केवल वह जो समझता है, सत्य की घोषणा करता है। लेकिन व्यक्ति को समझ को समझने की इच्छा होनी चाहिए।' 'आदरणीय महोदय, मैं समझ को समझना चाहता हूं'।

VII-xviii-1: 'जब कोई चिंतन करता है, तभी वह समझता है। चिंतन किए बिना कोई नहीं समझता। केवल वह जो चिंतन करता है, समझता है। लेकिन व्यक्ति को चिंतन को समझने की इच्छा होनी चाहिए।' 'पूज्य महोदय, मैं चिंतन को समझना चाहता हूँ।'

VII-xix-1: 'जब किसी में विश्वास होता है, तभी वह चिंतन करता है। विश्वास के बिना, कोई चिंतन नहीं करता। केवल वह जो विश्वास करता है,

चिंतन करता है। लेकिन व्यक्ति को विश्वास को समझने की इच्छा होनी चाहिए।' 'पूज्य महोदय, मैं विश्वास को समझना चाहता हूँ।'

VII-xx-1: 'जब किसी में दृढ़ता होती है, तभी उसके पास विश्वास होता है। दृढ़ता के बिना, व्यक्ति में विश्वास नहीं होता। केवल वह जिसके पास दृढ़ता है, उसके पास विश्वास होता है। लेकिन व्यक्ति को दृढ़ता को समझने की इच्छा होनी चाहिए।' 'पूज्य महोदय, मैं दृढ़ता को समझना चाहता हूँ।'

VII-xxi-1: 'जब कोई कार्य करता है, तभी वह दृढ़ होता है। कार्य किए बिना, व्यक्ति दृढ़ नहीं होता। केवल कार्य करने पर ही व्यक्ति दृढ़ होता है। लेकिन व्यक्ति को क्रिया को समझने की इच्छा अवश्य करनी चाहिए।'

'पूज्य महोदय, मैं क्रिया को समझना चाहता हूँ।'

सातवीं-xxii-1: 'जब कोई सुख प्राप्त करता है', तभी वह कर्म करता है। सुख प्राप्त किए बिना कोई कर्म नहीं करता। सुख प्राप्त होने पर ही कोई कर्म करता है। लेकिन व्यक्ति को सुख को समझने की इच्छा अवश्य करनी चाहिए।'

'पूज्य महोदय, मैं सुख को समझना चाहता हूँ।'

सातवीं-xxiii-1: जो अनंत है, वही सुख है। किसी परिमित वस्तु में सुख नहीं है। केवल अनंत ही सुख है। लेकिन व्यक्ति को अनंत को समझने की इच्छा अवश्य करनी चाहिए।'

'पूज्य महोदय, मैं अनंत को समझना चाहता हूँ।'

सातवीं-xxiv-1: 'जिसमें कोई कुछ और नहीं देखता, कुछ और नहीं सुनता, कुछ और नहीं समझता, वह अनंत है। लेकिन जिसमें कोई कुछ और देखता है, कुछ और सुनता है, कुछ और समझता है, वह परिमित है। जो अनंत है, वही अमर है और जो परिमित है, वह नश्वर है।' 'पूज्य महोदय, वह अनंत किसमें स्थापित है ?' 'अपनी महानता पर या अपनी महानता पर भी नहीं'।

सात-चौबीस-दो: 'इस संसार में लोग गाय और घोड़े, हाथी और सोना, नौकर और पत्नियाँ, खेत और घर को महानता कहते हैं। मैं ऐसा (महानता के बारे

में) नहीं कहता, क्योंकि उस स्थिति में एक चीज़ दूसरी चीज़ में स्थापित हो जाएगी। मैं जो कहता हूँ, वह इस प्रकार है:

सात-पच्चीस-एक: 'वह अनंत ही नीचे है। वह ऊपर है। वह पीछे है। वह सामने है। वह दक्षिण में है। वह उत्तर में है। वही यह सब है। तो आगे आत्म-बोध के संबंध में शिक्षा है। मैं ही नीचे हूँ। मैं ऊपर हूँ। मैं पीछे हूँ। मैं आगे हूँ। मैं दक्षिण में हूँ। मैं उत्तर में हूँ। मैं ही यह सब हूँ।

सात-पच्चीस-दो: 'तो अब आत्मा के माध्यम से शिक्षा है। आत्मा ही नीचे है। आत्मा ही ऊपर है। आत्मा ही पीछे है। आत्मा सामने है। आत्मा दक्षिण में है। आत्मा उत्तर में है। आत्मा ही यह सब है। वास्तव में, जो इस प्रकार देखता है, इस प्रकार समझता है, उसे आत्मा में आनन्द, आत्मा में आनन्द, आत्मा में मिलन, आत्मा में आनन्द मिलता है। वह स्वयं-शासक बन जाता है; वह सभी लोकों में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र हो जाता है। लेकिन जो इससे भिन्न जानते हैं, वे दूसरों के द्वारा शासित होते हैं और नाशवान लोकों में रहते हैं; वे सभी लोकों में अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं।

VII-xxvi-1: वास्तव में, केवल उसी के लिए, जो इस प्रकार देखता है, इस प्रकार चिंतन करता है और इस प्रकार समझता है, प्राण आत्मा से निकलता है, आत्मा से अभीप्सा, आत्मा से स्मृति, आत्मा से आकाश, आत्मा से अग्नि, आत्मा से जल, आत्मा से प्रकट होना और तिरोहित होना, आत्मा से भोजन, आत्मा से शक्ति, आत्मा से समझ, आत्मा से चिंतन, आत्मा से बुद्धि, आत्मा से इच्छा, आत्मा से मन, आत्मा से वाणी, आत्मा से नाम, आत्मा से भजन, आत्मा से संस्कार, यह सब केवल आत्मा से ही (निकलता है)।

VII-xxvi-2: 'इसके बारे में यह श्लोक है: "जो इसे देखता है वह न तो मृत्यु देखता है, न बीमारी और न ही कोई दुःख। जो इसे देखता है वह सब कुछ देखता है और सभी चीजों को सभी तरह से प्राप्त करता है।" 'वह एक है, बन जाता है तीन गुना, पाँच गुना, सात गुना और नौ गुना भी। फिर उसे ग्यारह गुना, सौ दस गुना और एक हजार बीस गुना भी कहा जाता है। 'जब पोषण शुद्ध होता है, तो प्रतिबिंब और उच्च समझ शुद्ध हो जाती है।

जब प्रतिबिंब और उच्च समझ शुद्ध होती है, तो स्मृति मजबूत हो जाती है। जब स्मृति मजबूत हो जाती है, तो हृदय की सभी गांठें मुक्त हो जाती हैं। पूज्य सनतकुमार ने नारद को, उनकी अशुद्धियों को धोने के बाद,

अंधकार का दूसरा किनारा दिखाया। लोग सनतकुमार को स्कंद कहते हैं - हाँ, वे उन्हें स्कंद कहते हैं।

VIII-i-1: ॐ। अब, ब्रह्म के इस शहर में, एक छोटे कमल के आकार का महल है; इसमें एक छोटा सा आंतरिक आकाश है। उसके भीतर क्या है, उसे खोजना चाहिए; वास्तव में, उसे समझने की इच्छा होनी चाहिए।

आठवाँ-1-2-3: यदि शिष्य उससे पूछें, 'इस ब्रह्म नगर में, जिसमें कमल के आकार का एक छोटा सा भवन है और भीतर छोटा सा आकाश है - वहाँ ऐसा क्या है जिसे खोजना चाहिए, जिसे समझने की इच्छा होनी चाहिए?' - तो उसे उत्तर में कहना चाहिए, 'यह आकाश जितना बड़ा है, हृदय में वह आकाश भी उतना ही बड़ा है। इसके भीतर, वास्तव में, स्वर्ग और पृथ्वी, अग्नि और वायु, सूर्य और चंद्रमा, बिजली और तारे दोनों समाहित हैं। इस संसार में जो कुछ भी है और जो कुछ भी नहीं है, वह सब इसमें समाहित है।'

8-1-4: यदि वे उससे कहें, 'यदि इस ब्रह्म नगर में यह सब, सभी प्राणी और सभी इच्छाएँ समाहित हैं, तो जब बुढ़ापा आ जाएगा या यह नष्ट हो जाएगा, तब इसमें क्या शेष रह जाएगा?'

8-1-5: उसे कहना चाहिए, 'यह (आंतरिक आकाश नामक ब्रह्म) शरीर के जीर्ण होने के साथ बूढ़ा नहीं होता, इसके मारे जाने से यह नष्ट नहीं होता। यह (आकाश) ब्रह्म का वास्तविक नगर है, इसमें इच्छाएँ समाहित हैं। यह आत्मा है, जो बुराई से मुक्त है, बुढ़ापे से मुक्त है, मृत्यु से मुक्त है, दुःख से मुक्त है, भूख से मुक्त है, प्यास से मुक्त है, जिसकी इच्छा सत्य की है, जिसका संकल्प सत्य का है।

जैसे इस संसार में प्रजा जो आज्ञा पाती है, उसी का अनुसरण करती है और जो प्रांत चाहती है, चाहे वह देश हो या खेत का कोई भाग, उसी में रहती है। (अतः अज्ञानी लोग अपने कर्मों के फल भोगने के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं।)

आठवीं-i-6: 'जैसे इस पृथ्वी पर कर्म से अर्जित संसार नष्ट हो जाता है, वैसे ही परलोक में धर्म से अर्जित संसार नष्ट हो जाता है। अतः जो लोग आत्मा और इन सच्ची इच्छाओं को समझे बिना यहाँ से चले जाते हैं, उनके लिए सभी लोकों में अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं रहती। लेकिन जो लोग आत्मा और इन सच्ची इच्छाओं को समझकर यहाँ से चले

जाते हैं, उनके लिए सभी लोकों में अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता रहती है।'

आठवीं-ii-1: यदि वह पितरों के लोक की इच्छा करता है, तो उसकी इच्छा मात्र से ही पितरों की उत्पत्ति होती है। उस पितरों के लोक को प्राप्त करके वह सुखी और श्रेष्ठ अनुभव करता है।

आठवीं-ii-2: और यदि वह माताओं के लोक की इच्छा करता है, तो उसकी इच्छा मात्र से ही माताएँ उत्पन्न होती हैं। उस माताओं के लोक को प्राप्त करके वह सुखी और श्रेष्ठ अनुभव करता है।

VIII-ii-3: और यदि वह भाइयों के संसार की इच्छा रखता है, तो उसकी इच्छा मात्र से ही भाई उत्पन्न हो जाते हैं।
उस भाइयों के संसार को प्राप्त करके वह सुखी और श्रेष्ठ अनुभव करता है।

VIII-ii-4: और यदि वह बहनों के संसार की इच्छा रखता है, तो उसकी इच्छा मात्र से ही बहनें उत्पन्न हो जाती हैं।
उस बहनों के संसार को प्राप्त करके वह सुखी और श्रेष्ठ अनुभव करता है।

VIII-ii-5: और यदि वह मित्रों के संसार की इच्छा रखता है, तो उसकी इच्छा मात्र से ही मित्र उत्पन्न हो जाते हैं।
उस मित्रों के संसार को प्राप्त करके वह सुखी और श्रेष्ठ अनुभव करता है।

VIII-ii-6: और यदि वह इत्र और मालाओं के संसार की इच्छा रखता है, तो उसकी इच्छा मात्र से ही इत्र और मालाएँ उत्पन्न हो जाती हैं।
उस इत्र और मालाओं के संसार को प्राप्त करके वह सुखी और श्रेष्ठ अनुभव करता है।

VIII-ii-7: और यदि वह खाने-पीने के संसार की इच्छा रखता है, तो उसकी इच्छा मात्र से ही खाने-पीने के संसार उत्पन्न हो जाते हैं। भोजन और पेय की उस दुनिया के वशीभूत होकर वह खुश और ऊंचा महसूस करता है।

VIII-ii-8: और यदि वह गीत और संगीत की दुनिया की इच्छा रखता है, तो उसकी मात्र इच्छा से, गीत और संगीत उठते हैं। गीत और संगीत की उस दुनिया के वशीभूत होकर वह खुश और ऊंचा महसूस करता है।

VIII-ii-9: और यदि वह महिलाओं की दुनिया की इच्छा रखता है, तो उसकी मात्र इच्छा से, महिलाएं उत्पन्न होती हैं। वशीभूत होकर महिलाओं की उस दुनिया में वह खुश और उत्साहित महसूस करता है।

आठवीं-दो-दस: वह जिस किसी भी प्रान्त में आसक्त है और अपनी इच्छा मात्र से जो भी इच्छित वस्तुएँ चाहता है, वे सब उत्पन्न होती हैं। उन्हें पाकर वह सुखी और उच्च अनुभव करता है।

आठवीं-तीन-एक: ये ही सच्ची इच्छाएँ हैं जो असत्य से आवृत हैं। इच्छाएँ सत्य होते हुए भी असत्य से आवृत हैं। क्योंकि जो कोई इस संसार से चला जाता है, उसे फिर नहीं देखा जा सकता।

आठवीं-तीन-दो: परन्तु जो लोग जीवित हैं या मृत हैं और जो कुछ भी मनुष्य चाहता है, परन्तु नहीं पाता, वह सब वहाँ जाकर (आत्मा में, हृदय में आकाश में) पाता है; क्योंकि यहाँ उसकी सच्ची इच्छाएँ असत्य से आवृत हैं। जैसे, जो लोग इस क्षेत्र को नहीं जानते, वे भूमि के अन्दर छिपे हुए सोने के भण्डार पर बार-बार चलते हैं, परन्तु उसे नहीं पाते, वैसे ही ये सभी प्राणी, यद्यपि प्रतिदिन ब्रह्म-लोक में जाते हैं, परन्तु उसे नहीं पाते, क्योंकि वे असत्य के द्वारा बह जाते हैं।

VIII-iii-3: यह आततान वास्तव में हृदय में है। इसकी व्युत्पत्ति संबंधी व्याख्या यह है। यह (आत्मा) हृदय में है, इसलिए यह हृदय है। जो इस प्रकार जानता है, वह नित्य स्वर्गलोक में जाता है।

आठवीं-तीन-४: अब वह शांत और प्रसन्न प्राणी इस शरीर से उठकर सर्वोच्च प्रकाश को प्राप्त होकर अपने वास्तविक रूप में प्रकट होता है। यह आत्मा है, गुरु ने कहा। यह अमर है, निर्भय है। यह ब्रह्म है। वास्तव में, इस ब्रह्म का नाम सत्य है।

आठवीं-तीन-५: ये वास्तव में तीन अक्षर हैं, 'सा', 'ति', 'यं'। जो 'सा' है, वह अमर है, और जो 'ति' है, वह नश्वर है, और जो 'यम' है, वह इन दोनों को एक साथ रखता है। क्योंकि यह इन दोनों को एक साथ रखता है, इसलिए यह 'यम' है। वास्तव में, जो इस प्रकार जानता है, वह स्वर्गलोक में जाता है। आठवीं-चार-१: अब, यह आत्मा इन लोकों की सुरक्षा के लिए बाँध है। यह बाँध, न दिन पार करता है, न रात, न बुढ़ापा और न ही न मृत्यु, न शोक, न पुण्य, न पाप। सभी बुराइयाँ इससे दूर हो जाती हैं, क्योंकि यह ब्रह्म-लोक बुराई से मुक्त है।

VIII-IV-2: इसलिए, वास्तव में, इस बांध पर पहुँचने पर, यदि कोई अंधा था, तो वह अंधा नहीं रहता; यदि घायल हो, तो वह घायल नहीं रहता, यदि पीड़ित हो, तो वह पीड़ित नहीं रहता। इसलिए, वास्तव में, इस बांध पर पहुँचने पर, रात भी दिन बन जाती है, क्योंकि यह ब्रह्म-लोक सदा प्रकाशित रहता है।

VIII-IV-3: लेकिन केवल वे ही जो ब्रह्मचर्य के द्वारा इस ब्रह्म-लोक को प्राप्त करते हैं, यह ब्रह्म-लोक उन्हीं का है। उनके लिए सभी लोकों में अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता है।

VIII-V-1: अब, जिसे लोग त्याग कहते हैं, वह वास्तव में ब्रह्मचर्य है, क्योंकि केवल ब्रह्मचर्य के माध्यम से ही ज्ञाता उस लोक को प्राप्त करता है। और जिसे लोग पूजा (इष्ट) कहते हैं, वह वास्तव में ब्रह्मचर्य है, क्योंकि ब्रह्मचर्य से पूजा करने से ही आत्मा की प्राप्ति होती है।

आठवाँ श्लोक 2: अब, जिसे लोग यज्ञ कहते हैं, वह वास्तव में ब्रह्मचर्य है, क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति होती है। और जिसे लोग मौन व्रत कहते हैं, वह वास्तव में ब्रह्मचर्य है, क्योंकि ब्रह्मचर्य से ही व्यक्ति आत्मा को समझ सकता है और फिर ध्यान कर सकता है।

आठवाँ श्लोक 3: अब, जिसे लोग उपवास कहते हैं, वह वास्तव में ब्रह्मचर्य है, क्योंकि ब्रह्मचर्य से प्राप्त होने वाली यह आत्मा कभी नष्ट नहीं होती। और जिसे लोग संन्यासी का जीवन कहते हैं, वह वास्तव में ब्रह्मचर्य है, क्योंकि यहाँ से तीसरे स्वर्ग में ब्रह्म-लोक में आरा और न्या दो महासागर हैं और वहाँ ऐरम्मादिया झील है, और वहाँ ब्रह्मा की अपराजित (अविजित) नगरी है, और वहाँ भगवान द्वारा विशेष रूप से निर्मित स्वर्ण मंडप है।

आठवाँ श्लोक-4: इसलिए जो ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मलोक में दो समुद्रों, आरा और न्या को प्राप्त कर लेते हैं, केवल उन्हीं को यह ब्रह्मलोक प्राप्त है और उन्हें सभी लोकों में अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता है।

आठवाँ श्लोक-1: अब, ये धमनियाँ जो हृदय से संबंधित हैं, एक सुंदर पदार्थ के रस से भरी हुई हैं, जो लाल-भूरा, सफेद, नीला, पीला और लाल है। वहाँ का सूर्य वास्तव में लाल-भूरा है, वह है वह सफेद है, वह नीला है, वह पीला है, वह लाल है।

VIII-vi-2: जिस प्रकार दो गांवों के बीच एक विस्तृत राजमार्ग चलता है, यह भी और वह भी, उसी प्रकार सूर्य की किरणें इन दोनों लोकों में जाती हैं, यह भी और वह भी। वे उस सूर्य से फैलती हैं और इन धमनियों में प्रवेश करती हैं। इन धमनियों से वे फैलती हैं और उस सूर्य में प्रवेश करती हैं।

VIII-vi-3: इसलिए जब कोई इस प्रकार गहरी नींद में, शांत, स्थिर होता है ताकि उसे कोई स्वप्न न आए, तब वह इन धमनियों के माध्यम से (हृदय के आकाश में) प्रवेश करता है। तब कोई बुराई उसे छू नहीं सकती क्योंकि तब वह सूर्य के प्रकाश से भर जाता है।

VIII-vi-4: अब, जब कोई इस प्रकार कमजोर स्थिति में आ जाता है, तो उसके आस-पास बैठने वाले लोग कहते हैं, 'क्या तुम मुझे जानते हो? क्या तुम मुझे जानते हो?' जब तक वह इस शरीर से विदा नहीं हुआ है, तब तक वह उन्हें जानता है।

आठवीं-छठी-5: किन्तु जब वह इस शरीर से इस प्रकार विदा होता है, तब वह उन्हीं किरणों के द्वारा ऊपर की ओर जाता है, (यदि ज्ञानी है) तो वह अवश्य ही ॐ का ध्यान करता हुआ ऊपर जाता है, अथवा (ज्ञानी न हो तो नहीं उठता)। मन को जितनी देर यात्रा करने में लगती है, उतने ही समय में वह सूर्य के पास चला जाता है। वह वास्तव में (ब्रह्म के) संसार का द्वार है, ज्ञानियों के लिए प्रवेश द्वार है और अज्ञानियों के लिए प्रवेश द्वार है।

आठवीं-छठी-6: इसके विषय में यह श्लोक है: हृदय की एक सौ एक धमनियाँ हैं, उनमें से एक शिखा तक जाती है। उससे ऊपर की ओर जाते हुए मनुष्य अमरत्व को प्राप्त होता है, जबकि अन्य धमनियाँ अन्य अनेक दिशाओं में प्रस्थान करने का काम करती हैं - हाँ, प्रस्थान करने का काम करती हैं।

आठवीं-सातवीं-1: जो आत्मा पाप से रहित है, बुढ़ापे से रहित है, मृत्यु से रहित है, शोक से रहित है, भूख-प्यास से रहित है, जिसकी इच्छा सत्य की है, जिसका संकल्प सत्य का है, उसे खोजना चाहिए, उसे समझने की इच्छा करनी चाहिए। जिसने उस आत्मा को पा लिया है और जो समझ गया है, वह सभी लोकों और सभी इच्छाओं को प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रजापति बोले। आठवीं-सातवीं-2: यह सुनकर देवता और दैत्य दोनों ने कहा, 'अच्छा, हम उस आत्मा को खोजें, जिसकी खोज करने से सभी लोक और सभी इच्छाएँ प्राप्त होती हैं।' तब देवताओं में से केवल इंद्र बाहर गए और दैत्यों में से विरोचन भी बाहर गए। फिर एक-दूसरे से संवाद किए बिना, वे दोनों

हाथ में ईंधन लेकर प्रजापति के समक्ष आए। आठवीं-सातवीं-3: बत्तीस वर्षों तक उन्होंने पवित्र ज्ञान के एक ब्रह्मचारी छात्र का अनुशासित जीवन व्यतीत किया।

तब प्रजापति ने उनसे पूछा, 'तुम किसकी इच्छा करके जी रहे हो?' उन्होंने उत्तर दिया, 'जो आत्मा पाप से रहित है, बुढ़ापे से रहित है, मृत्यु से रहित है, शोक से रहित है, भूख और प्यास से रहित है, जिसकी इच्छा सत्य की है, जिसका संकल्प सत्य का है, उसी की खोज करनी चाहिए, उसी को जानने की इच्छा करनी चाहिए। जिसने उस आत्मा को पा लिया है और जो समझ गया है, वह सभी लोकों और सभी इच्छाओं को प्राप्त कर लेता है - ये आपके पूज्य आत्मा के शब्द हैं। उसी आत्मा की इच्छा करके हम जी रहे हैं।'

आठवीं-सातवीं-4: प्रजापति ने उनसे कहा, 'जो व्यक्ति आंखों में दिखाई देता है, वह आत्मा है'। उन्होंने कहा, 'यह अमर है, निर्भय है। यह ब्रह्म है'। 'लेकिन, पूज्य महोदय, वह जो पानी में देखा जाता है और वह जो दर्पण में देखा जाता है, इनमें से कौन सा आत्मा है?' वह स्वयं ही इन सभी में देखा जाता है, 'प्रजापति ने उत्तर दिया।

आठवीं-आठवीं-१: ‘अपने आप को जल के पात्र में देखो और आत्मा के विषय में जो कुछ भी तुम्हें समझ में न आए, वह मुझे बताओ।’ तब उन्होंने जल के पात्र में देखा। प्रजापति ने उनसे पूछा, ‘तुम क्या देखते हो?’ उन्होंने उत्तर दिया, ‘पूज्य महोदय, हम दोनों आत्मा को पूरी तरह से वैसे ही देखते हैं जैसे हम हैं, उसकी छवि, यहाँ तक कि बाल और नाखून तक।’

आठवीं-आठवीं-२: तब प्रजापति ने उनसे कहा, ‘अच्छी तरह से सज-धज कर, अच्छे कपड़े पहन कर और अच्छी तरह से तैयार हो कर, जल के पात्र में देखो।’ वे भी अच्छी तरह से सज-धज कर, अच्छे कपड़े पहन कर और अच्छी तरह से तैयार हो कर, जल के पात्र में देखने लगे। तब प्रजापति ने उनसे पूछा, 'तुम क्या देखते हो?'

आठवीं-आठवीं-३: उन्होंने उत्तर दिया, 'जैसे हम स्वयं, पूज्य महोदय, अच्छी तरह से सुसज्जित, अच्छी तरह से तैयार और सुसज्जित हैं, वैसे ही ये दोनों भी, पूज्य महोदय, अच्छी तरह से सुसज्जित, अच्छी तरह से तैयार और सुसज्जित हैं।' 'यह आत्मा है', उन्होंने कहा, 'यह अमर है, निर्भय है। यह ब्रह्म है'। वे दोनों अपने दिल में संतुष्ट होकर चले गए।

आठवीं-आठवीं-४: तब प्रजापति ने उनकी ओर देखा और कहा, 'वे बिना देखे चले जा रहे हैं,आत्मा को समझे बिना जो कोई इस मत का पालन करेगा, चाहे वे देवता हों या राक्षस, वे निष्फल हो जाएंगे।' अब विरोचन अपने हृदय में संतुष्ट होकर राक्षसों के पास गए और उन्हें यह मत सुनाया। 'यहां केवल (शारीरिक) आत्मा की पूजा करनी है, आत्मा की सेवा करनी है। यहां केवल आत्मा की पूजा और आत्मा की सेवा करने से ही दोनों लोकों की प्राप्ति होती है, यह और परलोक दोनों की।'

आठवीं-आठवीं-5: इसलिए आज भी यहां लोग उस व्यक्ति के बारे में कहते हैं जो दाता नहीं है, जिसमें श्रद्धा नहीं है, जो यज्ञ नहीं करता, 'अरे, वह राक्षस है'; क्योंकि यह राक्षसों का मत है। वे मृतक के शरीर को सुखदायक वस्तुओं, वस्त्रों और आभूषणों से सजाते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि इससे वे परलोक जीत लेंगे।

VIII-ix-1: लेकिन देवताओं के पास पहुँचने से पहले ही इंद्र ने यह कठिनाई देखी: 'जिस तरह यह (प्रतिबिंबित आत्मा) इस शरीर के अच्छी तरह से सुसज्जित होने पर अच्छी तरह से सुसज्जित हो जाती है, शरीर के अच्छी तरह से तैयार होने पर अच्छी तरह से तैयार हो जाती है, उसी तरह यह (प्रतिबिंबित आत्मा) भी शरीर के अंधे होने पर अंधा हो जाता है, शरीर के एक-आंख होने पर एक-आंख वाला हो जाता है, शरीर के अपंग होने पर अपंग हो जाता है, और जब यह शरीर नष्ट हो जाता है तो यह नष्ट हो जाता है। मुझे इसमें कोई अच्छाई नहीं दिखती।'

VIII-ix-2: वह फिर से वापस आया, हाथ में ईंधन लेकर। प्रजापति ने उनसे पूछा, 'हे इन्द्र, तुम किस इच्छा से लौटे हो, क्योंकि तुम विरोचन के साथ अपने हृदय में संतुष्ट होकर चले गए थे?' इन्द्र ने उत्तर दिया, 'पूज्यवर, जिस प्रकार यह (प्रतिबिंबित आत्मा) इस शरीर के अच्छी तरह से सुसज्जित होने पर अच्छी तरह से सुशोभित हो जाती है, शरीर के अच्छी तरह से सुसज्जित होने पर अच्छी तरह से सुसज्जित हो जाती है, उसी प्रकार यह (प्रतिबिंबित आत्मा) भी शरीर के अंधे होने पर अंधा हो जाता है, शरीर के एक आंख वाले होने पर एक आंख वाला हो जाता है, शरीर के अपंग होने पर अपंग हो जाता है और इस शरीर के नष्ट होने पर यह नष्ट हो जाता है। मुझे इसमें कोई भलाई नहीं दिखती।'

VIII-ix-3: 'ऐसा ही है, हे इन्द्र', प्रजापति ने कहा; 'हालाँकि, मैं तुम्हें इसे और अधिक समझाऊँगा। यहाँ और बत्तीस वर्ष रहो।' वे वहाँ और बत्तीस वर्ष रहे। तब प्रजापति ने उससे कहा:

आठ-x-1-2: प्रजापति ने कहा, 'जो स्वप्न में विचरण करता है, वही आत्मा है। वह अमर है, निर्भय है। वह ब्रह्म है।' इंद्र अपने हृदय में संतुष्ट होकर चले गए। लेकिन देवताओं के पास पहुंचने से पहले ही उन्होंने यह कठिनाई देखी: 'भले ही यह (स्वप्न-आत्मा) इस शरीर के अंधे होने पर अंधा नहीं होता है, न ही शरीर के मारे जाने पर एक-आंख वाला होता है, न ही शरीर के नाक और आंखों से बहने पर नाक और आंखें बहती हैं, फिर भी ऐसा लगता है जैसे वे इसे मार रहे हैं, जैसे वे इसका पीछा कर रहे हैं, यह दर्द के प्रति सचेत हो जाता है, और यहां तक कि रोता भी है, जैसे कि यह था। मुझे इसमें कोई अच्छाई नहीं दिखाई देती है।'

आठ-x-3-4: वह फिर से वापस आया, हाथ में ईंधन था। प्रजापति ने उनसे पूछा, 'हे इन्द्र, तुम किस इच्छा से लौटे हो, जबकि तुम अपने हृदय में संतुष्ट होकर गए थे?' उन्होंने उत्तर दिया, 'पूज्यवर, यद्यपि यह आत्मा इस शरीर के अंधे होने पर अंधा नहीं होता, न ही शरीर के एक-आंख होने पर एक-आंख वाला होता है, न ही शरीर के दोषों से पीड़ित होता है, न ही शरीर के मारे जाने पर मारा जाता है, न ही इसकी नाक और आंखें बहती हैं, फिर भी ऐसा लगता है जैसे वे इसे मार रहे हैं, मानो वे इसका पीछा कर रहे हैं, यह दर्द से सचेत हो जाता है, यहाँ तक कि मानो यह रोता भी है।

मुझे इसमें कोई अच्छाई नहीं दिखाई देती।' 'ऐसा ही है, हे इन्द्र', प्रजापति ने कहा; 'हालाँकि, मैं तुम्हें इसे और अधिक समझाऊँगा। यहाँ और बत्तीस वर्ष तक रहो।' वे वहाँ और बत्तीस वर्ष तक रहे। तब प्रजापति ने उनसे कहा: वह अमर है, निर्भय है। वह ब्रह्म है।' इन्द्र अपने हृदय में संतुष्ट होकर चला गया। लेकिन देवताओं के पास पहुँचने से पहले ही उसने यह कठिनाई देखी: 'वास्तव में यह व्यक्ति अब न तो स्वयं को जानता है कि "मैं वह हूँ" और न ही वास्तव में ये प्राणी। ऐसा लगता है कि वह विनाश को चला गया है। मुझे इसमें कोई भलाई नहीं दिखती।'

VIII-xi-2: वह फिर वापस आया, हाथ में ईंधन था। प्रजापति ने उससे पूछा, 'हे इन्द्र, जब से तुम अपने हृदय में संतुष्ट होकर चले गए हो, तब से तुम किस इच्छा से वापस आए हो?' उसने उत्तर दिया, 'पूज्य महोदय, वास्तव में यह व्यक्ति न तो स्वयं को जानता है कि "मैं वह हूँ" और न ही वास्तव में ये प्राणी। ऐसा लगता है कि वह विनाश को चला गया है। मुझे इसमें कोई भलाई नहीं दिखती।'

VIII-xi-3: ‘ऐसा ही है, हे इन्द्र’, प्रजापति ने कहा; ‘हालाँकि, मैं तुम्हें इसके बारे में और अधिक बताऊँगा और इसके अलावा कुछ नहीं। यहाँ और पाँच वर्ष रहो।’ वह वहाँ और पाँच वर्ष रहा। इससे एक सौ एक वर्ष तक इन्द्र ने प्रजापति के साथ ब्रह्मचारी ज्ञान के अनुशासित जीवन में निवास किया। तब प्रजापति ने उनसे कहा:

आठ-बारह-१: हे इन्द्र, यह शरीर नश्वर है, जो मृत्यु द्वारा धारण किया जाता है। लेकिन यह इस अमर, अशरीरी आत्मा का आधार है। वास्तव में, देहधारी आत्मा सुख और दुःख द्वारा धारण की जाती है। निश्चय ही, देहधारी के लिए सुख और दुःख का कोई अंत नहीं है। लेकिन सुख और दुःख वास्तव में अशरीरी को छूते नहीं हैं।

आठ-बारह-२-३: वायु अशरीरी है; और श्वेत बादल, बिजली, गरज, ये भी अशरीरी हैं। अब जैसे ये आकाश से निकलते हैं, सर्वोच्च प्रकाश तक पहुँचते हैं और प्रत्येक अपने-अपने रूप में प्रकट होते हैं, वैसे ही यह शांत व्यक्ति इस शरीर से निकलता है, सर्वोच्च प्रकाश तक पहुँचता है और अपने रूप में प्रकट होता है। वह वह सर्वोच्च व्यक्ति है। वहाँ वह हँसता, खेलता, स्त्रियों, वाहनों या सम्बन्धियों के साथ आनन्द मनाता हुआ विचरण करता है, इस शरीर को याद नहीं करता जिसमें वह पैदा हुआ था। जैसे पशु रथ से जुड़ा होता है, वैसे ही प्राण भी इस शरीर से जुड़ा होता है।

आठवीं-बारहवीं-4: अब, जहाँ दृष्टि आकाश (आँख के अंदर, अर्थात् आँख की काली पुतली) में विलीन हो जाती है, वहाँ वह है जो आँख में व्यक्ति है; और आँख केवल देखने के लिए है। और जो जानता है कि 'मैं यह सूँघता हूँ', वह आत्मा है; नाक सूँघने के लिए है। और जो जानता है कि 'मैं यह बोलता हूँ', वह आत्मा है, वाणी का अंग बोलने के लिए है। और जो जानता है कि 'मैं यह सुनता हूँ', वह आत्मा है; कान सुनने के लिए है।

आठवीं-बारहवीं-5: और जो जानता है कि 'मैं यह सोचता हूँ', वह आत्मा है, मन उसका दिव्य नेत्र है। इस मन की दिव्य आँख के द्वारा वह ब्रह्म-लोक में स्थित इन इच्छित वस्तुओं को देखता है और आनन्दित होता है। आठवीं-बारहवीं-छठ: 'वास्तव में, यह आत्मा है जिसकी देवता पूजा करते हैं। इसलिए सभी लोक और सभी इच्छित वस्तुएँ उनके द्वारा धारण की जाती हैं। जो उस आत्मा को (गुरु और शास्त्रों से) जानकर उसे समझता है, वह सभी लोकों और सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करता है।' इस प्रकार प्रजापति बोले - हाँ, इस प्रकार प्रजापति बोले।

आठवीं-तेरहवीं-एक: मैं अंधकार से विविध को प्राप्त करता हूँ, विविध से मैं अंधकार को प्राप्त करता हूँ। घोड़े की तरह बुराई को झटककर अपने बालों को झटककर, चंद्रमा की तरह शरीर को झटककर राहु के मुँह से खुद को मुक्त करता है, मैं सभी उद्देश्यों को पूरा करके, शाश्वत ब्रह्म-लोक को प्राप्त करता हूँ - हाँ, मैं इसे प्राप्त करता हूँ।

आठवीं-चौदहवीं-एक: वास्तव में, जिसे आकाश कहा जाता है, वह नाम और रूप को प्रकट करने वाला है। जिसके भीतर वे हैं, वह ब्रह्म है, वही अमर है, वही आत्मा है। 'मैं प्रजापति के सभा-भवन और निवास को प्राप्त करता हूँ। मैं ब्राह्मणों का गौरव हूँ, क्षत्रियों का गौरव हूँ, वैश्यों का गौरव हूँ। मैं उस गौरव को प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं गौरवों का गौरव हूँ। मैं कभी भी उस स्थान पर न जाऊँ जो लाल-सफेद और दाँतविहीन है, फिर भी भक्षण करने वाला और फिसलन भरा है - हाँ, मैं कभी भी उसके पास न जाऊँ।'

8-15-1: ब्रह्मा ने इसे प्रजापति को समझाया। प्रजापति ने मनु को और मनु ने अपने वंशजों को। जो व्यक्ति गुरु के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने के पश्चात बचे हुए समय में विधिपूर्वक वेद का पाठ करता है, जो व्यक्ति गुरु के घर से वापस आकर अपने घर में निवास करता है, स्वच्छ स्थान में वेद का अध्ययन करता है, जिसके पुत्र और शिष्य गुणवान होते हैं, जो अपनी समस्त इन्द्रियों को आत्मा में लीन कर लेता है, जो विशेष रूप से निर्दिष्ट स्थानों को छोड़कर अन्य सभी प्राणियों को कष्ट न पहुँचाने का अभ्यास करता है, जो व्यक्ति जीवन भर इसी प्रकार आचरण करता है, वह ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है और फिर वापस नहीं लौटता - हाँ, वह फिर कभी वापस नहीं लौटता।

ॐ ! मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान बनें। समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म का खंडन न करूँ, न ब्रह्म मेरा खंडन करे। किसी भी प्रकार का खंडन न हो: कम से कम मेरी ओर से तो कोई खंडन न हो।एक सौ एक वर्ष तक इन्द्र ने प्रजापति के साथ ब्रह्मचारी ज्ञान के अनुशासित जीवन में निवास किया। तब प्रजापति ने उनसे कहा:

आठ-बारह-१: हे इन्द्र, यह शरीर नश्वर है, जो मृत्यु द्वारा धारण किया जाता है। लेकिन यह इस अमर, अशरीरी आत्मा का आधार है। वास्तव में, देहधारी आत्मा सुख और दुःख द्वारा धारण की जाती है। निश्चय ही, देहधारी के लिए सुख और दुःख का कोई अंत नहीं है। लेकिन सुख और दुःख वास्तव में अशरीरी को छूते नहीं हैं।

आठ-बारह-२-३: वायु अशरीरी है; और श्वेत बादल, बिजली, गरज, ये भी अशरीरी हैं। अब जैसे ये आकाश से निकलते हैं, सर्वोच्च प्रकाश तक पहुँचते हैं और प्रत्येक अपने-अपने रूप में प्रकट होते हैं, वैसे ही यह शांत व्यक्ति इस शरीर से निकलता है, सर्वोच्च प्रकाश तक पहुँचता है और अपने रूप में प्रकट होता है। वह वह सर्वोच्च व्यक्ति है। वहाँ वह हँसता, खेलता, स्त्रियों, वाहनों या सम्बन्धियों के साथ आनन्द मनाता हुआ विचरण करता है, इस शरीर को याद नहीं करता जिसमें वह पैदा हुआ था। जैसे पशु रथ से जुड़ा होता है, वैसे ही प्राण भी इस शरीर से जुड़ा होता है।

आठवीं-बारहवीं-4: अब, जहाँ दृष्टि आकाश (आँख के अंदर, अर्थात् आँख की काली पुतली) में विलीन हो जाती है, वहाँ वह है जो आँख में व्यक्ति है; और आँख केवल देखने के लिए है। और जो जानता है कि 'मैं यह सूँघता हूँ', वह आत्मा है; नाक सूँघने के लिए है। और जो जानता है कि 'मैं यह बोलता हूँ', वह आत्मा है, वाणी का अंग बोलने के लिए है। और जो जानता है कि 'मैं यह सुनता हूँ', वह आत्मा है; कान सुनने के लिए है।

आठवीं-बारहवीं-5: और जो जानता है कि 'मैं यह सोचता हूँ', वह आत्मा है, मन उसका दिव्य नेत्र है। इस मन की दिव्य आँख के द्वारा वह ब्रह्म-लोक में स्थित इन इच्छित वस्तुओं को देखता है और आनन्दित होता है।

आठवीं-बारहवीं-छठ: 'वास्तव में, यह आत्मा है जिसकी देवता पूजा करते हैं। इसलिए सभी लोक और सभी इच्छित वस्तुएँ उनके द्वारा धारण की जाती हैं। जो उस आत्मा को (गुरु और शास्त्रों से) जानकर उसे समझता है, वह सभी लोकों और सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करता है।' इस प्रकार प्रजापति बोले - हाँ, इस प्रकार प्रजापति बोले।

आठवीं-तेरहवीं-एक: मैं अंधकार से विविध को प्राप्त करता हूँ, विविध से मैं अंधकार को प्राप्त करता हूँ। घोड़े की तरह बुराई को झटककर अपने बालों को झटककर, चंद्रमा की तरह शरीर को झटककर राहु के मुँह से खुद को मुक्त करता है, मैं सभी उद्देश्यों को पूरा करके, शाश्वत ब्रह्म-लोक को प्राप्त करता हूँ - हाँ, मैं इसे प्राप्त करता हूँ।

आठवीं-चौदहवीं-एक: वास्तव में, जिसे आकाश कहा जाता है, वह नाम और रूप को प्रकट करने वाला है। जिसके भीतर वे हैं, वह ब्रह्म है, वही अमर है, वही आत्मा है। 'मैं प्रजापति के सभा-भवन और निवास को प्राप्त करता हूँ। मैं ब्राह्मणों का गौरव हूँ, क्षत्रियों का गौरव हूँ, वैश्यों का गौरव हूँ। मैं उस

गौरव को प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं गौरवों का गौरव हूँ। मैं कभी भी उस स्थान पर न जाऊँ जो लाल-सफेद और दाँतविहीन है, फिर भी भक्षण करने वाला और फिसलन भरा है - हाँ, मैं कभी भी उसके पास न जाऊँ।'

8-15-1: ब्रह्मा ने इसे प्रजापति को समझाया। प्रजापति ने मनु को और मनु ने अपने वंशजों को। जो व्यक्ति गुरु के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने के पश्चात बचे हुए समय में विधिपूर्वक वेद का पाठ करता है, जो व्यक्ति गुरु के घर से वापस आकर अपने घर में निवास करता है, स्वच्छ स्थान पर वेद का अध्ययन करता है, जिसके पुत्र और शिष्य गुणवान होते हैं, जो अपनी समस्त इन्द्रियों को आत्मा में लीन कर लेता है, जो विशेष रूप से निर्दिष्ट स्थानों को छोड़कर अन्य सभी प्राणियों को कष्ट न पहुँचाने का अभ्यास करता है, जो व्यक्ति जीवन भर इसी प्रकार आचरण करता है, वह ब्रह्मलोक में पहुँच जाता है और फिर वापस नहीं लौटता - हाँ, वह फिर कभी वापस नहीं लौटता। ॐ ! मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों।

समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म का खंडन न करूँ, न ब्रह्म मेरा खंडन करे। किसी भी प्रकार का खंडन न हो: कम से कम मेरी ओर से तो कोई खंडन न हो।उपनिषदों में जो गुण बताए गए हैं, वे मुझमें हों, मैं आत्मा के प्रति समर्पित हूँ; वे मुझमें निवास करें। ॐ! शांति! शांति! शांति! यहाँ सामवेद में निहित छांदोग्योपनिषद समाप्त होता है।

०१० - बृहदारण्यक उपनिषद

स्वामी माधवानंद द्वारा अनुवादित

ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से ही निकलता है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह केवल अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।

ओम! शांति! शांति! शांति!

I-i-1: ओम्। बलि के घोड़े का सिर भोर है, उसकी आंख सूर्य है, उसकी प्राणशक्ति वायु है, उसका खुला हुआ मुंह वैश्वानर नामक अग्नि है, और बलि के घोड़े का शरीर वर्ष है। उसकी पीठ स्वर्ग है, उसका पेट आकाश है, उसका खुर पृथ्वी है, उसकी भुजाएँ चारों दिशाएँ हैं, उसकी पसलियाँ बीच की दिशाएँ हैं, उसके अंग ऋतुएँ हैं, उसके जोड़ महीने और पखवाड़े हैं, उसके पैर दिन और रात हैं, उसकी हड्डियाँ तारे हैं और उसका मांस बादल है। इसका आधा पचा हुआ भोजन रेत है, इसकी रक्तवाहिनियाँ नदियाँ हैं, इसका जिगर और तिल्ली पहाड़ हैं, इसके बाल जड़ी-बूटियाँ और पेड़ हैं। इसका अग्र भाग उगता हुआ सूर्य है, इसका पिछला भाग उतरता हुआ सूर्य है, इसकी जम्हाई बिजली है, इसका शरीर हिलाना गड़गड़ाहट है, इसका पानी बनाना वर्षा है, और इसका हिनहिनाना आवाज है।

I-i-2: घोड़े के सामने महिमन नामक (सोने का) बर्तन, जो उसके चारों ओर (यानी उसे इंगित करते हुए) प्रकट हुआ, वह दिन है। इसका स्रोत पूर्वी समुद्र है। घोड़े के पीछे महिमन नामक (चाँदी का) बर्तन, जो उसके चारों ओर प्रकट हुआ, वह रात है। इसका स्रोत पश्चिमी समुद्र है। ये दो महिमन नामक बर्तन घोड़े के दोनों ओर दिखाई दिए। हया के रूप में इसने देवताओं को, वाजिन के रूप में दिव्य गायकों को, अर्वाण के रूप में असुरों को और अश्व के रूप में पुरुषों को ले जाया। परम आत्मा इसका स्थिर है और परम आत्मा (या समुद्र) इसका स्रोत है।

I-ii-1: यहाँ शुरू में कुछ भी नहीं था। यह केवल मृत्यु (हिरण्यगर्भ) या भूख से ढका हुआ था, क्योंकि भूख मृत्यु है। उसने मन बनाया, यह सोचकर कि 'मुझे मन चाहिए'। वह (स्वयं) पूजा करते हुए घूमता था। जब वह पूजा कर रहा था, तो पानी उत्पन्न हुआ। (चूँकि उसने सोचा), 'जब मैं पूजा कर रहा था, तो पानी उग आया', इसलिए अर्का (अग्नि) कहा जाता है। पानी (या खुशी) निश्चित रूप से उस व्यक्ति को मिलती है जो जानता है कि अर्का (अग्नि) को अर्का का यह नाम कैसे मिला।

I-ii-2: पानी अर्का है। जो कुछ भी पानी पर था, वह जम गया और यह पृथ्वी बन गई। जब वह उत्पन्न हुआ, तो वह थक गया। जब वह (इस प्रकार)

थका हुआ और परेशान था, तो उसका सार, या चमक, सामने आई। यह अग्नि थी

I-ii-3: उन्होंने (विराज ने) अपने को तीन प्रकार से विभेदित किया, सूर्य को तीसरा रूप बनाया, और वायु को तीसरा रूप बनाया। इस प्रकार, यह प्राण (विराज) तीन प्रकार से विभाजित है। उसका सिर पूर्व है, और उसकी भुजाएँ वह (उत्तर-पूर्व) और वह (दक्षिण-पूर्व) हैं। और उसका पिछला भाग पश्चिम है, उसकी कूल्हे की हड्डियाँ वह (उत्तर-पश्चिम) और वह (दक्षिण-पश्चिम), उसकी भुजाएँ दक्षिण और उत्तर, उसकी पीठ स्वर्ग, उसका पेट आकाश और उसकी छाती यह पृथ्वी है। वह जल पर विश्राम करता है। जो इस प्रकार (इसे) जानता है, वह जहाँ भी जाता है, वहाँ विश्राम पाता है।

I-ii-4: उसने चाहा, 'मुझे दूसरा रूप (शरीर) मिले।' उसने, मृत्यु या भूख ने, वाणी (वेदों) का मन के साथ मिलन कराया। वहाँ जो बीज था, वह वर्ष (विराज) बन गया। उसके पहले कोई वर्ष नहीं था। उसने (मृत्यु ने) उसे एक वर्ष तक पाला, और इस अवधि के बाद उसे प्रक्षेपित किया। जब वह पैदा हुआ, (मृत्यु ने) अपना मुख खोला (उसे निगलने के लिए)। वह (शिशु) चिल्लाया 'भान!' वह वाणी बन गया।

I-ii-5: उसने सोचा, 'यदि मैं इसे मार दूँगा, तो मैं बहुत कम भोजन बनाऊँगा।' उस वाणी और मन के द्वारा उसने यह सब प्रक्षेपित किया, जो कुछ भी था - वेद ऋग्, यजु और सामन, छंद, यज्ञ, मनुष्य और पशु। उसने जो कुछ भी प्रक्षेपित किया, उसे खाने का संकल्प किया। क्योंकि वह सब कुछ खाता है, इसलिए अदिति (मृत्यु) ऐसा कहा जाता है। जो जानता है कि अदिति का यह नाम अदिति कैसे पड़ा, वह इन सबका भक्षक बन जाता है, और सब कुछ उसका भोजन बन जाता है।

I-ii-6: उसने चाहा, 'मैं फिर से महान यज्ञ के साथ बलिदान करूँ'। वह थक गया था, और वह व्यथित था।जब वह (इस प्रकार) थक गया और व्यथित था, तो उसकी प्रतिष्ठा और शक्ति चली गई। इन्द्रियाँ प्रतिष्ठा और शक्ति हैं। जब इन्द्रियाँ चली गईं, तो शरीर फूलने लगा, (लेकिन) उसका मन शरीर पर लगा रहा।

I-ii-7: उन्होंने इच्छा की, 'मेरा यह शरीर यज्ञ के योग्य हो, और मैं इसके द्वारा देहधारी हो जाऊँ',(और उसमें प्रवेश किया)। चूँकि शरीर फूल गया (अश्वत), इसलिए इसे अश्व (घोड़ा) कहा जाने लगा। और चूँकि यह यज्ञ के योग्य हो गया, इसलिए अश्वमेध नाम से अश्वमेध नाम से जाना जाने लगा। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह अश्वमेध को अवश्य जानता है।

(स्वयं को घोड़ा मानकर) उसे स्वतंत्र छोड़ कर, उसने (उस पर) विचार किया। एक वर्ष के बाद उसने इसे अपने लिए बलिदान कर दिया, और (अन्य) जानवरों को देवताओं को भेज दिया। इसलिए (आज तक के पुजारी) सभी देवताओं को समर्पित पवित्र (घोड़े) को प्रजापति को बलि चढ़ाते हैं।

वह जो वहाँ चमकता है, वह अश्वमेध है; उसका शरीर वर्ष है। यह अग्नि अर्क है; इसके अंग ये लोक हैं। इसलिए ये दोनों (अग्नि और सूर्य) अर्क और अश्वमेध हैं। ये दोनों फिर से एक ही देवता, मृत्यु बन जाते हैं। जो ऐसा जानता है, वह आगे की मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है, मृत्यु उसे पकड़ नहीं पाती, वह उसकी आत्मा बन जाती है, और वह इन देवताओं के साथ एक हो जाता है।

I-iii-1: प्रजापति के पुत्रों की दो श्रेणियाँ थीं, देवता और असुर। स्वाभाविक रूप से, देवता कम थे, और असुर अधिक संख्या में थे। वे इन लोकों पर आधिपत्य के लिए एक-दूसरे से होड़ करने लगे। देवताओं ने कहा, 'अब हम उद्गीथ के द्वारा इस यज्ञ में असुरों से आगे निकल जाएं।'

I-iii-2: उन्होंने वाणी के अंग से कहा, 'हमारे लिए (उद्गीथ) का जाप करो'। 'ठीक है', वाणी के अंग ने कहा और उनके लिए जाप किया। वाणी के अंग से जो सामान्य लाभ होता है, उसे उसने जाप करके देवताओं के लिए सुरक्षित कर लिया, जबकि उत्तम वाणी का उसने अपने लिए उपयोग किया। असुरों को पता था कि इस जाप करने वाले के माध्यम से देवता उनसे आगे निकल जाएंगे। उन्होंने उस पर आरोप लगाया और उस पर बुराई से प्रहार किया। वह बुराई वह है जिसका सामना हम तब करते हैं जब कोई अनुचित बातें बोलता है।

I-iii-3: फिर उन्होंने नाक से कहा, 'हमारे लिए (उद्गीथ) का जाप करो'। 'ठीक है', नाक ने कहा और उनके लिए जाप किया। नाक से जो सामान्य लाभ होता है, उसे उसने जाप करके देवताओं के लिए सुरक्षित कर लिया, जबकि उत्तम सूँघने वाले का उसने अपने लिए उपयोग किया। असुरों को पता था कि इस मंत्र के माध्यम से देवता उनसे आगे निकल जाएंगे।
उन्होंने इसे चार्ज किया और इस पर बुराई से प्रहार किया। वह बुराई वह है जो हमें तब मिलती है जब कोई अनुचित चीजों को देखता है।

I-iii-4: फिर उन्होंने आंख से कहा 'हमारे लिए (उद्गीता) जपो'। 'ठीक है', आंख ने कहा और उनके लिए जप किया। आंख से जो सामान्य भलाई होती है, वह जप करके देवताओं के लिए सुरक्षित हो जाती है, जबकि ठीक इसे

अपने लिए उपयोग करता है। असुरों को पता था कि इस मंत्र के माध्यम से देवता उनसे आगे निकल जाएंगे।उन्होंने इसे चार्ज किया और इस पर बुराई से प्रहार किया। वह बुराई वह है जो हमें तब मिलती है जब कोई अनुचित चीजों को देखता है।

I-iii-5: फिर उन्होंने कान से कहा 'हमारे लिए (उद्गीता) जपो'। 'ठीक है', कान ने कहा और उनके लिए जप किया। कान से जो सामान्य भलाई होती है, वह जप करके देवताओं के लिए सुरक्षित हो जाती है, जबकि ठीक इसे अपने लिए उपयोग करता है।

इसे सुनकर उसने अपने लिए उपयोग किया। असुरों को पता था कि इस मंत्र के माध्यम से देवता उनसे आगे निकल जाएंगे। उन्होंने इसे आरोपित किया और इस पर बुराई से प्रहार किया। वह बुराई वह है जो हमें तब मिलती है जब कोई अनुचित बातें सुनता है।

I-iii-6: फिर उन्होंने मन से कहा 'हमारे लिए (उद्गीता) जपो'। 'ठीक है', मन ने कहा और उनके लिए जप किया। मन से जो सामान्य अच्छाई आती है, उसे उसने जप के द्वारा देवताओं के लिए सुरक्षित किया, जबकि उसने अपने लिए अच्छे विचारों का उपयोग किया।

असुरों को पता था कि इस मंत्र के माध्यम से देवता उनसे आगे निकल जाएंगे। उन्होंने इसे आरोपित किया और इस पर बुराई से प्रहार किया। वह बुराई वह है जो हमें तब मिलती है जब कोई अनुचित बातें सोचता है। इसी तरह उन्होंने इन (अन्य) देवताओं को भी बुराई से छुआ - उन पर बुराई से प्रहार किया।

I-iii-7: फिर उन्होंने मुंह में इस महत्वपूर्ण शक्ति से कहा, 'हमारे लिए (उद्गीता) जपो'। 'ठीक है', महत्वपूर्ण शक्ति ने कहा और उनके लिए जप किया। असुरों को पता था कि इस मंत्र के माध्यम से देवता उनसे आगे निकल जाएंगे। उन्होंने इस पर आक्रमण किया और इस पर बुराई से प्रहार करना चाहा। लेकिन जैसे मिट्टी का ढेला चट्टान से टकराकर चकनाचूर हो जाता है, वैसे ही वे भी चकनाचूर हो गए, चारों ओर उछले और नष्ट हो गए। इसलिए देवता (अग्नि) बन गए और असुर चूर-चूर हो गए। जो इस प्रकार जानता है, वह अपना सच्चा स्वरूप बन जाता है और उसका ईर्ष्यालु सम्बन्धी चूर-चूर हो जाता है।

I-iii-8: उन्होंने कहा, 'वह कहाँ था जिसने हमें (हमारे देवत्व को) इस प्रकार पुनःस्थापित किया है?' (और पाया): 'यहाँ वह मुख के भीतर है'। प्राणशक्ति को अयस्य अंगिरस कहा जाता है, क्योंकि यह अंगों (शरीर के) का सार है।

I-iii-9: इस देवता को दुर कहा जाता है, क्योंकि मृत्यु इससे दूर है। जो इस प्रकार जानता है, उससे मृत्यु दूर है।

I-iii-10: इस देवता ने इन देवताओं की बुराई, मृत्यु को दूर कर दिया और उसे वहाँ ले गया जहाँ ये दिशाएँ समाप्त होती हैं।वहाँ इसने उनकी बुराइयों को छोड़ दिया। इसलिए किसी व्यक्ति (उस क्षेत्र के) के पास नहीं जाना चाहिए, न ही उस सीमा के पार उस क्षेत्र में जाना चाहिए, नहीं तो वह उस बुराई, मृत्यु को ग्रहण कर लेगा।

I-iii-11: यह देवता इन देवताओं की बुराई, मृत्यु को दूर करने के बाद, उन्हें मृत्यु से परे ले गया।

I-iii-12: इसने सबसे पहले वाणी की इंद्रिय को उठाया। जब वाणी की इंद्रिय मृत्यु से मुक्त हो गई, तो वह अग्नि बन गई। वह अग्नि, मृत्यु को पार कर गई, उसकी पहुंच से परे चमकती है।

I-iii-13: फिर इसने नाक को उठाया। जब इसने मृत्यु से मुक्ति पाई, तो यह वायु बन गई। वह वायु, मृत्यु को पार कर गई, उसकी पहुंच से परे बहती है।

I-iii-14: फिर इसने आंख को उठाया। जब आंख मृत्यु से मुक्त हो गई, तो वह सूर्य बन गई। वह सूर्य, मृत्यु को पार कर गया, उसकी पहुंच से परे चमकता है।

I-iii-15: फिर इसने कान को उठाया। जब कान मृत्यु से मुक्त हो गया, तो वह दिशाएं बन गया। वे दिशाएं, मृत्यु को पार कर गई, उसकी पहुंच से परे रहती हैं।

I-iii-16: फिर इसने मन को ले लिया। जब मन मृत्यु से मुक्त हो गया, तो यह चंद्रमा बन गया। वह चंद्रमा मृत्यु को पार करके, उसकी पहुंच से परे चमकता है। इसी प्रकार यह देवता उस व्यक्ति को ले जाता है जो इस प्रकार जानता है।

I-iii-17: फिर इसने जप करके अपने लिए खाने योग्य भोजन सुरक्षित किया, क्योंकि जो भी भोजन खाया जाता है, वह केवल प्राण द्वारा खाया जाता है, और वह उसी पर टिका रहता है।

I-iii-18: देवताओं ने कहा, 'जो भी भोजन है, वह बस इतना ही है, और तुमने जप करके इसे अपने लिए सुरक्षित कर लिया है। अब इस भोजन में हम भी हिस्सा लें।' 'तो मेरे सामने बैठो', (प्राण शक्ति ने कहा)। 'ठीक है', (देवताओं ने कहा और) उसके चारों ओर बैठ गए। इसलिए जो भी भोजन प्राण द्वारा खाया जाता है, वह इन सभी को तृप्त करता है। इसी प्रकार उसके रिश्तेदार उसके सामने बैठते हैं जो इस प्रकार जानता है, और वह उनका सहारा बन जाता है, उनमें सबसे बड़ा और उनका नेता, अच्छा भोजन करने वाला और उनका शासक बन जाता है।

जो अपने सम्बन्धियों में से ऐसे ज्ञानी पुरुष से प्रतिद्वन्द्विता करना चाहता है, वह अपने आश्रितों का भरण-पोषण करने में असमर्थ है। किन्तु जो उसका अनुसरण करता है, अथवा अपने आश्रितों को उसके अधीन रखना चाहता है, वही उनका भरण-पोषण करने में समर्थ है।

I-iii-19: इसे अयस्य अंगिरस कहते हैं, क्योंकि यह (शरीर के) अंगों का सार है। प्राणशक्ति वास्तव में अंगों का सार है। निःसंदेह यह उनका सार है। (उदाहरणार्थ) जिस अंग से प्राणशक्ति निकल जाती है, वहीं वह सूख जाती है। अतः निःसंदेह यह अंगों का सार है। I-iii-20: यह भी बृहस्पति (ऋक् का स्वामी) है। वाणी वास्तव में बृहति (ऋक्) है और यह उसका स्वामी है। अतः यह भी बृहस्पति है।

I-iii-21: यही ब्रह्मणस्पति (यजुओं का स्वामी) भी है। वाणी ही ब्रह्म (यजु) है, और यही उसका स्वामी है। इसलिए यह भी ब्रह्मणस्पति है।

I-iii-22: यही भी सामन है। वाणी ही सा है, और यही अमा है। क्योंकि यह सा (वाणी) और अमा (प्राणशक्ति) है, इसलिए इसे सामन कहते हैं। या क्योंकि यह सफेद चींटी के बराबर है, मच्छर के बराबर है, हाथी के बराबर है, इन तीनों लोकों के बराबर है, इस ब्रह्मांड के बराबर है, इसलिए यह भी सामन है। जो इस सामन (प्राणशक्ति) को ऐसा जानता है, वह इसके साथ एकता प्राप्त करता है, या इसके समान ही लोक में रहता है।

I-iii-23: यह भी उद्गीथ है। प्राणशक्ति ही उत् है, क्योंकि यह सब प्राणशक्ति द्वारा ही ऊपर उठाया जाता है, और वाणी ही गीता है। यह उद्गीथ है, क्योंकि यह उत् और गीता है।

I-iii-24: इस संबंध में एक कथा यह भी है कि चिक्तिना के प्रपौत्र ब्रह्मदत्त ने सोम पीते हुए कहा, 'यदि मैं कहूं कि अयस्य अंगिरस ने इस (प्राणशक्ति और वाणी) के अतिरिक्त किसी अन्य के द्वारा उद्गीथ का जप किया है, तो यह सोम मेरे सिर से काट डाले।' वास्तव में उन्होंने वाणी और प्राणशक्ति के द्वारा जप किया था।

I-iii-25: जो इस सामन (प्राणशक्ति) के धन को जानता है, वह धन प्राप्त करता है। स्वर ही उसका धन है। इसलिए जो व्यक्ति पुरोहित के रूप में कार्य करने जा रहा है, उसे अपनी वाणी में एक समृद्ध स्वर की इच्छा करनी चाहिए, और उसे उस वाणी के माध्यम से अपने पुरोहितीय कर्तव्यों को एक अच्छे स्वर के साथ करना चाहिए। इसलिए एक यज्ञ में लोग एक अच्छे स्वर वाले पुजारी को देखना चाहते हैं, जैसे कि धनवान व्यक्ति। जो व्यक्ति सामन के धन को जानता है, वह धन प्राप्त करता है।

I-iii-26: जो व्यक्ति इस सामन (प्राणशक्ति) के सोने को जानता है, वह सोना प्राप्त करता है। स्वर ही उसका सोना है। जो व्यक्ति समान के स्वर्ण को ऐसा जानता है, वह स्वर्ण प्राप्त करता है।

I-iii-27: जो व्यक्ति इस समान (प्राणशक्ति) के आधार को जानता है, उसे विश्राम मिलता है। वाणी (शरीर के कुछ अंग) ही इसका आधार है। क्योंकि वाणी पर ही इस प्रकार जपा गया प्राण है। कुछ लोग कहते हैं, अन्न (शरीर) पर ही स्थित है।

I-iii-28: अतः अब केवल पवमान नामक स्तोत्रों का ही शिक्षाप्रद जप (अध्यारोहण) है। प्रस्तोतिर नामक पुजारी ही समान का पाठ करता है। जब वह इसका पाठ करता है, तो इन मंत्रों को दोहराया जाना चाहिए:बुराई से मुझे अच्छाई की ओर ले चलो। अंधकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से मुझे अमरता की ओर ले चलो। जब मंत्र कहता है, 'बुराई से मुझे अच्छाई की ओर ले चलो', तो 'बुराई' का अर्थ मृत्यु है, और 'अच्छाई' का अर्थ अमरता है; इसलिए यह कहता है, 'मृत्यु से मुझे अमरता की ओर ले चलो, अर्थात मुझे अमर बना दो'।

जब यह कहा जाता है कि, 'अंधकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो', तो 'अंधकार' का अर्थ मृत्यु है और 'प्रकाश' का अर्थ अमरता है; इसलिए यह कहा जाता है कि, 'मृत्यु से मुझे अमरता की ओर ले चलो, या मुझे अमर बना दो'। 'मृत्यु से मुझे अमरता की ओर ले चलो' उक्ति में अर्थ छिपा हुआ नहीं लगता। फिर शेष स्तोत्रों के द्वारा (जप करने वाले को) जप करके अपने लिए खाने योग्य भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। इसलिए, जब वे जप किए जा रहे हों, तो यज्ञकर्ता को वर मांगना चाहिए - जो भी वह चाहता हो।

इस ज्ञान से युक्त यह जप करने वाला व्यक्ति अपने लिए या यज्ञ करने वाले के लिए जो भी वस्तुएँ चाहता है, वह जप करके उन्हें प्राप्त कर लेता है। यह (ध्यान) निश्चित रूप से संसार (हिरण्यगर्भ) को जीत लेता है। जो समान (प्राणशक्ति) को इस प्रकार जानता है, उसे यह प्रार्थना नहीं करनी चाहिए कि वह इस संसार के लिए अयोग्य न हो जाए।

I-iv-1: प्रारंभ में, यह (ब्रह्मांड) केवल मानव रूप का आत्म (विरज) था। उसने चिंतन किया और अपने अलावा कुछ नहीं पाया। उन्होंने सबसे पहले कहा, 'मैं हूँ' इसलिए उन्हें अहम् (मैं) कहा गया। इसलिए आज भी जब किसी व्यक्ति को संबोधित किया जाता है, तो वह पहले कहता है, 'यह मैं हूँ' और फिर दूसरा नाम कहता है जो उसका हो सकता है। क्योंकि वे पहले थे और इस पूरे (आकांक्षियों के समूह) से पहले सभी बुराइयों को जला दिया, इसलिए उन्हें पुरुष कहा जाता है। जो ऐसा जानता है वह वास्तव में उस व्यक्ति को जला देता है जो उसके सामने (विराज) होना चाहता है।

I-iv-2: वह डरता था। इसलिए लोग (अभी भी) अकेले रहने से डरते हैं। उसने सोचा, 'अगर मेरे अलावा और कुछ नहीं है, तो मुझे किस बात का डर है?' बस उसी से उसका डर दूर हो गया, क्योंकि डरने की क्या बात थी? यह दूसरी इकाई है जो डर पैदा करती है।

I-iv-3: वह बिल्कुल खुश नहीं था। इसलिए लोग (अभी भी) अकेले होने पर खुश नहीं हैं। उसने एक साथी की इच्छा की। वह एक-दूसरे को गले लगाते हुए पति और पत्नी की तरह बड़ा हो गया। उसने इस शरीर को दो भागों में विभाजित किया। उससे पति और पत्नी पैदा हुए। इसलिए याज्ञवल्क्य ने कहा, यह (शरीर) स्वयं का आधा भाग है, जैसे मटर के दो भागों में से एक। इसलिए यह स्थान वास्तव में पत्नी द्वारा भरा हुआ है। वह उसके साथ एक था उसी से मनुष्य उत्पन्न हुए।

I-iv-4: उसने सोचा, 'वह मुझे स्वयं से उत्पन्न करके मुझसे कैसे एक हो सकता है? अच्छा, मैं स्वयं को छिपा लूं'। वह गाय बन गई, दूसरा बैल बन गया और उससे एक हो गया; उससे गायें पैदा हुईं। एक घोड़ी बनी, दूसरी घोड़ा; एक गधी बनी, दूसरी गधा बनी और उससे एक हो गया; उससे एक खुर वाले पशु उत्पन्न हुए। एक बकरी बनी, दूसरी बकरा; एक भेड़ बनी, दूसरी मेढ़ा बनी और उससे एक हो गया; उससे बकरियाँ और भेड़ें पैदा हुईं। इस प्रकार उसने जोड़े में रहने वाली हर चीज़ को, चींटियों तक को प्रक्षेपित किया।

I-iv-5: उसने जाना, 'मैं ही सृष्टि हूँ, क्योंकि मैंने यह सब प्रक्षेपित किया है'। इसलिए उसे सृष्टि कहा गया।जो इसे इस रूप में जानता है, वह विराज की इस सृष्टि में (सृष्टिकर्ता) बन जाता है।

I-iv-6: फिर उन्होंने इस प्रकार आगे-पीछे रगड़ा, और उसके स्रोत, मुख और हाथों से अग्नि उत्पन्न की। इसलिए ये दोनों अंदर से बाल रहित हैं। जब वे विशेष देवताओं की बात करते हैं, तो कहते हैं, 'उसे बलि दो', 'दूसरे को बलि दो', (वे गलत हैं, क्योंकि) ये सब उसके प्रक्षेपण हैं, क्योंकि वह सभी देवता हैं। अब यह सब जो तरल है, उसने बीज से उत्पन्न किया। वह सोम है। यह ब्रह्मांड वास्तव में इतना ही है - भोजन और भोजन का भक्षक। सोम भोजन है, और अग्नि भोजन का भक्षक है। यह विराज की अति-सृजन है कि उसने देवताओं को प्रक्षेपित किया, जो उससे भी श्रेष्ठ हैं। क्योंकि उसने, यद्यपि स्वयं नश्वर है, अमर को प्रक्षेपित किया, इसलिए यह एक अति-सृजन है। जो इसे इस रूप में जानता है वह विराज की इस अति-सृजन में (एक निर्माता) बन जाता है।

I-iv-7: यह (ब्रह्मांड) तब अविभाज्य था। वह केवल नाम और रूप में भेदित था - उसे ऐसा-ऐसा कहा जाता था, और वह ऐसे-ऐसे रूप का था। इसलिए आज तक वह केवल नाम और रूप में भेदित है - उसे ऐसा-ऐसा कहा जाता है, और वह ऐसे-ऐसे रूप का है। यह आत्मा इन शरीरों में कीलों की नोक तक प्रविष्ट है - जैसे उस्तरा उसकी म्यान में रखा जा सकता है, या अग्नि जो जगत को धारण करती है, उसके स्रोत में हो सकती है। लोग उसे नहीं देखते, क्योंकि (उसके पहलुओं में देखा जाए तो) वह अपूर्ण है। जब वह जीवन का कार्य करता है। उसे प्राणशक्ति कहते हैं; जब वह बोलता है, तो वाणी का अंग; जब वह देखता है, तो आंख; जब वह सुनता है, तो कान; और जब वह सोचता है, तो मन। ये केवल कार्यों के अनुसार उसके नाम हैं। जो इस समग्रता के प्रत्येक पहलू का ध्यान करता है, वह नहीं जानता, क्योंकि वह एक ही विशेषता रखने के कारण इस समग्रता से (विभाजित)

अपूर्ण है। केवल आत्मा का ही ध्यान करना है, क्योंकि ये सभी उसमें एकीकृत हैं। इन सबमें से इस आत्मा को जानना चाहिए, क्योंकि यह सब कुछ इसी के द्वारा जाना जाता है, जैसे कोई प्राणी अपने पैरों के निशानों के द्वारा जान सकता है। जो इसे इस रूप में जानता है, वह यश और सम्बन्धी (सम्बन्धियों के साथ) प्राप्त करता है।

1-4-8: यह आत्मा पुत्र से भी अधिक प्रिय है, धन से भी अधिक प्रिय है, अन्य सब वस्तुओं से भी अधिक प्रिय है, तथा अन्तर्यामी है। यदि कोई व्यक्ति (आत्मा को प्रिय मानते हुए) आत्मा से अधिक प्रिय कहने वाले से कहे कि 'जो तुम्हें प्रिय है, वह मर जाएगा' – तो वह ऐसा कहने में अवश्य समर्थ है – यह अवश्य ही सत्य होगा। उसे आत्मा को ही प्रिय मानना चाहिए। जो आत्मा को ही प्रिय मानता है, उसके प्रिय प्राणी नाशवान नहीं होते।

1-4-9: वे कहते हैं: मनुष्य सोचते हैं कि, 'ब्रह्मज्ञान से हम सब हो जायेंगे'। अच्छा, उस ब्रह्म ने क्या जाना, जिससे वह सब हो गया?

1-4-10: यह (आत्मा) वास्तव में आदि में ब्रह्म ही था। वह केवल अपने को ही 'मैं ब्रह्म हूँ' के रूप में जानता था। इसलिए वह सब कुछ हो गया। और देवताओं में जिसने भी उसे जाना, वह भी 'वह' हो गया; और यही बात ऋषियों और मनुष्यों के साथ भी हुई। वामदेव ऋषि ने इस 'वह' को 'मैं मनु हूँ' के रूप में जानते हुए भी जाना, और आज भी जो कोई इस 'मैं ब्रह्म हूँ' के रूप में जानता है, वह यह सब (ब्रह्माण्ड) हो जाता है। देवता भी उस पर विजय नहीं पा सकते, क्योंकि वह उनका 'स्व' हो जाता है। जबकि जो 'वह एक है और मैं दूसरा हूँ' यह सोचकर दूसरे देवता की पूजा करता है, वह नहीं जानता। वह देवताओं के लिए पशु के समान है। जैसे अनेक पशु एक मनुष्य की सेवा करते हैं, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य देवताओं की सेवा करता है। यदि एक पशु भी छीन लिया जाए, तो भी वह दुःख देता है, फिर अनेक पशुओं की तो बात ही क्या? इसलिए मनुष्यों को यह जानना अच्छा नहीं लगता।

I-iv-11: प्रारम्भ में यह (क्षत्रिय और अन्य जातियाँ) वास्तव में ब्रह्म ही थीं, एक ही थीं। एक होने के कारण उनका विकास नहीं हुआ। उन्होंने विशेष रूप से एक उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया, क्षत्रिय - जो देवताओं में क्षत्रिय हैं: इंद्र, वरुण, चंद्रमा, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु और इसान। इसलिए क्षत्रिय से बड़ा कोई नहीं है। इसलिए ब्राह्मण क्षत्रिय की पूजा एक दृष्टि से करते हैं।राजसूय यज्ञ में निम्न स्थान। वह क्षत्रिय को वह गौरव प्रदान करता है।

ब्राह्मण क्षत्रिय का स्रोत है। इसलिए, यद्यपि राजा (यज्ञ में) सर्वोच्चता प्राप्त करता है, लेकिन इसके अंत में वह अपने स्रोत, ब्राह्मण का सहारा लेता है। जो ब्राह्मण का अपमान करता है, वह अपने स्रोत पर ही प्रहार करता है। वह अधिक दुष्ट बन जाता है, जैसा कि अपने से श्रेष्ठ का अपमान करने वाला होता है।

I-iv-12: फिर भी वह फला-फूला नहीं। उसने वैश्य को प्रक्षेपित किया - देवताओं की वे प्रजातियाँ जिन्हें समूहों में नामित किया गया है: वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव और मरुत।

I-iv-13: वह फिर भी फला-फूला नहीं। उसने शूद्र जाति - पूसन को प्रक्षेपित किया। यह (पृथ्वी) पूसन है। क्योंकि यह इस सब का पोषण करती है।

I-iv-14: फिर भी वह फला-फूला नहीं। उसने विशेष रूप से उस उत्कृष्ट रूप, धर्म को प्रक्षेपित किया। यह धर्म ही क्षत्रिय का नियंत्रक है। इसलिए उससे बढ़कर कुछ नहीं है। (इसलिए) कमजोर आदमी भी राजा के साथ संघर्ष करने वाले के रूप में धर्म के द्वारा बलवान आदमी को हराने की आशा करता है। वह धर्म, राजा के साथ संघर्ष करने वाले के रूप में। वह धर्म ही वास्तव में सत्य है।

इसलिए वे सत्य बोलने वाले व्यक्ति के बारे में कहते हैं, 'वह धर्म की बात करता है', या धर्म की बात करने वाले व्यक्ति के बारे में कहते हैं, 'वह सत्य की बात करता है', क्योंकि ये दोनों ही धर्म हैं।

I-IV-15: (इसलिए) ये (चार जातियाँ प्रक्षेपित की गईं) - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वह देवताओं के बीच ब्राह्मण बन गया, और मनुष्यों के बीच ब्राह्मण बन गया। (वह) (दिव्य) क्षत्रियों के माध्यम से क्षत्रिय बन गया, (दिव्य) वैश्यों के माध्यम से वैश्य और (दिव्य) शूद्र के माध्यम से शूद्र बन गया। इसलिए लोग देवताओं के बीच अग्नि के द्वारा तथा मनुष्यों के बीच ब्राह्मण के रूप में अपने अनुष्ठानों का फल प्राप्त करना चाहते हैं। क्योंकि ब्रह्म इन दो रूपों में था।

फिर भी, यदि कोई अपने लोक (आत्मा) को जाने बिना इस लोक से चला जाता है, तो वह अज्ञात होने के कारण उसकी रक्षा नहीं करता - जैसे बिना पढ़े हुए वेद या बिना किए हुए कोई अन्य कार्य भी उसकी रक्षा नहीं करते। जो मनुष्य उसे इस रूप में नहीं जानता, वह यदि इस लोक में बहुत से पुण्य कर्म भी करता है, तो भी उसके वे कर्म अंत में अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

मनुष्य को केवल आत्मा के लोक का ही ध्यान करना चाहिए। जो केवल आत्मा नामक लोक का ही ध्यान करता है, उसका कर्म कभी नष्ट नहीं होता। इसी आत्मा से वह जो चाहता है, प्रक्षेपित करता है।

I-iv-16: अब यह आत्मा (अज्ञानी मनुष्य) सभी प्राणियों के लिए भोग की वस्तु है। वह अग्नि में आहुति देता है तथा यज्ञ करता है, इसी से वह देवताओं के लिए भोग की वस्तु बन जाता है। वह वेदों का अध्ययन करता है, इस प्रकार वह ऋषियों के लिए भोग की वस्तु बन जाता है। वह पितरों को अर्पण करता है और संतान की कामना करता है, इस प्रकार वह पितरों के लिए भोग की वस्तु बन जाता है।

वह मनुष्यों को भोजन के साथ-साथ आश्रय भी देता है, इस प्रकार वह मनुष्यों के लिए भोग की वस्तु बन जाता है। वह पशुओं को चारा और पानी देता है, इस प्रकार वह पालने के लिए भोग की वस्तु बन जाता है। और पशु-पक्षी, और यहाँ तक कि चींटियाँ भी उसके घर में चरती हैं, इस प्रकार वह उनके लिए भोग की वस्तु बन जाता है। जैसे कोई अपने शरीर की सुरक्षा चाहता है, वैसे ही सभी प्राणी उस व्यक्ति की सुरक्षा चाहते हैं जो इसे इस रूप में जानता है। यह वास्तव में जाना जा चुका है, और इस पर चर्चा की गई है।

I-iv-17: यह (वांछित वस्तुओं का समूह) प्रारंभ में केवल आत्मा था - एकमात्र इकाई। उसने चाहा, 'मुझे एक पत्नी मिले, ताकि मैं (बच्चे के रूप में) जन्म ले सकूं। और मुझे धन मिले, ताकि मैं अनुष्ठान कर सकूं।' वास्तव में कामना की सीमा इतनी ही है। चाहे तो भी इससे अधिक नहीं मिल सकता। इसलिए आज तक अविवाहित मनुष्य यही कामना करता है कि 'मुझे पत्नी मिले, ताकि मैं जन्म ले सकूँ। और मुझे धन मिले, ताकि मैं कर्म कर सकूँ।' जब तक वह इनमें से प्रत्येक को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक वह अपने को अपूर्ण मानता है।

उसकी पूर्णता भी इस प्रकार है: मन ही उसका स्वरूप है, वाणी ही उसकी पत्नी है, प्राण ही उसकी संतान है, आँख ही उसका मानवीय धन है, क्योंकि वह उसे आँख से प्राप्त करता है, कान ही उसका दैवी धन है, क्योंकि वह उसे कान से सुनता है, और शरीर ही उसका अनुष्ठान है, क्योंकि वह शरीर से अनुष्ठान करता है। इस यज्ञ के पाँच कारण हैं - पशुओं के पाँच कारण हैं, मनुष्यों के पाँच कारण हैं, और यह जो कुछ भी है, उसके पाँच कारण हैं। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह यह सब प्राप्त करता है। पिता ने ध्यान और

अनुष्ठान द्वारा सात प्रकार के भोजन उत्पन्न किए (मैं बताऊँगा)। एक तो सभी खाने वालों में समान है।

दो उसने देवताओं को बांटे। तीन उसने अपने लिए बनाए। और एक उसने जानवरों को दिया। इस पर सब कुछ टिका हुआ है - क्या जीवित है और क्या नहीं। वे क्यों नहीं थकते, हालाँकि वे हमेशा खाए जा रहे हैं? जो उनके स्थायित्व के इस कारण को जानता है, वह भोजन को बिना किसी परेशानी के खाता है।प्रतिका (श्रेष्ठता)। वह देवताओं को प्राप्त करता है और अमृत पर रहता है। ये श्लोक हैं।

I-v-2: 'पिता ने ध्यान और अनुष्ठान के माध्यम से सात प्रकार के भोजन उत्पन्न किए' इसका अर्थ है कि पिता ने वास्तव में उन्हें ध्यान और अनुष्ठान के माध्यम से उत्पन्न किया। 'एक सभी खाने वालों के लिए आम है' इसका मतलब है, यह खाया जाने वाला भोजन सभी खाने वालों का सामान्य भोजन है। जो इस भोजन की पूजा करता है (एकाधिकार करता है) वह कभी भी बुराई से मुक्त नहीं होता है, क्योंकि यह सामान्य भोजन है। 'दो उसने देवताओं को बांटे' का अर्थ है अग्नि में आहुति देना, और देवताओं को अन्यथा भेंट देना। इसलिए लोग ये दोनों करते हैं।

हालांकि, कुछ लोग कहते हैं, ये दो अमावस्या और पूर्णिमा के यज्ञ हैं। इसलिए किसी को भौतिक उद्देश्यों के लिए बलिदानों में तल्लीन नहीं होना चाहिए। 'एक उसने जानवरों को दिया' - यह दूध है। क्योंकि मनुष्य और जानवर पहले दूध पर ही जीवित रहते हैं। इसलिए वे पहले नवजात शिशु को घी चटवाते हैं या उसे दूध पिलाते हैं। और वे नवजात बछड़े के बारे में कहते हैं कि वह अभी घास नहीं खाता। 'उस पर सब कुछ टिका है - क्या जीवित है और क्या नहीं' इसका अर्थ है कि दूध पर वास्तव में वह सब टिका है जो जीवित है और जो नहीं। ऐसा कहा जाता है कि एक वर्ष तक अग्नि में दूध की आहुति देने से मनुष्य आगे की मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। ऐसा नहीं सोचना चाहिए।

जो उपरोक्त बातों को जानता है, वह उसी दिन आगे की मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है, जिस दिन वह आहुति देता है, क्योंकि वह देवताओं को सभी खाने योग्य भोजन अर्पित करता है, 'वे हमेशा खाए जा रहे हैं, हालांकि वे समाप्त क्यों नहीं होते?' - इसका अर्थ है कि प्राणी (खाने वाला) वास्तव में उनके स्थायित्व का कारण है, क्योंकि वह इस भोजन को बार-बार पैदा करता है। 'जो उनके स्थायित्व के इस कारण को जानता है' का अर्थ है कि प्राणी (खाने वाला) वास्तव में उनके स्थायित्व का कारण है, क्योंकि वह

इस भोजन को अपने ध्यान और अनुष्ठानों के माध्यम से उत्पन्न करता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो यह समाप्त हो जाएगा। 'वह प्रतिका के साथ भोजन करता है'; 'प्रतिका' का अर्थ है श्रेष्ठता; अतः इसका अर्थ सर्वोपरि है। 'वह देवताओं को प्राप्त करता है और अमृत पर रहता है' यह स्तुति है।

I-v-3: 'तीनों को उसने अपने लिए बनाया' का अर्थ है: मन, वाणी का अंग और प्राण; इन्हें उसने अपने लिए बनाया। (वे कहते हैं), 'मैं विरक्त था, मैंने इसे नहीं देखा', 'मैं विरक्त था, मैंने इसे नहीं सुना'। मन के द्वारा ही मनुष्य देखता और सुनता है। इच्छाएँ, संकल्प, संदेह, श्रद्धा, अश्रद्धा, स्थिरता, अस्थिरता, लज्जा, बुद्धि और भय - ये सब मन के ही हैं। यदि किसी को पीछे से भी छुआ जाए, तो भी वह मन के द्वारा ही जानता है; इसलिए (मन है)। और किसी भी प्रकार की ध्वनि केवल वाणी के अंग के ही समान है, क्योंकि यह किसी वस्तु का निर्धारण करती है, लेकिन इसे स्वयं प्रकट नहीं किया जा सकता।

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान और अना - ये सभी प्राण के ही समान हैं। यह शरीर इनसे ही एकरूप है - वाणी के अंग, मन और प्राण के साथ।

1-v-4: ये तीन लोक हैं। वाणी का अंग यह लोक (पृथ्वी) है, मन आकाश है, और प्राणशक्ति वह लोक (स्वर्ग) है। 1-v-5: ये तीन वेद हैं। वाणी का अंग ऋग्वेद है, मन यजुर्वेद है और प्राणशक्ति सामवेद है।

1-v-6: ये देवता, पितरों और मनुष्य हैं। वाणी का अंग देवता हैं, मन पितरों है, और प्राणशक्ति मनुष्य है।

1-v-7: ये पिता, माता और बालक हैं। मन पिता है, वाणी का अंग माता है, और प्राणशक्ति बालक है। 1-v-8: ये वे हैं जो ज्ञात हैं, जो जानना वांछनीय है, और जो अज्ञात है। जो कुछ भी ज्ञात है वह वाणी का एक रूप है, क्योंकि यह ज्ञाता है। वाणी का अंग उसे (जो इसे जानता है) वह बनकर (जो ज्ञात है) उसकी रक्षा करता है।

I-v-9: जो कुछ जानना वांछनीय है, वह मन का एक रूप है, क्योंकि मन ही वह है जिसे जानना वांछनीय है। मन उसकी रक्षा करता है (जो इसे जानता है) वह बनकर (जिसे जानना वांछनीय है)।

I-v-10: जो कुछ अज्ञात है, वह प्राणशक्ति का एक रूप है, क्योंकि प्राणशक्ति ही वह है जो अज्ञात है। प्राणशक्ति उसकी रक्षा करती है (जो इसे जानता है) वह बनकर (जो अज्ञात है)।

I-v-11: पृथ्वी उस वाणी के अंग का शरीर है, और यह अग्नि उसका प्रकाशमान अंग है। और जहाँ तक वाणी का अंग फैलता है, उतनी ही पृथ्वी और उतनी ही यह अग्नि फैलती है।

I-v-12: स्वर्ग इस मन का शरीर है, और वह सूर्य उसका प्रकाशमान अंग है। और जहाँ तक मन फैलता है, वहाँ तक स्वर्ग फैलता है, और वहाँ तक वह सूर्य फैलता है। दोनों एक हो गए, और उससे प्राणशक्ति निकली। यह परम प्रभु है। इसका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है। दूसरा प्राणी वास्तव में एक प्रतिद्वंद्वी है। जो इसे इस रूप में जानता है, उसका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है।

I-v-13: जल इस प्राण शक्ति का शरीर है, और चंद्रमा इसका प्रकाशमान अंग है। और जहाँ तक प्राण का प्रश्न है बल जितना फैलता है, जल भी उतना ही फैलता है, और चन्द्रमा भी उतना ही फैलता है। ये सभी समान हैं, और सभी अनंत हैं। जो इनको सीमित मानकर ध्यान करता है, वह सीमित लोक को जीतता है, किन्तु जो इनको अनंत मानकर ध्यान करता है, वह अनंत लोक को जीतता है।

1-5-14: इस प्रजापति (हिरण्यगर्भ) के सोलह अंक हैं और वह वर्ष द्वारा निरूपित है। रात्रियाँ (और दिन) उसके पंद्रह अंक हैं, और स्थिर अंक उसका सोलहवाँ अंक है। वह (चन्द्रमा के रूप में) रात्रियों (और दिनों) से भरा हुआ भी है और नष्ट भी। इस सोलहवें अंक के द्वारा वह अमावस्या की रात्रि में सभी जीवों में व्याप्त होता है और अगली सुबह उदय होता है। इसलिए इस रात्रि में केवल इसी देवता की आराधना में किसी जीव का, गिरगिट का भी प्राण नहीं लेना चाहिए।

1-5-15: वह प्रजापति जिसके सोलह अंक हैं और जो वर्ष द्वारा निरूपित है, वही वास्तव में उपरोक्त जानने वाला पुरुष है। धन उसके पंद्रह अंगुलियों का तथा शरीर सोलहवां अंगुलियों का है। वह धन से भरा हुआ है और नष्ट भी होता है। यह शरीर नाभि का प्रतीक है और धन उसका साथी है। इसलिए यदि कोई व्यक्ति अपना सब कुछ खो दे, लेकिन स्वयं जीवित रहे, तो लोग कहते हैं कि उसने केवल अपना वस्त्र खोया है।

I-v-16: वास्तव में तीन लोक हैं, मनुष्यों का लोक, पितरों का लोक और देवताओं का लोक। मनुष्यों का यह लोक केवल पुत्र के द्वारा जीता जा सकता है, किसी अन्य अनुष्ठान से नहीं; पितरों का लोक अनुष्ठानों से; और देवताओं का लोक ध्यान से। देवताओं का लोक सभी लोकों में श्रेष्ठ है। इसलिए वे ध्यान की प्रशंसा करते हैं।

I-v-17: अब इसलिए सौंपना: जब कोई व्यक्ति सोचता है कि वह मर जाएगा, तो वह अपने बेटे से कहता है, 'तुम ब्रह्म हो, तुम यज्ञ हो, और तुम ही संसार हो।' पुत्र उत्तर देता है, 'मैं ब्रह्म हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं जगत् हूँ।' (पिता सोचता है, 'जो कुछ भी अध्ययन किया जाता है, वह सब ब्रह्म शब्द में एकीकृत है। जो भी यज्ञ हैं, वे सब यज्ञ शब्द में एकीकृत हैं। और जो भी लोक हैं, वे सब संसार में एकीकृत हैं। यह सब (गृहस्थ के कर्तव्य) वास्तव में इतना ही है। यह सब होने के कारण वह मुझे इस संसार (के बंधनों) से बचाएगा।'

इसलिए वे शिक्षित पुत्र को संसार के अनुकूल कहते हैं। इसलिए (पिता) अपने पुत्र को शिक्षा देता है। जब उपरोक्त ज्ञान वाला पिता इस संसार से विदा लेता है, तो वह अपने पुत्र को वाणी, मन और प्राण के साथ-साथ अपने पुत्र में भी प्रवेश करा देता है। यदि उससे कोई चूक रह जाती है, तो पुत्र उसे उस सबसे मुक्त कर देता है। इसलिए उसे पुत्र कहते हैं। पिता पुत्र के माध्यम से इस संसार में रहता है। दिव्य और अमर वाणी, मन और प्राण उसमें व्याप्त हैं।

1-5-18: पृथ्वी और अग्नि से दिव्य वाक्-इन्द्रिय उसमें व्याप्त है। यही दिव्य वाक्-इन्द्रिय है, जिससे वह जो कुछ कहता है, वह पूर्ण होता है।

1-5-19: स्वर्ग और सूर्य से दिव्य मन उसमें व्याप्त है। यही दिव्य मन है, जिससे वह केवल सुखी होता है और कभी शोक नहीं करता।

1-5-20: जल और चन्द्रमा से दिव्य प्राण उसमें व्याप्त है। यही दिव्य प्राण है, जो चलने या न चलने पर भी न पीड़ा अनुभव करता है, न घायल होता है। जो उपर्युक्त रूप से जानता है, वह सब प्राणियों का आत्मा हो जाता है। जैसा यह देवता (हिरण्यगर्भ) है, वैसा ही वह भी है। जैसे सब प्राणी इस देवता का ध्यान रखते हैं, वैसे ही वे उसका भी ध्यान रखते हैं। ये प्राणी चाहे कितना ही दुःखी हों, उनका वह दुःख उनसे जुड़ा हुआ है। परन्तु केवल पुण्य ही उसे मिलता है। कोई भी पाप देवताओं को नहीं मिलता।

1-5-21: अब व्रत का विचार: प्रजापति ने इन्द्रियों को प्रक्षेपित किया। ये, प्रक्षेपित होने पर, एक दूसरे से झगड़ने लगे। वाणी के अंग ने प्रतिज्ञा की, 'मैं बोलता रहूंगा'। आंख ने: 'मैं देखूंगा'। कान ने: 'मैं सुनूंगा'। और इसी प्रकार अन्य अंगों ने भी अपने-अपने कार्य के अनुसार ऐसा ही किया। मृत्यु ने उन्हें थकावट के रूप में पकड़ लिया - उसने उन्हें पकड़ लिया, और उन्हें पकड़कर नियंत्रित कर लिया। इसलिए वाणी का अंग हमेशा थक जाता है, और आंख और कान भी थक जाते हैं। लेकिन मृत्यु ने शरीर में इस प्राणशक्ति को नहीं पकड़ा। अंगों ने इसे जानने का संकल्प किया। 'यह हम में सबसे बड़ा है, जब यह चलता है या नहीं चलता है, तब न तो दर्द होता है और न ही घायल होता है।

अच्छा, हम सब इसके रूप हो जाएं।' उन्होंने सभी को इसका रूप धारण कर लिया। इसलिए उन्हें 'प्राण' के इस नाम से पुकारा जाता है। जिस परिवार में कोई व्यक्ति उपरोक्त जानने वाला पैदा होता है, उसका नाम वास्तव में उसी के नाम पर रखा जाता है। और जो उपरोक्त जानने वाले के साथ प्रतिस्पर्धा करता है वह सिकुड़ जाता है, और सिकुड़ने के बाद अंत में मर जाता है। यह शरीर के संदर्भ में है।

I-v-22: अब देवताओं के संदर्भ में: अग्नि ने प्रतिज्ञा ली, 'मैं जलती रहूँगी।' सूर्य: 'मैं गर्मी दूँगा'। चंद्रमा: 'मैं चमकूँगा'। और इसी तरह अन्य देवताओं ने भी अपने कार्यों के अनुसार ऐसा किया। जैसे इन अंगों में शरीर में प्राणशक्ति है, वैसे ही इन देवताओं में वायु (वायु) है। अन्य देवता डूबते हैं, लेकिन वायु नहीं वायु वह देवता है जो कभी अस्त नहीं होता।

I-v-23: अब यह श्लोक है; 'देवताओं ने उसी का व्रत किया जिससे सूर्य उदय होता है और जिसमें अस्त होता है। आज भी उसका पालन किया जाता है और कल भी उसका पालन किया जाएगा।' सूर्य प्राणशक्ति से ही उदय होता है और उसी में अस्त भी होता है। इन (देवताओं) ने जो व्रत किया था, आज भी वही व्रत करते हैं।

इसलिए मनुष्य को एक व्रत करना चाहिए - प्राण और अपान (श्वास और मलत्याग) के कार्य करते रहना चाहिए,नहीं तो मृत्यु (थकान) का अभिशाप उसे घेर लेगा। और यदि वह व्रत करता है, तो उसे उसे समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए।इसके माध्यम से वह इस देवता के साथ एकता प्राप्त करता है, या उसके साथ एक ही दुनिया में रहता है।

I-vi-1: यह (ब्रह्मांड) वास्तव में तीन चीजों से बना है: नाम, रूप और क्रिया। उन नामों में से, वाणी (सामान्य रूप से ध्वनि) उक्त (स्रोत) है, क्योंकि सभी नाम उसी से निकलते हैं। यह उनका समान (सामान्य गुण) है, क्योंकि यह सभी नामों में समान है। यह उनका ब्रह्म (स्व) है, क्योंकि यह सभी नामों को धारण करता है।

I-vi-2: अब रूपों में आँख (कोई भी दृश्यमान वस्तु) उक्थ (स्रोत) है, क्योंकि सभी रूप उसी से उत्पन्न होते हैं। यह उनका समान (सामान्य गुण) है, क्योंकि यह सभी रूपों में समान है। यह उनका ब्रह्म (स्व) है, क्योंकि यह सभी रूपों को धारण करता है।

I-vi-3: और कार्यों में शरीर (क्रिया) उक्थ (स्रोत) है, क्योंकि सभी कार्य उसी से उत्पन्न होते हैं। यह उनका समान (सामान्य गुण) है, क्योंकि यह सभी कार्यों में समान है। यह उनका ब्रह्म (स्व) है, क्योंकि यह सभी कार्यों को धारण करता है। ये तीनों मिलकर एक हैं - यह शरीर, और शरीर, यद्यपि एक है, ये तीन हैं। यह अमर सत्ता सत्य (पांच तत्वों) से आच्छादित है: प्राणशक्ति अमर सत्ता है, और नाम, रूप और सत्य; (इसलिए) यह प्राणशक्ति उनसे आच्छादित है।

II-i-1: ॐ। गर्ग परिवार में एक व्यक्ति था जिसका नाम गर्वित बलाकी था, जो वक्ता था। उसने बनारस के राजा अजातशत्रु से कहा, 'मैं तुम्हें ब्रह्म के बारे में बताऊंगा।' अजातशत्रु ने कहा, 'इस प्रस्ताव के लिए मैं तुम्हें एक हजार (गाय) देता हूं। लोग वास्तव में "जनक, जनक" कहते हुए दौड़ते हैं। (मुझमें भी उनके कुछ गुण हैं।)'

II-i-2: गार्ग्य ने कहा, 'जो प्राणी सूर्य में है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूं'। अजातशत्रु ने कहा, 'कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसका ध्यान सर्वोपरि, सभी प्राणियों के प्रमुख और तेजोमय के रूप में करता हूं। जो उसका इस तरह ध्यान करता है, वह सर्वोपरि, सभी प्राणियों का प्रमुख और तेजोमय हो जाता है।

II-i-3: गार्ग्य ने कहा, 'जो प्राणी चंद्रमा में है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूं'। अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसका ध्यान महान, श्वेत वस्त्रधारी, तेजस्वी सोम के रूप में करता हूँ।' जो उसका ध्यान इस प्रकार करता है, उसके मुख्य और सहायक यज्ञों में प्रतिदिन प्रचुर मात्रा में सोम होता है, और उसका भोजन कभी कम नहीं पड़ता।

II-i-4: गार्ग्य ने कहा, 'वह जो बिजली में है, मैं उसका ध्यान ब्रह्म के रूप में करता हूँ।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसका ध्यान शक्तिशाली के रूप में करता हूँ।' जो उसका ध्यान इस प्रकार करता है, वह शक्तिशाली हो जाता है, और उसकी संतान भी शक्तिशाली हो जाती है।

II-i-5: गार्ग्य ने कहा, 'वह जो आकाश में है, मैं उसका ध्यान ब्रह्म के रूप में करता हूँ।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसे पूर्ण और अचल मानकर उसका ध्यान करता हूँ। जो उसका इस तरह ध्यान करता है, वह संतान और मवेशियों से भरा होता है, और उसकी संतान इस दुनिया से कभी विलुप्त नहीं होती।

II-i-6: गार्ग्य ने कहा, 'यह जो वायु में है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूँ।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसका ध्यान भगवान के रूप में, अप्रतिरोध्य के रूप में, और अजेय सेना के रूप में करता हूँ।' जो उसका इस तरह ध्यान करता है, वह हमेशा विजयी और अजेय होता है, और अपने दुश्मनों को जीतता है।

II-i-7: गार्ग्य ने कहा, 'यह जो अग्नि में है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूँ।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसे सहनशील मानकर उसका ध्यान करता हूँ। जो उसका इस तरह ध्यान करता है, वह सहनशील हो जाता है, और उसकी संतान भी सहनशील हो जाती है।

II-i-8: गार्ग्य ने कहा, 'यह जो जल में है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूँ।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसका सुखद के रूप में ध्यान करता हूँ। जो उसका इस तरह ध्यान करता है, उसके पास केवल सुखद चीजें आती हैं, विपरीत चीजें नहीं; उससे भी ऐसे बच्चे पैदा होते हैं जो सुखद होते हैं।

II-i-9: गार्ग्य ने कहा, 'यह जो दर्पण में है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूँ।' अजातशत्रु ने कहा,"कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसे प्रकाशमान मानकर उसका ध्यान करता हूँ। जो उसका इस तरह ध्यान करता है, वह प्रकाशमान हो जाता है, और उसकी संतान भी प्रकाशमान हो जाती है। वह उन सभी से अधिक प्रकाशमान हो जाता है, जिनके साथ वह संपर्क में आता है।

II-i-10: गार्ग्य ने कहा, 'यह ध्वनि जो किसी व्यक्ति के चलने पर उसके पीछे निकलती है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूँ।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसका जीवन के रूप में ध्यान करता हूँ।' जो उसका इस तरह ध्यान करता है, वह इस संसार में अपने जीवन की पूरी अवधि प्राप्त करता है, और जीवन उस अवधि के पूरा होने से पहले उससे विदा नहीं होता।

II-i-11: गार्ग्य ने कहा, 'यह प्राणी जो दिशाओं में है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूँ।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसे दूसरे और अविभाज्य के रूप में ध्यान करता हूं। जो उसे इस रूप में ध्यान करता है, उसे साथी मिलते हैं, और उसके अनुयायी कभी उससे अलग नहीं होते।

II-i-12: गार्ग्य ने कहा, 'यह प्राणी जो छाया के साथ अपनी पहचान रखता है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूं।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसका मृत्यु के रूप में ध्यान करता हूं। जो उसका इस रूप में ध्यान करता है, वह इस दुनिया में अपने जीवन की पूरी अवधि प्राप्त करता है, और मृत्यु उस अवधि के पूरा होने से पहले उसका पीछा नहीं करती है।

II-i-13: गार्ग्य ने कहा, 'यह प्राणी जो स्वयं में है, मैं उसका ब्रह्म के रूप में ध्यान करता हूं।' अजातशत्रु ने कहा, "कृपया उसके बारे में बात न करें। मैं उसका ध्यान आत्म-नियंत्रित रूप में करता हूँ।" जो उसका ध्यान इस प्रकार करता है, वह आत्म-नियंत्रित हो जाता है, और उसकी संतान भी आत्म-नियंत्रित हो जाती है। गार्ग्य चुप रहे।

II-i-14: अजातशत्रु ने कहा, 'क्या यह सब है?' 'यह सब है'। 'इतना जानने से कोई (ब्रह्म) नहीं जान सकता।' गार्ग्य ने कहा, 'मैं एक छात्र के रूप में आपके पास आता हूँ।'

II-i-15: अजातशत्रु ने कहा, 'यह प्रथा के विपरीत है कि एक ब्राह्मण किसी क्षत्रिय के पास यह सोचकर जाए कि, "वह मुझे ब्रह्म के बारे में सिखाएगा"। हालाँकि मैं आपको शिक्षा दूँगा।' गार्ग्य का हाथ पकड़कर वह उठा। वे एक सोए हुए व्यक्ति के पास पहुँचे। (अजातशत्रु) ने उसे इन नामों से संबोधित किया, महान, सफेद वस्त्रधारी, तेजस्वी, सोम। वह व्यक्ति नहीं उठा। (राजा) ने उसे धक्का दिया। जब तक वह जाग नहीं गया, तब तक उसने उसका हाथ थामा। फिर वह उठ गया।

II-i-16: अजातशत्रु ने कहा, 'जब यह चेतना से परिपूर्ण प्राणी (मन से तादात्म्य) इस प्रकार सोया हुआ था, तब यह कहाँ था, और कहाँ से आया?' गार्ग्य को यह पता नहीं था।

II-i-17: अजातशत्रु ने कहा, 'जब यह चेतना से परिपूर्ण प्राणी इस प्रकार सोया हुआ था, तब यह अपनी चेतना के द्वारा इन्द्रियों के कार्यों को लीन कर लेता है, और हृदय में स्थित आकाश (परमात्मा) में स्थित हो जाता है। जब यह प्राणी उन्हें लीन कर लेता है, तब इसे स्वपिति कहते हैं। फिर नाक लीन हो जाती है, वाणी इन्द्रिय लीन हो जाती है, आँख लीन हो जाती है, कान लीन हो जाता है, और मन लीन हो जाता है।

II-i-18: जब यह इस प्रकार स्वप्न अवस्था में रहता है, तो इसकी ये उपलब्धियाँ होती हैं: तब यह सम्राट बन जाता है, या कुलीन ब्राह्मण बन जाता है, या उच्च या निम्न अवस्थाओं को प्राप्त करता है। जैसे सम्राट अपने नागरिकों को लेकर अपने क्षेत्र में अपनी इच्छानुसार विचरण करता है, वैसे ही यह भी अपने शरीर में अपनी इच्छानुसार विचरण करता है।

II-19: पुनः जब यह गहरी नींद में सो जाता है - जब इसे कुछ भी पता नहीं रहता - तब यह हृदय से लेकर पेरीकार्डियम (संपूर्ण शरीर) तक फैली हुई बहत्तर हजार हिता नामक नाड़ियों के साथ वापस आ जाता है, और शरीर में ही रहता है। जैसे एक शिशु, या एक सम्राट, या एक कुलीन ब्राह्मण परमानंद की पराकाष्ठा को प्राप्त करके रहता है, वैसे ही यह भी रहता है।

II-1-20: जैसे एक मकड़ी धागे के साथ चलती है (जो वह उत्पन्न करती है), और जैसे अग्नि से छोटी-छोटी चिंगारियाँ सभी दिशाओं में उड़ती हैं, वैसे ही इस आत्मा से सभी अंग, सभी लोक, सभी देवता और सभी प्राणी निकलते हैं। इसका गुप्त नाम (उपनिषद) 'सत्य का सत्य' है। प्राणशक्ति सत्य है, और यह उसका सत्य है।

II-ii-1: जो बछड़े को उसके निवास, उसके विशेष निवास, उसके पद और उसके बंधन सहित जानता है, वह अपने सात शत्रुओं को मार डालता है। शरीर में प्राणशक्ति ही बछड़ा है, यह शरीर उसका निवास है, सिर उसका विशेष निवास है, शक्ति उसका पद है और अन्न उसका बंधन है।

II-ii-2: क्षय को रोकने वाले ये सात देवता इसकी पूजा करते हैं: नेत्र की इन गुलाबी रेखाओं के माध्यम से रुद्र इसकी सेवा करते हैं; नेत्र के जल के माध्यम से पर्जन्य; पुतली के माध्यम से सूर्य; अंधभाग के माध्यम से

अग्नि; श्वेत भाग के माध्यम से इंद्र; निचली पलक के माध्यम से पृथ्वी इसकी सेवा करती है; और ऊपरी पलक के माध्यम से स्वर्ग। जो इसे इस प्रकार जानता है, उसके भोजन की कभी कमी नहीं होती।

II-ii-3: इसके संबंध में निम्नलिखित सारगर्भित श्लोक है: 'एक कटोरा है जिसका मुंह नीचे और नीचे है शीर्ष पर उभार है; इसमें विभिन्न प्रकार के ज्ञान रखे गए हैं; सात ऋषि इसके पास बैठते हैं, और वाणी का अंग, जो वेदों के साथ संचार करता है, आठवां है। 'वह कटोरा जिसका मुंह नीचे है और ऊपर उभरा हुआ है' हमारा सिर है, क्योंकि यह वह कटोरा है जिसका मुंह नीचे है और ऊपर उभरा हुआ है। 'इसमें विभिन्न प्रकार के ज्ञान रखे गए हैं', अंगों को संदर्भित करता है;

ये वास्तव में विभिन्न प्रकार के ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'सात ऋषि इसके पास बैठते हैं', अंगों को संदर्भित करता है; वे वास्तव में ऋषि हैं। 'वाणी का अंग, जो वेदों के साथ संचार करता है, आठवां है', क्योंकि वाणी का अंग आठवां है और वेदों के साथ संचार करता है।

II-ii-4: ये दो (कान) गौतम और भारद्वाज हैं: यह गौतम है, और यह भारद्वाज है: ये दो (आँखें) विश्वामित्र और जमदग्नि हैं: यह विश्वामित्र है, और यह जमदग्नि है। ये दो (नासिका) वसिष्ठ और कश्यप हैं: यह वसिष्ठ है, और यह कश्यप है: जीभ अत्रि है, क्योंकि जीभ के माध्यम से भोजन खाया जाता है। 'अत्रि' केवल यह नाम 'अति' है। जो इसे इस तरह जानता है वह सबका भक्षक बन जाता है, और सब कुछ उसका भोजन बन जाता है।

II-iii-1: ब्रह्म के केवल दो रूप हैं - स्थूल और सूक्ष्म, नश्वर और अमर, सीमित और असीमित, परिभाषित और अपरिभाषित।

II-iii-2: स्थूल (रूप) वह है जो वायु और आकाश से भिन्न है। यह नश्वर है, यह सीमित है, और यह परिभाषित है। जो स्थूल, नश्वर, सीमित और परिभाषित है उसका सार सूर्य है जो चमकता है, क्योंकि वह परिभाषित का सार है।

II-iii-3: अब सूक्ष्म - यह वायु और आकाश है। यह अमर है, यह असीमित है, और यह अपरिभाषित है। जो सूक्ष्म, अमर, असीमित और अपरिभाषित है उसका सार सूर्य में स्थित सत्ता है, क्योंकि वह अपरिभाषित का सार है। यह देवताओं के संदर्भ में है।

II-iii-4: अब शरीर के संदर्भ में: स्थूल रूप केवल यह है - शरीर में (भौतिक) वायु और आकाश के अलावा जो कुछ है। यह नश्वर है, यह सीमित है और यह परिभाषित है। जो स्थूल, नश्वर, सीमित और परिभाषित है उसका सार आँख है, क्योंकि यह परिभाषित का सार है।

II-iii-5: अब सूक्ष्म - यह (भौतिक) वायु और आकाश है जो शरीर में है। यह अमर है, यह असीमित है, और यह अपरिभाषित है। जो सूक्ष्म, अमर, असीमित और अपरिभाषित है, उसका सार यह सत्ता है जो दाहिनी आँख में है, क्योंकि यही अपरिभाषित का सार है।

II-iii-6: उस सत्ता का स्वरूप इस प्रकार है: हल्दी से रंगे कपड़े के समान, या भूरे भेड़ के ऊन के समान, या इंद्रगोप नामक (लाल) कीट के समान, या अग्नि की जीभ के समान, या श्वेत कमल के समान, या बिजली की चमक के समान। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह बिजली की चमक के समान तेज को प्राप्त करता है। अब इसलिए (ब्रह्म का) वर्णन: 'यह नहीं, यह नहीं'। क्योंकि इस 'यह नहीं' से अधिक उपयुक्त और कोई वर्णन नहीं है। अब इसका नाम है: 'सत्य का सत्य'। प्राणशक्ति सत्य है, और यह उसका सत्य है।

II-iv-1: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'मैत्रेयी, मेरी प्रिय', 'मैं इस जीवन का त्याग करने जा रहा हूँ। मुझे तुम्हारे और कात्यायनी के बीच समाप्त करने की अनुमति दो।'

II-iv-2: तब मैत्रेयी ने कहा, 'महाराज, यदि यह सम्पूर्ण पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण मेरी हो जाए, तो क्या मैं इससे अमर हो जाऊँगी?' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'नहीं, तुम्हारा जीवन उन लोगों के समान होगा, जिनके पास बहुत कुछ है, किन्तु धन से अमरता की कोई आशा नहीं है।'

II-iv-3: तब मैत्रेयी ने कहा, 'मैं उस वस्तु का क्या करूँ, जिससे मैं अमर न हो जाऊँ? मुझे केवल वही बताइए, जिसे आप (अमरता का एकमात्र साधन) जानते हैं।'

II-iv-4: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'हे प्रिये, तुम पहले भी मेरी प्रिय रही हो, और तुम वही कहती हो, जो मेरे मन के अनुसार है। आओ, बैठो, मैं तुम्हें समझाता हूँ। जैसे-जैसे मैं समझाता हूँ, तुम (इसके अर्थ पर) ध्यान करो।

II-iv-5: उन्होंने कहा: 'हे प्रिये, पति के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए उससे प्रेम किया जाता है। मेरी प्रिय पत्नी के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है। मेरी प्रिय पुत्रों के लिए उनसे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है। मेरी प्रिय धन के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है। मेरी प्रिय ब्राह्मण के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है। मेरी प्रिय क्षत्रिय के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है।

प्रिये, संसार के लिए उनसे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है। प्रिये, देवताओं के लिए उनसे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है। प्रिये, प्राणियों के लिए उनसे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है। प्रिये, सबके लिए सभी से प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है। प्रिये, मैत्रेयी, मेरी आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए - उसका श्रवण, मनन और ध्यान करना चाहिए। प्रिये, श्रवण, मनन और ध्यान के द्वारा आत्मा के साक्षात्कार से यह सब जाना जाता है।

द्वितीय-चतुर्थ-६: ब्राह्मण उस व्यक्ति को निकाल देता है जो उसे आत्मा से भिन्न जानता है। क्षत्रिय उस व्यक्ति को निकाल देता है जो उसे आत्मा से भिन्न जानता है। संसार उस व्यक्ति को निकाल देता है जो उसे आत्मा से भिन्न जानता है। देवता उस व्यक्ति को निकाल देते हैं जो उन्हें आत्मा से भिन्न जानता है। प्राणी उस व्यक्ति को निकाल देते हैं जो उन्हें आत्मा से भिन्न जानता है। सभी प्राणी उस व्यक्ति को निकाल देते हैं जो उन्हें आत्मा से भिन्न जानता है। यह ब्राह्मण, यह क्षत्रिय, ये लोक, ये देवता, ये प्राणी और यह सब यह आत्मा है।

II-iv-7: जैसे ढोल बजाने पर कोई उसके विभिन्न विशेष स्वरों को नहीं पहचान सकता, परन्तु वे ढोल के सामान्य स्वर में अथवा विभिन्न प्रकार के आघातों से उत्पन्न सामान्य ध्वनि में सम्मिलित हो जाते हैं।

II-iv-8: जैसे शंख बजाने पर कोई उसके विभिन्न विशेष स्वरों को नहीं पहचान सकता, परन्तु वे शंख के सामान्य स्वर में अथवा विभिन्न प्रकार के आघातों से उत्पन्न सामान्य ध्वनि में सम्मिलित हो जाते हैं।

II-iv-9: जैसे वीणा बजाने पर कोई उसके विभिन्न विशेष स्वरों को नहीं पहचान सकता, परन्तु वे वीणा के सामान्य स्वर में अथवा विभिन्न प्रकार के आघातों से उत्पन्न सामान्य ध्वनि में सम्मिलित हो जाते हैं।

II-IV-10: जैसे गीली लकड़ियों से प्रज्वलित अग्नि से विभिन्न प्रकार के धुएँ निकलते हैं, वैसे ही हे मेरे प्यारे, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पौराणिक कथाएँ, कलाएँ, उपनिषद, सारगर्भित श्लोक, सूक्तियाँ, व्याख्याएँ और व्याख्याएँ इस अनंत वास्तविकता की साँस की तरह हैं। वे इस (परमात्मा) की साँस की तरह हैं।

II-IV-11: जैसे समुद्र सभी प्रकार के जल का एक लक्ष्य है, जैसे त्वचा सभी प्रकार के स्पर्श का एक लक्ष्य है, जैसे नासिका सभी गंधों का एक लक्ष्य है, जैसे जीभ सभी स्वादों का एक लक्ष्य है, जैसे आंख सभी रंगों का एक लक्ष्य है, जैसे कान सभी ध्वनियों का एक लक्ष्य है, जैसे मनस सभी विचारों का एक लक्ष्य है, जैसे बुद्धि सभी प्रकार के ज्ञान का एक लक्ष्य है, जैसे हाथ सभी प्रकार के कामों का एक लक्ष्य है, जैसे प्रजनन अंग सभी प्रकार के आनंद का एक लक्ष्य है, जैसे गुदा सभी मलमूत्रों का एक लक्ष्य है, जैसे पैर सभी प्रकार के चलने का एक लक्ष्य हैं, जैसे वाणी का अंग सभी वेदों का एक लक्ष्य है।

II-iv-12: जैसे नमक की डली पानी में डालने पर वह पानी के साथ घुल जाती है और कोई उसे उठा नहीं सकता, लेकिन जहाँ से भी कोई उसे उठाता है, वहाँ उसका स्वाद नमकीन ही होता है, वैसे ही हे मेरे प्यारे, यह महान, अनंत, अनंत सत्य केवल शुद्ध बुद्धि है। (आत्मा) इन तत्वों से (एक अलग इकाई के रूप में) निकलती है और (यह अलगाव) उनके साथ नष्ट हो जाती है। (इस एकता को प्राप्त करने के बाद) उसमें कोई चेतना नहीं रहती। यही मैं कहता हूँ, हे मेरे प्यारे। ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा।

II-iv-13: मैत्रेयी ने कहा, 'अभी आपने मुझे भ्रम में डाल दिया है, श्रीमान् - यह कहकर कि (एकता को प्राप्त करने के बाद) आत्मा में कोई चेतना नहीं रहती।' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'निश्चित रूप से, मैं कुछ भी भ्रमित करने वाली बात नहीं कह रहा हूँ, हे मैत्रेयी; ज्ञान के लिए यह काफी है।'

II-iv-14: क्योंकि जब द्वैत होता है, तब कोई कुछ सूंघता है, कोई कुछ देखता है, कोई कुछ सुनता है, कोई कुछ बोलता है, कोई कुछ सोचता है, कोई कुछ जानता है। (परन्तु) जब ब्रह्म को जानने वाले के लिए सब कुछ आत्मा ही हो गया है, तब वह क्या सूंघे और किसके द्वारा, क्या देखे और

किसके द्वारा, क्या सुने और किसके द्वारा, क्या बोले और किसके द्वारा, क्या सोचे और किसके द्वारा, क्या जाने और किसके द्वारा ? वह जिससे यह सब जाना जाता है, उसे किससे जाने - हे मैत्रेयी, उस ज्ञाता को किससे जाने ?

II-v-1: यह पृथ्वी सब प्राणियों के लिए मधु के समान है और सब प्राणी इस पृथ्वी के लिए मधु के समान हैं। इस पृथ्वी में स्थित वह तेजोमय अमर सत्ता और शरीर में स्थित वह तेजोमय, अमर, साकार सत्ता। (ये चारों) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्मज्ञान) ही अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) सब कुछ (बनने का साधन) है।

II-v-2: यह जल सभी प्राणियों के लिए शहद के समान है और सभी प्राणी इस जल के लिए शहद के समान हैं। इस जल में स्थित चमकते अमर प्राणी और शरीर में बीज के साथ तादात्म्य रखने वाला चमकता अमर प्राणी। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्म-ज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) सब बनने का साधन है।

II-v-3: यह अग्नि सभी प्राणियों के लिए शहद के समान है और सभी प्राणी इस अग्नि के लिए शहद के समान हैं। इस अग्नि में स्थित चमकते अमर प्राणी और शरीर में वाणी के अंग के साथ तादात्म्य रखने वाला चमकता अमर प्राणी। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्म-ज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-4: यह वायु सभी प्राणियों के लिए शहद के समान है और सभी प्राणी इस वायु के लिए शहद के समान हैं। (इसी प्रकार) वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो इस वायु में है और वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो शरीर में प्राण शक्ति है। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्म-ज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-5: यह सूर्य सभी प्राणियों के लिए शहद के समान है और सभी प्राणी इस सूर्य के लिए शहद के समान हैं। (इसी प्रकार) वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो इस सूर्य में है और वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो शरीर में आँख के साथ पहचाना जाता है। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह

(आत्म-ज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) ही सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-6: ये दिशाएँ सभी प्राणियों के लिए मधु के समान हैं और सभी प्राणी इन दिशाओं के लिए मधु के समान हैं।

उस चमकते अमर प्राणी के साथ जो ये दिशाएँ हैं और चमकता, अमर प्राणी जो कान के साथ और शरीर में सुनने के समय के साथ पहचाना जाता है। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्म-ज्ञान) अमरता (का) साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) सभी (बनने का) साधन है।

II-v-7: यह चंद्रमा सभी प्राणियों के लिए मधु के समान है और सभी प्राणी इस चंद्रमा के लिए मधु के समान हैं। (उसी के साथ) चमकता अमर प्राणी जो इस चंद्रमा में है और चमकता, अमर प्राणी जो शरीर में मन के साथ पहचाना जाता है। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्म-ज्ञान) अमरता (का) साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-8: यह बिजली सभी प्राणियों के लिए शहद (समान) है, और सभी प्राणी इस बिजली के लिए शहद (समान) हैं। (इसी प्रकार) वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो इस बिजली में है, और वह चमकता हुआ, अमर प्राणी जो शरीर में प्रकाश के साथ पहचाना जाता है। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्म-ज्ञान) अमरता (का) साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-9: यह बादल सभी प्राणियों के लिए शहद (समान) है, और सभी प्राणी इस बादल के लिए शहद (समान) हैं। (इसी प्रकार) वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो इस बादल में है, और वह चमकता हुआ, अमर प्राणी जो शरीर में ध्वनि और वाणी के साथ पहचाना जाता है। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्मज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्मज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-10: यह आकाश सभी प्राणियों के लिए मधु (समान) है, और सभी प्राणी इस आकाश के लिए मधु (समान) हैं। (वही) वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो इस आकाश में है, और वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो हृदय में, शरीर में आकाश के साथ तादात्म्य रखता है। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं।

यह (आत्मज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्मज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-11: यह धर्म सभी प्राणियों के लिए मधु (समान) है, और सभी प्राणी इस धर्म के लिए मधु (समान) हैं। (वही) वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो इस धर्म में स्थित है, और वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो शरीर में धर्म से तादात्म्य रखता है। (ये चारों) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्मज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्म का ज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-12: यह सत्य सभी प्राणियों के लिए मधु के समान है, और सभी प्राणी इस सत्य के लिए मधु के समान हैं। (वही) इस सत्य में स्थित चमकते अमर प्राणी के साथ, और शरीर में स्थित सत्य के साथ तादात्म्य रखने वाला चमकता अमर प्राणी। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्मज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्मज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-13: यह मानव प्रजाति सभी प्राणियों के लिए शहद के समान है, और सभी प्राणी इस मानव प्रजाति के लिए शहद के समान हैं। (इसी प्रकार) इस मानव प्रजाति में स्थित चमकते अमर प्राणी और शरीर में स्थित मानव प्रजाति के साथ तादात्म्य रखने वाला चमकता अमर प्राणी। (ये चार) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्मज्ञान) अमरता का साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्मज्ञान) सब कुछ बनने का साधन है।

II-v-14: यह (ब्रह्माण्डीय) शरीर सभी प्राणियों के लिए मधु (समान) है, और सभी प्राणी इस (ब्रह्माण्डीय) शरीर के लिए मधु (समान) हैं। (इसी प्रकार) वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो इस (ब्रह्माण्डीय) शरीर में है, और वह चमकता हुआ अमर प्राणी जो यह (व्यक्तिगत) आत्मा है। (ये चारों) केवल यह आत्मा हैं। यह (आत्म-ज्ञान) अमरता (का) साधन है; यह (अंतर्निहित एकता) ब्रह्म है; यह (ब्रह्माण्ड का ज्ञान) सब (बनने का) साधन है।

II-v-15: यह आत्मा, जिसका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, सभी प्राणियों का शासक है, और सभी प्राणियों का राजा है। जिस प्रकार सभी तीलियाँ रथ के पहिये की नाभि और फील में स्थित हैं, उसी प्रकार सभी प्राणी, सभी देवता, सभी लोक, सभी अंग और ये सभी (व्यक्तिगत) आत्माएँ इस आत्मा में स्थित हैं।

II-v-16: यह परस्पर लाभकारी ध्यान है जो अथर्ववेद के ज्ञाता दध्येय ने अश्विनों को सिखाया था। यह देखकर ऋषि (मंत्र) ने कहा, 'हे मानव रूप में अश्विनों, आपने लोभ के कारण जो भयानक दंश नामक कार्य किया था, उसे मैं प्रकट करूंगा जैसे बादल वर्षा करता है - (आपने कैसे सीखा) परस्पर लाभकारी ध्यान जो अथर्ववेद के ज्ञाता दध्येय ने आपको घोड़े के सिर के माध्यम से सिखाया था।

II-v-17: यह परस्पर लाभकारी ध्यान है जो अथर्ववेद के ज्ञाता दध्येय ने अश्विनों को सिखाया था। यह देखकर ऋषि ने कहा, 'हे अश्विनों, आपने अथर्ववेद के ज्ञाता दध्येय के कंधों पर घोड़े का सिर रख दिया। हे भयंकर! अपने वचन का पालन करने के लिए उन्होंने तुम्हें सूर्य से संबंधित परस्पर सहायक वस्तुओं का ध्यान तथा उन पर गुप्त (आध्यात्मिक) ध्यान सिखाया।'

II-v-18: यह परस्पर सहायक वस्तुओं का ध्यान है, जो अथर्ववेद के ज्ञाता दध्येय ने अश्विनों को सिखाया था। यह देखकर ऋषि ने कहा, 'उन्होंने दो पैरों वाले शरीर और चार पैरों वाले शरीर बनाए। उस परम पुरुष ने पहले पक्षी (सूक्ष्म शरीर) के रूप में शरीरों में प्रवेश किया।' सभी शरीरों में निवास करने के कारण उन्हें पुरुष कहा जाता है। ऐसा कुछ भी नहीं है जो उनके द्वारा ढका न हो, ऐसा कुछ भी नहीं है जो उनके द्वारा व्याप्त न हो।

II-v-19: यह परस्पर सहायक वस्तुओं का ध्यान है, जो अथर्ववेद के ज्ञाता दध्येय ने अश्विनों को सिखाया था। यह देखकर ऋषि ने कहा, '(उन्होंने) प्रत्येक रूप के अनुसार अपने आप को रूपांतरित किया; उनका वह रूप उन्हें ज्ञात कराने के लिए था। माया (अज्ञान द्वारा आरोपित धारणाएँ) के कारण भगवान अनेक रूप में देखे जाते हैं, क्योंकि उनमें दस इन्द्रियाँ, बल्कि सैकड़ों इन्द्रियाँ जुड़ी हुई हैं। वे इन्द्रियाँ हैं; वे दस और हज़ार हैं - अनेक और अनंत हैं। वह ब्रहम न पूर्व है, न पश्च है, न भीतर है और न बाहय। यह आत्मा, जो सबका द्रष्टा है, ब्रहम है। यही शिक्षा है।

II-vi-1: अब शिक्षकों की पंक्ति: पौतिमास्य (प्राप्त) गौपावन से। गौपावन दूसरे पौतिमास्य से। यह पौतिमास्य दूसरे गौपावन से। यह गौपावन कौशिक से। कौशिक कौंडिन्य से। कौंडिन्य शांडिल्य से। शांडिल्य कौशिक और गौतम से। गौतम -

II-vi-2: अग्निवेश्य से। अग्निवेश्य शांडिल्य और अनाभिमलता से। अनाभिमलता उसी नाम के दूसरे से। वह एक तीसरी अनाभिमलता से। यह अनाभिमलता गौतम से। शैतव और प्राचिनयोग्य से गौतम। वे पारासर्या से हैं। भारद्वाज से पारासर्य। वह भारद्वाज और गौतम से।दूसरे भारद्वाज से गौतम। वह दूसरे पारासर्य से। बैजवापायन से पाराशर्य। वह कौशिकायनि से। कौशिकायनी -

II-vi-3: घृतकौशिक से। पाराशर्याण से घृतकौशिक। वह पारासरया से. जातुकर्ण्य से पारासर्य। असुरायण और यास्क से जातुकर्ण्य। त्रैवनि से असुरायण। त्रैवानी से औपजंधनी. वह आसुरी से. भारद्वाज से आसुरी. आत्रेय से भारद्वाज. मांटी से आत्रेय.गौतम से मंति. गौतम दूसरे गौतम से. वह वत्स्य से. सांडिल्य से वात्स्य.कैसोर्या कप्या से सांडिल्य। वह कुमारहरिता से. गालव से कुमारहरिता। विदर्भि-कौण्डिन्य से गालव। वह वत्सनापत बभ्रवा से. वह पथिन सौभरा से हैं। वह अयस्य अंगिरस से। वह अभूति त्वस्त्र से। वह विश्वरूप तवस्त्र से। वह असविंस से। वे दध्यैक अथर्वण से हैं। वह अथर्वन् दैव से। वह मृत्युप्रध्वंसा से। वह प्रध्वंसा से.एकार्सी से प्रध्वंसा। विप्रचित्ति से एकार्सी। व्यास्रि से विप्रचित्ति। सनारू से व्यस्ती.सनारु सनातन से। सनातन सनाग से। सनाग परमेस्थिन (विराज) से। वह ब्रह्म (हिरण्यबरभ) से। ब्रह्म स्वयंभू है। ब्रह्म को नमस्कार।

III-i-1: ओम। विदेह के सम्राट जनक ने एक यज्ञ किया जिसमें उपहार स्वतंत्र रूप से वितरित किए गए। कुरु और पंचाल के वैदिक विद्वान वहां एकत्र हुए थे। विदेह के सम्राट जनक को यह जानने की इच्छा हुई कि, 'इन वैदिक विद्वानों में सबसे अधिक विद्वान कौन है?' उन्होंने एक बाड़े में एक हजार गायें बंधवाईं, और उस पर प्रत्येक गाय के सींगों पर दस पाद (सोने के) जड़े गए।

III-i-2: उसने उनसे कहा, 'आदरणीय ब्राह्मणों, तुममें से जो सबसे अच्छा वैदिक विद्वान हो, वह इन गायों को (घर) ले जाए।' कोई भी ब्राह्मण तब याज्ञवल्क्य ने अपने एक शिष्य से कहा, 'प्रिय समाश्रव, कृपया इन गायों को (घर) ले चलो।' उसने उन्हें भगा दिया। ब्राह्मण क्रोधित हो गए। 'वह खुद को हमारे बीच सर्वश्रेष्ठ वैदिक विद्वान कहने की हिम्मत कैसे करता है?' विदेह के सम्राट जनक का एक होत्र था जिसका नाम अश्वल था। उसने अब याज्ञवल्क्य से पूछा, 'याज्ञवल्क्य, क्या आप वास्तव में हमारे बीच सर्वश्रेष्ठ वैदिक विद्वान हैं? 'याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'मैं सर्वश्रेष्ठ वैदिक विद्वान को नमन करता हूं, मुझे केवल गायें चाहिए।' इस पर होत्र अश्वल ने उनसे पूछताछ करने का निश्चय किया।

III-i-3: 'याज्ञवल्क्य', उन्होंने कहा, 'चूंकि यह सब कुछ खत्म हो चुका है मृत्यु से प्रभावित होकर, किस माध्यम से बलि देने वाला मृत्यु के चंगुल से बाहर निकलता है?' 'वाणी के अंग के माध्यम से - अग्नि के माध्यम से, जो (असली) पुजारी है जिसे होत्र कहा जाता है। बलि देने वाले की वाणी का अंग होत्र है। यह वाणी इन्द्रिय अग्नि है, यह अग्नि ही होतृ है, यह (अग्नि) मोक्ष है; यह (मुक्ति) मुक्ति है।"

III-i-4: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'चूंकि यह सब दिन और रात से घिरा हुआ है, और उनके द्वारा संचालित होता है, तो किस उपाय से यज्ञकर्ता दिन और रात के चंगुल से परे जाता है? 'आँख से - सूर्य से, जो अध्वर्यु नामक (असली) पुजारी है। यज्ञकर्ता की आँख अध्वर्यु है। यह आँख सूर्य है; यह सूर्य अध्वर्यु है; यह (सूर्य) मोक्ष है; यह (मुक्ति) मुक्ति है।'

III-i-5: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'चूंकि यह सब शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष से घिरा हुआ है और उनके द्वारा संचालित होता है, तो किस उपाय से यज्ञकर्ता शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष से परे जाता है? 'अंधकारमय पखवाड़ा /' 'प्राणशक्ति के माध्यम से - वायु के माध्यम से, जो (असली) पुजारी है जिसे उदगतिर कहा जाता है। यज्ञकर्ता की प्राणशक्ति उदगति है। यह प्राणशक्ति वायु है, और यह उदगति है; यह (वायु) मुक्ति है; यह (मुक्ति) मुक्ति है।'

III-i-6: 'याज्ञवल्क्य' ने कहा, 'चूँकि आकाश मानो बिना सहारे के है, तो फिर किस सहारे से यज्ञकर्ता स्वर्ग जाता है?' 'मन के द्वारा - चन्द्रमा के द्वारा, जो कि ब्रह्म नामक (वास्तविक) पुजारी है। यज्ञकर्ता का मन ही है ब्रह्म। यह मन चन्द्रमा है; चन्द्रमा ब्रह्म है; यह (चन्द्रमा) मुक्ति है; यह (मुक्ति) मुक्ति है। अब तक मुक्ति के तरीकों के बारे में; अब समानता पर आधारित ध्यान के बारे में।

III-i- 7: याज्ञवल्क्य ने पूछा, 'आज इस यज्ञ में होत्र कितने प्रकार की ऋचाओं से अपना कार्य करेगा?' 'तीन प्रकार की ऋचाओं से।' 'वे तीन कौन से हैं?' 'प्रारंभिक, यज्ञीय और स्तुति स्तोत्र तीसरे हैं।' 'उनके माध्यम से वह क्या जीतता है?' 'यह सब जो जीवित है'।

III-i-8: 'याज्ञवल्क्य', उन्होंने कहा, 'आज इस यज्ञ में अध्वर्यु कितने प्रकार की आहुति देगा?' 'तीन'। 'वे तीन कौन-सी हैं?' 'जो आहुति देने पर

प्रज्वलित हो जाती हैं, जो आहुति देने पर बहुत शोर करती हैं , और जो अर्पित किए जाने पर डूब जाते हैं'। 'उनके माध्यम से वह क्या जीतता है?' 'जो अर्पित किए जाने पर जल उठते हैं उनके माध्यम से वह देवताओं की दुनिया जीतता है, क्योंकि यह दुनिया चमकती है, मानो उन लोगों के माध्यम से जो एक बनाते हैं जब बहुत शोर मचाया जाता है, तो वह पितरों की दुनिया जीत लेता है, क्योंकि यह दुनिया कोलाहल से भरी है। और जो लोग चढ़ाए जाने पर डूब जाते हैं, उनके माध्यम से वह मानव दुनिया जीत लेता है, क्योंकि यह दुनिया निम्न है;

तृतीय-1-9: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'यह ब्राह्मण आज कितने देवताओं के माध्यम से यज्ञ की रक्षा करता है?' 'एक के माध्यम से'। 'वह कौन सा है?' 'मन। मन वास्तव में अनंत है, और विश्वदेव अनंत हैं। इस ध्यान के माध्यम से वह अनंत दुनिया को जीतता है।'

तृतीय-1-10: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'आज इस यज्ञ में उद्गतिर कितने प्रकार के स्तोत्र गाते हैं?' 'तीन प्रकार के'। 'वे तीन कौन से हैं?' 'प्रारंभिक, यज्ञीय और स्तुति स्तोत्र तीसरे हैं'। 'वे कौन से हैं जिनका शरीर से संबंध है?' 'प्राण प्रारंभिक स्तोत्र है, अपान यज्ञीय स्तोत्र है, और व्यान स्तुति स्तोत्र है'। 'उनके द्वारा वह क्या जीतता है ?' 'प्रारंभिक स्तोत्रों के द्वारा वह पृथ्वी को जीतता है, यज्ञ स्तोत्रों के द्वारा वह आकाश को जीतता है, और स्तुति स्तोत्रों के द्वारा वह स्वर्ग को जीतता है'। इस पर होत्र अश्वल चुप हो गया।

III-ii-1: तब जरात्कारु के वंश के अर्तभाग ने उससे पूछा। उसने कहा, 'याज्ञवल्क्य, कितने ग्रह हैं और कितने अतिग्रह हैं ?' 'आठ ग्रह और आठ अतिग्रह हैं'। 'वे आठ ग्रह और आठ अतिग्रह कौन से हैं ?'

III-ii-2: प्राण (नाक) वास्तव में ग्रह है; यह अतिग्रह, अपान (गंध) द्वारा नियंत्रित होता है, क्योंकि व्यक्ति अपान (साँस लेने वाली हवा) के माध्यम से गंध को सूंघता है।

III-ii-3: वाणी का अंग वास्तव में ग्रह है; यह अतिग्रह, नाम द्वारा नियंत्रित होता है, क्योंकि व्यक्ति वाणी के माध्यम से नाम का उच्चारण करता है।

III-ii-4: जीभ वास्तव में ग्रह है; यह अतिग्रह, स्वाद द्वारा नियंत्रित होती है, क्योंकि व्यक्ति जीभ के माध्यम से स्वाद को जानता है।

III-ii-5: आंख वास्तव में ग्रह है; यह अतिग्रह, रंग द्वारा नियंत्रित होती है, क्योंकि व्यक्ति आंखों के माध्यम से रंगों को देखता है।

III-ii-6: कान वास्तव में ग्रह है; यह अतिग्रह, ध्वनि द्वारा नियंत्रित होता है, क्योंकि व्यक्ति कान के माध्यम से ध्वनि सुनता है।

III-ii-7: मन वास्तव में ग्रह है; यह अतिग्रह, इच्छा द्वारा नियंत्रित होता है, क्योंकि व्यक्ति मन के माध्यम से इच्छा करता है।

III-ii-8: हाथ वास्तव में ग्रह है; यह अतिग्रह, कार्य द्वारा नियंत्रित होता है, क्योंकि व्यक्ति हाथों के माध्यम से कार्य करता है।

III-ii-9: त्वचा वास्तव में ग्रह है; यह अतिग्रह, स्पर्श द्वारा नियंत्रित होती है, क्योंकि व्यक्ति त्वचा के माध्यम से स्पर्श महसूस करता है। ये आठ ग्रह और आठ अतिग्रह हैं।

III-ii-10: 'याज्ञवल्क्य' ने कहा, 'चूँकि ये सब मृत्यु का भोजन है, तो वह कौन देवता है जिसका भोजन मृत्यु है?' 'अग्नि मृत्यु है; यह जल का भोजन है। (जो ऐसा जानता है) वह आगे की मृत्यु को जीत लेता है।'

III-ii-11: 'याज्ञवल्क्य' ने कहा, 'जब (मुक्त) मनुष्य मरता है, तो क्या उसके अंग उससे ऊपर चले जाते हैं, या नहीं?' नहीं', याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, '(वे) उसमें ही विलीन हो जाते हैं। शरीर फूल जाता है, फूल जाता है, और उस अवस्था में मृत पड़ा रहता है।'

III-ii-12: 'याज्ञवल्क्य' ने कहा, 'जब यह मनुष्य मरता है, तो ऐसा क्या है जो इसे नहीं छोड़ता?' 'नाम। नाम वास्तव में अनंत है, और अनंत विश्वदेव हैं। वह (जो ऐसा जानता है) इससे वास्तव में अनंत विश्व जीत लेता है।'

तृतीय-द्वितीय-13: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'जब मरने वाले व्यक्ति की वाक् इंद्रिय अग्नि में, नाक वायु में, आंख सूर्य में, मन चंद्रमा में, कान दिशाओं में, शरीर पृथ्वी में, हृदय का आकाश बाह्य आकाश में, शरीर के बाल जड़ी-बूटियों में, सिर के बाल वृक्षों में, तथा रक्त और वीर्य जल में जमा हो जाते हैं, तब मनुष्य कहां रहता है?' 'प्रिय आर्तभाग, मुझे अपना हाथ दो, हम आपस में यह तय करेंगे, हम भीड़-भाड़ वाली जगह में ऐसा नहीं कर सकते।' वे बाहर गए और इस पर चर्चा की।

उन्होंने वहां केवल कर्म का उल्लेख किया, और जिसकी प्रशंसा की, वह भी केवल कर्म ही था। (इसलिए) व्यक्ति अच्छे कर्म से अच्छा और बुरे कर्म से बुरा बनता है। इस पर जरात्कारु के वंश का आर्तभाग चुप रहा।

तृतीय-तृतीय-1: तब लाह्य के पौत्र भुज्यु ने उससे पूछा। 'याज्ञवल्क्य', उन्होंने कहा, 'हम छात्र के रूप में मद्र में यात्रा कर रहे थे, और हम कपि वंश के पतनचला के घर पहुंचे। उनकी बेटी एक गंधर्व के पास थी। हमने उनसे पूछा, "आप कौन हैं?" उन्होंने कहा, "मैं सुधन्वान हूं, जो कपि वंश का है अंगिरस"। जब हमने उनसे संसार की सीमाओं के बारे में पूछा, तो हमने उनसे कहा, "परीक्षित के वंशज कहाँ थे?" और मैं आपसे पूछता हूँ, याज्ञवल्क्य, परीक्षित के वंशज कहाँ थे? (मुझे बताइए) परीक्षित के वंशज कहाँ थे?'

III-iii-2: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'गंधर्व ने स्पष्ट रूप से आपको बताया कि वे वहाँ गए जहाँ अश्वमेध यज्ञ करने वाले जाते हैं'। 'और अश्वमेध यज्ञ करने वाले कहाँ जाते हैं?' 'सूर्य के रथ द्वारा एक दिन में तय किए गए स्थान से बत्तीस गुना अधिक स्थान इस संसार का निर्माण करता है; इसके चारों ओर, दुगुने क्षेत्र को कवर करते हुए, पृथ्वी है; पृथ्वी के चारों ओर, दुगुने क्षेत्र को कवर करते हुए, महासागर है। अब, जैसे एक छुरे की धार होती है, या एक मक्खी का पंख होता है, वैसे ही (ब्रह्मांडीय खोल के दो हिस्सों के) जंक्शन पर उतना ही उद्घाटन होता है।

(उसके माध्यम से वे बाहर जाते हैं।) अग्नि, बाज़ ने उन्हें हवा में छोड़ दिया; हवा ने उन्हें अपने अंदर रखकर वहाँ पहुँचा दिया जहाँ अश्वमेध यज्ञ करने वाले (पहले) थे। इस प्रकार गंधर्व ने हवा की स्तुति की। इसलिए हवा व्यक्तियों की विविधता है, और हवा समुच्चय है। जो इसे इस तरह जानता है, वह आगे की मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। इस पर लाह्य के पौत्र भुज्यु चुप रहे।

III-IV-1: तब चक्र के पुत्र उसत ने उनसे पूछा। 'याज्ञवल्क्य', उन्होंने कहा, 'मुझे उस ब्रह्म की व्याख्या करें जो तत्काल और प्रत्यक्ष है - वह आत्मा जो सभी के भीतर है।' 'यह आपकी आत्मा है जो सभी के भीतर है'। 'जो सभी के भीतर है, याज्ञवल्क्य?' 'जो प्राण के माध्यम से सांस लेता है, वह आपकी आत्मा है जो सभी के भीतर है।

जो अपान के माध्यम से नीचे की ओर गति करता है, वह आपकी आत्मा है जो सभी के भीतर है। जो व्यान के माध्यम से व्याप्त है, वह आपकी आत्मा

है जो सभी के भीतर है। उदान के माध्यम से जो बाहर जाता है, वह आपकी आत्मा है जो सबके भीतर है। यह आपकी आत्मा है जो सबके भीतर है।'

III-iv-2: चक्र के पुत्र उसत ने कहा, 'आपने इसे इस तरह इंगित किया है जैसे कोई कह सकता है कि गाय ऐसी है या घोड़ा ऐसा है। मुझे उस ब्रह्म की व्याख्या करें जो प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष है - वह आत्मा जो सबके भीतर है'। 'यह आपकी आत्मा है जो सबके भीतर है'। 'जो सबके भीतर है, याज्ञवल्क्य?' 'आप उसे नहीं देख सकते जो दर्शन का साक्षी है; आप उसे नहीं सुन सकते जो सुनने वाला है; आप उसे नहीं सोच सकते जो विचार का विचारक है; आप उसे नहीं जान सकते जो ज्ञान का ज्ञाता है। यह आपकी आत्मा है जो सबके भीतर है; इसके अलावा बाकी सब नाशवान है।' इस पर चक्र के पुत्र उसत चुप हो गए।

iii-v-1: तब कुशितक के पुत्र कहोल ने उनसे पूछा, 'याज्ञवल्क्य', उन्होंने कहा, 'मुझे वह ब्रह्म समझाइए जो प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष है - वह आत्मा जो सबके भीतर है'। 'यह आपकी आत्मा है जो सबके भीतर है'। 'जो सबके भीतर है, याज्ञवल्क्य?' 'वह जो भूख और प्यास, शोक, मोह, क्षय और मृत्यु से परे है। इसी आत्मा को जानकर ब्राह्मण पुत्र, धन और लोक की इच्छा को त्याग देते हैं और भिक्षुक का जीवन व्यतीत करते हैं।

जो पुत्र की इच्छा है वह धन की इच्छा है और जो धन की इच्छा है वह लोक की इच्छा है, क्योंकि ये दोनों ही इच्छाएँ हैं। इसलिए ब्रह्म को जानने वाले को, विद्वत्ता के बारे में सब कुछ जानकर, उस बल पर जीने का प्रयास करना चाहिए जो ज्ञान से आता है; इस बल और विद्वत्ता के बारे में सब कुछ जानकर, वह ध्यानस्थ हो जाता है; ध्यान और उसके विपरीत दोनों को जानकर वह ब्रह्म को जानने वाला हो जाता है। वह ब्रह्म को जानने वाला कैसा आचरण करता है? वह कैसा भी आचरण करे, वह वैसा ही है। इसके अलावा, सब कुछ नाशवान है।' इस पर कुशीतक के पुत्र कहोल ने मौन धारण कर लिया।

iii-vi-1: तब वाचक्नु की पुत्री गार्गी ने उनसे पूछा, 'याज्ञवल्क्य', उसने कहा, 'यदि यह सब जल से व्याप्त है, तो जल किससे व्याप्त है?' 'वायु से, हे गार्गी'। 'वायु किससे व्याप्त है?' 'आकाश से, हे गार्गी'। 'आकाश किससे व्याप्त है?' 'गंधर्वों के लोक से, हे गार्गी'। 'गंधर्वों का संसार किससे व्याप्त है ?' 'सूर्य से, हे गार्गी।' 'सूर्य किससे व्याप्त है ?' 'चंद्रमा से, हे गार्गी।' 'चंद्रमा किससे व्याप्त है ?' 'तारों से, हे गार्गी।' 'तारे किससे व्याप्त हैं ?'

'देवताओं के संसार से, हे गार्गी।' 'देवताओं के संसार से, हे गार्गी।' 'इंद्र के संसार से, हे गार्गी।' इंद्र का संसार किससे व्याप्त है ?'

'विराज के संसार से, हे गार्गी।' 'विराज के संसार से, हे गार्गी।' 'हिरण्यगर्भ के संसार से, हे गार्गी।' 'हिरण्यगर्भ का संसार किससे व्याप्त है ?' उन्होंने कहा, 'हे गार्गी, अपनी जांच को बहुत आगे न बढ़ाएं, कहीं ऐसा न हो कि आपका सिर कट जाए। तुम ऐसे देवता के विषय में प्रश्न कर रहे हो जिसके विषय में तर्क नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा मत करो, हे!गार्गी, अपनी जिज्ञासा को बहुत आगे बढ़ाओ।' इस पर वाचक्नु की पुत्री गार्गी चुप रही।तत्पश्चात अरुण के पुत्र उद्दालक ने उनसे पूछा। 'याज्ञवल्क्य' ने कहा, 'मद्रा में हम लोग पत्ञ्चल कप्य (कपि के वंशज) के घर में रहते थे और यज्ञों पर शास्त्रों का अध्ययन करते थे। उनकी पत्नी गंधर्व से ग्रसित थी। हमने उनसे पूछा कि वह कौन थे। उन्होंने कहा, "अथर्वण का पुत्र कबंध"। उन्होंने पत्ञ्चल कप्य और यज्ञों पर शास्त्रों का अध्ययन करने वालों से कहा, "हप्य, क्या तुम उस सूत्र को जानते हो जिसके द्वारा यह जीवन, अगला जीवन और सभी प्राणी एक साथ बंधे हुए हैं?" पत्ञ्चल कप्य ने कहा, "मैं इसे नहीं जानता, श्रीमान्"।

गंधर्व ने उनसे और शिष्यों से कहा, "कप्य, क्या तुम उस आंतरिक शासक को जानते हो जो इस और अगले जीवन और सभी प्राणियों को भीतर से नियंत्रित करता है?" पटनचला कप्य ने कहा, "मैं उसे नहीं जानता, श्रीमान्"। गंधर्व ने उनसे और शिष्यों से कहा, "जो उस सूत्र और उस आंतरिक शासक को जानता है, वह वास्तव में ब्रह्म को जानता है, लोकों को जानता है, देवताओं को जानता है, वेदों को जानता है, प्राणियों को जानता है, आत्मा को जानता है, और सब कुछ जानता है"।

उसने उन्हें सब कुछ समझाया। मैं जानता हूँ। यदि याज्ञवल्क्य, तुम उस सूत्र और उस आंतरिक शासक को नहीं जानते, और फिर भी केवल ब्रह्म के जानकारों की गायों को छीन लेते हो, तो तुम्हारा सिर कट जाएगा। 'मैं जानता हूँ, हे गौतम, वह सूत्र और वह आंतरिक शासक'। 'कोई भी कह सकता है, "मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ"। हमें बताओ कि तुम क्या जानते हो।'

III-vii-2: उन्होंने कहा, 'वायु, हे गौतम, वह सूत्र है। इस सूत्र या वायु के माध्यम से यह और अगला जीवन और सभी प्राणी एक साथ बंधे हुए हैं। इसलिए, हे गौतम, जब कोई व्यक्ति मरता है, तो वे कहते हैं कि उसके अंग

शिथिल हो गए हैं, क्योंकि वे सूत्र या वायु द्वारा एक साथ बंधे हुए हैं।'
'बिलकुल ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य। अब आंतरिक शासक का वर्णन करें।'

III-vii-3: वह जो पृथ्वी पर निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे पृथ्वी नहीं जानती, जिसका शरीर पृथ्वी है, और जो पृथ्वी को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-4: वह जो जल में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे जल नहीं जानता, जिसका शरीर जल है, और जो जल को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-5: वह जो अग्नि में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे अग्नि नहीं जानती, जिसका शरीर अग्नि है, और जो अग्नि को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-6: वह जो आकाश में रहता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे आकाश नहीं जानता, जिसका शरीर आकाश है,
और जो आकाश को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-7: वह जो हवा में रहता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे हवा नहीं जानती, जिसका शरीर हवा है,और जो वायु को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-8: वह जो स्वर्ग में रहता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे स्वर्ग नहीं जानता, जिसका शरीर स्वर्ग है,और जो स्वर्ग को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-9: वह जो सूर्य में रहता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे सूर्य नहीं जानता, जिसका शरीर सूर्य है,और जो सूर्य को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-10: वह जो दिशाओं में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे दिशाएँ नहीं जानतीं, जिसका शरीर दिशाएँ हैं, और जो दिशाओं को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-11: वह जो चंद्रमा और तारों में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे चंद्रमा और तारे नहीं जानते, जिसका शरीर चंद्रमा और तारे हैं, और जो चंद्रमा और तारों को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-12: वह जो आकाश में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे आकाश नहीं जानता, जिसका शरीर आकाश है, और जो आकाश को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-13: वह जो अंधकार में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे अंधकार नहीं जानता, जिसका शरीर अंधकार है, और जो अंधकार को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-14: वह जो प्रकाश में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे प्रकाश नहीं जानता, जिसका शरीर प्रकाश है, और जो प्रकाश को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है। इतना ही देवताओं के संदर्भ में। अब प्राणियों के संदर्भ में।

III-vii-15: वह जो सभी प्राणियों में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे कोई भी प्राणी नहीं जानता, जिसका शरीर सभी प्राणी हैं, और जो सभी प्राणियों को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है। इतना ही प्राणियों के संदर्भ में। अब शरीर के संदर्भ में।

III-vii-16: वह जो नाक में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे नाक नहीं जानती, जिसका शरीर प्रकाश है नाक, और जो नाक को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपकी अपनी अमर आत्मा।

III-vii-17: वह जो वाणी के अंग में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे वाणी का अंग नहीं जानता, जिसका शरीर वाणी का अंग है, और जो वाणी के अंग को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपकी अपनी अमर आत्मा।

III-vii-18: वह जो आंख में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे आंख नहीं जानती, जिसका शरीर आंख है, और जो आंख को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपकी अपनी अमर आत्मा।

III-vii-19: वह जो कान में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे कान नहीं जानता, जिसका शरीर कान है, और जो कान को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपकी अपनी अमर आत्मा।

III-vii-20: वह जो मन (मनस) में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे मन नहीं जानता, जिसका शरीर मन है, और जो मन को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-21: वह जो त्वचा में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे त्वचा नहीं जानती, जिसका शरीर त्वचा है, और जो त्वचा को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-22: वह जो बुद्धि में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे बुद्धि नहीं जानती, जिसका शरीर बुद्धि है, और जो बुद्धि को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है।

III-vii-23: वह जो प्रजनन अंग में निवास करता है, लेकिन उसके भीतर है, जिसे प्रजनन अंग नहीं जानता, जिसका शरीर प्रजनन अंग है, और जो प्रजनन अंग को भीतर से नियंत्रित करता है, वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है। वह कभी दिखाई नहीं देता, लेकिन साक्षी है; वह कभी सुना नहीं जाता, बल्कि सुननेवाला है; वह कभी सोचा नहीं जाता, बल्कि विचारक है; वह कभी जाना नहीं जाता, बल्कि ज्ञाता है। उसके अलावा कोई दूसरा साक्षी नहीं है, उसके अलावा कोई दूसरा श्रोता नहीं है, उसके अलावा कोई दूसरा विचारक नहीं है, उसके अलावा कोई दूसरा ज्ञाता नहीं है। वह आंतरिक शासक है, आपका अपना अमर स्व है। उसके अलावा बाकी सब नश्वर है।' इस पर अरुण के पुत्र उद्दालक चुप रहे।

III-viii-1: तब वाचक्नु की पुत्री ने कहा, 'पूज्य ब्राह्मणों, मैं उनसे दो प्रश्न पूछती हूँ, यदि वह मुझे उनका उत्तर दे दें, तो आप में से कोई भी ब्रह्म का वर्णन करने में उनसे आगे नहीं निकल सकता।' 'पूछिए, हे गार्गी'।

III-viii-2: उसने कहा, 'मैं आपसे (दो प्रश्न) पूछूंगी। जैसे बनारस का कोई व्यक्ति या विदेह का कोई राजा, जो युद्धप्रिय वंश का वंशज हो, अपने

धनुष की डोरी खींचकर अपने हाथ में दो बाँस की नोक वाले बाण लेकर आता है, जो शत्रुओं के लिए अत्यंत पीड़ादायक होते हैं, उसी प्रकार हे याज्ञवल्क्य, मैं आपसे दो प्रश्न पूछता हूँ। उनका उत्तर दीजिए। 'पूछिए, हे गार्गी।'

III-viii-3: उसने कहा, 'हे याज्ञवल्क्य, वह कौन सी चीज है जो स्वर्ग से ऊपर और पृथ्वी से नीचे है, जो यह स्वर्ग और पृथ्वी है और साथ ही उनके बीच भी है, और जिसके बारे में वे कहते हैं कि वह था, है और रहेगा, वह अव्यक्त आकाश से व्याप्त है।'

III-viii-4: उसने कहा, 'हे गार्गी, वह जो स्वर्ग से ऊपर और पृथ्वी से नीचे है, जो यह स्वर्ग और पृथ्वी है और साथ ही उनके बीच भी है, और जिसके बारे में वे कहते हैं कि वह था, है और रहेगा, वह अव्यक्त आकाश से व्याप्त है।'

III-viii-5: उसने कहा, 'मैं आपको प्रणाम करती हूँ, याज्ञवल्क्य, जिन्होंने मेरे इस प्रश्न का पूरी तरह से उत्तर दिया है। अब दूसरे प्रश्न के लिए तैयार हो जाओ।' 'पूछो, हे गार्गी।'

III-viii-6: उसने कहा, 'हे याज्ञवल्क्य, वह कौन सी चीज है जो स्वर्ग से ऊपर और पृथ्वी से नीचे है, जो यह स्वर्ग और पृथ्वी है और साथ ही उनके बीच भी है, और जिसके बारे में वे कहते हैं कि वह था, है और रहेगा?'

III-viii-7: उसने कहा, 'हे गार्गी, वह जो स्वर्ग से ऊपर और पृथ्वी से नीचे है, जो यह स्वर्ग और पृथ्वी है और साथ ही उनके बीच भी है, और जिसके बारे में वे कहते हैं कि वह था, है और रहेगा, वह केवल अव्यक्त आकाश से व्याप्त है।' 'अव्यक्त आकाश किससे व्याप्त है?'

III-viii-8: उसने कहा: हे गार्गी, ब्रह्म के ज्ञाता कहते हैं, यह अपरिवर्तनशील (ब्रह्म) वही है। यह न तो स्थूल है, न छोटा, न छोटा, न लंबा, न लाल रंग है, न चिकना, न छाया है, न अंधकार, न वायु है, न आकाश, अनासक्त, न स्वाद, न गंध, न आँख, न कान, न स्वरेन्द्रिय, न ज्योति, न प्राण, न मुख, न माप, न अन्तः या बाह्य। वह कुछ भी नहीं खाता, न कोई उसे खाता है।

तृतीय-आठ-९: हे गार्गी, इस अपरिवर्तनशील के प्रबल शासन में सूर्य और चन्द्रमा अपने-अपने स्थान पर स्थित रहते हैं; हे गार्गी, इस अपरिवर्तनशील के प्रबल शासन में आकाश और पृथ्वी अपने-अपने स्थान पर स्थित रहते हैं; हे गार्गी, इस अपरिवर्तनशील के प्रबल शासन में क्षण,

मुहूर्त, दिन और रात, पखवाड़े, महीने, ऋतुएँ और वर्ष अपने-अपने स्थान पर स्थित रहते हैं; इस अपरिवर्तनशील के प्रबल शासन में हे गार्गी!

कुछ नदियाँ श्वेत पर्वत से पूर्व की ओर बहती हैं, कुछ पश्चिम की ओर बहती हुई उसी दिशा में आगे बढ़ती हैं, और कुछ अपनी-अपनी दिशा में चलती रहती हैं; इस अपरिवर्तनशील के प्रबल शासन के अधीन, हे गार्गी! मनुष्य दान करने वालों की प्रशंसा करते हैं, देवता यज्ञकर्ता पर निर्भर रहते हैं, और पितरों का आश्रित होना स्वतंत्र अर्पण (दर्विहोम) पर निर्भर है।
तृतीय-आठ-१०: हे गार्गी! जो इस अपरिवर्तनशील को जाने बिना इस संसार में अग्नि में आहुति देता है, यज्ञ करता है, तथा कई हजार वर्षों तक तपस्या करता है, वह ऐसे सभी कर्मों को नाशवान पाता है; हे गार्गी! जो इस अपरिवर्तनशील को जाने बिना इस संसार से चला जाता है, वह दुखी होता है। लेकिन हे गार्गी! जो इस अपरिवर्तनशील को जानकर इस संसार से चला जाता है, वह ब्रह्म को जानने वाला होता है।

तृतीय-आठ-११: हे गार्गी! यह अपरिवर्तनशील कभी दिखाई नहीं देता, बल्कि साक्षी है; यह कभी सुनाई नहीं देता, लेकिन सुनने वाला है; वह कभी विचारा नहीं जाता, किन्तु विचारक है; वह कभी जाना नहीं जाता, किन्तु ज्ञाता है। इसके अतिरिक्त कोई साक्षी नहीं है, इसके अतिरिक्त कोई श्रोता नहीं है, इसके अतिरिक्त कोई विचारक नहीं है, इसके अतिरिक्त कोई ज्ञाता नहीं है। हे गार्गी, इस अव्यक्त से (अव्यक्त) आकाश व्याप्त है।

तृतीय-आठ-12: उसने कहा, 'पूज्य ब्राह्मणों, यदि तुम नमस्कार करके उससे विदा हो जाओ, तो तुम्हें अपने को सौभाग्यशाली समझना चाहिए। तुममें से कोई भी ब्रह्म का वर्णन करने में उससे आगे नहीं निकल सकता।' तब वाचक्नु की पुत्री चुप रही।

तृतीय-नौ-1: तब सकल के पुत्र विदग्धा ने उससे पूछा। 'याज्ञवल्क्य, कितने देवता हैं?' याज्ञवल्क्य ने इस (मंत्रों के समूह) निविद (कहने) के द्वारा इसका निर्णय किया, 'विश्वदेवों के निविद में जितने बताए गए हैं - तीन सौ तीन, तीन हजार तीन'। 'बहुत अच्छा', शाकल्य ने कहा, 'वास्तव में कितने देवता हैं याज्ञवल्क्य?' 'तैंतीस'। 'बहुत अच्छा', दूसरे ने कहा, 'वास्तव में कितने देवता हैं याज्ञवल्क्य?' 'छह'। 'बहुत अच्छा', शाकल्य ने कहा, 'वास्तव में कितने देवता हैं याज्ञवल्क्य?' 'तीन'। 'बहुत अच्छा', दूसरे ने कहा, 'वास्तव में कितने देवता हैं याज्ञवल्क्य?' 'दो'। 'बहुत अच्छा', शाकल्य ने कहा, 'वास्तव में कितने देवता हैं याज्ञवल्क्य?' 'डेढ़'। 'बहुत

अच्छा', शाकल्य ने कहा, 'वास्तव में कितने देवता हैं याज्ञवल्क्य?' 'एक'। शाकल्य ने कहा, 'बहुत अच्छा, वे तीन सौ तीन हजार तीन कौन हैं?'

III-ix-2: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'ये तो उनके स्वरूप मात्र हैं, किन्तु देवता तो केवल तैंतीस हैं।''वे तैंतीस कौन हैं?'

'आठ वसु, ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य - ये इकतीस हैं और इन्द्र तथा प्रजापति मिलकर तैंतीस होते हैं।'

III-ix-3: 'वसु कौन हैं?'

'अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, सूर्य, स्वर्ग, चन्द्रमा और तारे - ये वसु हैं, क्योंकि इनमें यह सब स्थित है, इसलिए इन्हें वसु कहा जाता है।'

III-ix-4: 'रुद्र कौन हैं?'

'मनुष्य के शरीर में दस इन्द्रियाँ हैं, जिनमें ग्यारहवीं इन्द्रिय मन है।

जब वे इस नश्वर शरीर से विदा होते हैं, तो वे (अपने सम्बन्धियों को) रुलाते हैं। क्योंकि वे उन्हें रुलाते हैं, इसलिए उन्हें रुद्र कहा जाता है।'

III-ix-5: 'आदित्य कौन हैं?' 'बारह महीने (एक वर्ष के भाग हैं); ये आदित्य हैं, क्योंकि वे यह सब अपने साथ ले जाते हैं। क्योंकि वे यह सब अपने साथ ले जाते हैं, इसलिए उन्हें आदित्य कहा जाता है।'

III-ix-6: 'कौन इंद्र है, और कौन प्रजापति है?' 'बादल स्वयं इंद्र है, और बलि प्रजापति है'। 'कौन बादल है?' 'वज्र (शक्ति)।' 'कौन बलि है?' 'पशु'।

III-ix-7: 'कौन छह (देवता) हैं?' 'अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, सूर्य और स्वर्ग - ये छह हैं। क्योंकि वे सभी (देवता) इन छह में समाहित हैं।'

III-ix-8: 'तीन देवता कौन से हैं?' 'केवल ये तीन लोक, क्योंकि इनमें वे सभी देवता समाहित हैं।' 'दो देवता कौन से हैं?' 'पदार्थ और प्राण।' 'डेढ़ कौन से हैं?'
'यह (वायु) जो बहती है।'

III-ix-9: 'इसके बारे में कुछ लोग कहते हैं, 'चूंकि वायु एक पदार्थ के रूप में बहती है, तो यह डेढ़ कैसे हो सकती है?' 'यह डेढ़ है क्योंकि इसकी उपस्थिति से यह सब अतुलनीय महिमा प्राप्त करता है'। 'एक देवता कौन है?' 'प्राणशक्ति (हिरण्यगर्भ); वह ब्रह्म है, जिसे त्यत् (वह) कहा जाता है।'

III-ix-10: 'वह जो उस सत्ता को जानता है जिसका निवास पृथ्वी है, जिसका दर्शन का साधन अग्नि है,जिसका प्रकाश मनस है, और जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है, वह वास्तव में जानता है, हे याज्ञवल्क्य'। 'मैं उस सत्ता को जानता हूँ जिसके बारे में तुम बात कर रहे हो – जो सम्पूर्ण शरीर और इन्द्रियों का परम आश्रय है। वही सत्ता शरीर से तादात्म्य रखती है। बोलो, शाकल्य।' 'उसका देवता कौन है?' 'अमृत (चाइल)', उसने कहा।

III-ix-11: 'जो उस सत्ता को जानता है जिसका निवास काम है, जिसकी दृष्टि का साधन बुद्धि है, जिसका प्रकाश मनस है, और जो सम्पूर्ण शरीर और इन्द्रियों का परम आश्रय है, वह वास्तव में जानता है, हे याज्ञवल्क्य'। 'मैं उस सत्ता को जानता हूँ जिसके बारे में तुम बात कर रहे हो – जो सम्पूर्ण शरीर और इन्द्रियों का परम आश्रय है। वही सत्ता काम से तादात्म्य रखती है। बोलो, शाकल्य'। 'उसकी देवता कौन है?''स्त्रियाँ', उसने कहा।

III-ix-12: 'वह जो जानता है कि जिसका निवास रंग हैं, जिसका दर्शन का साधन आंख है, जिसका प्रकाश मनस है, और जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है, वह वास्तव में जानता है, हे याज्ञवल्क्य'। 'मैं उस सत्ता को जानता हूं जिसके बारे में आप बात करते हैं - जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है। यह वही सत्ता है जो सूर्य में है। शाकल्य'। 'उसका देवता कौन है?' 'सत्य (आंख),' उसने कहा।

III-ix-13: 'वह जो जानता है कि जिसका निवास आकाश है, जिसका दर्शन का साधन कान है, जिसका प्रकाश मनस है, और जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है, वह वास्तव में जानता है, हे याज्ञवल्क्य'। 'मैं उस सत्ता को जानता हूं जिसके बारे में आप बात करते हैं - जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है। यह वही सत्ता है जो कान और सुनने के समय के साथ पहचानी जाती है। शाकल्य'। 'उसका देवता कौन है?' 'तिमाहियाँ', उसने कहा।

III-ix-14: 'वह जो जानता है कि जिसका निवास अंधकार है, जिसका दर्शन का साधन बुद्धि है, जिसका प्रकाश मनस है, और जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है, वह वास्तव में जानता है, हे याज्ञवल्क्य'। 'मैं उस

सत्ता को जानता हूँ जिसके बारे में तुम बात करते हो - जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है। यह वही सत्ता है जो छाया (अज्ञान) से तादात्म्य रखती है। आगे बढ़ो, शाकल्य'।

'उसका देवता कौन है?' 'मृत्यु', उसने कहा।

III-ix-15: 'वह जो जानता है कि जिसका निवास (विशेष) रंग हैं, जिसका दर्शन का साधन आँख है, जिसका प्रकाश मनस है, और जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है, वह वास्तव में जानता है, हे याज्ञवल्क्य'। 'मैं उस सत्ता को जानता हूँ जिसके बारे में तुम बात करते हो - जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है। यह वही प्राणी है जो दर्पण में है। आगे बढ़ो, शाकल्य। 'उसका देवता कौन है?' 'प्राणशक्ति', उसने कहा।

III-ix-16: 'वह जो जानता है कि जिसका निवास जल है, जिसका दर्शन का साधन बुद्धि है, जिसका प्रकाश मनस है, और जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है, वह वास्तव में जानता है, हे याज्ञवल्क्य'। 'मैं उस प्राणी को जानता हूँ जिसके बारे में तुम बात कर रहे हो - जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है। यह वही प्राणी है जो जल में है। आगे बढ़ो, शाकल्य।' 'उसका देवता कौन है?' 'वरुण (वर्षा)', उसने कहा।

III-ix-17: 'वह जो जानता है कि जिसका निवास बीज है, जिसका दर्शन का साधन बुद्धि है, जिसका प्रकाश मनस है, और जो संपूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है, वह वास्तव में जानता है, हे याज्ञवल्क्य'। 'मैं उस सत्ता को जानता हूँ जिसके बारे में तुम बात कर रहे हो - जो सम्पूर्ण शरीर और अंगों का परम आश्रय है। यह वही सत्ता है जिसकी पहचान पुत्र से होती है। आगे बोलो, शाकल्य। 'उसका देवता कौन है?' 'प्रजापति (पिता)', उसने कहा।

III-ix-18: 'शाकल्य', याज्ञवल्क्य ने कहा, 'क्या इन वैदिक विद्वानों ने तुम्हें अंगारों को जलाने के लिए अपना साधन बना लिया है?'

III-ix-19: 'याज्ञवल्क्य', शाकल्य ने कहा, 'क्या इसलिए कि तुम ब्रह्म को जानते हो कि तुमने कुरु और पांचाल के इन वैदिक विद्वानों की इस तरह अवहेलना की है?' 'मैं दिशाओं को उनके देवताओं और आधारों सहित जानता हूँ'। 'यदि तुम दिशाओं को उनके देवताओं और आधारों सहित जानते हो -

III-ix-20: 'पूर्व में तुम किस देवता से पहचाने जाते हो?' 'देवता, सूर्य से'। 'सूर्य किस पर टिका है?' 'आँख पर'। 'आँख किस पर टिकी होती है?' 'रंगों पर, क्योंकि रंगों को आँख से देखा जाता है'। 'रंग किस पर टिके होते हैं?' 'हृदय (दिमाग) पर', याज्ञवल्क्य ने कहा, 'क्योंकि रंगों को हृदय से जाना जाता है; रंग हृदय पर टिके होते हैं'। 'यह बिल्कुल ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य'।

III-ix-21: 'दक्षिण में आपकी पहचान किस देवता से है?' 'देवता, यम (न्याय के देवता) से'।

यम किस पर टिके होते हैं?' 'यज्ञ पर'। 'यज्ञ किस पर टिके होते हैं?' 'पारिश्रमिक पर (पुजारियों का)।' 'पारिश्रमिक किस पर टिका है ?' 'विश्वास पर, क्योंकि जब भी किसी व्यक्ति में विश्वास होता है, वह पुजारियों को पारिश्रमिक देता है; इसलिए यह विश्वास पर है कि पारिश्रमिक टिका है'। 'विश्वास किस पर टिका है ?' 'हृदय पर', याज्ञवल्क्य ने कहा, 'क्योंकि व्यक्ति हृदय के माध्यम से विश्वास को जानता है; इसलिए यह हृदय पर है कि विश्वास टिका है'। 'यह बिल्कुल ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य'।

III-ix-22: 'पश्चिम में आप किस देवता से पहचाने जाते हैं ?' 'देवता, वरुण (वर्षा के देवता) के साथ'।वरुण किस पर टिका है ?' 'पानी पर'। 'पानी किस पर टिका है ?' 'बीज पर'। 'बीज किस पर टिका है ?' 'हृदय पर। इसलिए वे एक नवजात शिशु के बारे में कहते हैं कि वह (अपने पिता) के समान होता है, कि वह (अपने पिता के) हृदय से उत्पन्न हुआ है - कि वह (अपने पिता के) हृदय से बना है, जैसे कि। इसलिए यह हृदय पर है कि बीज टिकता है'। 'यह बिल्कुल ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य'।

III-ix-23: 'उत्तर में आप किस देवता से पहचाने जाते हैं?' 'देवता, सोम (चंद्रमा और लता) के साथ' 'सोम किस पर टिकता है?' 'दीक्षा पर'। 'दीक्षा किस पर टिकी है?' 'सत्य पर।' इसलिए वे दीक्षित से कहते हैं, "सत्य बोलो"; क्योंकि दीक्षा सत्य पर टिकी है'। 'सत्य किस पर टिकी है?' 'हृदय पर', याज्ञवल्क्य ने कहा, 'क्योंकि सत्य को हृदय से जाना जाता है; इसलिए सत्य हृदय पर टिकी है'। 'यह बिलकुल ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य'।

III-ix-24: 'निश्चित दिशा में (ऊपर) आप किस देवता से पहचाने जाते हैं?'

अग्नि देवता से'

अग्नि किस पर टिकी है?'

वाणी पर'

वाणी किस पर टिकी है?'

हृदय पर'

हृदय किस पर टिकी है?'

III-ix-25: 'हे प्रेत', याज्ञवल्क्य ने कहा, 'जब तू सोचता है कि हृदय हमसे कहीं और है, (तब शरीर मृत है)। यदि यह हमसे कहीं और होता, तो कुत्ते इस शरीर को खा जाते, या पक्षी इसे टुकड़े-टुकड़े कर देते।'

III-ix-26: शरीर और हृदय किस पर टिके हैं?'

प्राण पर'

प्राण किस पर टिकी है?'

अपान पर।'

अपान किस पर टिकी है?'

व्यान पर।'

व्यान किस पर टिकी है?'

उदान पर। 'उदान किस पर टिका है?' 'समान पर'। यह आत्मा वह है जिसे 'यह नहीं, यह नहीं' के रूप में वर्णित किया गया है। यह अगोचर है, क्योंकि इसे कभी देखा नहीं जाता; अविनाशी, क्योंकि यह कभी नष्ट नहीं होता; अनासक्त, क्योंकि यह कभी आसक्त नहीं होता; बंधन-रहित - इसे कभी दर्द नहीं होता, और कभी चोट नहीं लगती। 'ये आठ निवास, आठ दृष्टि के साधन, आठ देवता और आठ प्राणी हैं।

मैं आपसे उस सत्ता के बारे में पूछता हूँ जिसे केवल उपनिषदों से जाना जा सकता है, जो निश्चित रूप से उन प्राणियों को प्रक्षेपित करता है और उन्हें अपने भीतर वापस ले लेता है, और जो एक ही समय में पारलौकिक है।

यदि आप मुझे उसके बारे में स्पष्ट रूप से नहीं बता सकते हैं, तो आपका सिर गिर जाएगा।' शाकल्य उसे नहीं जानते थे; उसका सिर गिर गया; और लुटेरों ने उसकी हड्डियों को कुछ और समझकर छीन लिया।

III-ix-27: फिर उन्होंने कहा, 'पूज्य ब्राह्मणों, आप में से जो भी चाहे मुझसे या आप सभी से पूछ सकता है। या मैं आप में से जो भी चाहे उससे या आप सभी से पूछ सकता हूँ।' ब्राह्मणों ने हिम्मत नहीं की। III-ix-28(1): उन्होंने उनसे इन श्लोकों के माध्यम से पूछा: एक बड़े पेड़ की तरह, वास्तव में एक आदमी भी है। (यह) सच है। उसके बाल उसकी पत्तियाँ हैं, उसकी त्वचा उसकी बाहरी छाल है।

III-ix-28(2): यह उसकी त्वचा से रक्त बहता है, और छाल से रस। इसलिए जब कोई आदमी घायल होता है, तो खून बहता है, जैसे एक पेड़ से रस घायल होता है।

III-ix-28(3): उसका मांस उसकी आंतरिक छाल है, और उसकी नसें उसकी छाल की सबसे भीतरी परत हैं; दोनों कठोर हैं। उसकी हड्डियाँ नीचे हैं, जैसे उसकी लकड़ी है; उसका मज्जा उसके गूदे के बराबर है।

III-ix-28(4): यदि कोई वृक्ष कट जाने के बाद अपनी जड़ से पुनः नये रूप में उगता है, तो मृत्यु द्वारा काटे जाने के बाद मनुष्य किस जड़ से उत्पन्न होता है?

III-ix-28(5): यह मत कहो कि बीज से। (क्योंकि) वह जीवित मनुष्य में उत्पन्न होता है। वृक्ष भी बीज से ही उगता है; मरने के बाद वह अवश्य ही (बीज से भी) पुनः उगता है।

III-ix-28(6): यदि कोई वृक्ष को जड़ सहित उखाड़ दे, तो वह फिर नहीं उगता। मृत्यु द्वारा काटे जाने के बाद मनुष्य किस जड़ से उगता है?

III-ix-28(7): यदि तुम सोचते हो कि वह कभी जन्म लेता है, तो मैं कहता हूँ, नहीं, वह पुनः जन्म लेता है। अब उसे पुनः कौन उत्पन्न करे? -- ज्ञान, आनन्द, ब्रह्म, जो धन के प्रदाता का तथा ब्रह्म को जान लेने वाले और उसमें रहने वाले का परम लक्ष्य है।

IV-i-1: ॐ। विदेह के सम्राट जनक जब अपना आसन ग्रहण कर रहे थे, तभी याज्ञवल्क्य वहां आए। जनक ने याज्ञवल्क्य से कहा,उससे पूछा, 'याज्ञवल्क्य, आप यहाँ किसलिए आये हैं ? कुछ पशु पालने के लिए या

कुछ सूक्ष्म प्रश्न सुनने के लिए ?' 'दोनों ही बातें, हे सम्राट', याज्ञवल्क्य ने कहा।

4-1-2: 'मुझे सुनने दीजिए कि आपके किसी शिक्षक ने आपको क्या बताया होगा'। 'शीलिन के पुत्र जितवान् ने मुझे बताया है कि वाणी का अंग (अग्नि) ब्रह्म है'। 'जैसा कि माता, पिता और शिक्षक वाले को कहना चाहिए, वैसा ही शीलिन के पुत्र ने कहा है - कि वाणी का अंग ब्रह्म है, क्योंकि जो बोल नहीं सकता, उसके पास क्या हो सकता है? लेकिन क्या उसने आपको इसके निवास (शरीर) और आधार के बारे में बताया?' 'नहीं, उसने नहीं बताया'। 'यह ब्रह्म केवल एक पैर वाला है, हे सम्राट'। 'तो आप ही बताइए, याज्ञवल्क्य'। 'वाणी का अंग इसका निवास है, और आकाश (अविभेदित) इसका आधार है। इसका ध्यान बुद्धि के रूप में करना चाहिए। याज्ञवल्क्य, बुद्धि क्या है? याज्ञवल्क्य ने कहा, 'वाणी की इन्द्रिय से ही मित्र का पता चलता है; ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, वैदिक इतिहास, पुराण, कला, उपनिषद, श्लोक, सूक्तियां, व्याख्याएं, यज्ञों का प्रभाव, अग्नि में आहुति देना, अन्न-जल देना, यह लोक और परलोक तथा सभी प्राणी वाणी की इन्द्रिय से ही जाने जाते हैं।

हे सम्राट, वाणी की इन्द्रिय ही परम ब्रह्म है। जो इस प्रकार जानकर उसका ध्यान करता है, वाणी कभी नहीं छोड़ती, सभी प्राणी उत्सुकता से उसके पास आते हैं और वह देवता होकर देवताओं को प्राप्त करता है।' 'मैं तुम्हें एक हजार गायें देता हूं, जिनमें हाथी जैसा एक बैल भी है', सम्राट जनक ने कहा। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'मेरे पिता का मत था कि शिष्य को पूर्ण शिक्षा दिए बिना उससे (धन) स्वीकार नहीं करना चाहिए।'

IV-i-3: 'जो कुछ भी किसी ने तुमसे कहा हो, उसे मैं सुनूं।' 'सुल्बा के पुत्र उदंक ने मुझसे कहा है कि प्राण (वायु) ब्रह्म है।' 'जैसा माता, पिता और गुरु वाले को कहना चाहिए, वैसा ही सुल्बा के पुत्र ने कहा है - कि प्राण ब्रह्म है, क्योंकि जो जीवित नहीं है, उसे क्या मिल सकता है? लेकिन क्या उसने तुम्हें उसके निवास (शरीर) और आधार के बारे में बताया?' 'नहीं, उसने नहीं बताया।' 'हे सम्राट, यह ब्रह्म केवल एक पैर वाला है।' 'तो फिर आप ही बताइए याज्ञवल्क्य।' 'प्राणशक्ति ही उसका निवास है और आकाश (अविभेदित) उसका आधार है।

इसका ध्यान प्रिय मानकर करना चाहिए।' 'प्रियता क्या है याज्ञवल्क्य?' हे सम्राट, प्राणशक्ति ही प्रिय है' याज्ञवल्क्य ने कहा; 'प्राणशक्ति के लिए ही हे सम्राट, मनुष्य उस व्यक्ति के लिए यज्ञ करता है जिसके लिए वह नहीं

करना चाहिए और उस व्यक्ति से दान लेता है जिससे वह नहीं लेना चाहिए और हे सम्राट, प्राणशक्ति के लिए ही मनुष्य किसी भी दिशा में अपने प्राणों की बाजी लगाता है। हे सम्राट, प्राणशक्ति ही परम ब्रह्म है।

जो व्यक्ति इस प्रकार जानकर उसका ध्यान करता है, प्राणशक्ति उसे कभी नहीं छोड़ती, सभी प्राणी उत्सुकता से उसके पास आते हैं और वह देवता बनकर देवताओं को प्राप्त करता है।' सम्राट जनक ने कहा, 'मैं तुम्हें एक हजार गायें और एक हाथी जैसा बैल देता हूँ।' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'मेरे पिता का मत था कि शिष्य को पूर्ण शिक्षा दिए बिना उससे धन स्वीकार नहीं करना चाहिए।'

IV-i-4: 'जो कुछ भी कोई आपसे कहे, वह मुझे सुनने दीजिए।'

'वृष्णवल्क्य के पुत्र बड़कू ने मुझसे कहा है कि नेत्र (सूर्य) ब्रह्म है।'

'जैसा माता, पिता और गुरु वाले को कहना चाहिए, वैसा ही वृष्णवल्क्य ने कहा है - कि नेत्र ब्रह्म है। जो देख नहीं सकता, उसके पास क्या हो सकता है? लेकिन क्या उसने आपको इसके निवास (शरीर) और आधार के बारे में बताया?'

'नहीं, उसने नहीं बताया।'

'यह ब्रह्म केवल एक पैर वाला है, हे सम्राट'

'तो आप ही बताइए, याज्ञवल्क्य'

'नेत्र ही इसका निवास है, और आकाश (अविभेदित) इसका आधार है। इसका सत्य के रूप में ध्यान करना चाहिए।' 'सत्य क्या है याज्ञवल्क्य?' 'हे सम्राट, नेत्र ही सत्य है' याज्ञवल्क्य ने कहा; यदि कोई व्यक्ति, हे सम्राट, किसी ऐसे व्यक्ति से पूछे जिसने अपनी आँखों से देखा है, 'क्या तुमने देखा है?' और वह उत्तर दे, 'हाँ, मैंने देखा है', तो यह सत्य है।

हे सम्राट, नेत्र ही परम ब्रह्म है। जो ऐसा जानकर उसका ध्यान करता है, वह नेत्र उसे कभी नहीं छोड़ता; सभी प्राणी उत्सुकता से उसकी ओर आते हैं; और वह देवता होने के कारण देवताओं को प्राप्त करता है।' 'मैं तुम्हें एक हजार गायें देता हूँ, जिनमें हाथी जैसा एक बैल भी है', सम्राट जनक ने

कहा। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'मेरे पिता का मत था कि किसी शिष्य से बिना उसे पूर्ण निर्देश दिए (धन) स्वीकार नहीं करना चाहिए।'

IV-i-5: 'जो कुछ भी कोई तुमसे कहे, वह मुझे सुनने दो'। 'भारद्वाज वंश के गर्दभविपिता ने मुझसे कहा है कि कान (कोठरियाँ) ब्रह्म हैं।' 'जैसा कि माता, पिता और गुरु वाले को कहना चाहिए, वैसा ही भरद्वाज के वंशज ने कहा है - कि कान ब्रह्म है। जो सुन नहीं सकता, उसके पास क्या हो सकता है? लेकिन क्या उसने तुम्हें उसके निवास (शरीर) और आधार के बारे में बताया?' 'नहीं, उसने बताया था नहीं'। 'हे सम्राट, यह ब्रह्म केवल एक पैर वाला है'। 'तो आप हमें बताइए, याज्ञवल्क्य'। 'कान इसका निवास है और आकाश (अविभेदित) इसका आधार है। इसका अनंत रूप से ध्यान करना चाहिए'। 'अनंत क्या है, याज्ञवल्क्य?' 'हे सम्राट, दिशाएँ स्वयं', याज्ञवल्क्य ने कहा; 'इसलिए, हे सम्राट, कोई भी व्यक्ति जिस दिशा में जाए, वह कभी भी उसके अंत तक नहीं पहुँच सकता। (इसलिए) दिशाएँ अनंत हैं। हे सम्राट, दिशाएँ कान हैं और कान, हे सम्राट, परम ब्रह्म है।

जो इस प्रकार जानकर उसका ध्यान करता है, वह कान को कभी नहीं छोड़ता; सभी प्राणी उत्सुकता से उसके पास आते हैं; और देवता होने के कारण वह देवताओं को प्राप्त करता है'। 'मैं तुम्हें एक हजार गायें और हाथी जैसा एक बैल देता हूँ', सम्राट जनक ने कहा। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'मेरे पिता का मत था कि शिष्य को पूर्ण रूप से निर्देश दिए बिना उससे (धन) स्वीकार नहीं करना चाहिए।'

IV-i-6: 'जो कुछ भी कोई आपसे कहे, वह मुझे सुनने दीजिए।'

'जाबाल के पुत्र सत्यकाम ने मुझसे कहा है कि मानस (यहाँ, चंद्रमा) ब्रह्म है।'

'जैसा माता, पिता और गुरु वाले को कहना चाहिए, वैसा ही जाबाल के पुत्र ने कहा है - कि मानस ब्रह्म है। क्योंकि मानस के बिना मनुष्य के पास क्या हो सकता है? लेकिन क्या उसने आपको इसके निवास (शरीर) और आधार के बारे में बताया?'

'नहीं, उसने नहीं बताया।'

'यह ब्रह्म केवल एक पैर वाला है, हे सम्राट'

‘तो आप ही बताइए, याज्ञवल्क्य’

‘मानस इसका निवास है, और आकाश (अविभाज्य) इसका आधार है। इसका आनंद के रूप में ध्यान करना चाहिए’। 'आनंद क्या है याज्ञवल्क्य?' 'हे सम्राट, मानस ही है' याज्ञवल्क्य ने कहा; 'हे सम्राट, मानस से ही पुरुष स्त्री की कल्पना करता है और उसे वश में करता है। उससे उसके समान पुत्र उत्पन्न होता है और वह आनंद का कारण होता है। हे सम्राट, मानस ही परम ब्रह्म है।

जो इस प्रकार जानकर उसका ध्यान करता है, मानस उसे कभी नहीं छोड़ता; सभी प्राणी उत्सुकता से उसकी ओर आते हैं; और वह देवता होने के कारण देवताओं को प्राप्त करता है।' 'मैं तुम्हें एक हजार गायें देता हूँ, जिनमें हाथी जैसा एक बैल भी है', सम्राट जनक ने कहा। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'मेरे पिता का मत था कि शिष्य को पूर्ण शिक्षा दिए बिना उससे (धन) स्वीकार नहीं करना चाहिए।'

चतुर्थ-I-7: 'जो कुछ भी किसी ने तुमसे कहा हो, वह मैं सुनूं।' 'सकल के पुत्र विदग्धा ने मुझसे कहा है कि हृदय (यहाँ, प्रजापति) ब्रह्म है।' ‘जिसके माता, पिता और गुरु हों, उसे ऐसा ही कहना चाहिए, वैसा ही सकला के पुत्र ने कहा है - कि हृदय ही ब्रह्म है।

क्योंकि हृदय के बिना मनुष्य के पास क्या हो सकता है? लेकिन क्या उसने आपको उसके निवास (शरीर) और आधार के बारे में बताया?’ ‘नहीं, उसने नहीं बताया।’ ‘हे सम्राट, यह ब्रह्म केवल एक पैर वाला है।’ ‘तो आप ही हमें बताइए, याज्ञवल्क्य’। ‘हृदय ही उसका निवास है और आकाश (अविभेदित) उसका आधार है। इसे स्थिरता के रूप में ध्यान करना चाहिए।’ ‘स्थिरता क्या है, याज्ञवल्क्य?’

याज्ञवल्क्य ने कहा, ‘हृदय ही, हे सम्राट, सभी प्राणियों का निवास है और हृदय ही सभी प्राणियों का आधार है; हृदय पर, हे सम्राट, सभी प्राणी टिके हुए हैं; हृदय ही, हे सम्राट, परम ब्रह्म है। जो इस प्रकार जानकर इसका ध्यान करता है, उसका हृदय कभी नहीं छूटता; सभी प्राणी उत्सुकता से उसकी ओर आते हैं; और वह देवता होने के कारण देवताओं को प्राप्त करता है।’ ‘मैं तुम्हें एक हजार गायें देता हूँ, जिनमें हाथी जैसा एक बैल है’, सम्राट जनक ने कहा। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, ‘मेरे पिता का मत था कि शिष्य को पूर्ण शिक्षा दिए बिना उससे (धन) स्वीकार नहीं करना चाहिए।’

IV-ii-1: विदेह के सम्राट जनक अपने विश्राम-कक्ष से उठे और याज्ञवल्क्य के पास जाकर बोले, 'याज्ञवल्क्य, आपको नमस्कार है, कृपया मुझे शिक्षा दीजिए।' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'जैसे कोई लंबी दूरी तय करना चाहता है, तो उसे रथ या नाव की व्यवस्था करनी चाहिए, वैसे ही आपने अपने मन को (ब्रह्म के) अनेक गुप्त नामों से सुसज्जित कर लिया है। आप भी सम्मानित और धनवान हैं, और आपने वेदों का अध्ययन किया है और उपनिषदों को सुना है; (परन्तु) जब तुम इस शरीर से अलग हो जाओगे तो कहाँ जाओगे?' 'मैं नहीं जानता, श्रीमान, मैं कहाँ जाऊँगा'। 'तब मैं आपको बता दूँगा कि आप कहाँ जाएँगे'। 'बताइए, श्रीमान'।

IV-ii-2: यह प्राणी जो दाहिनी आँख में है, उसका नाम इन्द्र है। यद्यपि वह इन्द्र है, फिर भी उसे अप्रत्यक्ष रूप से इन्द्र कहा जाता है, क्योंकि देवताओं को अप्रत्यक्ष नामों से प्रेम है, तथा उन्हें सीधे पुकारे जाने से घृणा है।

IV-ii-3: जो मानव रूप बायीं आँख में है, वह उनकी पत्नी विराज (पदार्थ) है। हृदय के भीतर जो स्थान है, वह उनका मिलन स्थल है। उनका भोजन हृदय में रक्त की गांठ (हम जो खाते हैं उसका सूक्ष्मतम सार) है। उनका आवरण हृदय में जाल जैसी संरचना है। उनके चलने का मार्ग हृदय से ऊपर की ओर जाने वाली तंत्रिका है; यह एक बाल के समान है जो हजार भागों में बँटा हुआ है।

इस शरीर में हित नामक तंत्रिकाएँ हैं, जो हृदय में स्थित हैं। हमारे भोजन का सार इन्हीं से होकर आगे बढ़ता है। इसलिए सूक्ष्म शरीर के पास स्थूल शरीर की तुलना में बेहतर भोजन है।

IV-ii-4: ऋषि (जो महत्वपूर्ण शक्ति के साथ पहचाना जाता है) का पूर्व पूर्वी महत्वपूर्ण शक्ति है, दक्षिण दक्षिण प्राण, पश्चिम पश्चिमी प्राण, उत्तर उत्तरी प्राण, ऊपर प्राण से ऊपर की दिशा, अधो प्राण से नीचे की दिशा तथा सभी दिशाएँ भिन्न-भिन्न प्राण हैं। यह आत्मा वह है, जिसका वर्णन इस प्रकार किया गया है - 'यह नहीं, यह नहीं', 'यह अगोचर है, क्योंकि इसका कभी अनुभव नहीं होता; अविनाशी, क्योंकि इसका कभी क्षय नहीं होता;

अनासक्त, क्योंकि इसमें कभी आसक्ति नहीं होती; उन्मुक्त - इसे कभी पीड़ा नहीं होती, तथा इसे कभी चोट नहीं लगती। हे जनक, आपने वह प्राप्त कर लिया है, जो भय से रहित है', याज्ञवल्क्य ने कहा। 'पूज्य याज्ञवल्क्य', सम्राट जनक ने कहा, 'वह जो भय से रहित है, वह आपका हो, क्योंकि

आपने वह जो भय से रहित है, हमें ज्ञात करा दिया है। आपको नमस्कार है! यह विदेह का साम्राज्य है, और मैं भी आपकी सेवा में हूँ!'

IV-iii-1: याज्ञवल्क्य विदेह के सम्राट जनक के पास गए। उन्होंने सोचा कि वे कुछ नहीं कहेंगे। अब जनक और याज्ञवल्क्य ने एक बार अग्निहोत्र पर बात की थी, और याज्ञवल्क्य ने उन्हें वरदान दिया था। उन्होंने अपनी इच्छानुसार कोई भी प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता मांगी थी; और याज्ञवल्क्य ने उन्हें वरदान दिया था। तो यह वह था जिसने सबसे पहले उनसे पूछा था।

IV-iii-2: 'याज्ञवल्क्य, मनुष्य के लिए प्रकाश का काम क्या करता है?' 'सूर्य का प्रकाश, हे सम्राट', याज्ञवल्क्य ने कहा; 'सूर्य के प्रकाश के माध्यम से ही वह बैठता है, बाहर जाता है, काम करता है और वापस आता है'। 'यह बिल्कुल ऐसा ही है,
याज्ञवल्क्य'।

IV-iii-3: 'जब सूर्य अस्त हो जाता है, याज्ञवल्क्य, वास्तव में एक आदमी के लिए प्रकाश का काम क्या करता है?' 'चंद्रमा उसका प्रकाश है। चंद्रमा के प्रकाश के माध्यम से ही वह बैठता है, बाहर जाता है, काम करता है और वापस आता है'। 'यह बिल्कुल ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य'।

IV-iii-4: 'जब सूर्य और चंद्रमा अस्त हो जाते हैं, याज्ञवल्क्य, वास्तव में एक आदमी के लिए प्रकाश का काम क्या करता है?' 'अग्नि उसका प्रकाश है। अग्नि के माध्यम से ही वह बैठता है, बाहर जाता है, काम करता है और वापस आता है'। 'यह बिल्कुल ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य'।

IV-iii-5: जब सूर्य और चंद्रमा दोनों अस्त हो जाते हैं, और अग्नि बुझ जाती है, याज्ञवल्क्य, वास्तव में एक आदमी के लिए प्रकाश का काम क्या करता है?' 'वाणी (ध्वनि) उसका प्रकाश है। वाणी के प्रकाश के माध्यम से ही वह बैठता है, बाहर जाता है, काम करता है और वापस आता है। अतः हे सम्राट! जब अपना हाथ भी स्पष्ट रूप से दिखाई न दे, तब भी यदि कोई ध्वनि उच्चारित हो, तो मनुष्य वहाँ पहुँच जाता है।' 'ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य'।

IV-iii-6: जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों अस्त हो जाते हैं, अग्नि बुझ जाती है, और वाणी बंद हो जाती है, तब याज्ञवल्क्य, मनुष्य के लिए प्रकाश का काम वास्तव में क्या करता है?' 'आत्मा ही उसका प्रकाश है। आत्मा के प्रकाश से ही वह बैठता है, बाहर जाता है, काम करता है और वापस लौटता है।' 'ऐसा ही है, याज्ञवल्क्य'।

IV-iii-7: 'आत्मा कौन है?' 'यह अनंत सत्ता (पुरुष) जो बुद्धि से तादात्म्य रखती है और इन्द्रियों के मध्य में है, हृदय (बुद्धि) में (स्वयं-प्रकाशमान) प्रकाश है। (बुद्धि के सदृश) यह दोनों लोकों के बीच विचरण करती है; यह मानो सोचती है, मानो हिलती है। स्वप्न से तादात्म्य होने के कारण वह इस संसार - मृत्यु (अज्ञान आदि) के रूपों से परे हो जाता है।'

IV-iii-8: वह मनुष्य जब जन्म लेता है या शरीर प्राप्त करता है, तो बुराइयों (शरीर और अंगों) से जुड़ा होता है;और जब वह मरता है या शरीर छोड़ता है, तो वह उन बुराइयों को त्याग देता है।

IV-iii-9: वह मनुष्य केवल दो निवास स्थान रखता है, यह और परलोक। स्वप्न अवस्था, जो तीसरी है,(दोनों के) जंक्शन पर है। उस जंक्शन पर रहकर वह दो निवास स्थानों, इस और परलोक का निरीक्षण करता है।

उसके पास परलोक के लिए जो भी पोशाक हो, उसे अपने पास रखकर वह बुराइयों (दुख) और खुशियों दोनों को देखता है। जब वह स्वप्न देखता है, तो वह इस सर्वव्यापी संसार (जाग्रत अवस्था) में से थोड़ा-सा (संस्कार) हटा लेता है, स्वयं शरीर को अलग रख देता है और स्वयं (उसके स्थान पर स्वप्न शरीर) बनाता है,अपने प्रकाश - और सपनों से अपनी चमक प्रकट करता है। इस अवस्था में मनुष्य स्वयं प्रकाश बन जाता है।

IV-iii-10: वहाँ न रथ हैं, न पशु हैं, न सड़कें हैं, परन्तु वह रथ, पशु और सड़कें बनाता है। वहाँ कोई सुख, आनन्द या प्रसन्नता नहीं है, परन्तु वह सुख, आनन्द और प्रसन्नता बनाता है। वहाँ कोई तालाब, जलाशय या नदियाँ नहीं हैं, परन्तु वह तालाब, जलाशय और नदियाँ बनाता है। क्योंकि वह कर्ता है।

IV-iii-11: इस संबंध में निम्नलिखित सारगर्भित श्लोक हैं: 'वह तेजस्वी अनन्त सत्ता (पुरुष) जो अकेला चलता है, स्वप्नावस्था में शरीर को अलग रख देता है, और स्वयं जागृत रहकर तथा इन्द्रियों के प्रकाशमान कार्यों को अपने साथ लेकर, सोये हुए लोगों को देखता है। फिर वह जाग्रत अवस्था में आ जाता है।

IV-iii-12: 'वह तेजोमय अनंत सत्ता जो अमर है और अकेली चलती है, प्राणशक्ति की सहायता से अशुद्ध घोंसले (शरीर) की रक्षा करती है, और

घोंसले से बाहर विचरण करती है। स्वयं अमर होने के कारण वह जहाँ चाहे वहाँ जाती है।

IV-iii-13: 'स्वप्नलोक में, वह चमकता हुआ, उच्च और निम्न अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ, असंख्य रूप धारण करता है। वह स्त्रियों की संगति में आनंद लेता हुआ, या हँसता हुआ, या यहाँ तक कि डरावनी चीजें देखता हुआ प्रतीत होता है।

IV-iii-14: 'सब उसका खेल देखते हैं, पर कोई उसे नहीं देखता।' वे कहते हैं, 'उसे अचानक मत जगाओ'। यदि उसे सही अंग न मिले, तो शरीर का उपचार करना कठिन हो जाता है। हालाँकि, दूसरे लोग कहते हैं कि मनुष्य की स्वप्न अवस्था जाग्रत अवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, क्योंकि वह स्वप्न में वही चीजें देखता है, जो वह जाग्रत अवस्था में देखता है। (यह गलत है) स्वप्न अवस्था में मनुष्य स्वयं प्रकाश बन जाता है। 'मैं तुम्हें एक हजार (गाय) देता हूँ, श्रीमान्। कृपया मुझे मुक्ति के विषय में और बताइए।'

IV-iii-15: स्वयं का आनंद लेने और घूमने के बाद, और केवल अच्छे और बुरे (के परिणाम) को (स्वप्न में) देखने के बाद, वह गहन नींद की स्थिति में रहता है, और विपरीत क्रम में अपनी पूर्व स्थिति, स्वप्न अवस्था में वापस आ जाता है। वह उस अवस्था में जो कुछ भी देखता है, उससे अछूता रहता है, क्योंकि यह अनंत प्राणी अनासक्त है। 'यह ठीक है, याज्ञवल्क्य। मैं आपको एक हजार (गाय) देता हूं, श्रीमान। कृपया मुझे मुक्ति के विषय में और बताइए।'

IV-iii-16: स्वयं का आनंद लेने और स्वप्न अवस्था में घूमने के बाद, और केवल अच्छे और बुरे (के परिणाम) को देखने के बाद, वह विपरीत क्रम में अपनी पूर्व स्थिति, जाग्रत अवस्था में वापस आ जाता है। वह उस अवस्था में जो कुछ भी देखता है, उससे अछूता रहता है, क्योंकि यह अनंत प्राणी अनासक्त है। 'यह ठीक है, याज्ञवल्क्य। मैं आपको एक हजार (गाय) देता हूं, श्रीमान। कृपया मुझे मोक्ष के विषय में और अधिक बताइये।'

IV-iii-17: जाग्रत अवस्था में भोग-विलास करके तथा केवल शुभ-अशुभ का दर्शन करके वह विपरीत क्रम में अपनी पूर्व अवस्था, स्वप्नावस्था (या गहन निद्रा) में वापस आ जाता है।

IV-iii-18: जैसे बड़ी मछली नदी के दोनों किनारों, पूर्व और पश्चिम, पर बारी-बारी से तैरती है, वैसे ही यह अनंत प्राणी स्वप्न और जाग्रत अवस्था, दोनों अवस्थाओं में जाता है।

IV-iii-19: जैसे आकाश में उड़ता हुआ बाज या बाज़ थक जाता है और पंख फैलाकर अपने घोंसले की ओर दौड़ता है, वैसे ही यह अनंत प्राणी इस अवस्था की ओर दौड़ता है, जहाँ सो जाने पर उसे कोई इच्छा नहीं रहती और वह कोई स्वप्न नहीं देखता।

IV-iii-20: उसमें हित नामक वे नाड़ियाँ हैं, जो बाल के समान हजार भागों में विभक्त हैं और सफेद, नीले, भूरे, हरे और लाल (सीरम) से भरी हुई हैं। (वे सूक्ष्म शरीर का स्थान हैं, जिसमें संस्कार संग्रहित रहते हैं)। अब जब (उसे) ऐसा लगता है कि जैसे उसे मारा जा रहा है या उसे परास्त किया जा रहा है, या हाथी उसका पीछा कर रहा है, या गड्ढे में गिर रहा है, (संक्षेप में) उस समय अज्ञानता के कारण जो भी भयानक चीजें उसने जाग्रत अवस्था में अनुभव की हैं, (वह स्वप्न अवस्था है) वह याद आ जाती है। और जब (वह) मानो देवता बन जाता है, या मानो राजा बन जाता है, और सोचता है, 'यह (ब्रह्मांड) मैं ही हूँ, जो सब कुछ हूँ', वह उसकी सर्वोच्च अवस्था है।

IV-iii-21: वह उसका रूप है - इच्छाओं से परे, बुराइयों से मुक्त और निर्भय। जैसे एक पुरुष, अपनी प्यारी पत्नी के साथ पूरी तरह से आलिंगन में, कुछ भी नहीं जानता, न तो बाहरी और न ही आंतरिक, वैसे ही यह अनंत प्राणी (आत्मा), जो पूरी तरह से परम आत्मा के साथ आलिंगन में है, कुछ भी नहीं जानता, न तो बाहरी और न ही आंतरिक। वह उसका रूप है - जिसमें सभी इच्छाएँ प्राप्त हो गई हैं और वह केवल आत्मा है, और जो इच्छा से मुक्त है और शोक से रहित है।

IV-iii-22: इस अवस्था में पिता पिता नहीं रहता, माता माता नहीं रहती, लोक लोक नहीं रहते, देवता देवता नहीं रहते, वेद वेद नहीं रहते। इस अवस्था में चोर चोर नहीं रहता, कुलीन ब्राह्मण का हत्यारा हत्यारा नहीं रहता, चांडाल चांडाल नहीं रहता, पुलकश पुलकश नहीं रहता, साधु साधु नहीं रहता, साधु संन्यासी नहीं रहता। (उसका यह रूप) अच्छे कर्मों से अछूता रहता है और बुरे कर्मों से अछूता रहता है, क्योंकि तब वह अपने हृदय (बुद्धि) के सभी दुखों से परे रहता है।

IV-iii-23: वह उस अवस्था में नहीं देखता, क्योंकि तब देखते हुए भी वह नहीं देखता; क्योंकि साक्षी की दृष्टि कभी नष्ट नहीं हो सकती, क्योंकि वह

अविनाशी है। लेकिन उससे पृथक कोई दूसरी वस्तु नहीं है, जिसे वह देख सके।

IV-iii-24: वह उस अवस्था में गंध नहीं सूंघता, क्योंकि तब गंध लेते हुए भी वह गंध नहीं करता; क्योंकि सूंघने वाले की सूंघने की क्षमता कभी नष्ट नहीं हो सकती, क्योंकि यह अविनाशी है। लेकिन ऐसा दूसरा गुण नहीं है उससे पृथक कोई वस्तु नहीं है जिसे वह सूँघ सकता है।

IV-iii-25: वह उस अवस्था में स्वाद नहीं लेता, क्योंकि तब स्वाद लेते हुए भी वह स्वाद नहीं लेता; क्योंकि चखने वाले का स्वाद लेने का कार्य कभी नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि वह अविनाशी है। लेकिन उससे पृथक कोई दूसरी वस्तु नहीं है जिसे वह चख सकता है।

IV-iii-26: वह उस अवस्था में नहीं बोलता, क्योंकि तब बोलते हुए भी वह बोलता नहीं है; क्योंकि बोलने वाले का बोलने का कार्य कभी नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि वह अविनाशी है। लेकिन उससे पृथक कोई दूसरी वस्तु नहीं है जिसे वह बोल सकता है।

IV-iii-27: वह उस अवस्था में नहीं सुनता, क्योंकि तब सुनते हुए भी वह सुनता नहीं है; क्योंकि सुनने वाले का सुनने का कार्य कभी नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि वह अविनाशी है। लेकिन उससे पृथक कोई दूसरी वस्तु नहीं है जिसे वह सुन सकता है।

IV-iii-28: वह उस अवस्था में नहीं सोचता, क्योंकि तब सोचते हुए भी वह सोचता नहीं है; क्योंकि विचारक का सोचने का कार्य कभी नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि वह अविनाशी है। लेकिन उससे अलग कोई दूसरी चीज़ नहीं है जिसे वह सोच सके।

IV-iii-29: वह उस अवस्था में स्पर्श नहीं करता, क्योंकि तब स्पर्श करने पर भी वह स्पर्श नहीं करता; क्योंकि स्पर्श करने वाले का स्पर्श करने का कार्य कभी नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि वह अविनाशी है। लेकिन उससे अलग कोई दूसरी चीज़ नहीं है जिसे वह छू सके।

IV-iii-30: वह उस अवस्था में नहीं जानता, क्योंकि तब जानने पर भी वह नहीं जानता; क्योंकि जानने वाले का जानने का कार्य कभी नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि वह अविनाशी है। लेकिन उससे अलग कोई दूसरी चीज़ नहीं है जिसे वह जान सके।

IV-iii-31: जब कुछ और होता है, तो कोई कुछ देख सकता है, कोई कुछ सूँघ सकता है, कोई कुछ चख सकता है, कोई कुछ बोल सकता है, कोई कुछ सुन सकता है, कोई कुछ सोच सकता है, कोई कुछ छू सकता है, या कोई कुछ जान सकता है।

चतुर्थ-तृतीय-३२: वह जल के समान पारदर्शी, एक, साक्षी और दूसरा रहित हो जाता है। हे सम्राट, यह ब्रह्म का क्षेत्र है। इस प्रकार याज्ञवल्क्य ने जनक को उपदेश दिया: यही इसकी परम प्राप्ति है, यही इसकी परम महिमा है, यही इसका सर्वोच्च लोक है, यही इसका परम आनंद है। इसी आनंद के एक कण पर अन्य प्राणी रहते हैं।

चतुर्थ-तृतीय-३३: जो शरीर से उत्तम और मनुष्यों में समृद्ध है, दूसरों का शासक है, और सभी मानवीय भोगों से सबसे अधिक संपन्न है, वह मनुष्यों में सबसे अधिक आनंद का प्रतिनिधित्व करता है। यह मानवीय आनंद सौ गुना बढ़कर उन पितरों के लिए एक इकाई आनंद बन जाता है जिन्होंने अपना वह लोक जीत लिया है। उन पितरों का आनंद जिन्होंने उस लोक को जीत लिया है, सौ गुना बढ़कर दिव्य गायकों के लोक में एक इकाई आनंद बन जाता है। दिव्य गायकों के लोक में यह आनंद सौ गुना बढ़कर कर्म से देवताओं के लिए एक इकाई आनंद बन जाता है - जिन्होंने अपने कर्मों से देवत्व प्राप्त कर लिया है। देवताओं के कर्म से यह आनंद सौ गुना बढ़कर जन्म से देवताओं के लिए एक इकाई आनंद बन जाता है, साथ ही वेदों में पारंगत, पापरहित और इच्छा से मुक्त व्यक्ति के लिए भी एक इकाई आनंद बन जाता है।

देवताओं के जन्म से यह आनंद सौ गुना बढ़कर प्रजापति (विरज) के लोक में एक इकाई आनंद बन जाता है, साथ ही वेदों में पारंगत, पापरहित और इच्छा से मुक्त व्यक्ति के लिए भी एक इकाई आनंद बन जाता है। प्रजापति के लोक में यह आनंद सौ गुना बढ़कर ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) के लोक में एक इकाई आनंद बन जाता है, साथ ही वेदों में पारंगत, पापरहित और इच्छा से मुक्त व्यक्ति के लिए भी। यह वास्तव में परम आनंद है। हे सम्राट, यह ब्रह्म की स्थिति है, याज्ञवल्क्य ने कहा। 'मैं आपको एक हजार (गाय) देता हूं, श्रीमान्। मुझे मोक्ष के विषय में और अधिक बताइए।' इस पर याज्ञवल्क्य को भय हुआ कि बुद्धिमान सम्राट मुझे अपने सभी निष्कर्ष समाप्त करने के लिए बाध्य तो नहीं कर रहे हैं।

IV-III-34: स्वप्नावस्था में भोग-विलास करके तथा केवल पाप-पुण्य के प्रभाव को देखकर वह विपरीत क्रम से अपनी पूर्व अवस्था, जाग्रत अवस्था में आ जाता है।

IV-III-35: जैसे भारी सामान से लदी गाड़ी घरघराती रहती है, वैसे ही शरीर में स्थित आत्मा, परमात्मा के अधीन होकर, जब श्वास कठिन हो जाती है, तब ध्वनि करती हुई जाती है।

IV-III-36: जब यह शरीर बुढ़ापे या रोग के कारण दुबला-पतला हो जाता है, तब जैसे आम, अंजीर या पीपल का फल अपने डंठल से अलग हो जाता है, वैसे ही यह अनंत जीव, शरीर के अंगों से अपने को पूरी तरह अलग करके, जिस प्रकार आया था, उसी प्रकार अपनी प्राणशक्ति के प्रकटीकरण के लिए, पुनः विशेष शरीरों में चला जाता है।

चतुर्थ-तृतीय-३७: जैसे राजा के आने पर उग्र लोग विशेष अपराधों के विरुद्ध खड़े होते हैं, सूत और ग्राम के नेता तरह-तरह के खाने-पीने और महल तैयार करके उसकी प्रतीक्षा करते हैं और कहते हैं, 'वह आ रहा है, वह आ रहा है', वैसे ही जो व्यक्ति अपने कर्म के परिणामों को जानता है, उसके लिए सभी तत्व प्रतीक्षा करते हैं और कहते हैं, 'ब्रह्म आ रहा है, वह आ रहा है'।

चतुर्थ-तृतीय-३८: जैसे राजा के जाने पर उग्र लोग विशेष अपराधों के विरुद्ध खड़े होते हैं, सूत और ग्राम के नेता उसके पास आते हैं, वैसे ही मृत्यु के समय जब श्वास लेना कठिन हो जाता है, तब सभी इन्द्रियाँ उसके पास आती हैं।

चतुर्थ-तृतीय-१: जब यह आत्मा दुर्बल और अचेतन हो जाती है, तब इन्द्रियाँ उसके पास आती हैं। इन प्रकाश कणों को पूरी तरह से वापस खींचकर वह हृदय में आती है। जब नेत्र का अधिष्ठाता देवता सब ओर से वापस लौट जाता है, तब मनुष्य रंग को देख नहीं पाता।

IV-IV-2: (आँख) एक हो जाती है (सूक्ष्म शरीर के साथ); तब लोग कहते हैं, 'वह नहीं देखता'। (नाक) एक हो जाती है; तब वे कहते हैं, 'वह सूँघता नहीं'। (जीभ) एक हो जाती है; तब वे कहते हैं, 'वह स्वाद नहीं लेता'। (वाक् इन्द्रिय) एक हो जाती है; तब वे कहते हैं, 'वह बोलता नहीं'। (कान) एक हो जाता है; तब वे कहते हैं, 'वह सुनता नहीं'। (मनस) एक हो जाता है; तब वे कहते हैं, 'वह सोचता नहीं'। (त्वचा) एक हो जाती है; तब वे कहते हैं, 'वह

स्पर्श नहीं करता'। (बुद्धि) एक हो जाती है; तब वे कहते हैं, 'वह नहीं जानता'। हृदय का शीर्ष चमक उठता है।

उस चमकते हुए शीर्ष से आत्मा विदा होती है, या तो आँख से, या सिर से, या शरीर के किसी अन्य भाग से। जब वह विदा होती है, तो प्राणशक्ति उसका अनुसरण करती है; जब प्राणशक्ति विदा होती है, तो सभी इन्द्रियाँ उसका अनुसरण करती हैं। फिर आत्मा में विशेष चेतना होती है, और वह उस चेतना से संबंधित शरीर में जाती है। इसके बाद ज्ञान, कर्म और पिछले अनुभव आते हैं।

IV-IV-3: जिस प्रकार एक जोंक एक तिनके पर टिकी होती है, उसके सिरे पर जाती है, दूसरा सहारा पकड़ती है और खुद को सिकोड़ती है, उसी प्रकार आत्मा इस शरीर को एक तरफ फेंक देती है - इसे बेजान बना देती है - दूसरा सहारा पकड़ती है, और खुद को सिकोड़ती है।

IV-IV-4: जिस प्रकार एक सुनार थोड़ा सा सोना अलग करके दूसरा - एक नया और बेहतर - रूप बनाता है, उसी प्रकार आत्मा इस शरीर को फेंक देती है, या इसे बेजान बना देती है, और दूसरा - एक नया और बेहतर - रूप बनाती है जो पितरों या दिव्य गायकों, या देवताओं, या विराज, या हिरण्यगर्भ, या अन्य प्राणियों के अनुकूल होता है। च

तुर्थ-पंचम: वह आत्मा वास्तव में ब्रह्म है, जो बुद्धि, मन और प्राण से, नेत्र और कान से, पृथ्वी, जल, वायु और आकाश से, अग्नि से और अग्नि के अतिरिक्त जो कुछ है, इच्छा और इच्छा का अभाव, क्रोध और क्रोध का अभाव, धर्म और अधर्म से, प्रत्येक वस्तु से - वास्तव में, इससे (जो माना जाता है) और उससे (जो अनुमान लगाया जाता है) से - एकरूप है। जैसा वह करता है और कार्य करता है, वैसा ही बन जाता है; अच्छा करने से वह अच्छा बन जाता है, और बुरा करने से वह बुरा बन जाता है - अच्छे कार्यों से वह पुण्यवान और बुरे कार्यों से दुष्ट बन जाता है। हालाँकि, अन्य लोग कहते हैं, 'आत्मा केवल इच्छा से ही एकरूप है। वह जो चाहती है, उसे पूरा करती है; जो वह तय करती है, उसे पूरा करती है; और जो वह पूरा करती है, उसे प्राप्त करती है।'

चतुर्थ-पंचम: इसके संबंध में निम्नलिखित सारगर्भित श्लोक है: 'वह आसक्त होकर, कार्य के साथ-साथ उस परिणाम को प्राप्त करता है, जिससे उसका सूक्ष्म शरीर या मन आसक्त होता है। इस जीवन में किए गए कर्मों का फल भोगकर वह इस लोक से पुनः कर्म के लिए इस लोक में लौटता है।

इस प्रकार कामना करने वाला मनुष्य (देहान्तरण) करता है। किन्तु जो कामना नहीं करता, वह कभी भी (देहान्तरण) नहीं करता। जो कामनाओं से रहित है, कामनाओं से मुक्त है, जिसकी कामनाओं के विषय प्राप्त हो चुके हैं, तथा जिसकी कामनाओं के विषय केवल आत्मा ही हैं, उसकी इन्द्रियाँ कभी नहीं जातीं। वह ब्रह्म ही होने के कारण ब्रह्म में ही लीन हो जाता है।

चतुर्थ-पंचम-सातवें: इस विषय में यह सारगर्भित श्लोक है: 'जब उसके हृदय (मन) में स्थित समस्त कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब वह नश्वर होते हुए भी अमर हो जाता है, तथा इसी शरीर में ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।' जैसे साँप का केंचुली उतारकर चींटी के टीले में पड़ा रहता है, वैसे ही यह शरीर भी पड़ा रहता है। तब आत्मा देहरहित और अमर हो जाती है, प्राण (परमात्मा), ब्रह्म, प्रकाश बन जाती है। विदेह के सम्राट जनक ने कहा, 'मैं आपको एक हजार (गाय) देता हूं।'

IV-IV-8: इसके संबंध में निम्नलिखित सारगर्भित श्लोक हैं: सूक्ष्म, व्यापक, प्राचीन मार्ग ने मुझे छुआ है। (नहीं) मैंने स्वयं इसे महसूस किया है। उसके माध्यम से ऋषियों - ज्ञानियों ने ब्रह्म - इस शरीर के पतन के पश्चात् (जीवित रहते हुए भी) मुक्त होकर स्वर्गलोक (मुक्ति) में जाते हैं।

IV-IV-9: कुछ लोग इसे सफेद कहते हैं, अन्य लोग इसे नीला, धूसर, हरा या लाल कहते हैं। यह मार्ग ब्राह्मण (ब्रह्म के ज्ञाता) द्वारा प्राप्त किया जाता है। कोई भी अन्य ब्रह्म का ज्ञाता जिसने अच्छे कर्म किए हैं और जो परम प्रकाश से पहचाना जाता है, वह भी इस मार्ग पर चलता है।

IV-IV-10: अज्ञान (अनुष्ठान) की पूजा करने वाले लोग अन्धकार (अज्ञान) में प्रवेश करते हैं। उससे भी अधिक अन्धकार में वे लोग प्रवेश करते हैं जो ज्ञान (वेदों का अनुष्ठान भाग) के प्रति समर्पित हैं।

IV-IV-11: अन्धकार (अज्ञान) से घिरे हुए वे लोक दुःखी हैं। मृत्यु के पश्चात् वे लोग उन्हीं में जाते हैं जो अज्ञानी और मूर्ख हैं। चतुर्थ-पंद्रह-१२: यदि मनुष्य आत्मा को 'मैं यह हूँ' के रूप में जानता है, तो वह किसकी इच्छा से और किसके लिए शरीर के कारण दुःख भोगेगा?

चतुर्थ-पंद्रह-१३: जिसने इस संकटमय और दुर्गम स्थान (शरीर) में प्रविष्ट आत्मा को जान लिया है, वही इस जगत का रचयिता है, क्योंकि वही सबका रचयिता है, (सब कुछ) उसका अपना है,और वही वास्तव में (सबका) अपना ही है।

चतुर्थ-पंद्रह-१४: इसी शरीर में रहते हुए हमने किसी प्रकार उस (ब्रह्म) को जान लिया है। यदि नहीं, तो (मैं) अज्ञानी होता, (और) महान विनाश (हो जाता)। जो इसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं, जबकि अन्य केवल दुःख प्राप्त करते हैं। च

तुर्थ-पंद्रह-१५: जब कोई मनुष्य (गुरु से शिक्षा प्राप्त करके) प्रत्यक्ष रूप से इस तेजोमय आत्मा को, जो सब कुछ हुआ है और जो होगा, उसका स्वामी है, तब वह उससे छिपना नहीं चाहता।

चतुर्थ-चतुर्थ-१६: जिसके नीचे वर्ष अपने दिनों सहित घूमता है, उस अमर ज्योति का देवतागण दीर्घायु के रूप में ध्यान करते हैं।

चतुर्थ-चतुर्थ-१७: जिसमें पंच समूह तथा सूक्ष्म आकाश स्थित हैं, उसी आत्मा को मैं अमर ब्रह्म मानता हूँ। ब्रह्म को जानकर मैं अमर हूँ।

चतुर्थ-चतुर्थ-१८: जिन्होंने प्राण की प्राणशक्ति, नेत्र की आँख, कान की कान तथा मन की मनशक्ति को जान लिया है, उन्होंने प्राचीन आदि ब्रह्म को जान लिया है।

चतुर्थ-चतुर्थ-१९: मन के द्वारा ही उसे अनुभव करना है। उसमें किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। जो उसमें भेद देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु की ओर जाता है।

चतुर्थ-चतुर्थ-२०: उसे केवल एक रूप में ही अनुभव करना चाहिए, क्योंकि वह अज्ञेय तथा शाश्वत है। आत्मा निष्कलंक, सूक्ष्म आकाश से परे, जन्महीन, अनंत और स्थिर है।

IV-IV-21: ब्रह्म के अनुयायी बुद्धिमान साधक को केवल इसी को जानकर सहजज्ञान प्राप्त करना चाहिए। (उसे) बहुत अधिक शब्दों के बारे में नहीं सोचना चाहिए, क्योंकि यह वाणी के अंग को विशेष रूप से थका देने वाला है।

IV-IV-22: वह महान, जन्महीन आत्मा जो बुद्धि से पहचानी जाती है और इंद्रियों के बीच में है, हृदय के भीतर आकाश में स्थित है। यह सबका नियंत्रक है, सबका स्वामी है, सबका शासक है।

यह न तो अच्छे काम से बढ़ता है और न ही बुरे काम से बिगड़ता है। यह सबका स्वामी है, यह सभी प्राणियों का शासक है, यह सभी प्राणियों का रक्षक है। यह वह किनारा है जो विभिन्न दुनियाओं को अलग रखने के लिए सीमा का काम करता है। ब्राह्मण वेदों के अध्ययन, यज्ञ, दान और इन्द्रिय-विषयों के वैराग्यपूर्ण भोग सहित तपस्या के द्वारा उसे जानने का प्रयास करते हैं।

उसे जानने से ही मनुष्य मुनि बन जाता है। केवल इस संसार (आत्मा) की इच्छा रखते हुए ही मुनि घर-बार त्याग देते हैं। यही (इसका कारण) है; कहा जाता है कि प्राचीन ऋषियों ने संतान की इच्छा नहीं की (यह सोचकर कि, 'हम जिन्होंने इस आत्मा को, इस संसार (परिणाम) को प्राप्त कर लिया है, संतान से हमें क्या मिलेगा?' कहा जाता है कि उन्होंने पुत्र, धन और लोकों की इच्छा को त्याग दिया और भिक्षुक का जीवन व्यतीत किया।

जो पुत्रों की इच्छा है, वह धन की इच्छा है और जो धन की इच्छा है, वह लोकों की इच्छा है, क्योंकि ये दोनों ही इच्छाएँ हैं। यह आत्मा वह है, जिसे 'यह नहीं, यह नहीं' कहा गया है। यह अगोचर है, क्योंकि यह कभी देखा नहीं जाता; अविनाशी है, क्योंकि यह कभी नष्ट नहीं होता; अनासक्त, क्योंकि वह कभी आसक्त नहीं होता; बंधन-रहित - उसे कभी दर्द नहीं होता, और कभी चोट नहीं लगती। (यह उचित ही है) कि ऋषि को कभी भी ये दो विचार नहीं आते कि 'मैंने इसके लिए बुरा काम किया', 'मैंने इसके लिए अच्छा काम किया'।

वह इन दोनों पर विजय प्राप्त कर लेता है। किए गए या न किए गए कार्य उसे परेशान नहीं करते चतुर्थ चतुर्थ-२३: इसे निम्न सूक्त द्वारा व्यक्त किया गया है: ब्रह्म के ज्ञाता की यही सनातन महिमा है: कर्म से न तो वह बढ़ता है, न घटता है। (अतः) उसी के स्वरूप को जानना चाहिए। इसे जानने से मनुष्य पाप कर्म से ग्रस्त नहीं होता। इसलिए जो इसे इस प्रकार जानता है, वह संयमी, शान्त, अपने में लीन, धीरजवन्त और एकाग्र हो जाता है, तथा अपने शरीर में आत्मा को देखता है; वह सबको आत्मा के रूप में देखता है। बुराई उसे पकड़ नहीं पाती, बल्कि वह सभी बुराइयों से परे हो जाता है।

बुराई उसे परेशान नहीं करती, (बल्कि) वह सभी बुराइयों को भस्म कर देता है। वह निष्पाप, निष्कलंक, संशय से रहित और ब्रह्म (ब्रह्म को जानने वाला) हो जाता है। हे सम्राट, यह ब्रह्म का लोक है और आपने इसे प्राप्त

कर लिया है - याज्ञवल्क्य ने कहा। 'मैं आपको विदेह का साम्राज्य देता हूँ, और उसके साथ मैं भी आपकी सेवा में हूँ।'

चतुर्थ चतुर्थ-24: वह महान, अजन्मा आत्मा अन्न का भक्षक और धन (कर्म का फल) देने वाली है। जो उसे इस रूप में जानता है, वह धन (फल) प्राप्त करता है।

चतुर्थ चतुर्थ-25: वह महान, अजन्मा आत्मा अविनाशी, अमर, अविनाशी, निर्भय और ब्रह्म (अनंत) है। ब्रह्म निःसंदेह निर्भय है। जो उसे इस रूप में जानता है, वह निःसंदेह निर्भय ब्रह्म बन जाता है।

चतुर्थ पंचम-1: याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। इनमें से मैत्रेयी ब्रह्म की चर्चा करती थीं, जबकि कात्यायनी का दृष्टिकोण केवल स्त्रैण था। एक दिन याज्ञवल्क्य ने जीवन को अपनाने के उद्देश्य से कहा -

चतुर्थ पंचम-2: 'हे मैत्रेयी, मेरी प्रिये', याज्ञवल्क्य ने कहा, 'मैं संन्यास के लिए इस जीवन का त्याग करने जा रहा हूँ। मुझे आपके और कात्यायनी के बीच अपनी बात समाप्त करने की अनुमति दें।'

चतुर्थ श्लोक 3: तब मैत्रेयी ने कहा, 'महाराज, यदि यह सम्पूर्ण पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण मेरी हो जाए, तो क्या मैं इससे अमर हो जाऊँगी या नहीं?' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, 'नहीं, तुम्हारा जीवन उन लोगों के समान होगा, जिनके पास बहुत कुछ है, किन्तु धन से अमरता की आशा नहीं है।'

चतुर्थ श्लोक 4: तब मैत्रेयी ने कहा, 'मैं उस वस्तु का क्या करूँ, जिससे मैं अमर न हो जाऊँ? मुझे केवल वही बताइए, जिसे आप जानते हैं (जो अमरता का एकमात्र साधन है)।'

चतुर्थ श्लोक 5: याज्ञवल्क्य ने कहा, 'हे प्रियतम, तुम पहले भी मेरे प्रिय रहे हो, और तुमने मेरे हृदय की बात को बड़ा करके बताया है। यदि तुम चाहो, प्रियतम, तो मैं तुम्हें इसका अर्थ समझा दूँगा। जैसे-जैसे मैं इसका अर्थ समझाऊँगा, तुम इसका अर्थ समझो।

IV-v-6: उन्होंने कहा: 'मेरे प्रिय, पति के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है। मेरे प्रिय, पत्नी के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता

है। मेरे प्रिय, बेटों के लिए उनसे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है। मेरे प्रिय, धन के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है। मेरे प्रिय, ब्राह्मण के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है। मेरे प्रिय, क्षत्रिय के लिए उससे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है। मेरे प्रिय, संसार के लिए उनसे प्रेम नहीं किया जाता, बल्कि अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है।

हे प्रिये, देवताओं के लिए उनसे प्रेम नहीं किया जाता, अपितु अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है। हे प्रिये, प्राणियों के लिए उनसे प्रेम नहीं किया जाता, अपितु अपने लिए ही उनसे प्रेम किया जाता है। हे प्रिये, सबके लिए सब से प्रेम नहीं किया जाता, अपितु अपने लिए ही उससे प्रेम किया जाता है। हे मैत्रेयी, आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए - उसका श्रवण, मनन और ध्यान करना चाहिए। हे प्रिये, जब आत्मा का साक्षात्कार श्रवण, मनन और ध्यान से होता है, तब यह सब जान लिया जाता है।

चतुर्थ-पंचम-सातवें श्लोक में ब्राह्मण उस व्यक्ति को निकाल देता है, जो उसे आत्मा से भिन्न जानता है। क्षत्रिय उस व्यक्ति को निकाल देता है, जो उसे आत्मा से भिन्न जानता है। संसार उस व्यक्ति को निकाल देता है, जो उसे आत्मा से भिन्न जानता है। देवता उस व्यक्ति को निकाल देते हैं, जो उसे आत्मा से भिन्न जानता है। वेद उस व्यक्ति को निकाल देते हैं जो उन्हें आत्मा से भिन्न जानता है। प्राणी उस व्यक्ति को निकाल देते हैं जो उन्हें आत्मा से भिन्न जानता है। सभी प्राणी उस व्यक्ति को निकाल देते हैं जो उन्हें आत्मा से भिन्न जानता है। यह ब्राह्मण, यह क्षत्रिय, ये लोक, ये देवता, ये वेद, ये प्राणी और ये सभी - यह आत्मा है।

IV-V-8: जैसे, जब ढोल बजाया जाता है, तो कोई उसके विभिन्न विशेष स्वरों को नहीं पहचान सकता, लेकिन वे ढोल के सामान्य स्वर में या विभिन्न प्रकार के आघातों द्वारा उत्पन्न सामान्य ध्वनि में शामिल होते हैं।

IV-V-9: जैसे, जब शंख बजाया जाता है, तो कोई उसके विभिन्न विशेष स्वरों को नहीं पहचान सकता, लेकिन वे शंख के सामान्य स्वर में या विभिन्न प्रकार के आघातों द्वारा उत्पन्न सामान्य ध्वनि में शामिल होते हैं।
बजाना।

IV-v-10: जैसे, जब वीणा बजाई जाती है, तो कोई उसके विभिन्न विशेष स्वरों में अंतर नहीं कर सकता, लेकिन वे वीणा के सामान्य स्वर में या विभिन्न प्रकार के वादन द्वारा उत्पन्न सामान्य ध्वनि में शामिल होते हैं।

IV-v-11: जैसे गीली लकड़ियों से प्रज्वलित अग्नि से विभिन्न प्रकार के धुएँ निकलते हैं, वैसे ही हे मेरे प्यारे,ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पौराणिक कथाएँ, कलाएँ, उपनिषद, सारगर्भित छंद,सूत्र, व्याख्याएँ, व्याख्याएँ, यज्ञ, अग्नि में आहुति, भोजन, पेय, यह लोक, परलोक और सभी प्राणी इस अनंत वास्तविकता की साँस की तरह हैं। वे इस (परमात्मा) की साँस की तरह हैं।

चतुर्थ श्लोक 12: जैसे समुद्र सभी प्रकार के जल का एक लक्ष्य है, जैसे त्वचा सभी प्रकार के स्पर्श का एक लक्ष्य है, जैसे नासिका सभी गंधों का एक लक्ष्य है, जैसे जीभ सभी स्वादों का एक लक्ष्य है, जैसे आंख सभी रंगों का एक लक्ष्य है, जैसे कान सभी ध्वनियों का एक लक्ष्य है, जैसे मन सभी विचारों का एक लक्ष्य है, जैसे बुद्धि सभी प्रकार के ज्ञान का एक लक्ष्य है, जैसे हाथ सभी प्रकार के कामों का एक लक्ष्य है, जैसे प्रजनन अंग सभी प्रकार के आनंद का एक लक्ष्य है, जैसे गुदा सभी मल त्याग का एक लक्ष्य है, जैसे पैर सभी प्रकार के चलने का एक लक्ष्य हैं, जैसे वाणी का अंग सभी वेदों का एक लक्ष्य है।

चतुर्थ श्लोक 13: जैसे नमक का टुकड़ा भीतर या बाहर से रहित, संपूर्ण और स्वाद में शुद्ध रूप से खारा होता है, वैसे ही आत्मा भीतर या बाहर से रहित, संपूर्ण और केवल शुद्ध बुद्धि है। (आत्मा) इन तत्वों से (एक पृथक इकाई के रूप में) निकलती है, और (यह पृथकता) उनके साथ नष्ट हो जाती है। (इस एकता को प्राप्त करने के बाद) उसमें कोई चेतना नहीं रहती। यही मैं कहता हूँ, मेरे प्रिय। ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा।

4-v-14: मैत्रेयी ने कहा, 'अभी आपने मुझे भ्रम के बीच में ले जाया है, श्रीमान्, मैं इसे बिल्कुल नहीं समझती'। उन्होंने कहा, 'निश्चित रूप से, मैं कोई भ्रमित करने वाली बात नहीं कह रही हूँ। यह आत्मा वास्तव में अपरिवर्तनीय और अविनाशी है, मेरे प्रिय'।

4-v-15: क्योंकि जब द्वैत होता है, तो व्यक्ति कुछ देखता है, कोई कुछ सूंघता है, कोई कुछ चखता है, कोई कुछ बोलता है, कोई कुछ सुनता है, कोई कुछ सोचता है, कोई कुछ छूता है, कोई कुछ जानता है। (परन्तु) जब ब्रह्म को जानने वाले के लिए सब कुछ आत्मा ही हो गया है, तब क्या देखे

और किसके द्वारा, क्या सूँघे और किसके द्वारा, क्या चखे और किसके द्वारा, क्या बोले और किसके द्वारा, क्या सुने और किसके द्वारा, क्या सोचे और किसके द्वारा, क्या स्पर्श करे और किसके द्वारा, क्या जाने और किसके द्वारा ? जिसे यह सब जाना जाता है, उसे किससे जाने ? यह आत्मा वह है, जिसे 'यह नहीं, यह नहीं' कहा गया है।

यह अगोचर है, क्योंकि यह कभी देखा नहीं जाता; अविनाशी है, क्योंकि यह कभी नष्ट नहीं होता; अनासक्त है, क्योंकि यह कभी आसक्त नहीं होता; उन्मुक्त है - यह कभी दुःख अनुभव नहीं करता, और कभी चोट नहीं खाता। हे मैत्रेयी, ज्ञाता को किससे जाना जाए ? तो तुम्हें शिक्षा मिल गई, मैत्रेयी। इतना ही अमरता का साधन है, हे प्रिये। इतना कहकर याज्ञवल्क्य चले गए। IV-vi-1: अब शिक्षकों की पंक्ति: गौपवन से पौतिमस्य (प्राप्त)। अन्य पौतिमास्य से गौपवना। यह पौतिमास्य दूसरे गौपवन से। कौशिका से यह गौपवन। कौंडिन्य से कौशिका. शाण्डिल्य से कौण्डिन्य। कौशिका और गौतम से सांडिल्य। गौतम -

IV-vi-2: अग्निवेश्य से। सांडिल्य और अनाभिमलता से अग्निवेश्य। उसी नाम के दूसरे नाम से अनभिनलता। वह एक तीसरी अनाभिमलता से। यह अनाभिमलता गौतम से। शैतव और प्राचिनयोग्य से गौतम। वे पारासर्या से हैं। भारद्वाज से पारासर्य। वह भारद्वाज और गौतम से।दूसरे भरतध्वज से गौतम। वह दूसरे पारासर्य से। बैजवापायन से पाराशर्य। वह कौशिकायनि से। कौशिकायनी -

IV-vi-3: घृतकौशिक से। पाराशर्याण से घृतकौशिक। वह पारासरया से. जातुकर्ण्य से पारासर्य। असुरायण और यास्क से जातुकर्ण्य। त्रैवनि से असुरायण। औपजंधनी से त्रैवाणी. वह आसुरी से. भारद्वाज से आसुरी. आत्रेय से भारद्वाज. मांटी से आत्रेय.गौतम से मंति. गौतम दूसरे गौतम से. वह वत्स्य से. सांडिल्य से वात्स्य.कैसोर्या कप्या से सांडिल्य। वह कुमारहरिता से. गालव से कुमारहरिता। विदर्भि-कौण्डिन्य से गालव। वह वत्सनापत बभ्रवा से. वह पथिन सौभरा से हैं। वह अयास्या से अंगिरस। वे अभूति त्वष्ट्र से। वे विश्वरूप त्वष्ट्र से। वे अश्विन से। वे दध्यक अथर्वण से। वे अथर्वण दैव से। वे मृत्युप्रध्वंसन से। वे प्रध्वंसन से। प्रध्वंसन एकरसी से। एकरसी विप्रचित्ति से। विप्रचित्ति व्यासरि से। व्यास्ति सनरु से। सनरु सनातन से। सनातन सनागा से। सनागा परमेस्थिन (विराज) से। वे ब्रह्म (हिरण्यबरभ) से। ब्रह्म स्वयंभू है। ब्रह्म को नमस्कार है।

वी-आई-१: ॐ। वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत अनंत से निकलता है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए, यह अनंत (ब्रह्म) के रूप में अकेला रहता है। ॐ आकाश-ब्रह्म है - शाश्वत आकाश। कौरवयान के पुत्र ने कहा, 'वायु युक्त आकाश'। यह वेद है, (इसलिए) ब्राह्मण (ब्रह्म के जानने वाले) जानते हैं; (क्योंकि) इसके माध्यम से वह जाना जाता है जो जाना जाना है।

V-ii-1: प्रजापति के पुत्रों की तीन श्रेणियाँ अपने पिता, प्रजापति (विराज) के साथ संयम का जीवन व्यतीत करती थीं -देवता, मनुष्य और असुर। देवताओं ने, अपनी अवधि पूरी होने पर कहा, 'कृपया हमें निर्देश दें'। उसने उन्हें 'दा' अक्षर बताया (और पूछा), 'क्या तुम समझ गए?' (उन्होंने) कहा, 'हमने समझ लिया है। आप हमें बताएं: अपने आप पर नियंत्रण रखें'। (उसने) कहा, 'हाँ, आप समझ गए हैं'।

V-ii-2: तब मनुष्यों ने उससे कहा, 'कृपया हमें निर्देश दें'। उन्होंने उनसे वही अक्षर 'दा' कहा (और पूछा), 'क्या तुम समझ गए हो?' (उन्होंने) कहा, 'हमने समझ लिया है। आप हमें बताइए: दीजिए'। (उन्होंने) कहा, 'हां, आपने समझ लिया है'।

V-ii-3: तब असुरों ने उनसे कहा, 'कृपया हमें शिक्षा दीजिए'। उन्होंने उनसे वही अक्षर 'दा' कहा (और पूछा), 'क्या तुम समझ गए हो?' (उन्होंने) कहा, 'हमने समझ लिया है। आप हमें बताइए: दया कीजिए'। (उन्होंने) कहा, 'हां, आपने समझ लिया है'। यही बात आकाशवाणी, बादल द्वारा 'दा', 'दा', 'दा' के रूप में दोहराई गई है:'अपने आप को नियंत्रित करो', 'दे दो', और 'दया करो'। इसलिए व्यक्ति को इन तीनों को सीखना चाहिए – आत्म-नियंत्रण, दान और दया।

V-iii-1: यह प्रजापति है - यह हृदय (बुद्धि)। यह ब्रह्म है, यह सब कुछ है। 'हृदय' (हृदय) के तीन अक्षर हैं। 'हृ' एक अक्षर है। जो उपरोक्त रूप से जानता है, उसके अपने लोग तथा दूसरे लोग उसे उपहार देते हैं। 'दा' दूसरा अक्षर है। जो उपरोक्त रूप से जानता है, उसके अपने लोग तथा दूसरे लोग उसे अपनी शक्तियाँ देते हैं। 'य' दूसरा अक्षर है। जो उपरोक्त रूप से जानता है, वह स्वर्ग जाता है।

V-4-1: वह (बुद्धि-ब्रह्म) केवल यही था - केवल सत्य (स्थूल तथा सूक्ष्म)। जो इस महान, पूजनीय, प्रथम-जन्मे (सत्ता) को सत्य-ब्रह्म के रूप में जानता है, वह इन लोकों को जीत लेता है तथा उसका (शत्रु) भी इस प्रकार

जीत लिया जाता है तथा अस्तित्वहीन हो जाता है - जो इस महान, पूजनीय, प्रथम-जन्मे (सत्ता) को सत्य-ब्रह्म के रूप में जानता है, क्योंकि सत्य ही ब्रह्म है।

V-5-1: यह (ब्रह्मांड) प्रारंभ में जल (यज्ञों से संबंधित द्रव आहुति) था। उस जल से सत्य उत्पन्न हुआ। सत्य ही ब्रह्म है। ब्रह्म ने प्रजापति को उत्पन्न किया, तथा प्रजापति ने देवताओं को उत्पन्न किया। वे देवता केवल सत्य का ध्यान करते हैं। इस (नाम) सत्य में तीन अक्षर हैं: 'यज्ञ' एक अक्षर है, 'ति' दूसरा अक्षर है, और 'य' तीसरा अक्षर है। पहला और अंतिम अक्षर सत्य है। बीच में असत्य है। यह असत्य दोनों ओर सत्य से घिरा हुआ है। (इसलिए) सत्य की प्रधानता है। जो उपर्युक्त रूप से जानता है, वह असत्य से कभी पीड़ित नहीं होता।

श्लोक 2: जो सत्य है, वह सूर्य है - वह प्राणी जो उस क्षेत्र में है और वह प्राणी जो दाहिनी आँख में है। ये दोनों एक दूसरे पर टिके हुए हैं। पहला किरणों के माध्यम से दूसरे पर टिके हुए हैं, और दूसरा आँखों के कार्य के माध्यम से पहले पर टिके हुए हैं। जब कोई व्यक्ति शरीर छोड़ने वाला होता है, तो वह सूर्य क्षेत्र को स्पष्ट रूप से देखता है। किरणें उसके पास नहीं आती हैं। श्लोक 3: इस प्राणी का जो सूर्य क्षेत्र में है, 'भूर' अक्षर सिर है, क्योंकि एक सिर है, और दूसरा यह है शब्दांश; शब्द 'भुवर' भुजाएँ हैं, क्योंकि दो भुजाएँ हैं, और ये दो शब्दांश हैं; शब्द 'स्वर' पैर हैं, क्योंकि दो पैर हैं, और ये दो शब्दांश हैं। उसका गुप्त नाम 'आहार' है। जो उपरोक्त रूप से जानता है, वह बुराई को नष्ट करता है और उससे दूर रहता है।

V-v-4: इस प्राणी का जो दाहिनी आँख में है, शब्दांश 'भूर' सिर है, क्योंकि एक सिर है, और यह एक शब्दांश है; शब्द 'भुवर' भुजाएँ हैं, क्योंकि दो भुजाएँ हैं, और ये दो हैं शब्दांश; 'स्वर' शब्द का अर्थ है पैर, क्योंकि दो पैर हैं, और ये दो शब्दांश हैं। उसका गुप्त नाम 'अहम्' है। जो उपरोक्त रूप से जानता है, वह बुराई का नाश करता है और उससे दूर रहता है।

V-vi-1: यह मन से तादात्म्य रखने वाला और हृदय के भीतर चावल या जौ के दाने की तरह तेजस्वी (योगियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला) प्राणी है। वह सबका स्वामी है, सबका शासक है, और जो कुछ है उस पर शासन करता है।

V-vii-1: वे कहते हैं कि बिजली ब्रह्म है। इसे बिजली (विद्युत) इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह (अंधकार) को बिखेरती है। जो इसे इस रूप में

जानता है - कि बिजली ब्रह्म है - वह अपने विरुद्ध आने वाली बुराइयों को बिखेर देता है, क्योंकि बिजली वास्तव में ब्रह्म है।

V-viii-1: मनुष्य को वाणी (वेदों) का गाय की तरह ध्यान करना चाहिए। उसके चार थन हैं - ध्वनियाँ "स्वाहा", "वसत", "हंता" और "स्वधा"। उसके दो थनों पर देवता निवास करते हैं - ध्वनियाँ "स्वाहा" और "वसत", मनुष्य ध्वनि "हंता" पर और अयाल ध्वनि "स्वधा" पर। उसका बैल प्राणशक्ति है और उसका बछड़ा मन है।

V-ix-1: यह अग्नि जो मनुष्य के भीतर है और खाए गए भोजन को पचाती है, वैश्वानर है। यह इस ध्वनि को उत्सर्जित करती है जिसे इस प्रकार कानों को बंद करके सुना जाता है। जब मनुष्य शरीर छोड़ने वाला होता है, तो वह इस ध्वनि को नहीं सुनता।

V-x-1: जब मनुष्य इस संसार से विदा होता है, तो वह वायु तक पहुँचता है, जो उसके लिए वहाँ रथ के पहिये के छेद की तरह एक छेद बनाती है। वह उससे होकर ऊपर जाता है और सूर्य तक पहुँचता है, जो उसके लिए वहाँ ताबोर के छेद की तरह एक छेद बनाता है। वह उससे होकर ऊपर जाता है और चंद्रमा तक पहुँचता है, जो उसके लिए वहाँ ताबोर के छेद की तरह एक छेद बनाता है वहाँ उसके लिए ढोल के छेद के समान एक द्वार है। वह उससे होकर ऊपर की ओर जाता है और दुःख तथा शीत से मुक्त लोक में पहुँचता है। वह वहाँ अनन्त वर्षों तक रहता है।

V-xi-1: यह वास्तव में उत्तम तपस्या है, जो मनुष्य रोगग्रस्त होने पर करता है। जो उपर्युक्त बातों को जानता है, वह उत्तम लोक जीतता है। यह वास्तव में उत्तम तपस्या है, कि मनुष्य मृत्यु के पश्चात् वन में जाता है।जो उपर्युक्त बातों को जानता है, वह उत्तम लोक जीतता है। यह वास्तव में उत्तम तपस्या है, कि मनुष्य मृत्यु के पश्चात् अग्नि में डाला जाता है। जो उपर्युक्त बातों को जानता है, वह उत्तम लोक जीतता है।

V-xii-1: कुछ लोग कहते हैं कि अन्न ब्रह्म है। ऐसा नहीं है, क्योंकि अन्न प्राणशक्ति के बिना सड़ जाता है। दूसरे कहते हैं कि प्राणशक्ति ब्रह्म है। ऐसा नहीं है, क्योंकि अन्न के बिना प्राणशक्ति सूख जाती है। परन्तु ये दोनों देवता एक होने पर अपने सर्वोच्च को प्राप्त करते हैं। अतः प्रतर्द ने अपने पिता से कहा, 'जो इस प्रकार जानता है, उसका मैं क्या भला कर सकता हूँ और उसका क्या बुरा कर सकता हूँ?' पिता ने हाथ के इशारे से कहा, 'नहीं प्रतर्द, क्योंकि उनके साथ तादात्म्य स्थापित करके कौन अपना

सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर सकता है?' तब उन्होंने उससे कहा: 'यह 'वि' है। अन्न 'वि' है, क्योंकि ये सभी प्राणी अन्न पर आश्रित हैं। यह 'राम' है। प्राणशक्ति 'राम' है, क्योंकि प्राणशक्ति के होने पर ये सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं।' जो श्रेष्ठ जानता है, उस पर सभी प्राणी आश्रित हैं और उसमें सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं।

V-xiii-1: (प्राणशक्ति का ध्यान) उक्त (स्तुति का स्तोत्र) के रूप में करना चाहिए। प्राणशक्ति उक्त है, क्योंकि यह इस ब्रहमांड को ऊपर उठाती है। जो उपर्युक्त रूप से जानता है, उससे एक पुत्र उत्पन्न होता है, जो प्राणशक्ति का ज्ञाता होता है, और वह उक्त के समान ही लोक में निवास करता है।

V-xiii-2: (प्राणशक्ति का ध्यान) यजुस् के रूप में करना चाहिए। प्राणशक्ति यजुस् है, क्योंकि ये सभी प्राणी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं यदि प्राणशक्ति है। सभी प्राणी उस व्यक्ति की श्रेष्ठता के लिए जुड़े हुए हैं जो उपरोक्त रूप से जानता है, और वह यजुस् (प्राणशक्ति) के रूप में एकता और निवास प्राप्त करता है।

V-xiii-3: (प्राणशक्ति का ध्यान) समाना के रूप में करना चाहिए। प्राणशक्ति समाना है, क्योंकि ये सभी प्राणी एक हैं यदि प्राणशक्ति है। जो उपरोक्त रूप से जानता है, उसके लिए सभी प्राणी एक हैं, और वे उसकी श्रेष्ठता लाने में सफल होते हैं, और वह समाना के रूप में एकता और निवास प्राप्त करता है।

V-xiii-4: (प्राणशक्ति का ध्यान) क्षत्र के रूप में करना चाहिए। प्राणशक्ति क्षत्र है, क्योंकि यह है वास्तव में क्षात्र ही प्राणशक्ति है। प्राणशक्ति शरीर को घावों से बचाती है। जो उपर्युक्त को जानता है, वह इस क्षात्र (प्राणशक्ति) को प्राप्त करता है, जिसका कोई दूसरा रक्षक नहीं है, और क्षात्र के समान ही उसी लोक में मिलन और निवास प्राप्त करता है। भूमि, अंतरिक्ष और द्यौस मिलकर आठ अक्षर बनाते हैं, और गायत्री के प्रथम पाद में आठ अक्षर हैं। अतः उपरोक्त तीनों लोक गायत्री के प्रथम पाद का निर्माण करते हैं। जो गायत्री के प्रथम पाद को ऐसा जानता है, वह उन तीनों लोकों में जितना है, उतना जीत लेता है। रेह, यजुमसि और समानी मिलकर आठ अक्षर बनाते हैं, और गायत्री के द्वितीय पाद में आठ अक्षर हैं। अतः उपरोक्त तीनों वेद गायत्री के द्वितीय पाद का निर्माण करते हैं।

जो गायत्री के दूसरे पाद को ऐसा जानता है, वह उतना ही जीतता है, जितना ज्ञान के भण्डार, तीन वेदों को प्रदान करना है। पाँच-चौदह-तीन: प्राण, अपान और व्यान आठ अक्षर हैं, और गायत्री के तीसरे पाद में आठ अक्षर हैं। इस प्रकार प्राण के उपरोक्त तीन रूप गायत्री के तीसरे पाद का निर्माण करते हैं। जो गायत्री के तीसरे पाद को ऐसा जानता है, वह ब्रह्मांड में रहने वाले सभी जीवों को जीत लेता है। अब इसका तुरीय, प्रत्यक्षतः दृश्यमान, अलौकिक पाद वास्तव में यही है - चमकने वाला सूर्य। 'तुरीय' का अर्थ है चौथा। 'प्रत्यक्षतः दृश्यमान पाद', क्योंकि वह दिखाई देता है, मानो। 'परमानंद', क्योंकि वह पूरे ब्रह्मांड पर उसके अधिपति के रूप में चमकता है। जो गायत्री के चौथे पाद को ऐसा जानता है, वह उसी प्रकार तेज और यश से चमकता है।

पाँचवें-चौथे-चौथे-दृश्यमान, अलौकिक पाद पर गायत्री स्थित है। वह भी सत्य पर स्थित है। आँख सत्य है, क्योंकि आँख ही सत्य है। इसलिए यदि आज भी दो व्यक्ति आपस में झगड़ते हुए आएँ, एक कहे, 'मैंने देखा', और दूसरा कहे, 'मैंने सुना', तो हम उसी पर विश्वास करेंगे जो कहे, 'मैंने देखा'। वह सत्य शक्ति पर स्थित है। प्राणशक्ति ही शक्ति है। (अतः) सत्य प्राणशक्ति पर स्थित है। इसलिए कहते हैं कि शक्ति सत्य से अधिक शक्तिशाली है। इस प्रकार गायत्री शरीर के भीतर प्राणशक्ति पर स्थित है। उस गायत्री ने गयास को बचाया। इन्द्रियाँ गयास हैं, इसलिए उसने इन्द्रियों को बचाया। अब, चूँकि उसने इन्द्रियों को बचाया, इसलिए उसे गायत्री कहा जाता है। गुरु शिष्य को जो सावित्री बताता है, वह कोई और नहीं है। वह जिसे बताती है, उसके इन्द्रियों को बचाती है। कुछ लोग शिष्य को अनुष्टुभ सावित्री का उपदेश देते हैं, 'वाणी ही अनुष्टुभ है, हम उसे वही देंगे।' ऐसा नहीं करना चाहिए।

जो सावित्री गायत्री है, उसका उपदेश करना चाहिए। उपर्युक्त ज्ञानी पुरुष यदि बहुत अधिक दान भी ले ले, तो भी वह गायत्री के एक पाद के लिए भी पर्याप्त नहीं है। जो इन तीनों लोकों को धन से परिपूर्ण मान लेता है, उसे गायत्री का केवल प्रथम पाद ही प्राप्त होता है। जो इस ज्ञानकोष, वेद को जितना देना है, उतना ही ग्रहण करता है, उसे इसका दूसरा पाद ही प्राप्त होता है। और जो सब प्राणियों में समाया हुआ जितना ग्रहण करता है, उसे इसका तीसरा पाद ही प्राप्त होता है। इसका चौथा, प्रत्यक्षतः दिखाई देने वाला, अलौकिक पाद - जो सूर्य की तरह चमकता है - किसी भी उपहार से संतुलित नहीं किया जा सकता। वास्तव में कोई भी इतना कुछ उपहार के रूप में कैसे स्वीकार कर सकता है?

V-xiv-7: इसका अभिवादन: 'हे गायत्री, आप एक-पैर वाली, दो-पैर वाली, दो-पैर वाली और चार-पैर वाली हैं, और आप बिना किसी पैर के हैं, क्योंकि आप अप्राप्य हैं। आपको, चौथे, प्रत्यक्षतः दिखाई देने वाले, अलौकिक पाद को नमस्कार! शत्रु को कभी भी अपना उद्देश्य प्राप्त न हो !' (गायत्री के ज्ञाता को) किसी के प्रति द्वेष हो तो या तो (इस मंत्र का प्रयोग करना चाहिए) 'अमुक-अमुक प्रकार से उसका इच्छित उद्देश्य कभी फलित नहीं होता !' – ऐसी स्थिति में जिस व्यक्ति के विरुद्ध वह गायत्री का जाप करता है, उसका वह उद्देश्य कभी फलित नहीं होता – या (वह कह सकता है) 'मैं उसका वह (प्रिय उद्देश्य) प्राप्त करूँ !'

V-xiv-8: इस पर विदेह के सम्राट जनक ने अश्वताराश्व के पुत्र बुदिल से कहा, 'अच्छा, तुमने स्वयं को गायत्री का ज्ञाता बताया है; फिर तुम मुझे हाथी के रूप में क्यों ले जा रहे हो ?' उसने उत्तर दिया, 'क्योंकि मैं उसके मुख को नहीं जानता था, हे सम्राट'। 'अग्नि उसका मुख है। यदि वे अग्नि में बहुत अधिक मात्रा में ईंधन भी डाल दें, तो वह सब जल जाता है। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति उपरोक्त ज्ञान से अनेक पाप भी करता है, तो वह उन सबका भस्म हो जाता है और शुद्ध, निर्मल, अविनाशी और अमर हो जाता है।

सत्य (ब्रह्म) का मुख (स्वभाव) स्वर्ण पात्र में छिपा हुआ है। हे पूसन (संसार के पोषक - सूर्य), इसे हटा दो, ताकि मैं, जिसका सत्य स्वरूप है, (मुख) देख सकूँ। हे पूसन, हे एकान्त ऋषि (द्रष्टा या यात्री), हे यम (नियंत्रक), हे सूर्य (सूर्य), हे प्रजापति (ईश्वर या हिरण्यगर्भ) के पुत्र, अपनी किरणों को हटा लो, अपनी चमक को रोक लो। मैं तुम्हारे उस परम सौम्य रूप को देखना चाहता हूँ। मैं स्वयं वह व्यक्ति हूँ; और मैं अमर हूँ। (जब मेरा शरीर गिरे) तो मेरी प्राणशक्ति वायु (ब्रह्मांडीय शक्ति) में वापस चली जाए, और यह शरीर भी राख में बदल कर, (पृथ्वी पर चला जाए)!

हे अग्नि, जो 'ॐ' अक्षर है, हे विचार-विमर्श के देवता, स्मरण करो, स्मरण करो जो मैंने किया है, हे विचार-विमर्श के देवता, स्मरण करो, स्मरण करो जो मैंने किया है। हे अग्नि, हमें हमारे धन (रेगिस्तान) की ओर अच्छे मार्ग पर ले चलो। हे प्रभु, आप सभी की मानसिक स्थिति जानते हैं; हमसे धूर्त बुराई को दूर करो। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं।

6-1-1: ॐ। जो व्यक्ति सबसे पुराने और महान को जानता है, वह अपने रिश्तेदारों में सबसे पुराना और महान हो जाता है। जीवन शक्ति वास्तव में सबसे पुरानी और महान है। जो इसे ऐसा जानता है, वह अपने रिश्तेदारों के

साथ-साथ उन लोगों में भी सबसे पुराना और महान हो जाता है, जिन्हें वह ऐसा बनाना चाहता है।

6-1-2: जो व्यक्ति वसिष्ठ को जानता है (वह जो रहने या ढकने में सबसे अच्छा मदद करता है) वह अपने रिश्तेदारों में वसिष्ठ हो जाता है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह अपने सम्बन्धियों में तथा उन लोगों में भी वसिष्ठ हो जाता है, जिन्हें वह वसिष्ठ बनाना चाहता है।

VI-i-3: जो प्रतिष्ठा को जानता है, वह कठिन तथा सुगम स्थानों और कालों में स्थिर रहता है। आँख ही प्रतिष्ठा है, क्योंकि आँख के द्वारा मनुष्य कठिन तथा सुगम स्थानों और कालों में स्थिर रहता है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह कठिन तथा सुगम स्थानों और कालों में स्थिर रहता है।

VI-i-4: जो सम्पद (समृद्धि) को जानता है, वह जो भी चाहता है, उसे प्राप्त कर लेता है। कान ही सम्पद है, क्योंकि कान के रहते ही ये सभी वेद प्राप्त हो जाते हैं। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह जो भी चाहता है, उसे प्राप्त कर लेता है।

VI-i-5: जो धाम को जानता है, वह अपने सम्बन्धियों के साथ-साथ (अन्य) लोगों का भी धाम बन जाता है।मनस ही धाम है। जो इसे इस प्रकार जानता है, वह अपने सम्बन्धियों के साथ-साथ (अन्य) लोगों का भी धाम बन जाता है।

VI-i-6: जो प्रजाति (जिसमें उत्पत्ति का गुण है) को जानता है, वह संतान और पशुओं से समृद्ध होता है। बीज (अंग) में यह गुण है। जो इसे ऐसा जानता है, वह संतान और पशुओं से समृद्ध होता है।

VI-i-7: ये अंग अपनी-अपनी महानता पर विवाद करते हुए ब्राह्मण के पास गए और उनसे पूछा, 'हममें से कौन वसिष्ठ है?' उन्होंने कहा, 'तुममें से वही वसिष्ठ होगा, जो आपस में विदा होने पर इस शरीर को अधिक नीच समझता है।'

VI-i-8: वाणी का अंग समाप्त हो गया। पूरा एक वर्ष बाहर रहने के बाद वह वापस आया और बोला, 'तुम मेरे बिना कैसे जीवित रहे?' उन्होंने कहा, 'हम गूंगे लोगों की तरह रहते थे, वाणी के अंग से बोले बिना, लेकिन प्राण के द्वारा जीवित रहते थे, आंख से देखते थे, कान से सुनते थे, मन से जानते

थे और उत्पत्ति के अंग से बच्चे पैदा करते थे।' इस प्रकार वाणी का अंग प्रवेश कर गया।

VI-i-9: आँख चली गई। पूरा एक साल बाहर रहने के बाद वह वापस आई और बोली, 'तुम मेरे बिना कैसे रह पाए?' उन्होंने कहा, 'हम वैसे ही रहते थे जैसे अंधे लोग रहते हैं, आँख से देखे बिना, लेकिन प्राणशक्ति से जीते हैं, वाणी के अंग से बोलते हैं, कान से सुनते हैं, दिमाग से जानते हैं और प्रजनन के अंग से बच्चे पैदा करते हैं।' इस तरह आँख अंदर आ गई।

VI-i-10: कान चला गया। पूरा एक साल बाहर रहने के बाद वह वापस आई और बोली, 'तुम मेरे बिना कैसे रह पाए?' उन्होंने कहा, 'हम वैसे ही रहते थे जैसे बहरे लोग रहते हैं, कान से सुने बिना, लेकिन प्राणशक्ति से जीते हैं, वाणी के अंग से बोलते हैं, आँख से देखते हैं, दिमाग से जानते हैं और प्रजनन के अंग से बच्चे पैदा करते हैं।' इस तरह कान अंदर आ गया।

VI-i-11: दिमाग चला गया। पूरा एक साल बाहर रहने के बाद वह वापस आया और बोला, 'तुम मेरे बिना कैसे रह पाए?' उन्होंने कहा, 'हम वैसे ही रहते थे जैसे बेवकूफ रहते हैं, बिना दिमाग से जाने,लेकिन प्राणशक्ति से जीना, वाणी के अंग से बोलना, आँख से देखना, कान से सुनना और जननेन्द्रिय से बच्चे पैदा करना।' इस तरह मन प्रविष्ट हुआ।

VI-i-12: जननेन्द्रिय बाहर चली गई। पूरा एक साल बाहर रहने के बाद वह वापस आई और बोली, 'तुम मेरे बिना कैसे जी पाए?' उन्होंने कहा, 'हम वैसे ही रहते थे जैसे नपुंसक रहते हैं, जननेन्द्रिय से बच्चे पैदा किए बिना, लेकिन प्राणशक्ति से जीना, वाणी के अंग से बोलना, आँख से देखना, कान से सुनना और दिमाग से जानना।' इस तरह जननेन्द्रिय अंदर आई।

VI-i-13: फिर जब प्राणशक्ति बाहर जाने वाली थी, तो उसने उन अंगों को ऐसे उखाड़ दिया जैसे सिंध का एक बड़ा, बढ़िया घोड़ा अपने पैरों से बंधी खूंटियों को उखाड़ देता है। उन्होंने कहा, 'कृपया बाहर न जाएँ, श्रीमान्, हम आपके बिना नहीं रह सकते'। 'तो मुझे कर दें।' 'ठीक है'।

६-१-१४: वाणी ने कहा, 'मेरे पास जो वसिष्ठ का गुण है, वह आपका है।' नेत्र ने कहा, 'मेरे पास जो स्थिरता का गुण है, वह आपका है।' कान ने कहा, 'मेरे पास जो समृद्धि का गुण है, वह आपका है।' मन ने कहा, 'मेरे पास जो निवास का गुण है, वह आपका है।' प्रजनन का अंग ने कहा, 'मेरे पास जो प्रजनन का गुण है, वह आपका है।' (प्राण ने कहा:) 'तो मेरा भोजन और

मेरा वस्त्र क्या होगा?' (अंगों ने कहा:) 'कुत्ते, कीड़े, कीट और पतंगे सहित जो कुछ भी भोजन के रूप में जाना जाता है, वह आपका भोजन है और पानी आपका वस्त्र है।' जो प्राण के भोजन को ऐसा जानता है, वह कभी भी ऐसा कुछ नहीं खाता जो भोजन नहीं है, या ऐसा कुछ भी स्वीकार नहीं करता जो भोजन नहीं है। इसलिए वेदों में पारंगत बुद्धिमान पुरुष भोजन करने से ठीक पहले और बाद में थोड़ा पानी पीते हैं। वे इसे प्राण की नग्नता को दूर करने वाला मानते हैं।

VI-ii-1: अरुण के पौत्र श्वेतकेतु पांचालों की सभा में आए। वे जीवल के पुत्र प्रवाहन के पास गए, जिनकी सेवा (उनके सेवकों द्वारा) की जा रही थी। उन्हें देखकर राजा ने उनसे कहा, 'लड़के!' उन्होंने उत्तर दिया, 'हाँ, श्रीमान'। 'क्या आपको अपने पिता ने सिखाया है?' उन्होंने कहा, 'हाँ'।

VI-ii-2: 'क्या आप जानते हैं कि ये लोग मृत्यु के बाद कैसे अलग हो जाते हैं?' 'नहीं', उन्होंने कहा। 'क्या आप जानते हैं कि वे इस दुनिया में कैसे लौटते हैं?' 'नहीं', उन्होंने कहा। 'क्या आप जानते हैं कि दूसरी दुनिया कभी भी इतने सारे लोगों से नहीं भरती है जो बार-बार मरते हैं?' 'नहीं', उन्होंने कहा। 'क्या आप जानते हैं कि कितने आहुतियाँ चढ़ाने के बाद पानी (तरल प्रसाद) मानव आवाज (या मानव के नाम से) के साथ ऊपर उठता है और बोलता है?' 'नहीं', उन्होंने कहा।

'क्या तुम देवताओं के मार्ग या पितरों के मार्ग तक पहुँचने का मार्ग जानते हो - जिस पर चलकर लोग या तो देवताओं के मार्ग पर पहुँचते हैं या पितरों के मार्ग पर? हमने मंत्र के शब्द सुने हैं: 'मैंने मनुष्यों के लिए दो मार्गों के बारे में सुना है, जो पितरों और देवताओं की ओर जाते हैं। उन पर चलते हुए यह सब एक हो जाता है। वे पिता और माता (पृथ्वी और स्वर्ग) के बीच में हैं।'' उसने कहा, 'मैं उनमें से किसी को भी नहीं जानता।'

VI-ii-3: तब राजा ने उसे ठहरने के लिए आमंत्रित किया। बालक ठहरने के निमंत्रण की उपेक्षा करके शीघ्रता से चला गया। वह अपने पिता के पास आया और उससे कहा, 'अच्छा, क्या तुमने मुझे पहले नहीं बताया था कि तुमने मुझे (पूरी तरह) शिक्षा दी है?' 'मेरे बुद्धिमान बच्चे, तुम्हें (चोट कैसे लगी?' 'उस क्षत्रिय ने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे, और मैं उनमें से एक भी नहीं जानता।' 'वे कौन से हैं?' 'ये', और उसने उनके पहले शब्द उद्धृत किए।

VI-ii-4: पिता ने कहा, 'मेरे बच्चे, मेरा विश्वास करो, जो कुछ भी मैं जानता था, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। लेकिन आओ, हम वहाँ चलें और

विद्यार्थी बनकर रहें।' 'कृपया तुम अकेले जाओ।' इस पर गौतम वहाँ आए जहाँ जीवल के पुत्र राजा प्रवाहण श्रोतागण दे रहे थे। राजा ने उन्हें एक आसन दिया, उसके लिए जल मंगवाया और उसे आदरपूर्वक अर्पण किया। फिर उसने कहा, 'हम पूज्य गौतम को वरदान देंगे।'

VI-ii-5: अरुणी ने कहा, 'आपने मुझे यह वरदान देने का वादा किया है। कृपया मुझे बताएं कि आपने मेरे लड़के से क्या कहा'

VI-ii-6: राजा ने कहा, 'यह दिव्य वरदानों में आता है, गौतम। कृपया कोई मानवीय वरदान मांगें'

VI-ii-7: अरुणी ने कहा, 'आप जानते हैं कि मेरे पास पहले से ही सोना, मवेशी और घोड़े, दास-दासियां, अनुचर और वस्त्र हैं। इस प्रचुर, अनंत और अक्षय (धन) के संबंध में केवल मेरे प्रति ही उदारता न दिखाएं।' 'तो आपको इसे स्वरूप के अनुसार मांगना चाहिए, गौतम'। 'मैं आपके पास (एक छात्र के रूप में) आता हूं'। प्राचीन लोग केवल घोषणा के माध्यम से एक शिक्षक के पास जाते थे। अरुणी केवल यह घोषणा करके एक छात्र के रूप में रहता था कि वह उनकी सेवा में है।

VI-ii-8: राजा ने कहा: गौतम, कृपया हमसे नाराज़ मत हो, जैसा कि तुम्हारे दादाजी हमारे साथ नहीं थे। इससे पहले, यह विद्या कभी ब्राह्मण के पास नहीं थी। लेकिन मैं इसे तुम्हें सिखाऊंगा; क्योंकि जब आप इस प्रकार बोलते हैं, तो आपको कौन मना कर सकता है?

छठी-दूसरी-९: हे गौतम, वह शब्द (स्वर्ग) अग्नि है, सूर्य उसका ईंधन है, किरणें उसका धुआँ है, दिन उसकी ज्वाला है, चारों दिशाएँ उसकी राख हैं और बीच की दिशाएँ उसकी चिंगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवता श्रद्धा (सूक्ष्म रूप में द्रव आहुति) देते हैं। उस आहुति से राजा चन्द्रमा उत्पन्न होते हैं (यज्ञ करने वाले के लिए चन्द्रमा में शरीर बनता है)।

छठी-दूसरी-१०: हे गौतम, पर्जन्य (वर्षा के देवता) अग्नि हैं, वर्ष उसका ईंधन है, बादल उसका धुआँ है, बिजली उसकी ज्वाला है, गड़गड़ाहट उसकी राख है और गड़गड़ाहट उसकी चिंगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवता राजा चन्द्रमा को आहुति देते हैं। उस आहुति से वर्षा उत्पन्न होती है।

छठी-दूसरी-११: हे गौतम, यह संसार अग्नि है, पृथ्वी उसका ईंधन है, अग्नि उसका धुआँ है, रात्रि उसकी ज्वाला है, चन्द्रमा उसकी राख है और तारे

उसकी चिंगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवता वर्षा करते हैं। उस आहुति से अन्न उत्पन्न होता है।

VI-ii-12: हे गौतम, मनुष्य अग्नि है, खुला हुआ मुख उसका ईंधन है, प्राण उसका धुआँ है, वाणी उसकी ज्वाला है, आँख उसकी राख है, और कान उसकी चिंगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवता अन्न अर्पित करते हैं। उस आहुति से बीज उत्पन्न होता है।

VI-ii-13: हे गौतम, स्त्री अग्नि है। इस अग्नि में देवता बीज अर्पित करते हैं। उस आहुति से मनुष्य जन्म लेता है। वह तब तक जीवित रहता है, जब तक उसके लिए जीना नियत है। फिर, जब वह मर जाता है --

VI-ii-14: वे उसे अग्नि में आहुति देने के लिए ले जाते हैं। अग्नि उसकी अग्नि बन जाती है, ईंधन उसका ईंधन बन जाता है, धुआँ उसका धुआँ बन जाता है, ज्वाला उसकी ज्वाला बन जाती है, राख उसकी राख बन जाती है, और चिंगारी उसकी चिंगारियाँ बन जाती हैं। इस अग्नि में देवता मनुष्य की आहुति देते हैं। उस आहुति से मनुष्य तेजस्वी होकर निकलता है।

VI-ii-15: जो लोग इसे इस प्रकार जानते हैं, तथा जो अन्य लोग वन में सत्य ब्रह्म का श्रद्धापूर्वक ध्यान करते हैं, वे ज्वाला से तादात्म्य रखने वाले देवता को प्राप्त करते हैं, उनसे दिन के देवता, उनसे चन्द्रमा के शुक्ल पक्ष के देवता, उनसे सूर्य के उत्तर दिशा में भ्रमण करने वाले छह मासों के देवता, उनसे देवताओं के लोक के देवता, उनसे सूर्य तथा सूर्य से विद्युत के देवता प्राप्त होते हैं। (तब) (हिरण्यगर्भ के) मन से उत्पन्न एक प्राणी आता है और उन्हें हिरण्यगर्भ के लोकों में ले जाता है। वे सिद्धि प्राप्त करते हैं और अनेक अति उत्तम वर्षों तक हिरण्यगर्भ के उन लोकों में निवास करते हैं। वे फिर इस लोक में वापस नहीं आते।

VI-ii-16: जो लोग यज्ञ, दान और तपस्या के द्वारा लोकों को जीतते हैं, वे धूम्र देवता के पास पहुँचते हैं, उनसे रात्रि के देवता, उनसे क्षीण चन्द्रमा के पखवाड़े के देवता, उनसे सूर्य के दक्षिणायन के छः मासों के देवता, उनसे पितरों के लोक के देवता और उनसे चन्द्रमा होते हैं। चन्द्रमा के पास पहुँचकर वे भोजन बन जाते हैं। वहाँ देवता उनका भोग करते हैं, जैसे पुरोहितगण चमकते हुए सोमरस को पीते हैं (धीरे-धीरे, मानो कहते हुए), 'फूलो, मुरझाओ'। और जब उनका पिछला कर्म समाप्त हो जाता है, तो वे इस आकाश में पहुँच जाते हैं (जैसे बन जाते हैं), आकाश से वायु, वायु से वर्षा और वर्षा से पृथ्वी। पृथ्वी पर पहुँचकर वे भोजन बन जाते हैं। फिर

उन्हें पुनः पुरुष की अग्नि में, फिर स्त्री की अग्नि में, जहाँ से वे जन्म लेते हैं (और अन्य लोकों में जाने के उद्देश्य से अनुष्ठान करते हैं)। इस प्रकार वे घूमते हैं। जो लोग इन दो तरीकों को नहीं जानते, वे कीट-पतंगे और ये बार-बार काटने वाले जीव (मच्छर और मक्खी) बन जाते हैं।

VI-iii-1: जो महानता प्राप्त करना चाहता है, उसे (पखवाड़े में) चंद्रमा के उत्तरायण होने पर, पुरुष नक्षत्र में, सूर्य के उत्तरायण होने पर, किसी शुभ दिन, इस प्रकार से यज्ञ करना चाहिए: उसे बारह दिनों तक उपासदों से संबंधित व्रत करना चाहिए (अर्थात दूध पर रहना चाहिए), अंजीर की लकड़ी से बने कटोरे में सभी जड़ी-बूटियाँ और उनके दाने इकट्ठा करने चाहिए, जमीन को झाड़ना और लीपना चाहिए, निर्धारित तरीके से हवन को शुद्ध करना चाहिए, मंथ (उन चीजों से बना पेस्ट) डालना चाहिए, और निम्नलिखित मंत्रों के साथ आहुति देनी चाहिए: 'हे अग्नि, आपके अधीन जो सभी देवता हैं, जो मनुष्यों की इच्छाओं को निष्फल करते हैं, मैं उनका हिस्सा अर्पित करता हूँ।

वे संतुष्ट होकर मेरी सभी इच्छाओं को पूरा करें! स्वाहा। वह सर्व-प्रदायक देवी जो आपकी शरण में द्वेषपूर्ण हो जाती है, यह समझकर कि वह सबका आधार है, मैं उसे यह घी की धारा अर्पित करता हूँ। स्वाहा।

VI-iii-2: अग्नि में आहुति देते हुए, 'वृद्ध को स्वाहा, महान को स्वाहा' कहते हुए, वह कलछी में चिपके हुए बचे हुए भाग को लेप में डुबाता है। अग्नि में आहुति देते हुए, 'प्राण को स्वाहा, वसिष्ठ को स्वाहा' कहते हुए, वह बचे हुए भाग को टपकाता है, आदि। 'अंग को स्वाहा' कहते हुए आहुति देते हुए 'वाणी का, स्थिरता वाले को स्वाहा', वह टपकाता है, आदि। 'नेत्र को स्वाहा, समृद्धि को स्वाहा' कहकर आहुति देते हुए, वह टपकाता है, आदि। 'कान को स्वाहा, निवास को स्वाहा' कहकर आहुति देते हुए, वह टपकाता है, आदि। 'मनस को स्वाहा, प्रजाती को स्वाहा' कहकर आहुति देते हुए, वह टपकाता है, आदि। 'उत्पत्ति के अंग को स्वाहा' कहकर आहुति देते हुए, वह टपकाता है, आदि।

VI-iii-3: 'अग्नि को स्वाहा' कहकर अग्नि में आहुति देते हुए, वह कलछी में चिपके हुए अवशेष को पेस्ट में टपकाता है। 'चन्द्रमा को स्वाहा' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि। 'पृथ्वी को स्वाहा' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि। 'आकाश को स्वाहा' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि। 'स्वाहा स्वर्ग को' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि। 'स्वाहा ब्राह्मण

को' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि। 'स्वाहा क्षत्रिय को' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि।

'स्वाहा भूतकाल को' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि। 'स्वाहा भविष्य को' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि। 'स्वाहा समष्टि को' कहकर अर्पण और आहुति देने पर वह टपकता है, आदि। आहुति देते हुए, 'सबको स्वाहा' कहते हुए, वह टपकाता है, इत्यादि। आहुति देते हुए, 'प्रजापति को स्वाहा' कहते हुए, वह टपकाता है, इत्यादि।

VI-iii-4: फिर वह लेप को छूते हुए कहता है, 'आप चलते हैं (प्राणशक्ति के रूप में), आप जलते हैं (अग्नि के रूप में), आप अनंत हैं (ब्रह्म के रूप में), आप स्थिर हैं (आकाश के रूप में)। आप अपने आप में सब कुछ मिलाते हैं। आप 'वह' ध्वनि हैं, और 'उसी' के रूप में उच्चारित होते हैं (यज्ञ में प्रस्तोत्र द्वारा)। आप उद्गीथ हैं और (उद्गात्र द्वारा) जपे जाते हैं। आपका (अध्वर्यु द्वारा) पाठ किया जाता है और (अग्निध्र द्वारा) आपका पाठ किया जाता है। आप आर्द्र (बादल) में पूरी तरह से जल रहे हैं। आप सर्वव्यापी और स्वामी हैं। आप भोजन हैं (चंद्रमा के रूप में), और प्रकाश हैं (अग्नि के रूप में)। आप मृत्यु हैं, और आप वह हैं जिसमें सभी चीजें विलीन हो जाती हैं'।

VI-iii-5: फिर वह इसे यह कहते हुए पीता है, 'आप सभी को (प्राणशक्ति के रूप में) जानते हैं; हम भी आपकी महानता से परिचित हैं। प्राणशक्ति राजा, स्वामी, शासक है। यह मुझे राजा, स्वामी और शासक बनाए!'

VI-iii-6: फिर वह इसे यह कहते हुए पीता है, 'उज्ज्वल सूर्य आराध्य है; हवाएँ मधुर बह रही हैं, नदियाँ शहद बहा रही हैं, जड़ी-बूटियाँ हमारे लिए मधुर हों! पृथ्वी को स्वाहा। हम महिमा का ध्यान करते हैं; रातें और दिन मनमोहक हों, और पृथ्वी की धूल मधुर हो, स्वर्ग, हमारे पिता, दयालु हों! आकाश को स्वाहा। वह हमारी बुद्धि को निर्देशित करें; सोम लता हमारे लिए मधुर हो, सूर्य दयालु हो, दिशाएँ हमारे लिए सहायक हों! स्वर्ग को स्वाहा'। फिर वह पूरी गायत्री और पूरी मधुमती को दोहराता है, और अंत में कहता है, 'मैं यह सब बनूँ! पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग को स्वाहा।'

फिर वह सारा बचा हुआ जल पी जाता है, हाथ धोता है और पूर्व दिशा की ओर सिर करके अग्नि के पीछे लेट जाता है। सुबह वह सूर्य को नमस्कार करते हुए कहता है, 'आप सभी दिशाओं के कमल हैं, मैं भी सभी दिशाओं

का कमल बनूं!' फिर वह जिस रास्ते से गया था, उसी रास्ते से लौटता है, अग्नि के पीछे बैठता है और शिक्षकों की पंक्ति दोहराता है।

VI-iii-7: अरुणि के पुत्र उद्दालक ने अपने शिष्य वाजसनेय याज्ञवल्क्य को यह सिखाया और कहा,'यदि इसे सूखे तने पर भी छिड़का जाए, तो शाखाएं उग आएंगी और पत्तियां उग आएंगी'।

VI-iii-8: वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य पैंगी के पुत्र मधुक को यह सिखाया और कहा,'यदि इसे सूखे तने पर भी छिड़का जाए, तो शाखाएं उग आएंगी और पत्तियां उग आएंगी'।

VI-iii-9: पैंगी के पुत्र मधुक ने फिर से अपने शिष्य भगवित्ता के पुत्र कुल को यह सिखाया और कहा, 'यदि इसे सूखे ठूंठ पर भी छिड़का जाए, तो शाखाएं उग आएंगी और पत्तियां उग आएंगी'।

VI-iii-10: फिर भगवित्ता के पुत्र कुल ने इसे अपने शिष्य अयस्तुन के पुत्र जानकी को सिखाया और कहा, 'यदि इसे सूखे ठूंठ पर भी छिड़का जाए, तो शाखाएं उग आएंगी और पत्तियां उग आएंगी'।

VI-iii-11: अयस्तुन के पुत्र जानकी ने इसे फिर से जाबाल के पुत्र सत्यकाम को सिखाया और कहा, 'यदि इसे सूखे ठूंठ पर भी छिड़का जाए, तो शाखाएं उग आएंगी और पत्तियां उग आएंगी'।

VI-iii-12: और जाबाल के पुत्र सत्यकाम ने भी इसे अपने शिष्यों को सिखाया और कहा, 'यदि इसे सूखे ठूंठ पर भी छिड़का जाए, तो शाखाएं उग आएंगी और पत्तियां उग आएंगी'। इसे किसी और को नहीं सिखाना चाहिए, सिवाय बेटे या शिष्य को।

VI-iii-13: अंजीर की लकड़ी से चार चीजें बनाई जाती हैं: करछुल, कटोरा, ईंधन और दो मिक्सिंग रॉड। उगाए जाने वाले अनाज की संख्या दस है: चावल, जौ, तिल, सेम, अनु, प्रियंगु, गेहूं, मसूर, दाल और वेच। उन्हें कुचलकर दही, शहद और घी में भिगोना चाहिए और आहुति के रूप में चढ़ाना चाहिए।

VI-iv-1: पृथ्वी इन सभी प्राणियों का सार है, जल पृथ्वी का सार है, जल का सार है जड़ी-बूटियाँ, जड़ी-बूटियों का सार है फूल, फूलों का सार है फल, फलों का सार है मनुष्य, और मनुष्य का सार है मनुष्य।

VI-iv-2: प्रजापति ने सोचा, 'अच्छा, मैं इसके लिए एक निवास स्थान बनाऊँ', और उन्होंने स्त्री की रचना की।

VI-iv-3: ………………… VI-iv-4: यह सत्य जानकर, अरुण के पुत्र उद्दालक, मुद्गल के पुत्र नाक, और कुमारहरित ने कहा, 'बहुत से पुरुष - केवल नाम के ब्राह्मण - जो उपरोक्त ज्ञान के बिना मिलन करते हैं, इस दुनिया से नपुंसक और पुण्यहीन होकर चले जाते हैं।' VI-iv-5: …………………..

VI-iv-6: यदि मनुष्य जल में अपना प्रतिबिंब देखता है, तो उसे निम्नलिखित मंत्र का जाप करना चाहिए: '(देवता मुझे तेज, पुरुषत्व, प्रतिष्ठा, धन और पुण्य प्रदान करें)। वह (उसकी पत्नी) वास्तव में महिलाओं में सौंदर्य की देवी है। इसलिए उसे इस सुंदर महिला के पास जाना चाहिए और उससे बात करनी चाहिए।

VI-iv-7: यदि वह तैयार नहीं है, तो उसे उसे खरीद लेना चाहिए; और यदि वह अभी भी अडिग है, तो उसे उसे डंडे से या हाथ से मारना चाहिए और निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुए आगे बढ़ना चाहिए, 'मैं तुम्हारी प्रतिष्ठा छीन लेता हूँ', आदि। तब वह वास्तव में त्याग दी जाती है।

VI-iv-8: यदि वह तैयार है, तो उसे निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुए आगे बढ़ना चाहिए: 'मैं तुम्हें प्रतिष्ठा प्रदान करता हूँ', और वे दोनों प्रतिष्ठित हो जाते हैं। VI-iv-9: …………………..
VI-iv-10: …………………..
VI-iv-11: …………………..

VI-iv-12: यदि किसी व्यक्ति की पत्नी का कोई प्रेमी है जिसे वह चोट पहुँचाना चाहता है, तो उसे एक कच्चे मिट्टी के बर्तन में अग्नि रखनी चाहिए, ईख और कुश के डंठलों को उलटे तरीके से फैलाना चाहिए, और ईख के सिरों को घी में भिगोकर उलटे तरीके से अग्नि में अर्पित करना चाहिए, यह कहते हुए कि, 'तुमने मेरी प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी है, मैं तुम्हारे प्राण और अपान – ऐसे-ऐसे ले लेता हूँ।

तुमने मेरी प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी है, मैं तुम्हारे पुत्रों और पशुओं को ले लेता हूँ – ऐसे-ऐसे। तुमने मेरी प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी है, मैं तुम्हारे वैदिक संस्कार और स्मृति के अनुसार किए गए कर्मों को ले लेता हूँ

– ऐसे-ऐसे। तुमने मेरी प्रज्वलित अग्नि में आहुति दी है, मैं तुम्हारी आशाओं और अपेक्षाओं को ले लेता हूँ – ऐसे-ऐसे'। जिस मनुष्य को इस अनुष्ठान के जानकार ब्राह्मण शाप दे देते हैं, वह इस संसार से नपुंसक होकर और पुण्यहीन होकर चला जाता है। इसलिए इस अनुष्ठान को जानने वाले वेदवेत्ता की पत्नी के साथ मजाक भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा ज्ञान रखने वाला शत्रु बन जाता है।

VI-4-13: यदि किसी की पत्नी को मासिक धर्म हो, तो उसे तीन दिन का पानी प्याले में पीना चाहिए (कंस)। कोई शूद्र पुरुष या स्त्री उसे स्पर्श न करे। तीन रात्रि के बाद उसे स्नान करके नया वस्त्र धारण करना चाहिए और चावल कूटने के लिए लगाना चाहिए।

VI-4-14: जो व्यक्ति यह चाहता है कि उसका पुत्र सुन्दर पैदा हो, एक वेद का अध्ययन करे और पूर्ण आयु प्राप्त करे, उसे दूध में पका हुआ चावल खाना चाहिए और उसे और उसकी पत्नी को घी के साथ खाना चाहिए। तब वे ऐसा पुत्र उत्पन्न कर सकेंगे।

VI-iv-15: जो व्यक्ति यह चाहता है कि उसका पुत्र सांवला या भूरा पैदा हो, दो वेदों का अध्ययन करे और पूर्ण आयु प्राप्त करे, उसे दही में चावल पकाकर खाना चाहिए और वह और उसकी पत्नी उसे घी के साथ खाएं। तब वे ऐसा पुत्र उत्पन्न कर सकेंगे।

VI-iv-16: जो व्यक्ति यह चाहता है कि उसका पुत्र काला पैदा हो और उसकी आंखें लाल हों, तीन वेदों का अध्ययन करे और पूर्ण आयु प्राप्त करे, उसे पानी में चावल पकाकर खाना चाहिए और वह और उसकी पत्नी उसे घी के साथ खाएं। तब वे ऐसा पुत्र उत्पन्न कर सकेंगे।

VI-iv-17: जो व्यक्ति यह चाहता है कि उसकी पुत्री विद्वान हो और पूर्ण आयु प्राप्त करे, उसे तिल में चावल पकाकर खाना चाहिए और वह और उसकी पत्नी उसे घी के साथ खाएं। तब वे ऐसी पुत्री उत्पन्न कर सकेंगे।
VI-iv-18: …………….

VI-IV-19: सुबह होते ही वह घी को स्थलीपक विधि से शुद्ध करता है और बार-बार स्थलीपक आहुति देता है, और कहता है, 'अग्नि को स्वाहा, अनुमति को स्वाहा, अमोघ फल देने वाले तेजस्वी सूर्य को स्वाहा।' आहुति देने के बाद वह (पका हुआ भोजन का बचा हुआ भाग) उठाता है, उसका कुछ भाग खाता है और बाकी अपनी पत्नी को दे देता है। फिर वह हाथ

धोता है, जलपात्र भरता है और उस पर तीन बार जल छिड़कते हुए कहते हैं, 'विश्वावसु, यहाँ से उठ जाओ और किसी दूसरी युवती को खोजो जो अपने पति के साथ हो।'

VI-iv-20: वह उसे गले लगाते हुए कहते हैं, 'मैं प्राण हूँ और तुम वाणी हो; तुम वाणी हो और मैं प्राण हूँ; मैं सामन हूँ और तुम ऋक् हो; मैं स्वर्ग हूँ और तुम पृथ्वी हो; आओ, हम मिलकर पुरुषार्थ करें ताकि हमें पुत्र प्राप्त हो।'

VI-iv-21: …………….

VI-iv-22: ……………..

VI-iv-23: …………..

VI-iv-24: जब (पुत्र) जन्म ले, तो उसे अग्नि में लाना चाहिए, उसे अपनी गोद में लेना चाहिए, एक प्याले में दही और घी का मिश्रण रखना चाहिए, और उससे बार-बार आहुति देनी चाहिए, यह कहते हुए कि, 'मैं अपने इस घर में (पुत्र के रूप में) बड़ा होकर, एक हजार लोगों का पालन-पोषण करूँ! (भाग्य की देवी) कभी भी बच्चों और जानवरों के साथ उसके वंश से विदा न हो! स्वाहा। मेरे अंदर जो प्राणशक्ति है, मैं उसे मानसिक रूप से तुम्हें सौंपती हूँ। स्वाहा। यदि मैंने इस अनुष्ठान में कुछ भी अधिक या कम किया है, तो सर्वज्ञ कल्याणकारी अग्नि उसे मेरे लिए ठीक कर दे - न अधिक, न कम! स्वाहा।'

VI-iv-25: फिर (अपना मुँह) बच्चे के दाहिने कान के पास लगाकर तीन बार दोहराए, 'भाषण, भाषण'। इसके बाद दही, शहद और घी मिलाकर, वह उसे बिना किसी बाधा के सोने की (एक पट्टी) खिलाता है, और कहता है, 'मैंने पृथ्वी को तुम्हारे अंदर डाला है, मैंने आकाश को तुम्हारे अंदर डाला है, मैंने स्वर्ग को तुम्हारे अंदर डाला है, मैंने पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग को तुम्हारे अंदर डाला है'.

VI-iv-26: वह उसे एक नाम देता है, 'तुम वेद (ज्ञान) हो'। यह उसका गुप्त नाम है।

VI-iv-27: फिर वह उसे दूध पिलाने के लिए उसकी माता को सौंपते हुए कहते हैं, 'सरस्वती को अर्पण करता हूँ, तुम्हारा वह स्तन जो फलों से भरा हुआ है, सबको पोषण देने वाला है, दूध से भरा हुआ है, धन (किसी के) को

प्राप्त करने वाला और उदार है, और जिसके द्वारा तुम उन सभी को पोषण देती हो जो इसके पात्र हैं (देवता आदि) - उसे यहाँ (मेरे बच्चे के लिए, मेरी पत्नी को) दूध पिलाने के लिए सौंप दो'।

VI-iv-28: फिर उन्होंने माता को संबोधित किया: 'आप वसिष्ठ की पत्नी आराध्य अरुंधती हैं; आपने मुझ पुरुष की सहायता से एक पुरुष बालक को जन्म दिया है। कई पुत्रों की माँ बनो, क्योंकि आपने हमें एक पुत्र दिया है'। जो इस विशेष ज्ञान के साथ एक ब्राह्मण के बच्चे के रूप में पैदा होता है, वे कहते हैं, 'आप अपने पिता से आगे निकल गए हैं, और आप अपने दादा से भी आगे निकल गए हैं। आप अपने तेज, यश और ब्राह्मणत्व के बल पर सिद्धि की चरम सीमा तक पहुँच चुके हैं।'

VI-v-1: अब शिक्षकों की पंक्ति: पौतिमा के पुत्र ने कात्यायनी के पुत्र से (इसे प्राप्त किया)। वह गौतमी के पुत्र से। गौतमी के पुत्र ने भारद्वाज के पुत्र से। वह पाराशरी के पुत्र से। पाराशरी के पुत्र ने औपसवस्ति के पुत्र से। वह दूसरे पाराशरी के पुत्र से। वह कात्यायनी के पुत्र से। कात्यायनी के पुत्र ने कौशिकी के पुत्र से। कौशिकी के पुत्र ने अलम्बी के पुत्र से और वैयाघ्रपदी के पुत्र से। वैयाघ्रपदी के पुत्र ने कण्वि के पुत्र और कपि के पुत्र से। कपि के पुत्र -

VI-v-2: आत्रेयी के पुत्र से। आत्रेयी के पुत्र ने गौतमी के पुत्र से। गौतमी के पुत्र ने भारद्वाज के पुत्र से। वह परासरि के पुत्र से हुआ। परासरि का पुत्र वत्सी के पुत्र से हुआ। वत्सी का पुत्र दूसरे परासरि के पुत्र से हुआ। परासरि का पुत्र वर्करुणि के पुत्र से हुआ। वह दूसरे वर्करुणि के पुत्र से हुआ। यह आर्तभागी के पुत्र से हुआ। वह सौंगी के पुत्र से हुआ। सौंगी का पुत्र संकृति के पुत्र से हुआ। वह आलम्बयनी के पुत्र से हुआ। वह फिर आलम्बी के पुत्र से हुआ। आलम्बी का पुत्र जयंती के पुत्र से हुआ। वह मंडूकायनी के पुत्र से हुआ। वह बदले में मांडूकि के पुत्र से हुआ। मांडूकि का पुत्र संदिली के पुत्र से हुआ। संदिली का पुत्र रथितारि के पुत्र से हुआ। वह भालुकि के पुत्र से हुआ। भालुकि का पुत्र क्रौंचिकी के दो पुत्रों से हुआ।

वे वैदभृति के पुत्र से हुए। वह करसकेयी के पुत्र से हुआ। वह फिर प्राचीनयोगी के पुत्र से हुआ। वह संजीवी के पुत्र से हुआ। संजीवी का पुत्र असुरीवासिन से, जो प्रसनी का पुत्र था। प्रसनी का पुत्र असुरयान से हुआ। वह असुरी से हुआ। असुरी -

VI-v-3: याज्ञवल्क्य से। याज्ञवल्क्य उद्दालक से। उद्दालक अरुण से। अरुण उपवेशी से। उपवेशी कुसरी से। कुसरी वाजश्रवा से। वह बधयोग के पुत्र जिह्वावत से। वह असित से, जो वरसगण का पुत्र था। वह हरित कश्यप से। वह शिल्प कश्यप से। यह कश्यप के पुत्र काश्यप से हुआ।निध्रुवा। वह वाच से। वह अम्भिनी से। वह सूर्य से। सूर्य से प्राप्त इन श्वेत यजुओं की व्याख्या याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने की है।

VI-v-4: संजीवी के पुत्र तक यही। संजीवी के पुत्र मंडूकायनी से। मंडूकायनी मांडव्य से। मांडव्य कौत्स से। कौत्स महिट्ठि से। वह वामकाक्षायण से। वह सांडिल्य से। सांडिल्य वत्स्य से। वत्स्य कुसरी से। कुसरी राजस्तंभ के पुत्र यज्ञवाक्य से। वह कवासी के पुत्र तुरा से। वह प्रजापति (हिरण्यगर्भ) से। प्रजापति अपने ब्रह्म (वेदों) से संबंध के माध्यम से। ब्रह्म स्वयंभू है। ब्रह्म को नमस्कार है।ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से निकलता है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह अकेला अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।

ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद में निहित बृहदारण्योपनिषद् समाप्त होता है।

011 - ब्रह्म उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)।
ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. ॐ ! शौनक, प्रसिद्ध गृहस्थ ने एक बार अंगिरा के कुल के भगवान पिप्पलाद से पूछा: इस शरीर में, ब्रह्म की दिव्य नगरी स्थापित है, वे कैसे

सृजन करते हैं? यह किसकी महिमा है? वह कौन है जो यह सब महिमा बन गया?

2. उन्हें (शौनक को) उन्होंने (पिप्पलाद ने) ब्रह्म का सर्वोच्च ज्ञान प्रदान किया: वह प्राण है, आत्मा है। वह आत्मा की महिमा है, देवताओं का जीवन है। वे देवों के जीवन और मृत्यु दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह ब्रह्म जो दिव्य ब्रह्मपुर (या शरीर) में दोषरहित, प्रकट प्रभावों से रहित, स्वयं प्रकाशमान, सर्वव्यापी के रूप में चमकता है, वही जीव को नियंत्रित करता है, जैसे मकड़ी मधुमक्खियों के राजा को नियंत्रित करती है। जिस प्रकार मकड़ी एक धागे की सहायता से जाल को फैलाकर वापस खींच लेती है, उसी प्रकार प्राण भी अपनी सृष्टि को वापस खींचकर वापस चला जाता है। प्राण नाड़ियों या सूक्ष्म तंत्रिका-रज्जुओं का देवता है। स्वप्नरहित निद्रा में मनुष्य उस अवस्था से होकर अपने धाम को जाता है, जैसे बाज़ और आकाश - जैसे बाज़ आकाश पर उड़कर (अपने घोंसले में) जाता है। वे कहते हैं: -- जैसे यह देवदत्त (स्वप्नरहित निद्रा में) डंडे से मारे जाने पर भी भागता नहीं है, वैसे ही वह भी जीवन के नियत कार्यों के अच्छे या बुरे परिणामों से अपने को नहीं जोड़ता है; जैसे बालक बिना किसी उद्देश्य अथवा फल की इच्छा के (स्वतः) आनन्द लेता है, वैसे ही यह देवदत्त (स्वप्नहीन निद्रा का विषय) भी उस अवस्था में सुख भोगता है।

वह स्वयं को परम प्रकाश जानता है। प्रकाश की इच्छा करके वह प्रकाश का आनन्द लेता है। इसी प्रकार वह भी जोंक की भाँति स्वप्नावस्था में लौटता है: जैसे जोंक अपने को आगे के अन्य बिन्दुओं पर ले जाता है -

(पहले) अगले बिन्दु पर स्थिर करता है। और वह अवस्था जिसे वह अगले बिन्दु के लिए नहीं छोड़ता, उसे जाग्रत अवस्था कहते हैं। (वह इन सभी अवस्थाओं को अपने भीतर धारण करता है) जैसे (वैदिक) देवता आठ यज्ञ प्यालों को एक साथ धारण करता है। उसी से अग्नि का उद्गम होता है।

वेद और देवता वक्षस्थल की भाँति लटके हुए हैं। इस जाग्रत अवस्था में विशेष रूप से अच्छाई और बुराई, चमकते हुए प्राणी (अर्थात् मनुष्य की आत्मा) के लिए नियत रूप से प्राप्त होती है। यह प्राणी या आत्मा पूर्ण रूप से स्वयं-विस्तारित (विश्व-रूपों में) है, वह वस्तुओं और प्राणियों का अंतर्निहित नियंत्रक है, वह पक्षी है, केकड़ा है, कमल है, वह पुरुष है, प्राण है, संहारक है, कारण और प्रभाव है, ब्रह्म और आत्मा है, वह सब कुछ ज्ञात कराने वाला देवता है। जो यह सब जान लेता है, वह पारमार्थिक ब्रह्म को, अंतर्निहित आधार को, व्यक्तिपरक सिद्धांत को प्राप्त कर लेता है।

3. अब इस पुरुष के चार स्थान हैं, नाभि, हृदय, कंठ और सिर। इनमें चार पहलुओं वाला ब्रह्म चमकता है: जाग्रत अवस्था, स्वप्न की अवस्था, स्वप्नहीन निद्रा और चौथी या पारमार्थिक अवस्था। जाग्रत अवस्था में वह ब्रह्मा है, स्वप्न अवस्था में वह विष्णु है; स्वप्नरहित निद्रा में वे रुद्र हैं, और चौथी अवस्था में वे परम अविनाशी हैं, और वे ही सूर्य, विष्णु, ईश्वर, पुरुष, प्राण, जीव, अग्नि, ईश्वर और देदीप्यमान हैं; (हाँ) वे ब्रह्म जो पारलौकिक हैं, इन सबके भीतर प्रकाशित होते हैं! वे अपने आप में मन, कान, हाथ, पैर और प्रकाश से रहित हैं। वहाँ न तो लोक हैं, न अवतरण है, न वेद, देवता, यज्ञ हैं, न अवतरण है, न माता, न पिता, न पुत्रवधू हैं, न अवतरण है, न चाण्डाल का पुत्र है, न पुलक का पुत्र है, न अवतरण है, न भिक्षुक है, न अवतरण है, न सभी प्राणी हैं, न तपस्वी हैं, और इस प्रकार वहाँ केवल एक परम ब्रह्म ही प्रकाशित होते हैं।

हृदय के भीतर चेतना का वह आकाश है - जिसमें अनेक द्वार हैं, ज्ञान का लक्ष्य है, हृदय के अन्तरिक्ष में - जिसमें यह सब (बाहर का ब्रह्माण्ड) विकसित होता है और घूमता है, जिसमें यह सब विकृत और टेढ़ा-मेढ़ा है (जैसे कि)। (जो इसे जानता है), वह सम्पूर्ण सृष्टि को पूर्ण रूप से जानता है। वहाँ देव, ऋषि, पितर किसी का नियंत्रण नहीं रह जाता, क्योंकि पूर्ण रूप से जागृत होने पर व्यक्ति सभी सत्यों का ज्ञाता बन जाता है।

4. हृदय में देव निवास करते हैं, हृदय में प्राण स्थापित होते हैं, हृदय में परम प्राण और प्रकाश विद्यमान रहते हैं, साथ ही त्रिगुणात्मक कारण और महातत्त्व भी विद्यमान रहता है।

5. यह इस हृदय में, अर्थात् चेतना में विद्यमान रहता है। "यज्ञसूत्र पहनो जो परम पवित्र है, जो प्राचीन काल में स्वयं प्रजापति (प्रथम सृजित प्राणी) के साथ प्रकट हुआ था, जो दीर्घायु, श्रेष्ठता और पवित्रता का प्रतीक है, और यह तुम्हें शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करे!"

6. ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह बाह्य जनेऊ को सिर के पवित्र केशों के साथ उतारकर त्याग दे; क्योंकि वह सर्वव्यापक परब्रह्म ही जनेऊ है, उसे इसे धारण करना चाहिए।

7. सूत्र (या धागा) को इसलिए कहा गया है, क्योंकि इसने छेद करके (बनने की प्रक्रिया) आरंभ की है। यह सूत्र वास्तव में परमपद का निर्माण करता

है। जिसके द्वारा यह सूत्र जाना जाता है, वह विप्र (ऋषि) है, वह वेदों से परे पहुंच गया है।

8. इसके द्वारा यह सब (ब्रह्मांड) उसी प्रकार स्थिर हो जाता है, जैसे रत्नों का संग्रह एक धागे में पिरोया जाता है। जो योगी सभी योगों का ज्ञाता और सत्य का द्रष्टा है, उसे यह जनेऊ धारण करना चाहिए।

9. सर्वोच्च योग की स्थिति में स्थित होकर बुद्धिमान पुरुष को बाह्य जनेऊ को उतार देना चाहिए। जो वास्तव में आत्म-चेतन है, उसे ब्रह्म-जागृति से निर्मित जनेऊ धारण करना चाहिए।

10. इस सूत्र या धागे को धारण करने के कारण, वे न तो दूषित हो सकते हैं और न ही अशुद्ध, जिनके भीतर यह सूत्र विद्यमान है - जिनके पास यह ज्ञानरूपी यज्ञोपवीत है।

11. मनुष्यों में वे लोग, जो वास्तव में सूत्र को जानते हैं, वे वास्तव में यज्ञोपवीत धारण करते हैं, जो ज्ञान (सर्वोच्च ज्ञान) के प्रति समर्पित हैं, जिनके पवित्र केश-शिखा में यह ज्ञान है, उनके पवित्र धागे में यह ज्ञान है।

12. उनके लिए ज्ञान सबसे बड़ा शुद्ध करने वाला है - ज्ञान, वह अपने आप में सर्वश्रेष्ठ है। जिनके केश-शिखा में यह ज्ञान है, वे उससे वैसे ही भिन्न नहीं हैं जैसे अग्नि अपनी ज्वाला से भिन्न नहीं है। यह बुद्धिमान व्यक्ति वास्तव में शिखी (या केश-शिखा धारण करने वाला) कहा जाता है, जबकि अन्य केवल केश (सिर पर) उगाने वाले हैं।

13. किन्तु तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) के जो लोग वैदिक कर्म करने के अधिकारी हैं, उन्हें यह (अर्थात् सामान्य) जनेऊ धारण करना चाहिए, क्योंकि यह जनेऊ ऐसे कर्मों का अंग है।

14. जिसके जटाओं में ज्ञान है और जनेऊ में भी ज्ञान है, उसके सभी अंग ब्राह्मणत्व से युक्त हैं - हे वेदों के ज्ञाता! ऐसा जान लो!

15. यह पवित्र धागा (यज्ञ का, अर्थात् सर्वव्यापी वास्तविकता का) पुनः शुद्धि (स्वयं) है और वही सब (वैदिक कार्यों का) अंत है; और इस धागे को पहनने वाला बुद्धिमान है - वह स्वयं यज्ञ है और यज्ञ का ज्ञाता भी है।

16. सब प्राणियों में छिपा हुआ एक ईश्वर (स्वयं-प्रकाशमान), सबमें व्याप्त और सब प्राणियों का आत्मा, सब कार्यों (अच्छे या बुरे) को नियंत्रित और देखता हुआ, सब प्राणियों में रहने वाला और साक्षी (अर्थात न किसी कर्म का कर्ता और न ही भोक्ता), परम बुद्धिमान, दूसरा रहित, कोई गुण नहीं।

17. एक बुद्धिमान (सक्रिय) अनेक निष्क्रियों में से एक होने के कारण, जो एक से अनेकों को बनाता है - जो बुद्धिमान पुरुष इस आत्मा को जान लेते हैं, उन्हीं को शाश्वत शांति मिलती है, दूसरों को नहीं।

18. अपने को अरणि तथा प्रणव को ऊपरी अरणि बनाकर तथा ध्यान के अभ्यास द्वारा दोनों को आपस में रगड़कर, भगवान को उनकी गुप्त सत्ता में देखो।

19. जैसे तिल में तेल, दही में मक्खन, बहती हुई लहरों में जल तथा शमी की लकड़ी में अग्नि होती है, वैसे ही आत्मा भी सत्य तथा कठोर साधना द्वारा खोजने वाले को अपने भीतर ही मिल जाती है।

20. जैसे मकड़ी जाल बुनती है तथा फिर उसे वापस खींच लेती है, वैसे ही जीव क्रमशः जाग्रत तथा स्वप्नावस्था में आता है तथा वापस चला जाता है।

21. हृदय (अर्थात हृदय का आंतरिक कक्ष) कमल के फूल के समान है, जो गुहाओं से भरा हुआ है तथा जिसका मुख नीचे की ओर है। उसे ही समस्त जगत का महान निवास स्थान जानो।

22. जाग्रत अवस्था का केंद्र नेत्र जानो, स्वप्नावस्था का केंद्र कंठ जानो; स्वप्नरहित निद्रा की अवस्था हृदय में है, तथा दिव्य अवस्था सिर के शिखर में है।

23. जब कोई व्यक्ति प्रज्ञा या आध्यात्मिक समझ के माध्यम से अपने आपको परम आत्मा में स्थित करता है, तब उसे संध्या और ध्यान कहते हैं, तथा संध्या से संबंधित पूजा भी होती है।

24. ध्यान द्वारा की जाने वाली संध्या में द्रव्यों का अर्पण नहीं होता, तथा शरीर और वाणी का भी कोई परिश्रम नहीं होता; यह सभी प्राणियों को एक करने वाला तत्त्व है, और यही वास्तव में एकदंडियों के लिए संध्या है।

26. जिससे पहुँचे बिना वाणी मन के साथ वापस लौट जाती है, वही इस देहधारी प्राणी का दिव्य आनंद है, जिसे जानकर बुद्धिमान व्यक्ति (सभी बंधनों से) मुक्त हो जाता है।

26. (और यह आनंद वास्तव में) वह आत्मा है जो पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त है, जैसे दूध में मक्खन फैला हुआ है। यह ब्रह्मोपनिषद है, या ब्रह्म का सर्वोच्च ज्ञान, जो सभी की आत्मा की एकता के रूप में है, आध्यात्मिक अनुशासन (तपस) पर आधारित है जो आत्मा की विद्या या विज्ञान के अलावा कुछ नहीं है।
ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित ब्रह्मोपनिषद समाप्त होता है।

012 - कैवल्य उपनिषद

ॐ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. तब अश्वलायन भगवान परमेष्ठी (ब्रह्मा) के पास गए और कहा: हे प्रभु, ब्रह्म का ज्ञान सिखाएँ, जो सर्वोच्च है, हमेशा अच्छे लोगों द्वारा विकसित किया जाता है, छिपा हुआ है और जिसके द्वारा एक बुद्धिमान व्यक्ति तुरंत सभी पापों को दूर कर देता है और उच्च से भी उच्च पुरुष को प्राप्त करता है।

2. तब पितामह (ब्रह्मा) ने उससे कहा, "श्रद्धा, भक्ति और ध्यान के द्वारा इसे जानो। न तो कर्म से, न संतान से, न धन से, अपितु त्याग से ही कुछ लोगों ने अमरत्व प्राप्त किया है।

3. स्वर्ग से भी ऊपर, गुफा (बुद्धि) में बैठे हुए, जो चमकती है, (जिसे) संयमी लोग प्राप्त करते हैं - संयमी, जो शुद्ध मन वाले हैं, जिन्होंने वेदान्त के ज्ञान और संन्यास या त्याग के द्वारा वास्तविकता को अच्छी तरह से जान लिया है। ब्रह्मा के क्षेत्र में, ब्रह्मांडीय विघटन के समय, वे सभी प्रकट ब्रह्मांड की सर्वोच्च (प्रकट) अमरता से मुक्त हो जाते हैं।

4-5. एकांत स्थान में, एक सहज आसन पर बैठे हुए, शुद्ध, गर्दन, सिर और शरीर को सीधा रखते हुए, धार्मिक जीवन के अंतिम क्रम में रहते हुए, सभी इंद्रियों को नियंत्रित करके, अपने गुरु को आदरपूर्वक नमस्कार करते हुए, हृदय कमल में (ब्रहम का) ध्यान करते हुए, निष्कलंक, शुद्ध, स्पष्ट और शोकरहित।

6. (जो) अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त रूपों वाला, अच्छा, शान्त, अमर, संसारों का मूल, आदि, मध्य और अन्त से रहित, एकमात्र, सर्वव्यापी, चित् और आनन्द, निराकार और अद्भुत है।

7. उमा से संबद्ध, शक्तिशाली, तीन नेत्रों वाला, नीलकंठ वाला और शान्त, सर्वोच्च भगवान का ध्यान करते हुए, पवित्र व्यक्ति उस तक पहुँचता है जो सभी का स्रोत है, सभी का साक्षी है और अंधकार (अर्थात अविद्या) से परे है।
8. वह ब्रहमा है, वह शिव है, वह इन्द्र है, वह अपरिवर्तनीय है, सर्वोच्च है, स्वयं प्रकाशमान है, वह अकेला विष्णु है, वह प्राण है, वह काल और अग्नि है, वह चंद्रमा है।

9. जो कुछ था और जो कुछ होगा, वही सनातन है; उसे जानकर मनुष्य मृत्यु से परे हो जाता है; मुक्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

10. सभी प्राणियों में आत्मा को और आत्मा में सभी प्राणियों को देखकर मनुष्य सर्वोच्च ब्रहम को प्राप्त करता है - किसी अन्य उपाय से नहीं। 11. आत्मा को (निम्न) अरणि और ॐ को उच्च अरणि बनाकर ज्ञान के बार-बार घर्षण से बुद्धिमान पुरुष बंधन को जला देता है।

12. माया या अज्ञान से इस प्रकार मोहित होकर वह अपने को शरीर से ही पहचान लेता है और सभी प्रकार के कार्य करता है। जाग्रत अवस्था में वह (जीव) ही स्त्री, भोजन, पेय आदि भोगों के माध्यम से तृप्ति प्राप्त करता है।

13. स्वप्न अवस्था में वह जीव अपनी माया या अज्ञान से निर्मित अस्तित्व के क्षेत्र में सुख और दुःख का अनुभव करता है। गहन निद्रा की अवस्था में, जब सब कुछ विलीन हो जाता है (अपने कारणात्मक अवस्था में), वह तम या अप्रकटता से अभिभूत हो जाता है और अपने आनंद रूप में विद्यमान हो जाता है।

14. पुनः, पूर्वजन्मों में किए गए कर्मों के कारण, वही जीव स्वप्नावस्था या जाग्रत अवस्था में लौटता है। जो प्राणी तीन पुरियों (अर्थात जाग्रत, स्वप्न और गहन सुषुप्ति की अवस्थाओं) में क्रीड़ा करता है - उसी से समस्त विविधता उत्पन्न हुई है। वह आधार है, आनंद है, अविभाज्य चेतना है, जिसमें तीनों पुरियाँ विलीन हो जाती हैं।

15. इसी से प्राण, मन, सभी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न होते हैं जो सबको धारण करते हैं।

16. जो परम ब्रह्म है, सबका आत्मा है, जगत का महान आधार है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और शाश्वत है - वह तुम स्वयं हो, और तुम वही हो।

17. "जो जाग्रत, स्वप्न और गहन सुषुप्ति आदि घटनाओं को प्रकट करता है, वह मैं ही ब्रह्म हूँ" - ऐसा जानकर मनुष्य सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।

18. तीनों लोकों में भोग्य, भोक्ता और भोग्य क्या हैं - उन सबसे भिन्न मैं ही साक्षी, शुद्ध चैतन्य, सनातन शुभ हूँ।

19. मुझमें ही सब उत्पन्न होता है, मुझमें ही सब स्थित है और मुझमें ही सब लीन हो जाता है। मैं ही वह ब्रह्म हूँ, जो अद्वय है।

20. मैं सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हूँ, मैं ही सबमें महान हूँ, मैं ही अनेक ब्रह्माण्ड हूँ। मैं ही आदिपुरुष, पुरुष और शासक हूँ, मैं ही तेजोमय और सर्वगुणसंपन्न हूँ।

21. मैं बिना हाथ-पैरों वाला हूँ, मुझमें अकल्पनीय शक्ति है; मैं बिना आँखों वाला देखता हूँ, बिना कानों वाला सुनता हूँ। मैं सबको जानता हूँ और सबसे भिन्न हूँ। मुझे कोई नहीं जान सकता। मैं ही सदैव बुद्धि हूँ।

22. मुझे ही विभिन्न वेदों में पढ़ाया जाता है, मैं ही वेदान्त या उपनिषदों का उद्घोषक हूँ, तथा मैं ही वेदों का ज्ञाता भी हूँ। मेरे लिए न कोई पुण्य है, न कोई पाप, न मेरा नाश होता है, न मेरा जन्म है, न शरीर और इन्द्रियों के साथ मेरा कोई आत्म-संबंध है।

23-24. मेरे लिए न पृथ्वी है, न जल, न अग्नि, न वायु, न आकाश। इस प्रकार हृदयगुहा में स्थित, बिना अंगों वाला, बिना पराया, सबका साक्षी, अस्तित्व और अनस्तित्व से परे परमात्मा को जानकर मनुष्य शुद्ध परमात्मा को प्राप्त होता है।

25. जो शतरुद्रिय का अध्ययन करता है, वह अग्नि के समान पवित्र हो जाता है, मदिरापान के पाप से, ब्रह्महत्या के पाप से, जाने-अनजाने में किए गए कर्मों से पवित्र हो जाता है। इससे वह शिव की शरण में पहुँच जाता है। जो मनुष्य जीवन की सर्वोच्च कोटि का है, उसे इसे सदैव अथवा एक बार (प्रतिदिन) दोहराना चाहिए।

26. इसके द्वारा वह ज्ञान प्राप्त करता है, जो संसार सागर अथवा बारम्बार आवागमन का नाश कर देता है। अतः इस प्रकार जानने से कैवल्य अर्थात मोक्ष का फल प्राप्त होता है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। ॐ ! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें, हम दोनों का एक साथ पालन करें, हम दोनों मिलकर महान शक्ति के साथ कार्य करें, हमारा अध्ययन प्रबल और प्रभावशाली हो, हम परस्पर विवाद न करें (अथवा किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो !

मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! यहाँ कृष्ण-यजुर्वेद में सम्मिलित कैवल्योपनिषद समाप्त होता है।

013 - जाबाल उपनिषद

ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से ही निकलता है।(फिर) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए,यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता है।ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर काम करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1. बृहस्पति (देवताओं के गुरु) ने (ऋषि) याज्ञवल्क्य से पूछा: (कौन सा) कुरुक्षेत्र है,(वह प्रसिद्ध पवित्र स्थान जो पापों का नाश करता है और अच्छे लोगों की रक्षा करता है, (वह स्थान) जहाँ देवता यज्ञ करते हैं और जो सभी प्राणियों में ब्रह्म का निवास है? (याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया): अविमुक्त रुक्षेत्र है, (वह स्थान) जहाँ देवता देवताओं के लिए यज्ञ करते हैं और जो सभी प्राणियों में ब्रह्म का निवास है (अर्थात भौहों के मध्य)। इसलिए जहाँ भी कोई जाए, उसे इस प्रकार सोचना चाहिए:

यह कुरुक्षेत्र है, वह स्थान जहाँ देवता देवताओं के लिए यज्ञ करते हैं और जो सभी प्राणियों में ब्रह्म का निवास है। यह वह स्थान है जहाँ, जब जीवित व्यक्ति से प्राण निकल जाते हैं, रुद्र उसे मंत्र (तारक ब्रह्म) प्रदान करते हैं, जिसके द्वारा वह अमर होकर मोक्ष (अंतिम आनंद) प्राप्त करता है। अविमुक्त का आश्रय लेना चाहिए; अविमुक्त का परित्याग नहीं करना चाहिए।

(बृहस्पति ने कथन का अनुमोदन करते हुए कहा): ‘ऐसा ही है याज्ञवल्क्य’, हे पूज्य! ‘ऐसा ही है याज्ञवल्क्य’।

II-1. तत्पश्चात ऋषि अत्रि (सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पुत्र) ने याज्ञवल्क्य से पूछा: ‘मैं उस आत्मा को कैसे प्राप्त करूँ जो अनंत और अव्यक्त है?’ (इस पर) ज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया: उस अविमुक्त (मोक्षकर्ता के रूप में भगवान शिव) की पूजा करनी चाहिए; वह आत्मा जो अनंत और अव्यक्त है, अविमुक्त (ईश्वर में, गुणों से युक्त) में स्थित है (अर्थात उससे भिन्न नहीं है)।

II-2. ‘वह कौन सा स्थान है जहाँ अविमुक्त स्थापित है?’ ‘वह वर्ण और नासी के बीच में स्थापित है’। ‘वरण से क्या अभिप्राय है और नासी से क्या?’ ‘वरण इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह (दस) इंद्रियों (धारणा और क्रिया) द्वारा किए गए सभी दोषों को दूर करता है। नासी इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह सभी दोषों को नष्ट कर देता है।

(दस) इन्द्रियों द्वारा किये गये पाप। (वरण और नासी के बीच का स्थान नाक के ऊपरी भाग और भौंहों के मध्य का मिलन स्थान है)। 'उस (अविमुक्त) का स्थान कौन-सा है?' 'वह, जो भौंहों और नाक का (सुविदित) संधिस्थल है, वह स्वर्ग (सिर के मुकुट के रूप में) और इस संसार (ठोड़ी के अंत में रूप में) का संधिस्थल है। वेद के ज्ञाता इस संधिस्थल (समाधि) को संध्या के रूप में पूजते हैं (अपनी दैनिक पूजा में)। उस अविमुक्त की पूजा करनी चाहिए।

जो इस प्रकार (अविमुक्त का वास्तविक स्वरूप) जानता है, वह अपने शिष्यों को अविमुक्त का ज्ञान (कि व्यक्तिगत आत्मा निर्गुण ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है) प्रदान करता है।' तब अनुशासन के विद्यार्थियों (याज्ञवल्क्य के ब्रह्मचारियों) ने उनसे पूछाः 'कृपया हमें बताइए कि वह कौन-सा मंत्र है जिसके जप से अमरता प्राप्त होती है?' उन्होंने उत्तर दियाः 'शतरुद्रिय के जप से'। ये मंत्र वास्तव में अमरता प्राप्त करने वाले (रुद्र) के नाम हैं। इन मंत्रों के जप से मनुष्य अमर हो जाता है।

IV-1. तब विदेहों के राजा जनक ने (आदरपूर्वक) याज्ञवल्क्य के पास जाकर उनसे अनुरोध कियाः'पूज्यवर, मुझे त्याग (संन्यास) के सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।' तब उन्होंने (याज्ञवल्क्य ने) उत्तर दियाः'अनुशासित शिष्यत्व (ब्रह्मचर्य) की अवधि पूरी करने के बाद व्यक्ति गृहस्थ बन सकता है। गृहस्थ होने के बाद वह वनवासी (अर्थात वानप्रस्थ) हो सकता है।

वानप्रस्थ होकर वह संसार का त्याग कर सकता है (और इस प्रकार भिक्षु बन सकता है)। अथवा, वैकल्पिक रूप से, वह ब्रह्मचर्य से ही संन्यास ग्रहण कर सकता है, अथवा गृहस्थ अवस्था से, अथवा वानप्रस्थ के वन-जीवन से संन्यास ग्रहण कर सकता है। (यह भी हो सकता है कि) कोई व्यक्ति उसी दिन सांसारिक जीवन का त्याग कर सकता है, जिस दिन उसमें अरुचि उत्पन्न हो, चाहे वह संन्यास अवस्था से पहले व्रतों का पालन न करने वाला हो अथवा उनका पालन करने वाला हो, चाहे उसने अनुशासनबद्ध शिक्षा पूरी करने पर निर्धारित स्नान किया हो अथवा नहीं, चाहे वह वह हो जिसने अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात पवित्र अग्नि (उत्सन्नग्नि) जलाना बंद कर दिया हो अथवा वह वह हो जो (अन्य कारणों से) पवित्र अग्नि (अनाग्निका) जलाना बंद कर देता हो। कुछ (विधि निर्माता) द्विजों को संन्यास ग्रहण करने से पहले प्रजापत्य (जिसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं) नामक यज्ञ करने का निर्देश देते हैं।

किन्तु (यद्यपि ऐसा निर्धारित है) उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। उसे केवल वही यज्ञ करना चाहिए जिसमें अग्नि देवता हो। क्योंकि अग्नि प्राण है। इस प्रकार वह प्राण को (बलवान) बनाता है। तत्पश्चात उसे त्रैधात्वीय यज्ञ करना चाहिए। क्योंकि इस यज्ञ से उसके अन्दर अग्नि के तीन रूप अर्थात् सत्व, रज और तम (बलवान) होते हैं। (यज्ञ करने के पश्चात) उसे पवित्र अग्नि की गंध (धुआँ) लेनी चाहिए तथा निम्न मंत्र का उच्चारण करना चाहिए:

चतुर्थ-3। 'हे अग्नि, यह (प्राण) तुम्हारा स्रोत है; जैसे ही तुम सूत्रात्मा से (उचित समय पर) उत्पन्न हुए हो, तुम प्रकाशित हो रहे हो।

उसे (आत्मा, अपने परम स्रोत) जानकर तुम उसमें (लीन हो जाओ) आप हमारी सम्पत्ति बढ़ाएँ' (यहाँ पारलौकिक ज्ञान)। वास्तव में, यह अग्नि का स्रोत है, अर्थात् प्राणवायु। इसलिए इस मंत्र द्वारा जो कहा जाता है वह है: 'आप अपने स्रोत पर जाएँ'। स्वाहा।

IV-4। गाँव में (एक अच्छे वैदिक विद्वान के घर) पवित्र अग्नि प्राप्त करने के बाद वह पहले वर्णित पवित्र गंध को सूँघेगा। यदि वह पवित्र अग्नि प्राप्त करने में असमर्थ है, तो वह जल में आहुति देगा। क्योंकि जल वास्तव में सभी देवताओं का स्वरूप है। 'मैं सभी देवताओं को आहुति देता हूँ, स्वाहा' कहते हुए वह आहुति देगा और घी के साथ चढ़ाई गई आहुति (थोड़ा सा) उठाकर खाएगा, क्योंकि यह लाभकारी है। मुक्ति का मंत्र (अर्थात 'ओम') तीनों वेदों का सार है; इसे वह महसूस करेगा। यह ब्रह्म है और इसकी पूजा की जानी चाहिए। हे पूज्य याज्ञवल्क्य, ऐसा ही है (जनक ने कहा)। तब (ऋषि) अत्रि ने याज्ञवल्क्य से पूछा: 'याज्ञवल्क्य, मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि बिना जनेऊ के कोई ब्राह्मण कैसे हो सकता है?'

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया: ('मैं आत्मा हूँ, यह विश्वास ही उसका जनेऊ है।' फिर उसे जल पीना चाहिए (तीन बार विधिपूर्वक)। सांसारिक जीवन का त्याग करने वालों के लिए यही विधि बताई गई है।' (क्षत्रिय और अन्य जो त्याग के अधिकारी नहीं हैं, वे मोक्ष की तलाश कर सकते हैं) वीरों का मार्ग (जो युद्ध भूमि में मृत्यु को आमंत्रित करते हैं) या उपवास (मृत्यु तक अनुशासन के रूप में), या जल में प्रवेश (फिर कभी न उठने के लिए) या अग्नि में प्रवेश (जलकर राख हो जाने के लिए) या महायात्रा (जिसमें वे थक कर गिर पड़ते हैं) करते हैं। तब (त्याग के अधिकारी के मामले में) भिक्षुक (गेरू) रंग का वस्त्र पहने हुए, सिर मुंडाए हुए, कुछ भी स्वीकार न करने वाले (केवल भोजन के अलावा) शुद्ध, किसी को भी (मन, वचन और कर्म

से) चोट न पहुँचाने वाले, (तपस्या) भिक्षा पर रहने वाले, ब्रह्म को प्राप्त करने के योग्य हो जाते हैं।

यदि वे (रोग आदि से) बहुत पीड़ित हों, तो वे मानसिक संकल्प द्वारा या मंत्रों का उच्चारण करके संसार को त्याग सकते हैं। यह (त्याग का) मार्ग ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता, वेदांत में) द्वारा निर्धारित किया गया है; तपस्वी (संसार का त्याग करने वाला संन्यासी) इस मार्ग का अनुसरण करके ब्रह्म को प्राप्त करता है। 'हे पूज्य याज्ञवल्क्य, ऐसा ही है' (जनक ने कहा)।

VI-1. परमहंस कहलाने वाले ऋषि हैं (जैसे प्राचीन काल में ऋषि होते थे) संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋभु, निदाघ, जड़भारत, दत्तात्रेय, रैवतक और अन्य, जिनके शरीर पर कोई विशेष चिन्ह नहीं था, जिनका आचरण सांसारिक लोगों की समझ से परे था और जो (पूर्णतया) स्वस्थ होते हुए भी अपनी इंद्रियों से रहित व्यवहार करते थे।

VI-2. तीन प्रकार का दण्ड (बांस का), जलपात्र, गोफन (व्यक्तिगत सामान ले जाने के लिए), भिक्षापात्र, जल को शुद्ध करने का कपड़ा (दण्ड से बंधा हुआ), केशों का गुच्छा तथा पवित्र धागा, इन सबको त्यागकर जल (अर्थात जलाशय) में 'भूः स्वाहा' कहते हुए परमहंस आत्मा की खोज करेगा। जन्म से ही नग्न अवस्था में रहने वाला, विपरीतताओं (जैसे गर्मी और सर्दी, सुख और दुःख) से अप्रभावित, कुछ भी स्वीकार न करने वाला (केवल भोजन के अलावा), ब्रह्म के सत्य के मार्ग में स्थित, शुद्ध मन वाला, जीवन को बनाए रखने के लिए निर्धारित समय पर मुख में (शाब्दिक रूप से पेट के बर्तन में) भिक्षा ग्रहण करने वाला, भिक्षा के लाभ या हानि में समदर्शी, बिना किसी निवास स्थान के, खाली घर, मंदिर, घास के झुरमुट (या पुआल के ढेर), चींटी के टीले, पेड़ की छाया, कुम्हार की झोपड़ी, पवित्र अग्नि रखने वाली झोपड़ी, नदी का रेतीला किनारा, पहाड़ की झाड़ी या गुहा, पेड़ का खोखला भाग, झरने के आस-पास या साफ जमीन का टुकड़ा;

(किसी भी प्रकार के लाभदायक कार्य में) कोई प्रयास न करते हुए, 'मेरेपन' (अर्थात अधिकार-भाव) से मुक्त, सदैव ब्रह्म का ध्यान करते हुए, आत्मा के प्रति समर्पित, अच्छे और बुरे कर्मों के उन्मूलन में सदैव तत्पर, (ऋषि) अंततः त्याग की स्थिति में अपना शरीर त्याग देता है - (ऐसा ऋषि) वास्तव में परमहंस है। इस प्रकार उपनिषद (समाप्त) होता है। ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत से अनंत की उत्पत्ति होती है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए, यह केवल अनंत

(ब्रहम) के रूप में रहता है। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से संबंधित जाबालोपनिषद समाप्त होता है।

014 - श्वेताश्वतर उपनिषद

ओम! ब्रहम हम दोनों की रक्षा करें।हम दोनों का पोषण करें।हम दोनों मिलकर, बहुत ऊर्जा के साथ काम करें।हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो।हम एक दूसरे से नफरत न करें।

ओम! शांति! शांति! शांति!

I-1: ब्रहम (यानी वेद) के छात्र आपस में चर्चा करते हैं: कारण क्या है? (क्या यह) ब्रहम है? हम कहाँ से पैदा हुए हैं? हम क्यों जीते हैं? हमारा अंतिम विश्राम कहाँ है? किसके आदेश के तहत हम, जो ब्रहम को जानते हैं, सुख और दुख के नियम के अधीन हैं?

I-2: समय, प्रकृति, नियम, संयोग, पदार्थ, ऊर्जा, बुद्धि - न तो ये, न ही इनका संयोजन,अपने स्वयं के जन्म, पहचान और आत्मा के अस्तित्व के कारण परीक्षण को सहन कर सकते हैं। आत्मा भी
स्वतंत्र एजेंट नहीं है, सुख और दुख के अधीन है।

I-3: ध्यान की विधि का अभ्यास करते हुए, उन्होंने उस सत्ता को जाना जो धर्म का ईश्वर, दर्शन का आत्मा और विज्ञान की ऊर्जा है; जो सभी में स्वयं प्रकाशमान शक्ति के रूप में विद्यमान है; जो बुद्धि, भावनाओं और इच्छा का स्रोत है; जो अद्वितीय है; जो समय से लेकर व्यक्तिगत आत्मा तक, ऊपर बताए गए सभी कारणों का अधिपति है; और जो उनकी अपनी बुद्धि की सीमाओं के कारण समझ से परे थे।

I-4: हम उसे एक पहिये के समान ब्रहमांड के रूप में सोचते हैं, जिसमें एक पहिया है, जिसमें तीन टायर, सोलह छोर, पचास तीलियाँ, बीस

प्रति-तीलियाँ और आठ के छह सेट हैं; जो एक बेल्ट के माध्यम से तीन अलग-अलग सड़कों पर चलाया जाता है जो एकल है फिर भी अनेक है; और जिसका प्रत्येक चक्कर दो को जन्म देता है।

I-5: हम उसे (ब्रह्मांड के रूप में उसके प्रकटीकरण में) सोचते हैं जो एक नदी की तरह है जिसमें पाँच धाराओं का पानी है; जिसमें पाँच कारणों से पाँच बड़े मोड़ हैं; जिसमें पाँच प्राण तरंगें हैं, मन - पाँच गुना धारणा का आधार - स्रोत के लिए, और पाँच गुना दुख इसकी तेज़ धाराओं के लिए; और जिसमें पाँच भँवर, पाँच शाखाएँ और असंख्य पहलू हैं।

I-6: ब्रह्म के इस अनंत चक्र में, जिसमें सब कुछ रहता है और विश्राम करता है, तीर्थयात्री आत्मा चक्कर लगाती है

1-7: यह स्पष्ट रूप से परम ब्रह्म कहा गया है। इसमें त्रय है। यह दृढ़ आधार है, और यह अविनाशी है। इसके आंतरिक तत्व को जानकर, वेद के जानकार ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, और जन्म से मुक्त हो जाते हैं।

1-8: भगवान इस ब्रह्मांड को धारण करते हैं, जो नाशवान और अविनाशी, व्यक्त और अव्यक्त के संयोजन से बना है। जब तक आत्मा भगवान को नहीं जानती, तब तक वह सांसारिक सुखों से जुड़ी रहती है, और बंधी रहती है; लेकिन जब वह भगवान को जानती है, तो उसके सभी बंधन टूट जाते हैं।

1-9: चेतन विषय और अचेतन वस्तु, स्वामी और आश्रित, दोनों अजन्मा हैं। वह भी, जो भोक्ता और भोग्य (या इन दोनों के बीच) का संबंध स्थापित करने में लगी हुई है, अजन्मा है। जब ये तीनों ब्रह्म के रूप में अनुभव हो जाते हैं, तब आत्मा अनंत, सर्वव्यापक तथा कर्ताभाव से मुक्त हो जाती है।

1-10: जड़ नाशवान है, परंतु ईश्वर अविनाशी और अमर है। वही एकमात्र ईश्वर नाशवान जड़ और जीवात्माओं पर शासन करता है। उसका ध्यान करने से, उससे एकाकार होने से, और उसके साथ एकाकार होने से अंत में सभी भ्रम समाप्त हो जाते हैं।

1-11: ईश्वर के ज्ञान से सभी बंधन टूट जाते हैं। अज्ञान के मिटने से जन्म और मृत्यु समाप्त हो जाते हैं। उसका ध्यान करने से शरीर की चेतना से परे जाकर व्यक्ति तीसरी अवस्था अर्थात् सर्वव्यापक प्रभुता को प्राप्त होता है। उसकी सभी इच्छाएँ तृप्त हो जाती हैं, और वह दूसरा नहीं रह जाता।

1-12: इसे अपने आप में नित्य विद्यमान जानना है। वास्तव में, इससे परे जानने योग्य कुछ भी नहीं है। ध्यान के फलस्वरूप भोक्ता, भोग्य तथा भोग लाने वाली शक्ति - ये तीनों ब्रह्म के तीन रूप कहे गए हैं।

I-13: अग्नि को उसके मूल में, अग्नि-दण्ड में तब तक अनुभव नहीं किया जाता, जब तक कि उसे आघात से प्रज्वलित न किया जाए। फिर भी अग्नि का सूक्ष्म तत्व दण्ड में अनुपस्थित नहीं है; क्योंकि अग्नि को पुनः आघात करके, मूल में, अग्नि-दण्ड से प्राप्त किया जा सकता है। (साक्षात्कार से पूर्व तथा पश्चात आत्मा की स्थिति)। प्रणव का ध्यान करने से, आत्मा शरीर में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव की जाती है, (परन्तु वह साक्षात्कार से पूर्व भी अव्यक्त अवस्था में थी)।

I-14: अपने शरीर को लकड़ी का निचला टुकड़ा तथा प्रणव को लकड़ी का ऊपरी टुकड़ा बनाकर, ध्यान रूपी मंथन का अभ्यास करके, मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार उसी प्रकार करना चाहिए, जैसे कोई छिपी हुई वस्तु का पता लगाता है।

1-15-16: जैसे तिलों में तेल, दही में मक्खन, भूमिगत झरनों में जल, लकड़ी में अग्नि, वैसे ही यह आत्मा आत्मा में देखी जाती है। जो सत्य, संयम और एकाग्रता के द्वारा इस आत्मा को बार-बार देखता है, जो दूध में मक्खन की तरह सर्वव्यापी है, और जो आत्मज्ञान और ध्यान में निहित है - वह अज्ञान का नाश करने वाला परम ब्रह्म बन जाता है।

2-1: सत्य को प्राप्त करने के लिए पहले मन और इंद्रियों को वश में करके, और फिर अग्नि के प्रकाश को पाकर, विकसित आत्मा ने खुद को पृथ्वी से बाहर निकाला।

2-2: आत्म-प्रकाशित अन्तर्निहित आत्मा को प्रकट करने के लिए अपने मन को नियंत्रित करके, हम परम आनंद की प्राप्ति के लिए दृढ़तापूर्वक प्रयास करेंगे।

II-3: मन और बुद्धि की सहायता से स्वर्ग-आकांक्षी इन्द्रियों को वश में करके, अन्तर्यामी आत्मा उन्हें इस प्रकार पुनर्जीवित करती है कि वे स्वयं प्रकाशमान अनन्त प्रकाश को प्रकट करने में समर्थ हो सकें।

II-4: अन्तर्यामी आत्मा की महिमा महान है, जो सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, अनन्त और स्वयं प्रकाशमान है। केवल वे विरले लोग ही, जो जानते हैं, आवश्यक

अनुशासन और आध्यात्मिक अभ्यास करते हैं। बुद्धिमान लोग, वास्तव में, बुद्धि की गतिविधियों को नियंत्रित करते हैं, और ध्यान और एकाग्रता का अभ्यास करते हैं।

II-5: बुद्धिमानों के पदचिह्नों पर चलते हुए, मैं निरंतर ध्यान द्वारा तुम दोनों को प्राचीन ब्रह्म में लीन करता हूँ। महिमावान स्वयं प्रकट हों! अमर आनन्द के पुत्र मेरी बात सुनें - यहाँ तक कि वे भी जो स्वर्ग में रहते हैं!

II-6: जहाँ अग्नि का मंथन होता है, जहाँ वायु को नियंत्रित किया जाता है, जहाँ सोम रस बहता है - वहाँ मन पूर्णता प्राप्त करता है।

II-7: जिसे प्राप्त करके तुम मूल को नष्ट कर देते हो और फिर पिछले कर्मों के परिणामों से परेशान नहीं होते - उस आदि ब्रह्म में ही तुम आदि कारण, अन्तर्यामी आत्मा के द्वारा समर्पित हो जाओ।

II-8: शरीर को सीधा रखकर, वक्षस्थल, कंठ और सिर को सीधा रखकर, इन्द्रियों और मन को हृदय में खींचकर, ब्रह्मरूपी बेड़ा द्वारा सभी भयंकर धाराओं को पार कर जाना चाहिए।

II-9: प्रयत्नपूर्वक इन्द्रियों को वश में करके, शरीर की क्रियाओं को नियमित करके, जब प्राणमयी क्रियाएँ सौम्य हो जाएँ, तब नासिका से श्वास बाहर छोड़नी चाहिए। तब ज्ञानी को, बिना किसी विकर्षण के, मन पर उसी प्रकार पकड़ रखनी चाहिए, जैसे बेचैन घोड़ों पर लगाम होती है।

II-10: ध्यानपूर्वक अभ्यास करना चाहिए, गुफाओं और ऐसे अन्य शुद्ध स्थानों का सहारा लेना चाहिए, जो अभ्यास के लिए सहायक हों - ऐसे स्थान जहाँ की भूमि समतल हो, कंकड़-पत्थर न हों, और दृश्य आँखों को भाने वाले हों; जहाँ हवा, धूल, अग्नि, नमी और विचलित करने वाले शोर न हों।

II-11: योगाभ्यास में ब्रह्म के प्रकट होने से पहले बर्फ, धुआँ, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनू, बिजली, स्फटिक और चन्द्रमा जैसे रूप दिखाई देते हैं।

II-12: जब पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से उत्पन्न योग की पाँच प्रकार की अनुभूति योगी को दिखाई देती है, तब वह योगाग्नि से बना शरीर धारण कर लेता है और उसे रोग, बुढ़ापा या मृत्यु छू नहीं सकती।

II-13: कहा जाता है कि योग में प्रवेश करने के प्रथम लक्षण शरीर का हल्कापन, स्वास्थ्य, मन की प्यास न होना, चेहरे का साफ होना, मधुर स्वर, सुखद गंध और मल का कम त्याग होना हैं।

II-14: जिस प्रकार धूल से सना हुआ धातु का चक्र साफ करने पर चमकने लगता है, उसी प्रकार देहधारी प्राणी आत्मा के सत्य को देखकर एकत्व को प्राप्त करता है, लक्ष्य को प्राप्त करता है और शोकरहित हो जाता है।

II-15: जब योगी इस शरीर में आत्मा के सत्य की अनुभूति के माध्यम से ब्रह्म के सत्य को जान लेता है, तब वह परमात्मा को अजन्मा, शाश्वत और प्रकृति के सभी परिवर्तनों से मुक्त जानकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

II-16: यह परमात्मा सभी दिशाओं में व्याप्त है। वह ज्येष्ठ (हिरण्यगर्भ) है। वह गर्भ में प्रवेश कर चुका है। वह ही जन्मा है, और भविष्य में भी जन्म लेगा। वह सभी व्यक्तियों के अंदर आत्मा के रूप में है, सभी दिशाओं का सामना कर रहा है।

II-17: उस परमात्मा को नमस्कार है जो अग्नि में है, जो जल में है, जो पौधों में है, जो वृक्षों में है, जो पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त है।

तृतीय-1: वही स्वयंभू भगवान् सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के समय अकेले ही विद्यमान रहते हैं, जो अनेक शक्तियों को धारण करते हैं और अपनी अज्ञेय माया के कारण दिव्य प्रभु के रूप में प्रकट होते हैं। वे ही समस्त लोकों की रक्षा करते हैं और उनमें कार्यरत विभिन्न शक्तियों को नियंत्रित करते हैं। जो इस सत्ता को जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

तृतीय-2: जो अपनी शक्तियों से लोकों की रक्षा और नियंत्रण करते हैं, वे - रुद्र - वास्तव में एक ही हैं। उनके अलावा कोई ऐसा नहीं है जो उन्हें दूसरा बना सके। हे मनुष्यों, वे सभी प्राणियों के हृदय में विद्यमान हैं। वे सभी लोकों को प्रक्षेपित और पालन करने के पश्चात अंत में उन्हें अपने में समाहित कर लेते हैं।

तृतीय-3: यद्यपि स्वर्ग और पृथ्वी का रचयिता ईश्वर एक ही है, तथापि स्वर्ग ही इस ब्रह्मांड में सभी नेत्रों, मुखों, हाथों और पैरों का वास्तविक स्वामी है। स्वर्ग ही उन सभी को विभिन्न प्राणियों (जिनसे वे संबंधित

प्रतीत होते हैं) के ज्ञान, पूर्व कर्मों और प्रवृत्तियों के अनुसार अपने-अपने कर्तव्य करने के लिए प्रेरित करता है।

तृतीय-4: हे देव, जिसने देवताओं को बनाया और उनका पालन-पोषण किया; जो विश्वात्मा का भी मूल है; जो भक्तों को आनंद और बुद्धि प्रदान करता है, उनके पापों और दुखों का नाश करता है, तथा सभी नियमों के उल्लंघनों को दंडित करता है - हे देव, महान द्रष्टा और सभी के स्वामी, हमें अच्छे विचारों से संपन्न करें।

तृतीय-5: हे प्रभु, जो वेदों को प्रकट करके सभी प्राणियों को आशीर्वाद देते हैं, हमें अपने शांत और आनंदमय स्वरूप से प्रसन्न करने की कृपा करें, जो भय और पाप दोनों को जड़ से मिटा देता है।

तृतीय-6: हे वैदिक सत्यों के प्रकटकर्ता, आप अपने हाथ में जो बाण किसी पर चलाने के लिए पकड़े हैं, उसे शुभ बनाने की कृपा करें। हे भक्तों के रक्षक, आप अपने उस सौम्य व्यक्तिगत रूप को नष्ट न करें, जो ब्रह्मांड के रूप में प्रकट हुआ है।

तृतीय-7: इस व्यक्तिगत ब्रह्म से भी उच्च अनंत परम ब्रह्म है, जो सभी में छिपा हुआ है।जो अपने शरीर के अनुसार प्राणियों का समूह है, तथा जो एक रहते हुए भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को घेरे हुए है। उसे प्रभु जानकर मनुष्य अमर हो जाता है।

III-8: मैंने उस महान् सत्ता को जान लिया है जो समस्त अन्धकार से परे सूर्य के समान तेजस्वी है। उसे जानने पर ही मनुष्य मृत्यु से पार हो जाता है। जन्म-मरण के चक्र से बचने का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

III-9: उससे बड़ा या भिन्न कुछ भी नहीं है; उससे बड़ा या अधिक सूक्ष्म कुछ भी नहीं है। अपनी महिमा में निहित वह वृक्ष के समान खड़ा है, अद्वितीय और अचल। उस सत्ता से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भरा हुआ है।

III-10: वह सत्ता इस संसार से बहुत परे है, निराकार है और दुःख से मुक्त है। जो इसे जानते हैं वे अमर हो जाते हैं। परन्तु अन्य सभी को वास्तव में दुःख ही भोगना पड़ता है।

III-11: इसलिए, वह दिव्य भगवान, सर्वव्यापी, सर्वव्यापी और कल्याणकारी होने के कारण, सभी प्राणियों के हृदय में निवास करता है, और इस संसार में सभी चेहरों, सिरों और गर्दनों का उपयोग करता है।

III-12: यह आत्मा वास्तव में शक्तिशाली भगवान है। वह अविनाशी (आंतरिक) प्रकाश है जो सब कुछ नियंत्रित करता है। वह सभी प्राणियों की बुद्धि का मार्गदर्शन करता है ताकि उन्हें उस अत्यंत शुद्ध अवस्था (मुक्ति) को प्राप्त करने में सक्षम बनाया जा सके।

III-13: बुद्धि, भावना, कल्पना और इच्छा के आधार पर अंगूठे के आकार का रूप धारण करके, अनंत सत्ता प्राणियों के हृदय में उनके आंतरिक आत्मा के रूप में निवास करती है। जो लोग इसे महसूस करते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

III-14: उस अनंत सत्ता के एक हजार सिर, एक हजार आंखें और एक हजार पैर हैं जो पूरे ब्रह्मांड को चारों ओर से घेरे हुए हैं। वह दस अंगुलियों से परे मौजूद है।

III-15: जो है, जो था, और जो अभी होना है - यह सब इस अनंत सत्ता के अलावा और कुछ नहीं है। यद्यपि वह अपनी प्रकृति से परे वस्तुगत ब्रह्मांड के रूप में विकसित होता है, फिर भी वह अमरता का स्वामी बना रहता है।

III-16: हर जगह हाथ और पैर के साथ, हर जगह आँखें, सिर और मुँह के साथ, हर जगह कानों के साथ, वह मौजूद है, ब्रह्मांड में सब कुछ व्याप्त है।

III-17: वे उसे सभी इंद्रियों के कार्यों से चमकते हुए देखते हैं, फिर भी इंद्रियों के बिना सभी का स्वामी, सभी का शासक, सभी का आश्रय और सभी का मित्र।

III-18: वह शरीर में, नौ दरवाजों वाले शहर में रहता है। वह आत्मा है जो बाहरी दुनिया में खेलती है। वह पूरे संसार का स्वामी है, चेतन और निर्जीव।

III-19: बिना हाथ और पैर के वह तेजी से चलता है और पकड़ता है; बिना आँखों के वह देखता है; बिना कानों के वह सुनता है। वह जो कुछ भी जानना है, वह जानता है, फिर भी कोई भी उसे नहीं जानता है। वे कहते हैं कि वह सर्वोपरि, महान अनंत सत्ता है।

III-20: सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्मतम और महानतम से भी महान, आत्मा जीव के हृदय में छिपी हुई है। सृष्टिकर्ता की कृपा से, व्यक्ति दुःखों और इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, और फिर उसे महान भगवान के रूप में अनुभव करता है।

III-21: मैं इस अविनाशी आदिम सर्वव्यापी आत्मा को जानता हूँ, जो अपनी सर्वव्यापकता के कारण सर्वव्यापी है, और जिसे ब्रह्म के व्याख्याता जन्म से नित्य मुक्त बताते हैं।

IV-1: वह दिव्य सत्ता, जो स्वयं रंगहीन होते हुए भी, अपने अज्ञेय उद्देश्य के लिए, अपनी शक्ति की सहायता से विभिन्न प्रकार से विभिन्न रंगों को जन्म देती है, और जो अंत में पूरे विश्व को अपने में विलीन कर देती है - वह हमें अच्छे विचारों से संपन्न करे!

IV-2: वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही तारों वाला आकाश है, वही ब्रह्म है, वही जल है, वही प्रजापति है।

IV-3: तुम स्त्री हो, तुम पुरुष हो, तुम युवा हो और युवती भी। तुम वृद्ध हो जो डंडे पर झुककर चलता है। तुम सभी दिशाओं में मुख मोड़कर पैदा हुए हो।

IV-4: तुम गहरे नीले रंग की तितली हो और लाल आंखों वाला हरा तोता। तुम गरजने वाले बादल हो, ऋतुएँ हो और महासागर हो। तुम अनादि हो और सभी समय और स्थान से परे हो। तुम ही वह हो जिससे सभी संसार उत्पन्न हुए हैं।

IV-5: लाल, सफेद और काले रंग की एक ही स्त्री है, जो अजन्मी है और जो जन्म देती है उसके समान अनेक संतानें हैं। उसके पास एक अजन्मा नर उसके प्रति आसक्ति के कारण लेटा है, जबकि दूसरा नर, जो अजन्मा है, उसका भोग करके उसे त्याग देता है।

IV-6: एक ही वृक्ष पर सुन्दर पंख वाले दो पक्षी, जो अभिन्न मित्र हैं, निवास करते हैं। इनमें से एक वृक्ष के फलों को बड़े चाव से खाता है, जबकि दूसरा बिना खाए देखता रहता है।

IV-7: एक ही वृक्ष पर बैठकर जीवात्मा भ्रमित होकर अपने दिव्य स्वरूप को भूलकर दुःखी हो जाता है। जब वह दूसरे को, सबके स्वामी को, जिसकी सभी भक्त पूजा करते हैं, देखता है और यह अनुभव करता है कि सारी महानता उसी की है, तब वह दुःख से मुक्त हो जाता है।

IV-8: जो उस अविनाशी, सर्वोच्च ईश्वर सत्ता को नहीं जानता, जिसमें देवता और वेद निवास करते हैं, उसके लिए वेद किस काम के? जो उसे जानते हैं, वे ही संतुष्ट होते हैं।

चतुर्थ-9: माया के स्वामी वेद, यज्ञ, साधना, भूत और भविष्य, धार्मिक अनुष्ठान, वेदों में वर्णित सभी बातें तथा स्वयं हम सब सहित सम्पूर्ण जगत को प्रक्षेपित करते हैं। दूसरा भी इसमें माया से बंधा हुआ है।

चतुर्थ-10: तो जान लो कि प्रकृति माया है, तथा महान ईश्वर माया के स्वामी हैं। सम्पूर्ण जगत उन प्राणियों से भरा हुआ है जो उनके अंश हैं।

चतुर्थ-11: उस आत्म-प्रकाशमान आराध्य भगवान, वरदानदाता को जानने पर अनंत शांति प्राप्त होती है, जो एक होते हुए भी प्रजापति के सभी पहलुओं के अधिष्ठाता हैं, जिनमें यह ब्रह्माण्ड विलीन हो जाता है, तथा जिनमें यह अनेक रूपों में प्रकट होता है।

चतुर्थ-12: वे, जिन्होंने देवताओं को उत्पन्न किया तथा उनका पालन किया; जिन्होंने ब्रह्माण्डीय आत्मा के जन्म को देखा; जो भक्तों को आनन्द और बुद्धि प्रदान करते हैं, उनके पापों और दुःखों का नाश करते हैं, तथा सभी नियमों के उल्लंघनों को दण्डित करते हैं - वे महान द्रष्टा और सबके स्वामी, हमें शुभ विचार प्रदान करें!

IV-13: हम उस आनन्दमय दिव्य सत्ता की पूजा आहुति के साथ करें, जो देवों का स्वामी है, जो द्विपादों और चतुर्भुजों का शासन करता है और जिसमें सारे लोक स्थित हैं।

IV-14: जब कोई उस आनन्दमय सत्ता को जान लेता है, जो सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म है, जो अराजकता के बीच में संसार की रचना करता है, जो अनेक रूप धारण करता है, तथा जो एकमात्र है जो ब्रह्माण्ड को घेरे हुए है, तो उसे असीम शान्ति प्राप्त होती है।

IV-15: वही उचित समय पर संसार का रक्षक है। वह समस्त प्राणियों में छिपा हुआ ब्रह्माण्ड का स्वामी है। उसी में दिव्य ऋषिगण और देवता विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार उसे जान लेने पर मनुष्य मृत्यु के बंधनों को काट डालता है।

चतुर्थ-१६: जो परम आनन्दमय परमेश्वर इस संसार को घेरे हुए है, जो घी से भी अधिक सूक्ष्म सार रूप में सभी प्राणियों में छिपा हुआ है, उस परम आनन्दमय परमेश्वर को जानने पर मनुष्य सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।

चतुर्थ-१७: वह परमात्मा जिसने इस जगत की रचना की है, जो सबमें व्याप्त है, वह भावना, बुद्धि, इच्छा और कल्पना द्वारा परिमित होकर प्राणियों के हृदय में सदैव निवास करता है। जो इसे जान लेता है, वह अमर हो जाता है।

चतुर्थ-१८: जब अज्ञान दूर हो जाता है, तब न दिन रहता है, न रात, न सत् है, न असत्। केवल वही मंगलमय परमेश्वर है, जो अविनाशी है, और जो सृष्टिकर्ता द्वारा पूजित होने के योग्य है। उसी से प्राचीन ज्ञान उत्पन्न हुआ है।

चतुर्थ-१९: उसे कोई ऊपर, पार, या मध्य में नहीं पकड़ सकता। जिसका नाम महान महिमा है, उसके समान कोई नहीं है।

चतुर्थ-२०: उसका रूप इन्द्रियों की सीमा में नहीं आता। कोई भी उसे आँख से नहीं देख सकता। जो लोग अपने हृदय में स्थित अंतर्ज्ञान की क्षमता के माध्यम से उसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।

IV-21: कुछ लोग भयभीत होकर आपके पास आते हैं, यह सोचकर कि आप अजन्मे हैं। हे रुद्र, अपने उस दयालु चेहरे से मेरी रक्षा करें।

IV-22: बच्चों, पोते-पोतियों और जीवन के संबंध में हमें नुकसान न पहुँचाएँ, न ही गायों और घोड़ों के संबंध में।हे रुद्र, अपने क्रोध में हमारे नायकों को नष्ट न करें। हम हमेशा आपको प्रसाद के साथ बुलाते हैं।

V-1: अज्ञान नाशवान की ओर ले जाता है। ज्ञान अमरता की ओर ले जाता है। इन सबसे पूरी तरह अलग वह अविनाशी, अनंत, गुप्त, परम ब्रह्म है,

जिसमें ज्ञान के साथ-साथ अज्ञान भी मौजूद है, और जो उन दोनों को नियंत्रित करता है।
V-2: वह अकेला ही सभी पहलुओं में प्रकृति का अध्यक्ष है, और हर रूप और हर कारण को नियंत्रित करता है वह स्वर्ण वर्ण के प्रथम जन्मे द्रष्टा के जन्म का साक्षी है और उसे ज्ञान से पोषित करता है।

3: प्रत्येक वंश को उसकी प्रजाति में तथा प्रत्येक प्रजाति को उसके सदस्यों में विभेदित करते हुए, सर्वोच्च सत्ता उन्हें एक बार फिर से उनके अपने मैदान में वापस ले लेती है। पुनः, सृजन के कारकों को सामने लाते हुए, महान आत्मा उन सभी पर शासन करती है।

4: जिस प्रकार सूर्य ऊपर, नीचे तथा पार के सभी स्थानों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार वह एक आराध्य ईश्वर, जो सभी अच्छाइयों तथा महानताओं का भण्डार है, वह प्रत्येक उस चीज़ पर शासन करता है जिसका स्वभाव कारण है।

5: वह जो संसार का एकमात्र स्रोत है, अपनी प्रकृति से सभी चीज़ों को बाहर निकालता है, तथा प्राणियों को उनकी योग्यता के अनुसार पूर्णता की ओर ले जाता है, तथा प्रत्येक प्राणी को उसकी विशिष्ट विशेषता प्रदान करता है। इस प्रकार वह पूरे ब्रह्मांड पर शासन करता है।

6: वह उपनिषदों में छिपा हुआ है, जो वेदों का सार है। हिरण्यगर्भ उसे अपना तथा वेदों का मूल मानता है। पूर्वकाल में जिन देवताओं और ऋषियों ने उसे जाना था, वे उसके साथ एकाकार हो गए और वास्तव में अमर हो गए।

7: जो व्यक्ति वस्तुओं के सुखदायी गुणों में आसक्त हो जाता है, वही उसके फल के लिए कर्म करता है और अपने कर्मों का फल भोगता है। वास्तव में इन्द्रियों का स्वामी होते हुए भी वह तीनों गुणों से बंध जाता है और अपने कर्मों के फलस्वरूप विभिन्न रूप धारण करके तीनों मार्गों से भटकता रहता है।

8: अंकुश की नोक के समान सूक्ष्म, सूर्य के समान शुद्ध, तेजोमय और अनंत, वही हृदय की सीमा के कारण अंगूठे के आकार का दूसरा रूप धारण करता हुआ तथा बुद्धि की सीमाओं के कारण अहंकार और संकल्प से युक्त दिखाई देता है।

9: वह जीवात्मा एक केश की नोक के समान सूक्ष्म है, जो सैकड़ों बार विभाजित और उपविभाजित होती है। फिर भी वह अनंत है। उसे जानना होगा।

V-10: वह न तो स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। वह जो भी शरीर धारण करता है, उसी के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

V-11: देहधारी आत्मा अपने कर्मों के अनुसार इच्छा, स्पर्श, दृष्टि और मोह से विभिन्न स्थानों में विभिन्न रूप धारण करता है, जैसे अन्न-जल की वर्षा से शरीर पुष्ट होता है।

V-12: देहधारी आत्मा अपने, कर्मों और मन के गुणों के आधार पर स्थूल और सूक्ष्म अनेक रूप चुनता है। उनके संयोग का कारण कोई और ही पाया जाता है।

V-13: जो आदि और अंत से रहित है, जो अराजकता के बीच में ब्रहमांड की रचना करता है, जो अनेक रूप धारण करता है, और जो अकेले ही सब कुछ को आच्छादित करता है, उसे जानकर मनुष्य सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।

वी-14: वह परम दिव्यता जिसने जीवन और पदार्थ दोनों की रचना की, जो सभी कलाओं और विज्ञानों का स्रोत है, जिसे शुद्ध और समर्पित मन द्वारा समझा जा सकता है - उसे, आनंदमय, निराकार और अनाम को महसूस करके, व्यक्ति आगे के अवतार से मुक्त हो जाता है।

VI-1: कुछ भ्रमित विचारक प्रकृति की बात करते हैं, और अन्य समय की, जो इस ब्रहम चक्र को घुमाने वाली शक्ति है। लेकिन वास्तव में यह सब दुनिया में प्रकट भगवान की महिमा ही है।

VI-2: यह जानना चाहिए कि ऊर्जा पृथ्वी, जल, प्रकाश, वायु और आकाश जैसे विभिन्न रूपों को उसी के आदेश पर ग्रहण करती है जो गुणों का स्वामी और समय का निर्माता है, जो सर्वज्ञ है, जो स्वयं शुद्ध चेतना है, और जिसके द्वारा यह सब हमेशा आच्छादित है।

VI-3: सृष्टि को गति देने और स्वयं को उससे अलग करने के पश्चात, वे आत्मा के सिद्धांत को पदार्थ के सिद्धांत के साथ जोड़ते हैं - एक के साथ,

दो के साथ, तीन के साथ और आठ के साथ - काल के साधन मात्र और उनके अपने अंतर्निहित गुणों के माध्यम से।

VI-4: वे प्रकृति के तीन गुणों और अन्य सभी चीजों से जुड़ी सृष्टि को प्रारंभ करते हैं। फिर, गुणों की अनुपस्थिति में, वे सभी निर्मित वस्तुओं को नष्ट कर देते हैं, और विनाश के बाद, अपने सार में अलग रहते हैं।

VI-5: अपने हृदय में बैठे हुए उस आराध्य पर पहले से ध्यान करने से, जो ब्रह्मांड के रूप में प्रकट होता है, और जो सभी प्राणियों का सच्चा स्रोत है, उसे देखा जा सकता है, भले ही वह (आत्मा और पदार्थ के मिलन का) आदि कारण है, साथ ही तीनों से परे अविभाज्य इकाई है।काल के विभाजन।

VI-6: जो जगत् का मूल और प्रलय है - सभी पुण्यों का स्रोत, सभी पापों का नाश करने वाला, सभी सद्गुणों का स्वामी, अमर और जगत् का धाम है - उसे अपने ही भीतर विराजमान जानकर, वह संसार के वृक्ष से, काल और रूप से भी भिन्न और उससे परे है।

VI-7: हम उसे - जगत् के पारलौकिक और आराध्य स्वामी को - जो सभी प्रभुओं का स्वामी, सभी देवताओं से ऊपर परम परमेश्वर और सभी शासकों का सर्वोच्च शासक है - अनुभव करें।

VI-8: उसे अपने लिए कुछ भी प्राप्त नहीं है, न ही उसके पास कोई कर्मेन्द्रिय है। कोई भी उसके बराबर या उससे श्रेष्ठ नहीं दिखाई देता। उसकी महान शक्ति को ही वेदों में अनेक प्रकार का बताया गया है और उसका ज्ञान, बल और क्रिया उसी में निहित बताई गई है।

VI-9: संसार में कोई भी उसका स्वामी नहीं है, न ही उस पर किसी का कोई नियंत्रण है। ऐसा कोई चिह्न नहीं है जिससे उसका अनुमान किया जा सके। वह सबका कारण है, तथा व्यक्तिगत आत्माओं का शासक है। उसका कोई माता-पिता नहीं है, न ही कोई ऐसा है जो उसका स्वामी हो।

VI-10: जो परम पुरुष अपने को प्रकृति के उत्पादों से स्वतः ही ढक लेता है, जैसे मकड़ी अपनी नाभि से खींचे गए धागों से ढक लेती है, वह हमें ब्रह्म में लीन होने दे!

VI-11: ईश्वर, जो एक ही है, सभी प्राणियों में छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापी है, तथा सभी प्राणियों का अंतरात्मा है। वह सभी कार्यों का अधिष्ठाता है,

तथा सभी प्राणी उसमें निवास करते हैं। वह साक्षी है, तथा वह प्रकृति के तीनों गुणों से मुक्त शुद्ध चेतना है।

VI-12: जो बुद्धिमान पुरुष अपने हृदय में उस एक की उपस्थिति का अनुभव करते हैं, जो निष्क्रिय अनेकों का शासक है, तथा जो एक बीज को अनेक बना देता है - उन्हें ही शाश्वत सुख प्राप्त होता है, अन्य किसी को नहीं।

VI-13: वे सनातनों में सनातन हैं और बुद्धिमानों में बुद्धिमान हैं। एक होते हुए भी वे अनेकों की कामनाओं को पूर्ण करते हैं। उन सबके कारण, जो दर्शन और धर्म के द्वारा समझ में आने वाले हैं, को प्राप्त करने पर मनुष्य सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।

VI-14: वहाँ सूर्य नहीं चमकता, न चंद्रमा, न तारे। वहाँ ये बिजलियाँ नहीं चमकतीं - फिर यह अग्नि कैसे ? क्योंकि वे चमकते हैं, इसलिए उनके पीछे सब कुछ चमकता है। उनके प्रकाश से यह सब चमकता है।

VI-15: इस ब्रह्माण्ड में अज्ञान का नाश करने वाले एकमात्र वे ही जल में स्थित अग्नि हैं। उन्हें प्राप्त करने से ही मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। मुक्ति का कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

VI-16: वे ही सब कुछ के रचयिता हैं और सब कुछ के ज्ञाता भी हैं। वे ही अपना स्रोत हैं, वे ही सर्वज्ञ हैं और वे ही काल के नाशकर्ता हैं। वे ही सभी सद्गुणों के भण्डार हैं और सभी विद्याओं के स्वामी हैं। वे जड़ और आत्मा के नियंत्रक हैं, तथा गुणों के स्वामी हैं। वे जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति के कारण हैं, तथा बंधन से मुक्ति के कारण हैं।

VI-17: वे विश्व की आत्मा हैं, वे अमर हैं, तथा उनका शासन है। वे सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापक हैं, विश्व के रक्षक हैं, सनातन शासक हैं। अन्य कोई भी ऐसा नहीं है जो इस विश्व पर सनातन शासन कर सके।

VI-18-19: जिन्होंने सृष्टि के आरंभ में ब्रह्म (सार्वभौमिक चेतना) को प्रक्षेपित किया, जिन्होंने उन्हें वेद प्रदान किए, जो अमरता के सर्वोच्च सेतु हैं, जो अविभाज्य, कर्मों से रहित, शांत, दोषरहित, निष्कलंक हैं तथा अपने ईंधन को भस्म कर देने वाली अग्नि के समान हैं - मुक्ति की खोज में मैं उस तेजोमय की शरण में जाता हूँ, जिसका प्रकाश बुद्धि को आत्मा की ओर मोड़ देता है।

VI-20: जब मनुष्य आकाश को चमड़े की तरह लपेट लेंगे, तभी ईश्वर प्राप्ति के बिना उनके दुःखों का अंत होगा।

VI-21: स्वयं संयम और मन की एकाग्रता के बल पर तथा ईश्वर की कृपा से ब्रहम को प्राप्त करके, ऋषि श्वेताश्वतर ने संन्यासियों के सर्वोच्च वर्ग को उस परम पवित्र ब्रहम के सत्य का अच्छी तरह से वर्णन किया, जिसका सभी ऋषियों ने आश्रय लिया है।

VI-22: पूर्व युग में वेदान्त में प्रतिपादित इस सर्वोच्च रहस्यवाद को न तो उस व्यक्ति को सिखाया जाना चाहिए, न ही उस व्यक्ति को जो योग्य पुत्र न हो, न ही किसी अयोग्य शिष्य को।

VI-23: ये सत्य, जब सिखाए जाते हैं, तो केवल उस महापुरुष में प्रकाशित होते हैं, जिसकी भगवान के प्रति परम भक्ति होती है।ईश्वर और आध्यात्मिक गुरु के प्रति समान भक्ति। वे केवल उस महापुरुष में ही प्रकाशित होते हैं। ॐ! ब्रहम हम दोनों की रक्षा करें। ॐहम दोनों का पोषण करें। ॐहम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें। ॐहमारा अध्ययन सशक्त और प्रभावी हो। ॐहम एक दूसरे से घृणा न करें। ॐ! शांति! शांति! शांति! ॐकृष्ण-यजुर्वेद में सम्मिलित श्वेताश्वतरोपनिषद् यहीं समाप्त होता है।

015 - हंस उपनिषद

ॐ! वह (ब्रहम) अनंत है, और यह (ब्रहमांड) अनंत है।अनंत अनंत से ही निकलता है।(तब) अनंत (ब्रहमांड) की अनंतता को लेकर,यह अनंत (ब्रहम) ही रह जाता है।ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे परिवेश में शांति हो!
मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. गौतम ने सनत्कुमार को इस प्रकार संबोधित किया: "हे प्रभु, आप सभी धर्मों के ज्ञाता हैं और सभी शास्त्रों में पारंगत हैं, कृपया मुझे वह उपाय बताएं जिससे मैं ब्रहम-विद्या का ज्ञान प्राप्त कर सकूं।

2. सनत्कुमार ने इस प्रकार उत्तर दिया: "हे गौतम, उस तत्त्व को सुनो, जिसे पार्वती ने सभी धर्मों की जांच करने और शिव की राय जानने के बाद समझाया था।

3. हंस के स्वरूप पर यह ग्रंथ, जो आनंद और मोक्ष का फल देता है तथा जो योगी के लिए एक खजाने के समान है, बहुत रहस्यपूर्ण है और इसे लोगों के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए।

4. अब हम ब्रह्मचारी के लाभ के लिए हंस और परमहंस के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या करेंगे, जो अपनी इच्छाओं को वश में रखता है, अपने गुरु के प्रति समर्पित है और हमेशा हंस का चिंतन करता है और इस प्रकार अनुभव करता है: यह (हंस) सभी शरीरों में व्याप्त है, जैसे सभी प्रकार की लकड़ी में आग या सभी प्रकार के तिल के बीजों में तेल। इस प्रकार (इसे) जानने के बाद, व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। गुदा को सिकोड़कर (एड़ियों को दबाकर), मूलाधार (चक्र) से वायु (सांस) को ऊपर उठाकर, स्वाधिष्ठान की तीन परिक्रमा करके, मणिपूरक में जाकर, अनाहत को पार करके, विशुद्धि में प्राण को रोककर और फिर आज्ञा में पहुँचकर, ब्रह्मरंध्र (सिर में) में ध्यान करता है और वहाँ हमेशा 'मैं तीन मात्राओं वाला हूँ' का ध्यान करके, (अपनी आत्मा को) पहचानता है और निराकार हो जाता है। शिश्न (लिंग) के दो पक्ष हैं (सिर से पैर तक बाएँ और दाएँ)। यह वह परमहंस (परम हंस या उच्चतर आत्मा) है, जिसमें करोड़ों सूर्यों का तेज है और जिसके द्वारा यह सारा संसार व्याप्त है। यदि (यह हंस जिसका वाहन बुद्धि है) आठ गुना वृत्ति वाला है। (जब यह) पूर्वी पंखुड़ी में है, तो (व्यक्ति में) पुण्य कार्यों की प्रवृत्ति होती है; दक्षिण-पूर्वी पंखुड़ी में नींद, आलस्य,दक्षिण दिशा में क्रूरता की प्रवृत्ति होती है, दक्षिण-पश्चिम दिशा में पाप की प्रवृत्ति होती है, पश्चिम दिशा में विषय-क्रीड़ा की प्रवृत्ति होती है, उत्तर-पश्चिम दिशा में घूमने-फिरने की इच्छा होती है, उत्तर दिशा में काम-वासना की इच्छा होती है, उत्तर-पूर्व दिशा में धन-संचय की इच्छा होती है, मध्य दिशा में (या पंखुड़ियों के बीच के अंतराल में) भौतिक सुखों के प्रति उदासीनता होती है। कमल के तंतु में जागृत अवस्था होती है, पेरिकार्प में स्वप्न (स्वप्न की स्थिति) होती है, बीज में सुषुप्ति (स्वप्नहीन नींद की स्थिति) होती है, कमल को छोड़ते समय तुर्य (चौथी अवस्था) होती है।

जब हंस नाद (आध्यात्मिक ध्वनि) में लीन हो जाता है, तो चौथे से आगे की अवस्था प्राप्त हो जाती है। नाद (जो ध्वनि के अंत में है और वाणी और मन से परे है) मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक फैले हुए शुद्ध स्फटिक की तरह है।

इसे ही ब्रह्म और परमात्मा कहा गया है। (यहाँ अजपा गायत्री का प्रदर्शन दिया गया है): अब हंस ऋषि है; छंद अव्यक्त गायत्री है; परमहंस देवता (या अधिष्ठाता देवता) है 'हं' बीज है; 'सा' शक्ति है; सो'हम किलक (कील) है। इस प्रकार छह हैं।

एक दिन और रात में 21,600 हंस (या साँस) होते हैं। सूर्य, सोम, निरंजना (निर्मल) और निरभास (ब्रह्मांडहीन) को (नमस्कार)। अजपा मंत्र। (शरीरहीन और सूक्ष्म एक मेरा मार्गदर्शन करें (या मेरी समझ को प्रकाशित करें)। अग्नि-सोम को वशात। फिर अंगन्यास और करन्यास हृदय और अन्य स्थानों में होते हैं (या मंत्रों के बाद किए जाने चाहिए, जैसे मंत्रों से पहले किए जाते हैं)। ऐसा करने के बाद, व्यक्ति को अपने हृदय में आत्मा के रूप में हंस का चिंतन करना चाहिए। अग्नि और सोम इसके पंख (दाहिने और बाएं भाग) हैं; ओंकार इसका सिर है; उकार और बिंदु क्रमशः तीन आंखें और चेहरा हैं; रुद्र और रुद्राणी (या रुद्र की पत्नी) पैर हैं। कंठता (या जीवात्मा या हंस, निम्न स्व का परमात्मा या परमहंस, उच्च स्व के साथ एकत्व का बोध) दो तरीकों से किया जाता है (संप्रज्ञात और असम्प्रज्ञात)।

उसके बाद, उन्मनी अजपा (मंत्र) का अंत है। इस (हंसा) के माध्यम से इस प्रकार मनस का चिंतन करने के बाद, व्यक्ति इस जप (मंत्र) के एक करोड़ बार उच्चारण के बाद नाद सुनता है। वह (नाद) दस प्रकार का सुनाई देने लगता है। पहला है चिनी (उस शब्द की ध्वनि के समान), दूसरा है चिनी चिनी, तीसरा है घंटी की ध्वनि, चौथा है शंख की ध्वनि, पाँचवाँ है तन्त्री की ध्वनि, छठा है ताल की ध्वनि, सातवाँ है बाँसुरी की ध्वनि, आठवाँ है भेरी की ध्वनि, नौवाँ है मृदंग की ध्वनि, और दसवाँ है बादलों की ध्वनि। वह दसवाँ नाद बिना पहले नौ ध्वनियों के (गुरु की दीक्षा से) अनुभव कर सकता है। पहली अवस्था में उसका शरीर चिनी-चिनी हो जाता है, दूसरी में शरीर में भंजन होता है, तीसरी में भेदन होता है, चौथी में सिर हिलता है, पाँचवें में तालु से लार निकलती है, छठी में अमृत की प्राप्ति होती है; सातवें में गुप्त (संसार की वस्तुओं) का ज्ञान होता है, आठवें में परा-वाक सुनाई देता है,

नौवें में शरीर अदृश्य हो जाता है और शुद्ध दिव्य नेत्र विकसित होता है, दसवें में वह आत्मा अर्थात् ब्रह्म की उपस्थिति में (या उसके साथ) पर-ब्रह्म को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् जब मनस नष्ट हो जाता है, जब संकल्प और विकल्प का मूल यह दोनों के नाश होने से लुप्त हो जाता है, तथा जब पुण्य और पाप भस्म हो जाते हैं, तब वह शक्तिस्वरूप सदाशिव

के रूप में सर्वत्र व्याप्त होकर, अपने मूलस्वरूप से तेजस्वरूप, निर्मल, नित्य, निष्कलंक और परम शांत ॐ के रूप में प्रकाशित होता है।

वेदों की शिक्षा ऐसी ही है, उपनिषद् भी ऐसा ही है। ॐ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है। अनंत से ही अनंत की उत्पत्ति होती है। (तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में ही रहता है। ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यजुर्वेद के शुक्ल पक्ष से संबंधित हंस उपनिषद यहीं समाप्त होता है।

016 - अरुणी उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति और सभी इंद्रियाँ बलवान हों।सभी अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूँ, न ही ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे।बिलकुल भी अस्वीकार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो।उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. ॐ. अरुण के पुत्र सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के लोक में गए और वहाँ पहुँचकर बोले, "प्रभु, मैं किस तरह से काम को पूरी तरह से त्याग सकता हूँ?" ब्रह्मा ने उससे कहा: तुम्हें अपने पुत्रों, भाइयों, मित्रों, शेष सब को, अपने केश-शिखा और पवित्र जनेऊ को, अपने यज्ञों और उन्हें विनियमित करने वाली पुस्तकों, अपने शास्त्रों को त्याग देना चाहिए; भूर, भुवर, स्वर, महर, जन, तपस और सत्य नामक (सात ऊपरी) लोकों को और अतल, पाताल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल और महातल नामक (सात निचले) लोकों को, (संपूर्ण) ब्रह्माण्ड सहित त्याग देना चाहिए; तथा संन्यासी का दण्ड और अल्प वस्त्र धारण करना चाहिए; तुम्हें अन्य सब कुछ, हाँ, अन्य सब कुछ त्याग देना चाहिए।

2. गृहस्थ, ब्रहमचारी या वानप्रस्थ को चाहिए कि वह विभिन्न लोकों में जाने वाली अग्नियों को पेट की अग्नि में समर्पित कर दे और पवित्र मंत्र गायत्री को अपनी वाणी की अग्नि में समर्पित कर दे, पवित्र जनेऊ को भूमि पर या जल में डाल दे। ब्रहमचारी जीवन जीने वाले कुटीचार को अपने सम्बन्धियों का त्याग कर देना चाहिए, भिक्षापात्र, छलनी, त्रिगुण दण्ड तथा विशेष लोकों में ले जाने वाली अग्नि का त्याग कर देना चाहिए। (ऐसा प्रजापति ने कहा है)।

अब से उसे ऐसे आचरण करना चाहिए जैसे कि उसे जपने के लिए कोई मंत्र न मिला हो, उच्च लोकों में जाने की इच्छा को त्याग देना चाहिए, दिन के तीन मिलन बिन्दुओं अर्थात् प्रातः, मध्यान्ह तथा सायंकाल के प्रारम्भ में स्नान करना चाहिए, उच्चतम एकाग्रता के द्वारा अपनी आत्मा के साथ एकता स्थापित करनी चाहिए,और वेदों में से केवल आरण्यकों को, केवल उपनिषदों को, हाँ, उपनिषदों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दोहराना चाहिए।

3. निःसंदेह मैं ब्रहम हूँ, सूत्र; सूत्र ब्रहम है क्योंकि वह (ब्रहमांड) की उत्पत्ति करता है; मैं स्वयं सूत्र हूँ क्योंकि मैं साक्षात्कारी पुरुष हूँ - जो बुद्धिमान व्यक्ति यह जान गया है, उसे अपने त्रिविध पवित्र धागे को त्याग देना चाहिए। "मैंने त्याग किया है, मैंने त्याग किया है, मैंने त्याग किया है" - इसे तीन बार बोलते हुए उसे घोषणा करनी चाहिए - "मुझसे किसी भी प्राणी को (शब्द, विचार या कर्म से) कोई भय नहीं है, क्योंकि मुझसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है"। 'हे मेरे मित्र, इसलिए मेरी रक्षा करो (गाय, सर्प आदि से), तुम ही शक्ति हो और मेरे मित्र हो, सभी दृश्य और अदृश्य संकटों में तुम ब्रहमांड के स्वामी के वज्र हो', आदि मंत्र का उच्चारण करते हुए, उसे बांस की छड़ी को ऊपर उठाना चाहिए और कमरबंद पहनना चाहिए।

उसे भोजन करना चाहिए जैसे कि वह दवा हो, हाँ, जैसे कि वह दवा हो। (हे, तुम सभी जो चिंतित हो) अपनी पवित्रता (विचार, वचन और कर्म में), अहिंसा, (अनावश्यक) उपहारों को स्वीकार न करना, चोरी न करना और सत्यनिष्ठा - इनकी हर तरह से रक्षा करो, हाँ, रक्षा करो!

4. अब तो उच्चतम श्रेणी के भ्रमणशील भिक्षुओं - परमहंस परिव्राजकों के कर्तव्य (इस प्रकार हैं): उन्हें जमीन पर बैठना और लेटना चाहिए। जिन्होंने पहले से ही सतीत्व आदि का व्रत ले लिया है, उन्हें मिट्टी का पात्र, लौकी का पात्र अथवा लकड़ी का पात्र उपयोग में लाना चाहिए; उन्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह, आडम्बर, दंभ, ईर्ष्या, विषयों में आसक्ति, अहंकार, मिथ्यात्व आदि का त्याग कर देना चाहिए। संन्यासी को वर्षा ऋतु के चार महीनों में

एक स्थान पर रहना चाहिए और शेष आठ महीनों में अकेले अथवा एक ही साथी के साथ, हाँ, एक ही साथी के साथ भ्रमण करना चाहिए।

5. वास्तव में, जिसने वेदों के (सच्चे) अर्थ को समझ लिया है, उसे जनेऊ धारण करने के बाद उन (पूर्व में गिनाई गई) वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए अथवा उस संस्कार से पहले ही - अपने पिता, पुत्र, अपनी यज्ञोपवीत, जनेऊ, अपने कर्म, अपनी पत्नी तथा जो कुछ भी उसके पास हो, सब का त्याग कर देना चाहिए। संन्यासी केवल भिक्षाटन के लिए ही गाँव में प्रवेश करते हैं, तथा अपनी हथेलियों अथवा पेट को भोजन का पात्र बनाकर जाते हैं।

"ॐ" "ॐ" "ॐ" का उच्चारण करते हुए, उन्हें अपने शरीर के विभिन्न अंगों में इस मंत्र, उपनिषद् को मानसिक रूप से स्थापित करना चाहिए। जो इस प्रकार सत्य को अनुभव करता है, वही वास्तव में ज्ञानी है। जो इसे जानता है (और एक ब्रह्मचारी है जो संन्यासी व्रत लेता है) उसे पलाश (ढाक), बिल्व (मरमेलोस), या औदुम्बर (अंजीर) के पेड़ों की लकड़ी से बने डंडे, अपनी खाल, करधनी और पवित्र धागा आदि को त्याग देना चाहिए, और इस प्रकार एक नायक बनना चाहिए।

"सर्वव्यापी देवता की उस परम स्थिति को ऋषिगण आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त नेत्र की तरह हमेशा के लिए महसूस करते हैं।" "क्रोध आदि सभी अशुद्धियों से शुद्ध हुए ऋषि, जो (अज्ञान की) नींद से जागे हैं, उस सत्य को (जिज्ञासुओं के मन में) प्रकाशित करते हैं, जो सर्वव्यापी देवता की उस परम स्थिति को है।" मोक्ष की ओर ले जाने वाले शास्त्रों का यही आदेश है - वेदों का यही आदेश है, हाँ, वेदों का यही आदेश है। ॐ ! मेरे अंग-प्रत्यंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों। समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं ब्रह्म को कभी अस्वीकार न करूँ, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे। बिलकुल भी अस्वीकार न हो: कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो। उपनिषदों में वर्णित गुण मुझमें हों, जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ सामवेद में सम्मिलित अरुण्युपनिषद समाप्त होता है

017 - गर्भ उपनिषद

ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

शरीर पाँच प्रकार का है (पाँच तत्व), पाँच में विद्यमान, छः (भोजन के स्वाद) पर निर्भर, छः गुणों (काम आदि) से जुड़ा, सात धातुएँ, तीन अशुद्धियाँ, तीन योनियाँ (मल त्याग की) और चार प्रकार का भोजन।

'पाँच प्रकार का' क्यों कहा? पाँच तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इस शरीर में जो कुछ भी कठोर है वह पृथ्वी का है, तरल जल है, गर्म अग्नि है, जो कुछ भी घूमता है वह वायु है और घिरा हुआ स्थान आकाश है। पृथ्वी का कार्य धारण करना है, जल का कार्य पाचन आदि को पुष्ट करना है। अग्नि का कार्य देखना है, वायु का कार्य गति करना है, आकाश का कार्य स्थान देना है (प्राणिक कार्यों के लिए)। नेत्रों का कार्य रूप देखना है, कानों का कार्य ध्वनि देखना है, जीभ का कार्य स्वाद लेना है, त्वचा और नाक का कार्य स्पर्श और गंध देखना है; जननांग का कार्य आनंद प्राप्त करना है, अपान का कार्य मल त्याग करना है। व्यक्ति बुद्धि से ज्ञान प्राप्त करता है, मन से इच्छा करता है और जीभ से बोलता है। छः स्वाद (भोजन के) छः आधार हैं: मीठा, खट्टा, नमकीन, तीखा, कड़वा और कसैला।

1-7. षड्ज, ऋषभ, गांधार, पंचम, मध्यमा, धैवत, निषध - ये सात सुखद और अप्रिय ध्वनियाँ हैं। श्वेत, लाल, काला धुएँ के रंग का, पीला, पीला और पीला-श्वेत - ये सात धातुओं (प्राथमिक द्रव्यों) के रंग हैं। क्यों? देवदत्त (किसी भी व्यक्ति) के मन में विषयों के भोग की इच्छा उत्पन्न होती है। भोजन के स्वाद से रक्त उत्पन्न होता है, उससे मांस, फिर मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य; वीर्य और रक्त के संयोग से भ्रूण का जन्म होता है। गर्भ और उदर में प्राण ऊष्मा उत्पन्न होती है। पित्त की ऊष्मा के स्थान में प्राण प्रवाहित होता है - सृष्टिकर्ता द्वारा नियत उचित समय पर।

8. गर्भ में एक दिन और रात पड़ा रहने वाला भ्रूण एक भ्रमित पिंड होता है; सात दिन के बाद वह एक अविकसित पिंड बन जाता है।

एक पखवाड़े के बाद यह एक बुलबुला बन जाता है, एक पखवाड़े के बाद यह एक पिंड बन जाता है और एक महीने में यह कठोर हो जाता है। दो महीने में सिर का क्षेत्र विकसित होता है, तीन महीने में पैर, चौथे में पेट और कूल्हे, पांचवें में रीढ़ की हड्डी, छठे में नाक, आंख और कान, सातवें में भ्रूण में जीवन की गति होती है और आठवें महीने में यह पूर्ण हो जाता है।

9. पिता के वीर्य के प्रभुत्व से बच्चा नर बनता है, माता के वीर्य से मादा। बराबर होने पर नपुंसक। यदि गर्भाधान के समय माता-पिता उत्तेजित हों तो बच्चा अंधा, अपंग, कुबड़ा या विकास में रुका हुआ होगा। यदि दंपत्ति को वायु-संबंधी परेशानी है तो वीर्य दो भागों में प्रवेश करता है जिससे जुड़वाँ बच्चे होते हैं।

10. आठवें महीने में पाँच प्राणों के संयोग से जीव को अपने पिछले कर्मों (पूर्वजन्मों के) को जानने की क्षमता प्राप्त होती है, वह पूर्ण ज्ञान और ध्यान के द्वारा अविनाशी आत्मा को ॐ के रूप में देखता है। ॐ को जानकर वह शरीर में उससे उत्पन्न आठ प्रकृतियों, पाँच महाभूतों, मन, बुद्धि और अहंकार तथा सोलह परिवर्तनों को देखता है (प्रस्नोपनिषद् देखें)।

11. नौवें महीने में शरीर पूर्ण हो जाता है और उसे पिछले जन्म का स्मरण हो आता है। किए और न किए कर्म उसे स्मरण हो आते हैं और वह कर्म की अच्छी और बुरी प्रकृति को पहचान लेता है।

12-17. 'मैंने हजारों गर्भ देखे हैं, अनेक प्रकार के अन्न खाए हैं और अनेक स्तन चूसे हैं; बार-बार जन्म लेता और मरता हूँ, मैं शोक में डूबा रहता हूँ, पर कोई उपाय नहीं देखता। यदि मैं इससे मुक्त हो सकूँ तो सांख्य-योग का आश्रय लूँगा, जो दुख का नाश करने वाला और मोक्ष प्रदान करने वाला है; अथवा मैं महेश्वर का आश्रय लूँगा, जो दुख का नाश करने वाला है। अथवा मैं नारायण की शरण लेता हूँ, जो दुख का नाश करते हैं। यदि मैंने अपने आश्रितों के लिए अच्छे और बुरे कर्म किए हैं, तो मैं स्वयं उन कर्मों के कारण जल जाऊंगा - फल भोगने वाले अन्य लोग चले जाएंगे (अप्रभावित)।

18. यंत्र द्वारा निचोड़े जाने पर व्यक्ति सर्वव्यापी वायु से स्पर्शित हो जाता है और पिछले जन्मों और कर्मों को भूल जाता है।

19. शरीर को ऐसा क्यों कहा जाता है? इसमें तीन अग्नि हैं: कोष्ठाग्नि जो कुछ खाया जाता है उसे पकाती है; दर्शनाग्नि रंग आदि देखने में मदद करती है, ज्ञानाग्नि वह मन है जो अच्छे और बुरे कर्म करने में मदद करता है।

20. दक्षिणाग्नि हृदय में है; गार्हपत्य पेट में और आहवनीय मुँह में; बुद्धि कर्ता की पत्नी है, संतोष दीक्षा है, इन्द्रियाँ बर्तन हैं, सिर घड़ा है, बाल पवित्र घास है, मुख वेदी का आंतरिक भाग है, इत्यादि।

21. हृदय 8 पलास का है, जिह्वा 12 का, पित्त एक प्रस्थ है, कफ एक अधक है। शुक्ल एक कुडुप है, चर्बी दो प्रस्थ है, मूत्र और मल प्रत्येक दो प्रस्थ है, जो प्रतिदिन ग्रहण किए जाने पर निर्भर करता है। पैप्पलाद द्वारा प्रतिपादित मोक्ष का शास्त्र समाप्त होता है। ॐ ! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहां कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित गर्भोपनिषद् समाप्त होता है।

018 - नारायण उपनिषद

शांति पाठ [शांति के लिए प्रार्थना]ओम सहनावथु।सह नौ बुनक्तु।सह वीर्यं करा वहैतेजस्विनाव धीतमस्थुमाँ विद्विशावहै ओम शांति शांति शांति।

ओम ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करें;हम दोनों मिलकर बड़ी ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से

नफरत न करें)।ओम ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर काम करने वाली शक्तियों में शांति हो!माया तत् कार्यमखिलं यद् बोधयथ्य पह्नवम्।त्रिपन् नारायणाख्याम् तत् कालय स्वात्मा मत्रथा।

मैं आपको उस ज्ञान के बारे में बताऊंगा जिसे "तीन पहलुओं वाला नारायण सिद्धांत" कहा जाता है, जिसे जानने से माया (भ्रम) और वह सब जो माया के कारण होता है, पूरी तरह से गायब हो जाएगा।नारायणनाथ रुद्र जयते। नारायणनाथ इन्द्रो जयते। नारायणनाथ प्रजापति प्रजाते। नारायणनाथ द्वादशा आधित्य रुद्र वासव सर्वाणि छंदमसि नारायण देव समुदपद्यन्ते। नारायणनाथ प्रवर्तन्ते। नारायणे प्रलेयन्ते। ईत्तथ ऋग्वेद सिरो आदिते।

१ ॐ! नारायण ने लोगों को बनाने की इच्छा की। इस विचार के कारण, आत्मा (प्राण) उससे उठी। मन और सभी शरीर के अंग, आकाश, वायु, प्रकाश, जल और पृथ्वी जो इन सभी निर्मित प्राणियों को धारण कर सकते हैं, ने अपना रूप लिया।

नारायण से ब्रह्मा का जन्म हुआ। नारायण से रुद्र का जन्म हुआ। नारायण से इंद्र का जन्म हुआ। नारायण से वे लोग पैदा हुए जो इन मनुष्यों पर शासन करते हैं। नारायण से, बारह सूर्य, ग्यारह रुद्र, आठ वसु और वे सभी मीटर (लेखन के लिए) पैदा हुए। ये सभी नारायण के कारण कार्य करते हैं। ये सभी नारायण में समाप्त होते हैं। इस प्रकार पढ़ा जाता है, ऋग्वेद के उपनिषद।

[बारह अदित्य (अदिथि के पुत्र) दाता, मिथ्रा, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान, पूषा, सविता, थ्वाष्टा और विष्णु हैं।ग्यारह रुद्र मन्यु, मनु, महिनासन, महान, शिवन, रुथुद्वजन, उग्र रेतस, भवन, कामन, वामदेवन और द्रुथवृथन हैं।
आठ वसु जो दक्ष की बेटी वसु की संतान हैं, वे हैं धरण, द्रुवन, सोमन, अहसास, अनिलन, अनलान प्रथ्यूषण और प्रभासन।] अधा निथ्यो नारायण। ब्रह्म नारायण. शिवश्च नारायण. शंकराश्च नारायण. कालश्च नारायण. दिसाश्च नारायण. विधिसाश्च नारायणा। ऊर्ध्वश्च नारायण. अधश्च नारायण.अंतर बहिश्च नारायण. नारायण ईवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भव्यम्। निष् कलंको निरंजनो निर्विकल्पो निरख्याथा शभो देवा एका नारायणो न द्वितीयेस्थि कश्चित। या एवं वेद सा विष्णुरेव भवति सा विष्णुरेव भवति। एतद् यजुर्वेद सिरो आदिते।

2 वह सनातन है। नारायण ब्रह्मा हैं। नारायण शिव हैं। नारायण इंद्र और काल (मृत्यु के देवता) हैं। सभी दिशाएँ नारायण हैं। सभी पक्ष नारायण हैं। अंदर और बाहर नारायण हैं। नारायण वह है जो हुआ है, जो हो रहा है और जो होगा। नारायण एकमात्र ऐसे भगवान हैं जो दोष रहित हैं, दाग रहित हैं, क्रम रहित हैं, अंत रहित हैं और जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता है और जब नारायण हैं, तो कोई दूसरा नहीं है। जो यह जानता है, वह स्वयं भगवान विष्णु बन जाता है। इस प्रकार यजुर्वेद के उपनिषद पढ़े जाते हैं। ॐ इथ्याग्रे व्याहारेत् नाम इति पश्चतः। नारायणसा इथ्युपरिषत्। ॐ इथ्येकाक्षरम्।

नाम इति ध्वे अक्षरे। नारायणयेति पंचाक्षरी। एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम्। योहा वै नारायणस्य अष्टाक्षरं पाद मध्येति। अनापाब्रूवा सर्व मयूरेति। विन्दथे प्रजापथ्यं रायस्पोशं गौपथ्यं थो अमृतथ्वमश्रुते थो अमृत मसनुतः इति। एत्थ साम वेद सिरो आदिथे।

3 पहले "ॐ" बोलें फिर "नाम" बोलें इसके बाद "नारायण" बोलें। "ओम" में एक अक्षर है. "नाम" में दो अक्षर होते हैं. "नारायण" में पाँच अक्षर हैं। आठ अक्षरों वाला "ओम नमो नारायण" बनता है। जो इन आठ अक्षरों को बताता है, वह निष्कलंक पूर्ण जीवन प्राप्त करता है। वह लोगों का स्वामी बनने के बाद मोक्ष प्राप्त करेगा और उसे बहुत सारा धन, बहुत सारी गायें और अन्य सभी प्रकार की संपत्ति प्राप्त होगी। इस प्रकार सामवेद के उपनिषदों को पढ़ा जाता है।

प्रत्यगानन्दम" ब्रह्मपुरुषम प्राणस्वरूपम। अकारा. उउकरा, मकारो इति. ठा अनेकधा संभवथ ठाधो मिथि यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्म संसार बंधाथ। ॐ नमो नारायणयेति मन्थ्रोपसको वैकुंठभुवनं गमिष्यति। थदिदं पुंडरीकं विज्ञानं दानं तस्माद् तद्दबमाथ्रं। ब्राह्मण्यो देवकी पुत्रो ब्राह्मण्यो मधुसुधाना। ब्रह्मण्य पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्य विष्णुराच्युत इति। सर्व भूतस्थमेकं वै नारायणं कारणं पुरुषं मकरं परब्रह्मं एतद् अधर्व सिरो आदिथे।

4 वह सदा सुखी ब्रह्म पुरुष (आत्मा) प्रणव ('ओम') स्वरूप है जो 'आ', 'उ' और 'म' से मिलकर बना है। वह प्रणव (ब्रह्मपुरुष) कई प्रकार से बढ़ता हुआ "ओम" बन जाता है और जो योगी (योग का विद्यार्थी) इसका ध्यान करता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है। जो योगी "ॐ नमो नारायणाय" का ध्यान करता है, वह भगवान विष्णु के निवास स्थान वैकुंठ को प्राप्त करता है। वह वैकुंठ और कुछ नहीं बल्कि हृदय कमल (कमल जैसा हृदय) है जो

शाश्वत ज्ञान से भरा है, जिसमें से बिजली के समान प्रकाश की एक किरण निकलती है। देवकी का पुत्र ब्रह्मा है। मधु सुधाना (जिसने मधु को मारा) वह ब्रह्मा है। कमल नेत्र वाला ब्रह्मा है और भगवान विष्णु भी जो अच्युत है। वह पुरुष जो सभी प्राणियों के अस्तित्व का कारण है, निश्चित रूप से नारायण है। वह भी अकारण "ॐ", जो कि परब्रह्म है। इस प्रकार अथर्ववेद के उपनिषदों को पढ़ा जाता है।

प्रथाराधियानो रात्रि कृत पापं नास्यति। सायं अधियानोम दिवस कृत पापं नास्यति। मध्यम दिनं आधिथ्या अभिमुखो अधियाना पंच महापाठको उप पाठकथ प्रमुच्यते। सर्व वेद परायण पुण्य लाभते। नारायण सायुज्यम्वा प्रोथी। श्रीमन नारायण सायुज्यम मवाप्नोति च एवं वेद।

5 जो व्यक्ति सुबह इसे पढ़ता है, वह रात में किए गए पाप को नष्ट कर देता है। जो इसे पढ़ता है शाम को इसे पढ़ने से दिन में किए गए पाप नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति दोपहर में सूर्य को संबोधित करते हुए इसे पढ़ता है, वह पांच महापापों के साथ-साथ गौण पापों से भी मुक्त हो जाता है। उसे सभी वेदों को पढ़ने का पुण्य फल भी मिलता है। अंत में भगवान नारायण के साथ एक हो जाता है। यह वेद का ज्ञान है।

ॐ! वे हम दोनों की एक साथ रक्षा करें; वे हम दोनों का एक साथ पोषण करें;हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम परस्पर विवाद न करें (अथवा किसी से द्वेष न करें)।
ओम ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित नारायणोपनिषद यहीं समाप्त होता है।

यह नारायण उपनिषद इस प्रकार सूचीबद्ध है मुक्तिका उपनिषद के दूसरे संस्करण में 108 उपनिषदों में से एक।

मुक्तिका उपनिषद के हमारे संस्करण में सूचीबद्ध उपनिषद "नारायण" का वास्तव में अर्थ महा नारायण उपनिषद है।]

<u>019 - परमहंस उपनिषद</u>

ॐ ! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से ही निकलता है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेकर,वह अनंत (ब्रह्म) ही रह जाता है।ॐ ! शांति ! शांति ! शांति !

1. "परमहंस योगियों का मार्ग क्या है, और उनके कर्तव्य क्या हैं?" - यह प्रश्न नारद ने भगवान ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) के पास जाकर पूछा था। भगवान ने उत्तर दिया: तुम जिस परमहंस का मार्ग पूछते हो, वह लोगों के लिए बड़ी कठिनाई से सुलभ है; उनके बहुत से व्याख्याता नहीं हैं, और यदि ऐसा एक भी हो तो पर्याप्त है। वास्तव में, ऐसा व्यक्ति नित्य शुद्ध ब्रह्म में विश्राम करता है; वह वास्तव में वेदों में वर्णित ब्रह्म है - ऐसा सत्य के ज्ञाता मानते हैं; वह महान है, क्योंकि वह अपना पूरा मन हमेशा मुझमें विश्राम करता है; और मैं भी इसी कारण से उनमें निवास करता हूँ। अपने पुत्रों, मित्रों, पत्नी, सम्बन्धियों आदि का त्याग करके, शिखा, पवित्र धागा, वेदों का अध्ययन, तथा समस्त कर्मों और इस ब्रह्माण्ड का परित्याग करके, उसे अपने शरीर के निर्वाह के लिए तथा सबकी भलाई के लिए, दण्ड, वस्त्र आदि का उपयोग करना चाहिए। और यह अन्तिम नहीं है। यदि पूछा जाए कि यह अन्तिम क्या है, तो यह इस प्रकार है:

2. परमहंस न दण्ड धारण करता है, न केश-शिखा, न पवित्र धागा, न कोई आवरण। उसे न सर्दी लगती है, न गर्मी, न सुख, न दुःख, न मान, न तिरस्कार आदि। यह उचित है कि वह इस संसार-सागर के छह तरंगों की पहुँच से परे हो। वह निन्दा, दंभ, ईर्ष्या, आडम्बर, अहंकार, विषयों में आसक्ति या द्वेष, सुख-दुःख, काम, क्रोध, लोभ, आत्म-मोह, उल्लास, ईर्ष्या, अहंकार आदि सब चिन्तन त्यागकर अपने शरीर को शव मानता है, क्योंकि उसने शरीर-भाव को पूरी तरह नष्ट कर दिया है। संशय, भ्रान्ति और मिथ्या ज्ञान के कारण से सदा मुक्त होकर, सनातन ब्रह्म को जानकर, उसी में निवास करता है, इस भावना के साथ कि 'मैं ही वह हूँ, मैं ही वह हूँ जो सदा शान्त, अचल, अविभाजित, ज्ञान-आनन्दमय सार है, वही मेरा वास्तविक स्वरूप है।' वही (ज्ञान) ही उसकी शिखा है। वही (ज्ञान) ही उसका पवित्र धागा है। जीवात्मा और परमात्मा की एकता के ज्ञान से, उन दोनों का भेद भी पूरी तरह समाप्त हो जाता है। यह (एकीकरण) ही उसका संध्या-अनुष्ठान है।

3. जो सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर, अद्वितीय एकेश्वर में परम विश्राम पाता है और ज्ञानरूपी डण्डा धारण करता है, वही सच्चा एकदण्डी है। जो

केवल लकड़ी का डण्डा धारण करता है, जो सब प्रकार के विषयों में रम जाता है और ज्ञान से रहित है, वह महारौरव नामक भयंकर नरकों में जाता है। इन दोनों का भेद जानकर वह परमहंस हो जाता है।

4. वह द्वार ही उसका वस्त्र है, वह किसी को दण्डवत् नहीं करता, पितरों को तर्पण नहीं करता, किसी की निन्दा नहीं करता, किसी की स्तुति नहीं करता - संन्यासी सदैव स्वतन्त्र इच्छा वाला होता है। उसके लिए न कोई ईश्वर का आवाहन है, न कोई विदाई समारोह; न कोई मन्त्र, न कोई ध्यान, न कोई पूजा; उसके लिए न तो यह जगत् है, न वह जो अज्ञेय है; वह न तो द्वैत देखता है, न एकत्व देखता है। वह न तो मैं को देखता है, न तू को, न यह सब देखता है। संन्यासी का कोई घर नहीं होता। उसे सोने आदि से बनी हुई कोई वस्तु स्वीकार नहीं करनी चाहिए, न ही शिष्यों का समूह रखना चाहिए, न ही धन स्वीकार करना चाहिए। यदि पूछा जाए कि इन्हें स्वीकार करने में क्या हानि है, तो उत्तर है कि हाँ, ऐसा करने में हानि है।

क्योंकि संन्यासी यदि लालसा से सोने को देखता है, तो वह ब्रह्महत्यारा बन जाता है; क्योंकि यदि संन्यासी लालसा से सोने को छूता है, तो वह चांडाल बन जाता है; क्योंकि यदि वह लालसा से सोना लेता है, तो वह आत्मा का हत्यारा बन जाता है। इसलिए संन्यासी को लालसा से न तो सोना देखना चाहिए, न छूना चाहिए और न ही लेना चाहिए। मन की सभी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं, (और फलस्वरूप) वह दुःख से व्याकुल नहीं होता, और सुख की लालसा नहीं करता; विषय-सुखों के प्रति आसक्ति का त्याग हो जाता है, और वह सब जगह अच्छे या बुरे में अनासक्त रहता है, (फलस्वरूप) वह न तो घृणा करता है और न ही प्रसन्न होता है। जो आत्मा में ही स्थित हो जाता है, उसकी समस्त इन्द्रियों की बहिर्गामी प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। "मैं ही वह ब्रह्म हूँ, जो एक अनन्त ज्ञान-आनन्द है" ऐसा जानकर वह अपनी इच्छाओं के अन्त को प्राप्त हो जाता है, वास्तव में वह अपनी इच्छाओं के अन्त को प्राप्त हो जाता है। ॐ ! वह (ब्रह्म) अनन्त है, और यह (ब्रह्माण्ड) अनन्त है। अनन्त से ही अनन्त की उत्पत्ति होती है। (तब) अनन्त (ब्रह्माण्ड) की अनन्तता को ग्रहण करके, वह अनन्त (ब्रह्म) ही रह जाता है। ॐ ! शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !
यहाँ शुक्ल-यजुर्वेद से सम्बन्धित परमहंसोपनिषद् समाप्त होता है।

020 - अमृत बिन्दु उपनिषद

ॐ! वह हम दोनों की रक्षा करें; वह हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्‌वेष न करें)।ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. मन को मुख्य रूप से दो प्रकार का कहा जाता है, शुद्‌ध और अशुद्‌ध। अशुद्‌ध मन वह है जिसमें इच्छा होती है, और शुद्‌ध वह है जिसमें इच्छा नहीं होती।

2. यह मन ही है जो मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है। जो मन इन्द्रिय-विषयों में आसक्त होता है, वह बंधन की ओर ले जाता है, जबकि इन्द्रिय-विषयों से विमुख होने पर वह मोक्ष की ओर ले जाता है। ऐसा वे सोचते हैं।

3. चूँकि मोक्ष में इन्द्रिय-विषयों की इच्छा से रहित मन की प्राप्ति होती है, अतः मोक्ष प्राप्ति के साधक को चाहिए कि वह मन को सदैव ऐसी इच्छा से मुक्त कर ले।

4. जब मन इन्द्रिय-विषयों की आसक्ति सहित नष्ट होकर हृदय में पूर्णतः वश में हो जाता है और इस प्रकार अपने स्वरूप को अनुभव कर लेता है, तब वह परमपद प्राप्त होता है।

5. मन को उस सीमा तक वश में करना चाहिए, जहाँ तक वह हृदय में लीन हो जाए। यही ज्ञान है और यही ध्यान भी है, बाकी सब तर्क-वितर्क और शब्दाडंबर है।

6. (परमपद) को न तो मन के लिए बाह्य और मन को अच्छा लगने वाला, न ही मन को अप्रिय लगने वाला, न ही मन के लिए अप्रिय लगने वाला, न ही मन के लिए इन्द्रिय-सुख का स्वरूप, बल्कि मन के लिए शाश्वत, परमानंद का सार ही मनन करने योग्य है। उस अवस्था में वह ब्रह्म प्राप्त होता है जो सभी पक्षपातों से मुक्त है।

7. व्यक्ति को पहले ॐ के अक्षरों के माध्यम से उस पर ध्यान लगाने का अभ्यास करना चाहिए, फिर ॐ के अक्षरों की परवाह किए बिना उसका

ध्यान करना चाहिए। अंत में ॐ के ध्यान के इस बाद के रूप के साथ प्राप्ति पर,अस्तित्व की भावना इकाई के रूप में प्राप्त होती है।

8. केवल वही ब्रह्म है, बिना किसी घटक भाग के, बिना किसी संदेह और बिना किसी दोष के। "मैं हूँ" का एहसास करना वह ब्रह्म" को जानकर मनुष्य अपरिवर्तनशील ब्रह्म हो जाता है।

9. (ब्रह्म) संशय रहित, अनंत, तर्क और सादृश्य से परे, सभी प्रमाणों से परे और अकारण है, जिसे जानकर बुद्धिमान मुक्त हो जाता है।

10. सर्वोच्च सत्य वह (शुद्ध चेतना) है जो यह अनुभव करती है कि, "न तो मन का नियंत्रण है, न ही उसका खेल में आना है", "न मैं बंधा हुआ हूँ, न मैं उपासक हूँ, न मैं मुक्ति का साधक हूँ, न ही मैं मुक्ति प्राप्त करने वाला हूँ"।

11. वास्तव में आत्मा को उसकी जाग्रत, स्वप्न और स्वप्नरहित सुषुप्ति की अवस्थाओं में एक ही जानना चाहिए। जो तीनों अवस्थाओं से परे हो गया है, उसके लिए फिर कोई पुनर्जन्म नहीं है।

12. एक होने के कारण, विश्वात्मा सभी प्राणियों में विद्यमान है। एक होते हुए भी, वह जल में चंद्रमा की तरह अनेक रूप में दिखाई देता है।

13. 13. जैसे घड़ा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने पर अपना स्थान बदलता है, घड़े में बंद आकाश नहीं, वैसे ही आकाश के सदृश जीव भी है।

14. जब घड़े के समान अनेक रूप बार-बार टूटते हैं, तब आकाश उन्हें टूटा हुआ नहीं जानता, परन्तु वह भली-भाँति जानता है।

15. माया से आच्छादित होने के कारण, जो मात्र शब्द है, वह अंधकार के कारण आकाश को नहीं जानता। जब अज्ञान छिन्न-भिन्न हो जाता है, तब वह स्वयं ही एकत्व को देखता है।

16. शब्द रूपी ॐ को ही सर्वप्रथम परब्रह्म माना गया है। उसके (शब्द-विचार) लुप्त हो जाने पर वह अविनाशी ब्रह्म (रहता है)। यदि बुद्धिमान मनुष्य अपनी आत्मा की शान्ति चाहता है, तो उसे उस अविनाशी ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए।

17. दो प्रकार की विद्याएँ जाननी चाहिए - शब्द-ब्रह्म और परब्रह्म। शब्द-ब्रह्म को प्राप्त करके मनुष्य परम ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

f18. वेदों का अध्ययन करने के पश्चात् जो बुद्धिमान व्यक्ति केवल ज्ञान और साक्षात्कार की इच्छा रखता है, उसे वेदों को उसी प्रकार त्याग देना चाहिए, जैसे चावल प्राप्त करने के लिए इच्छुक व्यक्ति भूसी को त्याग देता है।

19. विभिन्न रंगों वाली गायों का दूध एक ही रंग का होता है। (बुद्धिमान व्यक्ति) ज्ञान को दूध के समान और अनेक शाखाओं वाले वेदों को गाय के समान मानता है।

20. दूध में छिपे हुए मक्खन के समान प्रत्येक प्राणी में शुद्ध चेतना निवास करती है। उसे मन की मथनी द्वारा निरंतर मथना चाहिए।

21. ज्ञान की रस्सी को पकड़कर, अग्नि के समान परम ब्रह्म को बाहर निकालना चाहिए। मैं वह अविभाज्य, अपरिवर्तनीय और शांत ब्रह्म हूँ, ऐसा माना जाता है।

22. जिनमें सभी प्राणी निवास करते हैं, तथा जो सभी प्राणियों में निवास करते हैं, क्योंकि वे सभी को अनुग्रह प्रदान करने वाले हैं - मैं वह विश्वात्मा हूँ, वह परब्रह्म हूँ, मैं वह विश्वात्मा हूँ, वह परब्रह्म हूँ। ॐ ! वे हम दोनों की रक्षा करें, हम दोनों का पोषण करें, हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ कार्य करें, हमारा अध्ययन सशक्त और प्रभावी हो, हम परस्पर विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो ! मेरे वातावरण में शांति हो ! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

कृष्ण-यजुर्वेद में निहित अमृतबिंदुपनिषद यहीं समाप्त होता है।

021 - अमृतनाद उपनिषद

अनुवाद: के. नारायणस्वामी अय्यर ॐ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या किसी से द्वेष न करें)।ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो! मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

1. बुद्धिमान व्यक्ति को शास्त्रों का अध्ययन करके उन पर बार-बार विचार करके तथा ब्रह्म को जानकर, उन सभी को अग्नि की तरह त्याग देना चाहिए।

2-3. विष्णु (परमात्मा) को सारथी बनाकर ॐ के रथ पर चढ़ने के पश्चात, जो व्यक्ति रुद्र की आराधना में लीन होकर ब्रह्मलोक में जाना चाहता है, उसे जब तक संभव हो, रथ में बैठकर चलना चाहिए।फिर रथ को छोड़कर, वह रथ के स्वामी के स्थान पर पहुँच जाता है।

4. मात्रा, लिंग और पाद का परित्याग करके वह स्वर रहित 'म' अक्षर के द्वारा स्वर और व्यंजन रहित सूक्ष्म पाद (आसन या शब्द) को प्राप्त करता है।

5. जब कोई केवल शब्द आदि पाँच इन्द्रिय विषयों का, तथा अत्यन्त चंचल मन का आत्मा की लगाम के रूप में चिन्तन करता है, तो उसे प्रत्याहार कहते हैं।

6. प्रत्याहार (इन्द्रियों को वश में करना), ध्यान (चिंतन), प्राणायाम (श्वास पर नियंत्रण), धारणा (एकाग्रता), तर्क और समाधि, ये योग के छः अंग कहे गए हैं।

7. जिस प्रकार पर्वतीय खनिजों की अशुद्धियाँ धौंकनी से जलाई जाती हैं, उसी प्रकार प्राण को रोकने से इन्द्रियों द्वारा लगाए गए दाग जल जाते हैं।

8. प्राणायाम से दाग, धारणा से पाप, प्रत्याहार से कुसंगति और ध्यान से ईश्वरविहीन गुण जल जाते हैं।

9. पापों का नाश करके रुचिरा (चमक) का ध्यान करना चाहिए।

10. रुचिरा (निरोध), निःश्वसन और प्रेरणा - ये तीन प्राणायाम हैं (रेचक, पूरक और कुंभक) निःश्वसन, प्रेरणा और श्वास का निरोध।

11. जब कोई व्यक्ति लम्बी (या लम्बी) सांस के साथ तीन बार गायत्री को उसके व्याहृतियों और प्रणव (उसके पहले) और उसके बाद सिरस (सिर) के साथ दोहराता है, तो उसे (एक) प्राणायाम कहते हैं।

12. आकाश (हृदय) से वायु को ऊपर उठाना तथा शरीर को वायु से रहित करके शून्य बनाना तथा आत्मा को शून्य अवस्था में एक करना, रेचक (प्रश्वास) कहलाता है।

13. जब मनुष्य कमल के डंठल से जल को मुख में ले लेता है, तो उसे पूरक (प्रश्वास) कहते हैं।

14. जब प्रश्वास या प्रश्वास नहीं होता तथा शरीर स्थिर रहता है, एक अवस्था में स्थिर रहता है, तो उसे कुंभक (प्रश्वास का रुक जाना) कहते हैं।

15. तब वह अंधे के समान रूप देखता है, बहरे के समान आवाज सुनता है तथा शरीर को लकड़ी के समान देखता है। यह उस व्यक्ति का लक्षण है जिसने बहुत अधिक शांति प्राप्त कर ली है।

16. जब बुद्धिमान व्यक्ति मन को संकल्प मानता है तथा संकल्प को आत्मा में विलीन करके अपनी आत्मा का ही चिंतन करता है, तो उसे धारणा कहते हैं।

17. जब कोई वेदों के साथ विरोध न करने वाला अनुमान करता है, तो उसे तर्क कहते हैं। उसे समाधि कहते हैं, जिसमें प्राप्त होने पर व्यक्ति (सबको) समान समझता है।

18-20. भूमि पर कुश के आसन पर बैठकर, जो सुखदायक और सभी बुराइयों से रहित हो, अपने को मानसिक रूप से (सभी बुरे प्रभावों से) बचाकर, रथ-मंडल का उच्चारण करते हुए, पद्म, स्वस्तिक, भद्र आसन या कोई अन्य आसन जो आसानी से किया जा सके, उत्तर की ओर मुख करके, अंगूठे से नासिका को बंद करके, दूसरे नासिका से श्वास लेना चाहिए और अंदर ही श्वास रोककर अग्नि को सुरक्षित रखना चाहिए। फिर उसे केवल ॐ शब्द का ही ध्यान करना चाहिए।

21. ॐ, एक अक्षर ब्रह्म है; ॐ को बाहर नहीं निकालना चाहिए। इस दिव्य मंत्र (ॐ) के द्वारा, स्वयं को अशुद्धता से मुक्त करने के लिए इसका कई बार जाप करना चाहिए।

22. फिर जैसा कि पहले कहा गया है, मन्त्र-ज्ञानी बुद्धिमान को नाभि से आरम्भ करके स्थूल, मूल (या अल्प) स्थूल और सूक्ष्म (अवस्थाओं) में नियमित ध्यान करना चाहिए।

23. महाज्ञानी को सब देखना छोड़ देना चाहिए, ऊपर-नीचे देखना चाहिए और योग का अभ्यास करना चाहिए सदैव निश्चल और कंपन रहित होकर।

24. सुषुम्ना में ही कंपन रहित होकर जो योग कहा गया है, वही धारणा है। बारह मात्राओं की नियत अवधि वाला योग (धारणा) कहलाता है।

25. जो कभी क्षय नहीं होता, वह अक्षर (ॐ) है, जो घोष ('क' से तीसरा, चौथा और पाँचवाँ अक्षर), व्यंजन, स्वर, तालव्य, कण्ठस्थ, अनुनासिक, अक्षर 'र' और सिबिलेंट्स से रहित है।

26. प्राण उसी मार्ग से यात्रा करता है (या जाता है) जिससे यह अक्षर (ॐ) जाता है। इसलिए इस (मार्ग) पर चलने के लिए इसका प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए।

27. यह हृदय के द्वार (या छिद्र) से, वायु के द्वार (संभवतः नाभि) से, सिर के द्वार से तथा मोक्ष के द्वार से होता है। वे इसे बिल (गुफा), सुशिरा (छिद्र) या मंडल (पहिया) कहते हैं।

28. (फिर योग की बाधाओं के बारे में): योगी को हमेशा भय, क्रोध, आलस्य, बहुत अधिक सोना या जागना तथा बहुत अधिक भोजन या उपवास से बचना चाहिए।

29. यदि उपरोक्त नियम का प्रतिदिन अच्छी तरह और सख्ती से पालन किया जाए, तो निस्संदेह तीन महीने में आध्यात्मिक ज्ञान अपने आप उत्पन्न हो जाएगा।

30. चार महीने में वह देवताओं को देखता है; पाँच महीने में वह ब्रह्मनिष्ठ को जानता है (या बन जाता है); और सचमुच छह महीने में वह इच्छानुसार कैवल्य प्राप्त कर लेता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

31. जो पृथ्वी का है वह पाँच मात्राओं का है (या पार्थिव-प्रणव का उच्चारण करने के लिए पाँच मात्राएँ लगती हैं)।जल का जो है वह चार मात्राओं का है; अग्नि का, तीन मात्राओं का; वायु का, दो;

32. और आकाश का, एक। लेकिन उसे उसका विचार करना चाहिए जो मात्राओं से रहित है। आत्मा को मनस के साथ एक करके, आत्मा के द्वारा आत्मा का चिंतन करना चाहिए।

33. प्राण तीस अंकों का है। प्राणों की स्थिति (सीमा) ऐसी है। उसे प्राण कहते हैं जो बाह्य प्राणों का स्थान है।

34. दिन और रात की साँसों की संख्या 1,13,180 [या 21,600 - ?] है।

35. (प्राणों में से) पहला अर्थात, प्राण हृदय में व्याप्त है; अपान, गुदा में; समान, नाभि में;उदान, गले में;

36. और व्यान, शरीर के सभी अंग। फिर पाँच प्राणों के रंग क्रमशः आते हैं।

37. प्राण को रक्त-लाल मणि (या मूंगा) के रंग का कहा जाता है; अपान जो बीच में है वह रक्त-लाल मणि (या मूंगा) के रंग का है।इन्द्रगोप (श्वेत या लाल रंग का कीट) का रंग;

38. समान शुद्ध दूध और स्फटिक (या तैलीय और चमकदार) के रंग के बीच का, दोनों (प्राण और अपान) के बीच का; उदान अपंदरा (हल्का सफेद) है; और व्यान अर्चि (या प्रकाश की किरण) के रंग जैसा है।

39. वह मनुष्य जहाँ कहीं भी मर जाए, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, जिसकी साँस इस मण्डल (पीनियल ग्रंथि) को छेदने के बाद सिर से बाहर निकल जाती है। वह मनुष्य कभी पुनर्जन्म नहीं लेता। ॐ ! वह हम दोनों की एक साथ रक्षा करे; वह हम दोनों का एक साथ पोषण करे; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)। ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित अमृतानद उपनिषद यहीं समाप्त होता है।

022 - अथर्वसिरस उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

[अथर्वसिरस उपनिषद में, तीन अक्षरों वाला अक्षर, जिसका अर्थ है और जिसका अर्थ नहीं भी है और जो चिरस्थायी है, अकेला खड़ा है। ऐसा कहा जाता है कि यह सबका आधार है और इसका कोई आधार नहीं है।]देव अपने हाथों को ऊपर की ओर फैलाकर रुद्र से प्रार्थना करते हैं। 1 ॐ!
जो रुद्र है, वही भगवान है। वही ब्रह्मा है और हम उसे बार-बार नमस्कार करते हैं।
जो रुद्र है, वही भगवान है। वही विष्णु है और हम उसे बार-बार नमस्कार करते हैं।

जो रुद्र है, वही भगवान है। वही सत्य है और हम उसे बार-बार नमस्कार करते हैं।
जो रुद्र है, वही भगवान है। वही सब कुछ है और हम उसे बार-बार नमस्कार करते हैं।

पृथ्वी आपके पैर हैं। भुवर लोक (पृथ्वी से ऊपर सात लोकों में से एक) आपका मध्य है। और सुवर लोक (पृथ्वी से ऊपर एक और लोक) आपका सिर है। आप ब्रह्मांड के रूप हैं। आप जो ब्रह्मा हैं, एक भी दिखाई देते हैं, दो में विभाजित भी हैं, और तीन में विभाजित भी हैं और ऐसा लगता है जैसे आप सभी से परे हैं आप शांति हैं। आप शक्ति हैं। आप अग्नि में जो अर्पित किया जाता है और जो नहीं किया जाता है, वह भी आप हैं। आप दान में दिया जाने वाला और जो नहीं दिया जाता है, वह भी आप हैं।

आप सब कुछ हैं और कुछ भी नहीं हैं। आप संपूर्ण ब्रह्मांड हैं और आप नहीं भी हैं। आप वह हैं जो किया जाता है और जो नहीं किया जाता है। आप वह हैं जो सबसे ऊपर है और जो सबसे नीचे है। और आप सभी प्राणियों के लिए घर हैं।

3-1 आपकी कृपा का सोमपान (पवित्र पेय) पीकर हम अमर हो गए हैं। हम परम तक पहुँच गए हैं। हमने देवताओं को देखा है। हमें कौन नुकसान पहुँचा सकता है? हम मनुष्यों को उस अमृत (आपकी कृपा) की कोई कमी नहीं है।

3-2 आप जो आदि हैं, सूर्य और चंद्रमा से भी पुराने हैं।

3-3 इस जगत के लिए यह अमर आदिम प्राणी इस प्रजापति द्वारा रचित, सूक्ष्म और शान्त जगत को बिना स्पर्श किये ही पकड़ लेता है और इसके आकार को आकार से, शान्ति को शान्ति से, सूक्ष्मता को सूक्ष्मता से और वायुमय स्वभाव को वायुमय स्वभाव से आकर्षित करके निगल जाता है। उस महान निगलने वाले को नमस्कार और नमस्कार है।

3-4 जो देवता हृदय में निवास करते हैं, वे हृदय की आत्मा में निवास करते हैं। और आप जो उस हृदय में निवास करते हैं, त्रिगुणात्मक प्रकृति से परे हैं। [तीन अक्षर आ, ऊ और म या तीन अवस्थाएँ अर्थात् जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्नावस्था।]

3-5 “ॐ की ध्वनि” का मुख आपके बायीं ओर है। इसके पैर आपके दाहिनी ओर हैं। वह “ॐ की ध्वनि” प्रणव (आदि ध्वनि) है। वह प्रणव सर्वत्र फैला हुआ है। जो सर्वत्र है, वही महानतम है। जो असीम है, वह श्वेत तारे के समान चमकता है। जिसे शुक्लम् (वीर्य द्रव-जीवन की मूल इकाई) भी कहते हैं, वह बहुत ही सूक्ष्म है। जो सूक्ष्म है, वह बिजली की शक्ति के समान है। जो बिजली की शक्ति के समान है, वह परम ब्रह्म है।

वह ब्रह्म एक और केवल एक है। वह एक और केवल एक ही है, वह रुद्र (जिसका संक्षिप्त अनुवाद क्रोधी है), वह ईशान (शिव का रूप जो शिखाधारी है और बैल पर सवार है), वह परम ईश्वर भी है और वह सभी चीजों का स्वामी भी है।

3-6 रुद्र को प्रणव का अवतार कहा जाता है, क्योंकि वह मृत्यु (विनाश) के समय आत्माओं को स्वर्ग की ओर भेजता है। उसे "प्रणव का आकार वाला" कहा जाता है, क्योंकि ब्राह्मण "ॐ" पढ़कर ही ऋक्, यजुर्वेद, साम और अथर्ववेद का पाठ और प्रचार करते हैं। उसे "सर्वव्यापी" कहा जाता है, क्योंकि वह तिल में तेल की तरह, ऊपर से नीचे और दाएं से बाएं, पूरे संसार और उसके प्राणियों में शांतिपूर्वक व्याप्त है। उन्हें "अनंत" कहा जाता है, क्योंकि उनका अंत न तो ऊपर है, न नीचे, न दायाँ है, न बायाँ। उन्हें "थारा" कहा जाता है, क्योंकि वे जीवन के भय से रक्षा करते हैं, जिसमें गर्भ में रहने का भय, जन्म के समय का भय, रोगों का भय, बुढ़ापे का भय और मृत्यु का भय शामिल है।

उन्हें "शुक्ल" कहा जाता है, क्योंकि उनके नाम के उच्चारण से हम सभी दर्द से छुटकारा पा लेते हैं। उन्हें "सूक्ष्म" कहा जाता है, क्योंकि वे किसी भी अंग को स्पर्श किए बिना पूरे शरीर में सूक्ष्म रूप में व्याप्त हैं। उन्हें "वैद्युत" कहा जाता है, क्योंकि उनके नाम का उच्चारण करते ही अंधकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

जहाँ कुछ भी दिखाई नहीं देता, वहाँ पवित्र ज्ञान बिजली की किरण की तरह आता है। उन्हें "परम ब्रह्म" कहा जाता है, क्योंकि वे हर चीज़ के अंदर हैं, वे हर चीज़ के अंदर और बाहर हैं, वे हर चीज़ की शरण हैं और बड़े से भी बड़े, वे हर चीज़ के अंदर हैं। उन्हें "एक" कहा जाता है क्योंकि वे अकेले ही सब कुछ नष्ट कर देते हैं और सब कुछ फिर से बना देते हैं। उन्हें "तीर्थ" कहा जाता है क्योंकि वे सभी पवित्र जलों का अंतिम मिश्रण हैं, जिन्हें पूर्व, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम में खोजा जाता है।

वे "एक" हैं क्योंकि वे सभी प्राणियों का निर्माण करते हैं और अकेले ही उनके भीतर यात्रा करते हैं, बिना किसी को पता चले कि वे कहाँ से आते हैं और कहाँ जाते हैं। वे "रुद्र" हैं क्योंकि वे तेज़ गति से चलने वाले रूप हैं जिन्हें सभी नहीं बल्कि केवल महान ऋषि और भक्त ही समझ सकते हैं। वे "ईशान" हैं क्योंकि उनकी सृजन और पालन-पोषण की शक्ति है और साथ ही क्योंकि वे सभी देवों पर शासन करते हैं। जैसे दूध पाने के लिए गाय के पास जाते हैं, वैसे ही हम आपके पास आते हैं।

आप 'ईशान' क्योंकि वेद आपको स्वर्ग दिखाने वाले और अन्य देवताओं पर शासन करने वाले के रूप में इंगित करता है। आपको 'महेश्वर (महान भगवान)' भी कहा जाता है क्योंकि आप अपने भक्तों को ज्ञान देकर उन्हें आशीर्वाद देते हैं, क्योंकि आपने शब्दों का निर्माण किया और ज्ञान को सामने लाया, और क्योंकि आपने सब कुछ त्याग दिया और योग और अपनी कृपा के माध्यम से अस्तित्व की उच्चतम अवस्था तक पहुँच गए। यह रुद्र की कहानी है।

4 यह भगवान वह है जो सभी दिशाओं में व्याप्त है। वह वह है जो हर चीज से पहले आया था। वह वह है जो गर्भ में है। वह वह है जो अब तक उत्पन्न सभी प्राणियों में है और उन सभी में जो भविष्य में बनाए जाने वाले हैं। वह वह भी है जो अंदर देखता है लेकिन वह एक ऐसा चेहरा है जो बाहर देखता है।

5.1 रुद्र एक और केवल एक है। उसके बाद कोई दूसरा नहीं है। वह अपनी शक्ति से सभी दुनियाओं पर शासन करता है। वह सभी प्राणियों में पूरी तरह से व्याप्त है। वह वह है जो जलप्रलय के समय सभी प्राणियों को अवशोषित करता है। वे ही समस्त प्राणियों की रचना करते हैं तथा उनका पालन करते हैं।

५.२ वे ही समस्त इन्द्रियों में विद्यमान हैं, जहाँ जन्म होता है। वे समस्त प्राणियों में विचरण करते हैं तथा उनके अस्तित्व का कारण हैं। जो मांगने वाले को सब कुछ देते हैं तथा जो वंदनीय हैं, ऐसे भगवान की खोज तथा उनके शरणागत होने से साधक को अपार शांति मिलती है।

५.३ वे अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश तथा यहाँ विद्यमान सभी वस्तुओं को भस्म बना देते हैं। जो यह देखता है, मन में इसका बोध करता है तथा पशुपति की तपस्या करता है तथा अपने शरीर पर भस्म का लेप करता है,

वह ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। इस प्रकार पशुपति की पूजा करने से सभी प्राणियों के बंधन कट जाते हैं तथा वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

५.४ उनसे बड़ा कोई नहीं है, जिन पर समस्त लोक मोतियों की तरह पिरोये हुए हैं। सदियों से, अब तक कोई भी उससे बड़ा नहीं है और कोई भी उससे बड़ा नहीं होने वाला है। उसके हज़ारों पैर हैं लेकिन एक सिर है। वह हर जगह व्याप्त है क्षर (अक्षर/भाषा/अमर सत्ता) से काल की रचना होती है। काल (युग) से सर्वव्यापकता की रचना होती है। यह "सर्वव्यापकता" ही रुद्र है।

रुद्र सोते हुए भी प्राणियों का नाश करते हैं। उनके "श्वास" से "तमस (अंधकार) की शक्ति" उत्पन्न होती है। तमस से जल उत्पन्न होता है। इस जल को उंगली से मिलाने से वह ठंडा हो जाता है। ठंडक मिलाने से "झाग" उत्पन्न होता है। उस झाग से आकाशगंगा उत्पन्न होती है। आकाशगंगा से ब्रह्म उत्पन्न होता है। ब्रह्म से वायु उत्पन्न होती है। वायु से "ॐ की ध्वनि" उत्पन्न होती है। "ॐ की ध्वनि" से सावित्री उत्पन्न होती है। सावित्री से गायत्री उत्पन्न होती है और गायत्री से सभी लोक उत्पन्न होते हैं। जो लोग "तप" और "सत्य" की उपासना करते हैं, उन्हें स्थायी सुख मिलता है।

"ॐ भूर् भुव स्वरोम्" का जाप करके उस ब्रह्म की उपासना करना, जो प्रकाश, जल, सार और अमृत का मिश्रण है, सबसे बड़ी तपस्या है। हे देवो, हम अपने कानों से वह सुनें जो शुभ है; हम अपनी आँखों से वह देखें जो शुभ है शुभ, हे पूजनीय!देवताओं द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का हम आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!
प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित अथर्वसिरस उपनिषद समाप्त होता है

<u>023 - अथर्वशिखा उपनिषद</u>

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

मैं उस "परम सत्य" का ध्यान करता हूँ, जो "ॐ की ध्वनि" का अर्थ बताता है, जो ॐ के चौथे पैर के रूप में चमकता है, जो थुरियास का थुरीय है (ईश्वर के साथ एकता की एक अलौकिक दिव्य अवस्था, जो जागृति, निद्रा और स्वप्न की तीन अवस्थाओं से परे है), जो तीन पैरों (अक्षरों) में रहने का आनंद लेता है और जो एक और केवल एक है।

ॐ! ऋषि पिप्पलाद, आंगिरस और सनत कुमार महान ईश्वर तुल्य ऋषि, अथर्व महर्षि के पास गए और उनसे पूछा, "हे ईश्वर तुल्य ऋषि, ध्यान का मुख्य पहलू क्या है? वह मंत्र (पवित्र शब्द) क्या है जिस पर ध्यान करना है? कौन ध्यान कर सकता है? ध्यान का देवता कौन है?"

1.1 ऋषि अथर्व ने उन्हें उत्तर दिया, "मुख्य रूप से एक अक्षर ॐ का ध्यान करना है। यह स्वयं ध्यान का मंत्र है। उस मंत्र के चार पैर चार देव और चार

वेद हैं। अक्षर को परब्रह्म (परम वास्तविकता) के रूप में पहचानना होगा और उसका ध्यान करना होगा।
1.2 पहला शब्दांश 'आ' पृथ्वी, ऋग्वेद और उसके पवित्र मंत्र, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, देवों में अष्ट वसु, छंदों में 'गायत्री' और अग्नि में 'गृहस्थी' (घर की अग्नि) को दर्शाता है।

1.3 दूसरा शब्दांश 'उ' आकाश, यजुर्वेद, संहार के देवता रुद्र, देवों में ग्यारह रुद्र, छंदों में 'त्रिशगुप' और अग्नि में 'दक्षिणाग्नि' (दक्षिण की अग्नि - अंतिम संस्कार की चिता) को दर्शाता है।

1.4 तीसरा शब्दांश 'मा' स्वर्ग, सामवेद और उसके संगीतमय स्वरों को दर्शाता है, विष्णु जो संसार की देखभाल करते हैं, देवों में बारह आदित्य (सूर्य), छंदों में 'जगतिचंडा' और अग्नि में 'अहवग्नि' (अग्नि यज्ञ में प्रयुक्त अग्नि)।

1.5 वह आधा चौथाई अक्षर जो छिपा हुआ मा है, अथर्ववेद के जादुई मंत्र हैं, अग्नियों में संवर्तक (विनिमय की अग्नि), देवों में मरुद गण हैं। यह स्वयं चमकने वाला ब्रह्म है जो अकेला चमकता है और सब कुछ देखता है।

1.6 पहला लाल ब्रह्मा (सृजनात्मक पहलू), दूसरा पवित्र सफेद रुद्र (विनाशकारी पहलू), तीसरा काला भगवान विष्णु (प्रशासनिक पहलू) और चौथा जो बिजली की तरह है वह बहुरंगी पुरुषोत्तम (पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ) है।

1.7 इस ओंकार के चार पैर और चार सिर (अग्नि) हैं। चौथा “मा” का आधा अक्षर है जो छिपा हुआ है। इसका उच्चारण छोटे संक्षिप्त रूप, थोड़े विस्तारित रूप (प्लूथ्याग) और बहुत विस्तारित रूप में किया जाता है। इसका उच्चारण एक मत्र के साथ ॐ, दो मत्रों में ॐ और विस्तारित तीन मत्रों में ॐ के रूप में किया जाता है (मत्र उच्चारण की इकाई है)।

1.8 चौथा शांतिपूर्ण आधा अक्षर लंबे उच्चारण में छिपा हुआ है। यह आत्मा की अतुलनीय चमक है। यह वह ध्वनि है जो न कभी थी और न कभी होगी। यदि इसका उच्चारण पहले न किया जाए, किन्तु प्रथम बार किया जाए, तो यह सुषुम्ना नाड़ी से होकर सहस्त्रदल कमल (सहस्रार) तक ले जाती है।

1.9. प्रणव (ॐ की ध्वनि) सभी आत्माओं को अपने सामने झुकाने के लिए विवश करती है। यह एकमात्र ऐसा है जिसका ध्यान चारों वेदों तथा सभी

देवों के जन्मस्थान के रूप में करना चाहिए। जो इस प्रकार ध्यान करता है, वह सभी दुखों तथा भय से दूर हो जाता है तथा अपने पास आने वाले सभी लोगों की रक्षा करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस ध्यान के कारण ही सर्वत्र व्याप्त भगवान विष्णु सभी पर विजय प्राप्त करते हैं। भगवान ब्रह्मा ने अपनी सभी इन्द्रियों को वश में करके उसका ध्यान किया, इसलिए उन्हें सृष्टिकर्ता का पद प्राप्त हुआ। भगवान विष्णु भी परमात्मा के स्थान की ॐ ध्वनि में मन को एकाग्र करके ईशान का ध्यान करते हैं, जिनकी पूजा करना सबसे उचित है। यह सब केवल ईशान के लिए ही उचित है।

2.1 ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इंद्र सभी प्राणियों, सभी अंगों और सभी करणों को उत्पन्न कर रहे हैं। वे उन्हें नियंत्रित करने में भी सक्षम हैं। लेकिन भगवान शिव उनके बीच आकाश की तरह मौजूद हैं और स्थायी रूप से स्थिर हैं।

2.2 यह सलाह दी जाती है कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और शिव इन पांच देवताओं की पूजा प्रणव [आ+ऊ+म+ध्वनि+बिंदु] के रूप में की जानी चाहिए।

2.3 यदि कोई एक सेकंड के लिए भी इनका ध्यान कर सके, तो उसे एक सौ अग्निहोत्र करने से भी अधिक फल मिलता है। पूरी समझ और ज्ञान के साथ, व्यक्ति को केवल परमशिव का ध्यान करना चाहिए, जिससे सभी लाभ होंगे। यह निश्चित है कि, अपना सर्वस्व त्याग कर अन्य बातों के अतिरिक्त, द्विजों को भी यह सीखना और समझना चाहिए, जिससे वे गर्भ में रहने के कष्टों से मुक्त हो जाएं और मोक्ष प्राप्त करें।

२.४ ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ बातें सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ बातें देखें! हम देवताओं द्वारा निर्धारित जीवन की अवधि का आनंद लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें! यशस्वी इंद्र हमें आशीर्वाद दें! सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें! बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें! बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित अथर्वसिखोपनिषद समाप्त होता है।

024 - मैत्रायणी उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग-प्रत्यंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राणशक्ति और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों।समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म का खंडन न करूँ, न ब्रह्म मेरा खंडन करे।कोई खंडन न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई खंडन न हो।उपनिषदों में जिन गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

प्रपथक एक राजा बृहद्रथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजा बनाकर, शरीर को अनित्य मानकर, वैराग्य प्राप्त करके, वन में चले गए। उन्होंने घोर तपस्या की और भुजाएँ ऊपर उठाकर सूर्य की ओर देखते हुए खड़े हो गए।

एक हजार वर्ष के अंत में शाकायण ऋषि उनके पास आए, जैसे धुंआ रहित अग्नि, तेज से जलती हुई और बोले, 'हे राजन, उठो और कोई वरदान मांगो।' उन्होंने प्रणाम किया और कहा, 'महाराज, मैं आत्मा से अनभिज्ञ हूं। आप इसे जानते हैं, कृपया मुझे वरदान दीजिए।' 'यह पहले भी हो चुका है, और असंभव है, अन्य इच्छाएं मांगिए।' लेकिन राजा ने उनके पैर छूए और कहा, 'महाराज, इस शरीर में भोग का क्या उपयोग है जो दुर्गंधयुक्त है और हड्डियों, खालों आदि का ढेर है, जिस पर काम, क्रोध आदि का आक्रमण है, प्रियजनों से वियोग है, भूख, प्यास आदि है।

हम देखते हैं कि यह सब मक्खियों और मच्छरों की तरह सड़ रहा है जो जीते और मरते हैं। सूर्यवंश के महान राजा दुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इंद्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनस्व आदि, सोमवंश के मरुत्त आदि, इस लोक को त्यागकर परलोक चले गए, यहाँ तक कि सगे-संबंधी भी देखते रहे। हम यह भी देखते हैं कि गंधर्व, असुर, यक्ष आदि कैसे मर गए और चले गए। समुद्र सूख गए, पहाड़ गिर गए, ध्रुव तारा हिल गया, पेड़ और धरती उखड़ गई। इस लोक में सभी भोगों के बाद केवल पुनर्जन्म है। आप मुझे उद्धार दें जो कि मेंढक की तरह है अँधेरे कुएँ में। तुम मेरी शरण हो।

प्रपथक द्वितीय ऋषि शाक्यण्य ने प्रसन्न होकर कहा, 'हे राजन, इक्ष्वाकु वंश के ध्वज (आभूषण), आपने आत्मा को जाना है, आपने अपना कर्तव्य किया है, राजा मरुत के पुत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं। यह वास्तव में आपकी आत्मा है'।
'जो, हे प्रभु' (उसने पूछा)। उन्होंने उत्तर दिया: 'इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह, बाहरी कारणों से बंधा हुआ, ऊपर की ओर जाता हुआ, पीड़ित होता हुआ भी (वास्तव में) पीड़ित नहीं होता हुआ, अज्ञान को उसी तरह दूर करता है जैसे सूर्य अंधकार को दूर करता है। शांत व्यक्ति इस शरीर से उठकर परम के पास जाता है, अपने आप को अपने सार में प्रकट करता है, अमर, निर्भय।

यह ब्रह्म-विद्या हमें भगवान मैत्रेय ने प्रदान की है। मैं आपको भी यही सिखाऊंगा। निष्पाप, शक्तिशाली रूप से उज्ज्वल और पवित्र वालखिल्यस ने प्रजापति से कहा, 'प्रभु, यह शरीर एक गाड़ी की तरह निष्क्रिय है। किस सूक्ष्म सत्ता में ऐसी महानता है कि शरीर चेतन रूप में स्थापित है ? इस शरीर का संचालक कौन है ?' उन्होंने उनसे कहा, 'जो वाणी से परे है, शुद्ध है, पवित्र है, मोह से रहित है, शान्त है, निःस्वार्थ है, स्वतंत्र है, अनन्त है, अपरिवर्तनीय है, शाश्वत है, अजन्मा है, मुक्त है, अपनी महिमा में है। वही संचालक है।'

उन्होंने कहा, 'जो कामना से रहित है, वह इस शरीर को इस प्रकार कैसे स्थापित कर सकता है ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'आत्मा सूक्ष्म है, विषय-वस्तु से रहित है, अदृश्य है और उसे पुरुष कहते हैं। वह अंशतः सचेतन रूप से यहाँ विद्यमान है और सोए हुए को जगाता है। इस पुरुष का वह चेतन अंश प्रत्येक व्यक्ति में शरीर का ज्ञाता है। उसके लक्षण कल्पना, निश्चय और दंभ हैं - वह प्राणियों का स्वामी है, सबका नेत्र है। उसी चेतन सत्ता से शरीर की स्थापना हुई है। वही संचालक है।' उन्होंने पूछा, 'भगवन्, ऐसा अंशतः अस्तित्व कैसे हो सकता है ?'

उन्होंने उनसे कहा, 'यह प्रजापति आदि में था। अकेले होने के कारण वह खुश नहीं था। उसने अपने बारे में चिंतन किया और कई प्राणियों की रचना की। वे उसके बारे में अनभिज्ञ थे, बेदम, एक खंभे की तरह निष्क्रिय। वह खुश नहीं था और उसने सोचा, 'उनकी जागरूकता को जगाने के लिए, मैं उनमें प्रवेश करूंगा'। खुद को हवा की तरह बनाकर, वह एक के रूप में नहीं बल्कि अपने आप को पांच गुना प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान वायु बनाकर प्रवेश किया। जो सांस ऊपर की ओर जाती है वह प्राण है, अपान नीचे की ओर जाता है।

समान वह है जो खाए गए भोजन को स्थिर करता है और इसे हर अंग में समान रूप से प्रसारित करता है। उदान ऊपर की ओर फेंकता है और पेय और भोजन को नीचे भेजता है। जो नसों में व्याप्त है वह व्यान है। वैश्वानर वायु अंतर्यामी वायु को दबा देती है और इसके विपरीत। इन दोनों के बीच में गर्मी निकलती है - गर्मी आत्मा है - आत्मा ब्रह्मांडीय अग्नि है। यह भी अन्यत्र कहा गया है। भीतर की आग ब्रह्मांडीय अग्नि है, आंतरिक अग्नि जिससे भोजन पचता है। पाचन की ध्वनि बंद कानों से सुनी जाती है, मरने के समय नहीं। यह परम सत्ता अपने को पाँच भागों में विभाजित करके, हृदय की गुफा में स्थित होकर, पूर्णतया मानसिक है, इसका शरीर प्राण है।

इसके अनेक रूप हैं, इसकी कल्पनाएँ सत्य हैं। हृदय के मूल में स्थित होकर, यह प्रयत्न करता है और सोचता है: मैं सब कुछ हो जाऊँ। ऊपर उठकर, पाँच किरणों द्वारा वस्तुओं को विभाजित करके, वह तब अनुभव करता है। इन्द्रियाँ किरणें हैं, कर्मेन्द्रियाँ घोड़े हैं, शरीर रथ है, मन प्रकृति का सारथी है, चाबुक से चलाकर, यह शरीर को चक्र की तरह घुमाता है। इसके कारण शरीर एक चेतन सत्ता है।

यह आत्मा वास्तव में कर्मों के फल, श्वेत और श्याम द्वारा अ-आत्मा पर निर्भर हो जाती है, उनसे अभिभूत हो जाती है, मानो उनसे अभिभूत हो जाती है और एक शरीर से दूसरे शरीर में भटकती रहती है। अव्यक्त, सूक्ष्म, अदृश्य, अ-वस्तु, अस्वत्व, अवस्थाओं से मुक्त, अकर्ता होने के कारण, (लेकिन) एक कर्ता की तरह निवास करती है। वह वास्तव में शुद्ध, स्थिर, अपरिवर्तनीय, निष्कलंक, उत्सुक, निष्काम, साक्षी के रूप में रहने वाला, कर्मों के फलों का अनुभव करने वाला, प्रकृति की चादर से प्यार करने वाला है।

प्रपथक तीन उन्होंने कहा, 'हे प्रभु, फिर दूसरा आत्मा कौन है, जो कर्मों के सफेद और काले फलों से अभिभूत है और अच्छे और बुरे गर्भों में जाता है, जो द्वैत से अभिभूत होकर नीचे या ऊपर भटकता है?' उन्होंने उत्तर दिया: तत्वों में वास्तव में एक और आत्मा है, जो सफेद और काले कर्मों से अभिभूत है। तत्वों का मतलब पांच मूल तत्वों के साथ-साथ पांच ठोस तत्व भी हैं। उनका परिसर शरीर है आत्मा कमल के पत्ते में जल की बूँद के समान है। यह प्रकृति से अभिभूत है। इससे अभिभूत होकर वह मोह में पड़ जाता है और अपने अन्दर भगवान को कार्य करवाते हुए नहीं देखता।

वह अपने अवयवों से संतुष्ट, भ्रमित, अस्थिर, आतुर, कामना, तृष्णा से पीड़ित, अभिमानी, 'मैं वह हूँ, यह मेरा है' ऐसा सोचकर अपने को जाल में बाँधता है, घूमता रहता है। अन्यत्र भी कहा गया है कि 'कर्ता वास्तव में तत्वात्मा ही है। जैसे अग्नि से व्याप्त और कारीगरों द्वारा पीटे गए लोहे को माया में विभाजित कर दिया जाता है, वैसे ही तत्वात्मा से व्याप्त और प्रकृति द्वारा दबाया हुआ तत्वात्मा अनेक हो जाता है। तीन पहलुओं का समूह, 84 लाख जीवों का रूप धारण करके तत्वात्माओं का समूह बनाता है। यह अनेकत्व का रूप है। आत्मा द्वारा घटकों को उसके चालक द्वारा चलाए जाने वाले पहिये के समान चलाया जाता है।

जैसे अग्नि को नहीं पीटा जाता (केवल लोहा पीटा जाता है), वैसे ही आत्मा को नहीं, बल्कि मूल आत्मा को दबाया जाता है। कहा गया है: यह चेतना रहित शरीर मैथुन से उत्पन्न हुआ है - यह नरक है - मूत्र मार्ग से, हड्डियों द्वारा पोषित, मांस और त्वचा से ढका हुआ, मल, मूत्र आदि से भरा हुआ - यह एक टूटा हुआ आवरण है। यह पुष्टि की गई है कि 'मोह, भय, अवसाद, निद्रा, घाव, बुढ़ापा आदि, इन तामसी और राजसी गुणों (इच्छा की तरह) से युक्त होने के कारण मूल आत्मा अभिभूत है।

इसलिए वास्तव में, यह अनिवार्य रूप से विभिन्न रूप धारण करता है। प्रपथक चार कहा गया है: 'बड़ी नदियों की लहरों की तरह, पिछले कर्म मनुष्य की सुरक्षा हैं - जैसे समुद्र के लिए तट रेखा। पुनर्जन्म अपरिहार्य है - अच्छे और बुरे परिणामों (कर्मों) से बंधा हुआ, जैसे कि एक जानवर रस्सियों से बंधा हुआ है। मृत्यु के चंगुल में पड़ा हुआ व्यक्ति कैदी की तरह मुक्त नहीं होता, वह अनेक भयों में रहता है। जो सांसारिक सुखों से उन्मत्त है, वह नशे में चूर है। वह पाप के वश में है और भटकता है, जैसे साँप ने डसा हो, वह खतरे के जबड़े में है, जैसे अन्धकार में काम के कारण अन्धा हो जाता है।

जैसे जादू के खेल में फँसा हुआ व्यक्ति माया के बीच में फँसा हुआ है। वह स्वप्न के समान सब कुछ मिथ्या देखता है, केले के गूदे के समान सारहीन, क्षण भर के लिए सजे-धजे अभिनेता के समान, रंगी हुई दीवार के समान मिथ्या आकर्षक। कहा गया है कि शब्द आदि इन्द्रिय-विषय क्लेश के कारण हैं। उनसे आसक्त होकर आत्मा परम स्थान को भूल जाती है। इसका उपाय है ज्ञान की प्राप्ति, अपने धर्म का पालन करना, जीवन का नियम वृक्ष के तने के समान सबको धारण करता है। इसी नियम से मनुष्य ऊपर की ओर जाता है, इसके बिना वह नीचे गिरता है, ऐसा वेदों में कहा गया है। आश्रम में नियम का संचरण नहीं हो सकता।

जो आश्रम में है, वही सच्चा तपस्वी है। यह भी कहा गया है: 'तपस्या से सत्त्व प्राप्त होता है और सत्त्व से मन शुद्ध होता है; मन से आत्मा प्राप्त होती है और आत्मा प्राप्त होने से गति रुक जाती है।' निम्नलिखित श्लोक प्रासंगिक हैं: जिस प्रकार ईंधन के बिना अग्नि अपने स्रोत में ही मर जाती है, उसी प्रकार मन अपने गुणों के नष्ट होने से स्रोत में ही शांत हो जाता है। सत्य के प्रेमी के मन के गुण, जो विषयों से मोहित नहीं होते, मिथ्या हैं। वे कर्म के नियमों का पालन करते हैं - प्रवास करने वाला जीवन ही मन है। इसे भली-भाँति शुद्ध करने का कष्ट करो। मन जिस पर वास करता है, वही जीवन को भर देता है। यही शाश्वत रहस्य है।

शुद्ध मन आत्मा में स्थिर होकर अनंत आनंद का भय करता है। यदि विषयों में आसक्त मन परम आत्मा में स्थिर हो जाए, तो कौन मुक्त नहीं होगा? मन दो प्रकार का होता है - अशुद्ध में कामनाएँ होती हैं, शुद्ध में कामनाएँ नहीं होतीं। जब मनुष्य अपने मन को चंचलता और प्रमाद से मुक्त कर लेता है, निर्विचार अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तब वह परमपद होता है। मन को तभी तक रोकना है, जब तक वह हृदय में विलीन न हो जाए। यही ज्ञान भी है और मुक्ति भी - शेष तो केवल विवरण है।

समाधि से शुद्ध होकर आत्मा में स्थित मन को जो आनन्द मिलता है, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता, उसे मन ही ग्रहण कर सकता है। जल में मिला हुआ जल, अग्नि में अग्नि और आकाश में आकाश, इन दोनों में भेद नहीं किया जा सकता, इसलिए मन-आत्मा - मनुष्य मुक्त हो जाता है। मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है - विषयों में आसक्त होकर बंधन देता है - उनके बिना मुक्ति। तुम ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इंद्र, चंद्रमा, मनु, यम, भूमि, अच्युत हो। स्वर्ग में तुम अनेक प्रकार से अपने स्वरूप में निवास करते हो।

मैं आपको प्रणाम करता हूँ, आप सबके स्वामी हैं, सबकी आत्मा हैं, सबका पालन करने वाले हैं, सबका मोह और सबका क्रीड़ा करने वाले हैं। आप स्वभाव से शांत हैं, सबसे अधिक गुप्त, विचार और ज्ञान से परे, आदि और अंत से रहित। यह सब तामस था - फिर परमसत्ता द्वारा प्रेरित होकर, यह असमान हो गया - विवश होकर, रजस हो गया। यह सब सत्व से निकला, प्रत्येक व्यक्ति में चेतना, विचार, दृढ़ संकल्प और दंभ द्वारा इंगित। प्रजापति ने इसके बारे में कहा।

पहले शरीर ब्रह्मा आदि हैं। वे तामस के पहलू हैं, सत्व के रुद्र। विष्णु त्रिगुणात्मक, अष्टगुणात्मक आदि हो गए, असीमित हो गए और प्राणियों के बीच घूमते हैं - सभी प्राणियों का आधार और उनके स्वामी, उनके अंदर और बाहर। ॐ! मेरे अंग और वाणी, प्राण, आंखें, कान, प्राण और सभी इंद्रियां शक्तिशाली बनें। सारा अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है। मैं कभी ब्रह्म को अस्वीकार न करूं, न ब्रह्म मुझे अस्वीकार करे। बिल्कुल भी अस्वीकार न हो: कम से कम मेरी ओर से तो कोई अस्वीकार न हो। उपनिषदों में घोषित गुण मुझमें हों, जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ सामवेद में सम्मिलित मैत्रायणी उपनिषद समाप्त होता है

025 - कौषीतकी ब्राह्मण उपनिषद

ॐ ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो (अर्थात् उसके अनुरूप हो);

मेरा मन वाणी पर आधारित हो।

हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए।

आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें।

मैंने जो कुछ सुना है, वह सब मुझसे दूर न हो।

मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ (अर्थात् मिटा दूँगा) जोड़ूँगा।

मैं जो मौखिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा;

मैं जो मानसिक रूप से सत्य है, वही बोलूँगा।

वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता (अर्थात् शिक्षक) की रक्षा करें,

वह मेरी रक्षा करें;

वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें।

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1. चित्रा गार्ग्यायनी ने यज्ञ करने के लिए आरुणि को अपना पुरोहित चुना। उन्होंने (अरुणि ने) अपने पुत्र श्वेतकेतु को पुरोहित बनने के लिए भेजा। जब वह आकर बैठा, तो गार्ग्यायनी ने उससे पूछा: 'गौतम के पुत्र! क्या जिस लोक में तुम मुझे रखोगे, वहाँ (जन्म) समाप्त हो गया है, अथवा क्या संसार में कोई ऐसा निवास है जहाँ तुम मुझे रखोगे?' उसने उत्तर दिया: मैं यह नहीं जानता। अच्छा, मुझे (अपने) गुरु से पूछना चाहिए। वह (श्वेतकेतु) अपने पिता के पास गया और बोला: 'उन्होंने (जैसा कि ऊपर बताया गया है); मुझसे पूछा, मैं क्या उत्तर दूँ?' उन्होंने (पिता ने) कहा: 'मैं भी यह नहीं जानता। चलो, हम उनके निवास में अपना वैदिक अध्ययन जारी रखें और जो (जानकारी) अन्य लोग देते हैं, उसे प्राप्त करें।

चलो, हम दोनों चलें।' फिर, हाथ में ईंधन लेकर वह (अरुणि) चित्रा गार्ग्यायनी के पास लौटा और कहा, 'मैं एक शिष्य के रूप में आपके पास आता हूँ।' तब उन्होंने उससे (अरुणि से) कहा: 'हे गौतम, तुम पवित्र ज्ञान के योग्य हो, जो मेरे पास (एक शिष्य के रूप में) आये हो। आओ, मैं तुम्हें यह बताऊँ।'

I-2. उन्होंने कहा: 'जो लोग इस संसार से विदा लेते हैं, वे सभी चंद्रमा को प्राप्त होते हैं। (चंद्रमा के) पूर्वार्ध में यह (चंद्रमा) उनकी प्राणवायु पर फलता-फूलता है; उत्तरार्ध में यह उन्हें पुनरुत्पादित करता है।

चन्द्रमा ही स्वर्गलोक का द्वार है। जो इसका ठीक उत्तर देता है, उसे यह आगे जाने के लिए मुक्त कर देता है। परन्तु जो उत्तर नहीं देता, वह वर्षा बनकर यहीं बरसता है। यहाँ वह अपने कर्मों और ज्ञान के अनुसार कीड़ा, कीट, मछली, पक्षी, सिंह, सूअर, साँप, व्याघ्र, मनुष्य या कोई अन्य बन जाता है। जो इस प्रकार आया है, उससे पूछा जाता है कि तुम कौन हो? उसे उत्तर देना चाहिए कि हे ऋतुओं, पितरों के घर से पन्द्रहवें (आधे चन्द्रमा) मास से बीज गिरते ही देदीप्यमान (चन्द्रमा) से बीज एकत्रित हुआ है।
अतः मुझे पुरुष में कर्ता बनाकर डालो। पुरुष के द्वारा कर्ता बनकर माता में मुझे डालो। मैं बारहवें या तेरहवें मास में बारहवें या तेरहवें मास के रूप में जन्म लेता हूँ। उसी के ज्ञान में मैं हूँ। क्योंकि विपरीत का ज्ञान ही मैं हूँ।इसलिए हे ऋतुओं, मुझे अमर बनाने का प्रयत्न करो, उस सत्य से, उस तपस्या से, मैं एक ऋतु हूँ। मैं ऋतु का हूँ, तुम कौन हो ? 'मैं तुम हूँ'। वह उसे और आगे जाने देता है।

I-3. 'देवताओं के इस पथ पर प्रवेश करके, वह अग्र लोक में आता है, (फिर) वायु लोक में,(फिर) वरुण लोक में, (फिर) आदित्य लोक में, (फिर) इंद्र लोक में; (फिर) प्रजापति लोक में, (फिर) ब्रह्मा लोक में। ब्रह्मा के इस लोक में आरा नामक सरोवर है, यश्तिहास के क्षण, विजरा नदी, तीन इल्या, सलज्ज नगर, अपराजिता का निवास, द्वारपाल इंद्र और प्रजापति, भवन विभु, सिंहासन विचक्षण, शैय्या अमितौजा, प्रिय मानसी और उसकी प्रतिरूप चक्षुशी, जो फूल लेकर लोकों, माताओं, धाय, अप्सराओं और नदियों को बुनती हैं। जो इसे जानता है, वह इसके पास आता है। उससे ब्रह्मा (कहते हैं), 'भागो। मेरे तेज से वह निश्चय ही अजर विरजा नदी तक पहुँच गया है। वह निश्चय ही बूढ़ा नहीं होगा।'

I-4. 'उसके पास पाँच सौ अप्सराएँ जाती हैं, सौ मालाएँ लिए हुए, सौ मलहम लिए हुए, सौ सुगन्धित द्रव्य लिए हुए, सौ वस्त्र लिए हुए, सौ फल लिए हुए। वे उसे ब्रह्मा के आभूषणों से अलंकृत करती हैं। ब्रह्मा के आभूषणों से अलंकृत होकर, ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्मा के पास जाता है। वह आरा झील के पास आता है, उसे मन से पार करता है। उस पर आते ही जो लोग (केवल) तात्कालिक (वर्तमान) को जानते हैं, वे डूब जाते हैं। वह उन क्षणों पर आता है, जब ये उससे दूर भागते हैं। वह विरजा नदी के पास आता है। वह मन से ही उसे पार करता है।

वहाँ वह अपने अच्छे और बुरे कर्मों को झटक देता है। उसके प्रिय सम्बन्धी अच्छे कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं, और जो उसके प्रिय नहीं होते, वे बुरे कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं। फिर जैसे रथ चलाने वाला रथ के पहिये को

देखता है, वैसे ही वह दिन और रात को देखता है; वैसे ही वह अच्छे और बुरे कर्मों को देखता है, और विपरीत युग्मों को देखता है। इस प्रकार वह ब्रह्म को जानने वाला, अच्छे कर्मों से रहित, बुरे कर्मों से रहित, ब्रह्म को प्राप्त होता है। वह इल्या वृक्ष के पास आता है और ब्रह्म की सुगंध उसके भीतर प्रवेश करती है।

वह सलज्जा नगर में आता है, ब्रह्म की सुगंध उसके भीतर प्रवेश करती है। वह अपराजिता धाम में आता है, ब्रह्म की शक्ति उसके भीतर प्रवेश करती है। वह द्वारपाल इंद्र और प्रजापति के पास आता है; वे उससे दूर भागते हैं। वह विभु भवन में आता है; ब्रह्मा की महिमा उसमें प्रवेश करती है। वह विचक्षण सिंहासन पर आता है; बृहद और रथंतर समान इसके दो अग्र-पाद हैं; 'स्यित और नौधास, दो पश्च-पाद; वैरूप और वैचज दो लंबाई वाले टुकड़े हैं; सक्वार और रैवत दो क्रॉस वाले हैं। यह बुद्धि है; क्योंकि बुद्धि से ही व्यक्ति विवेक करता है।

वह अमितौज (असीमित वैभव) के आसन पर आता है; यह प्राणवायु है। भूत और भविष्य इसके दो अग्र-पाद हैं; समृद्धि और पृथ्वी दो पश्च-पाद हैं; भद्र और यज्ञयज्ञीय (समान) दो सिर के टुकड़े हैं। बृहद और रथंतर दो लंबाई वाले टुकड़े हैं। छंद और मंत्र और डोरियाँ लंबाई में फैली हुई हैं। यज्ञ के सूत्र क्रॉस वाले हैं। कुछ तने फैलाव हैं; उद्गीथ तकिया हैं; समृद्धि तकिया है। इस पर ब्रह्मा बैठते हैं। जो ऐसा जानता है वह पहले एक पैर से ही इस पर चढ़ता है। ब्रह्मा उससे पूछते हैं: तुम कौन हो? उसे उत्तर देना चाहिए: मैं एक ऋतु हूँ, ऋतुओं में से।

मैं अंतरिक्ष से गर्भ के रूप में एक पत्नी के लिए वीर्य के रूप में, वर्ष की चमक के रूप में, प्रत्येक प्राणी की आत्मा के रूप में उत्पन्न हुआ हूँ। तुम जो हो वही मैं हूँ। उससे वह कहते हैं, 'मैं कौन हूँ'।

I-6. सत्य के रूप में आत्मा; यह सबकी आत्मा है और ब्रह्म है। उसे कहना चाहिए, 'वास्तविक'। 'वह क्या है, अर्थात वास्तविक?' देवताओं (इंद्रियों) और प्राणों के अलावा जो कुछ है, वह सत् (जो है) है जहाँ तक देवताओं और प्राणों का सवाल है, वे त्वम् (आप) हैं। इसे सत्यम् शब्द से व्यक्त किया जाता है। यह इस सब के समान ही व्यापक। तुम यह विश्व-सब हो। इस प्रकार वह उससे बोलता है। इसी बात को ऋग्वेद में व्यक्त किया गया है: यजुस् का उदर, सामन का सिर, ऋक् का अविनाशी रूप।

वह ब्रह्म है - इस प्रकार उसे जानना चाहिए। महान दृश्य वेदों पर आधारित है। वह उससे कहता है; 'किससे अनेक पुरुषवाचक नाम प्राप्त होते हैं?' उसे उत्तर देना चाहिए: 'प्राणवायु से'। 'किससे स्त्रीवाचक नाम प्राप्त होते हैं?' 'वाणी से'। 'किससे अधिक सुंदर नाम प्राप्त होते हैं?' 'मन से'। 'गंधों से?' 'गंध से'। 'रूपों से?' 'आंखों से'। 'ध्वनियों से?' 'कानों से'। 'भोजन का स्वाद कहाँ से?' 'जीभ से'। 'कर्मों से?' 'दो हाथों से'। 'सुख-दुख किससे ?' 'शरीर से'। 'आनंद, प्रसन्नता और प्रजनन किससे ?' 'जननेंद्रिय से'। 'चलने से ?' 'दोनों पैरों से'। 'विचारों से, समझने योग्य और इच्छाओं से ?' 'बुद्धि से', उसे कहना चाहिए। उससे वह कहता है, 'जल ही मेरा लोक है।

वह तुम्हारा है ? जो भी विजय ब्रह्मा की है, जो भी उपलब्धि है, वह विजय उसे प्राप्त होती है, वह सिद्धि उसे प्राप्त होती है, जो इसे जानता है, जो इस प्रकार जानता है'।

II-1. 'प्राण ही ब्रह्म है, ऐसा कौषीतकि कहा करते थे। इसी प्राणमय ब्रह्म का मन ही संदेशवाहक है, नेत्र रक्षक है, कान उद्घोषक है, वाणी घेरने वाली है। जो मन को इस प्राणमय ब्रह्म का संदेशवाहक जान लेता है, वह संदेशवाहक बन जाता है। जो नेत्र को रक्षक जान लेता है, वह रक्षक से युक्त हो जाता है; जो कान को उद्घोषक के समान जानता है, वह उद्घोषक से युक्त हो जाता है; जो वाणी को घेरने वाले के समान जानता है, वह घेरने वाले से युक्त हो जाता है।

इस प्राणमयी श्वास को ब्रह्मा के रूप में ये सभी देवता (अर्थात मन, आयु, कान, वाणी) बिना मांगे अर्पण करते हैं। इसी प्रकार, इस प्राणमयी श्वास को सभी प्राणी बिना मांगे अर्पण करते हैं। जो इसे जानता है, उसका गुप्त सिद्धांत है: भीख नहीं मांगना चाहिए। यह ऐसा है जैसे किसी गांव से भीख मांगने पर भी (कुछ भी) न मिलने पर यह कहते हुए बैठ जाना चाहिए कि, 'मैं यहां से (कुछ भी) नहीं खाऊंगा'।

जो पहले मना करते थे, वही अब उसे आमंत्रित करते हैं। जो भीख नहीं मांगता, उसके लिए यही नियम है। लेकिन जो उसे आमंत्रित करते हैं, वे ही भोजन देने वाले हैं (कहते हैं) 'हम तुम्हें देते हैं'।

II-2. 'प्राणमयी श्वास ब्रह्मा है'। ऐसा ही पैंग्या कहा करते थे। वाणी के पीछे ब्रह्मा पर इस प्राणमयी श्वास की आंख बंद है; आँख के पीछे कान बंद है, कान के पीछे मन बंद है, मन के पीछे प्राण बंद है। ब्रह्मा के समान इसी प्राण के लिए ये सभी देवता बिना माँगे ही अर्पण करते हैं। इसी प्राण के

लिए सभी प्राणी बिना माँगे ही अर्पण करते हैं। जो यह जानता है, उसका गुप्त सिद्धांत है: 'भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए'। यह ऐसा है जैसे कि माँगने के बाद भी कुछ न पाकर कोई यह कहकर बैठ जाए कि 'यहाँ से जो मिलेगा, मैं नहीं खाऊँगा'। जो पहले मना करते थे, वही अब उसे आमंत्रित करते हैं। जो माँगता नहीं, उसके लिए यही नियम है। लेकिन जो उसे आमंत्रित करते हैं, वे ही भोजन देने वाले हैं (कहते हैं) 'हम तुम्हें देते हैं'।

II-3. अब, आगे सर्वोच्च निधि की प्राप्ति। यदि कोई व्यक्ति सर्वोच्च धन की अभिलाषा रखता है, तो पूर्णिमा की रात्रि में या अमावस्या की रात्रि में अथवा शुभ नक्षत्र में शुक्ल पक्ष में - इनमें से किसी एक समय में - अग्नि जलाकर, चारों ओर झाड़ू लगाकर, पवित्र घास दिखाकर, चारों ओर छिड़ककर, दाहिना घुटना मोड़कर, चम्मच से या लकड़ी के कटोरे से, या धातु के प्याले से, वह पिघले हुए मक्खन की आहुति (शब्दों सहित) चढ़ाता है; वाणी नामक देवता प्राप्तिकर्ता है।

वह मेरे लिए अमुक से यह वस्तु प्राप्त करे। उसकी जय हो!प्राण नामक देवत्व प्रदाता है।वह मेरे लिए अमुक से यह वस्तु प्राप्त करे। उसकी जय हो! नेत्र नामक देवत्व प्रदाता है। वह मेरे लिए अमुक से यह वस्तु प्राप्त करे।उसकी जय हो!कान नामक देवत्व प्रदाता है। वह मेरे लिए अमुक से यह वस्तु प्राप्त करे।उसकी जय हो!मन नामक देवत्व प्रदाता है। वह मेरे लिए अमुक से यह वस्तु प्राप्त करे।उसकी जय हो!बुद्धि नामक देवत्व प्रदाता है। वह मेरे लिए अमुक से यह वस्तु प्राप्त करे।उसकी जय हो!

फिर धुएं की गंध को सूंघकर, अपने अंगों पर घी का लेप लगाकर, चुपचाप उसे आगे बढ़ना चाहिए, अपना उद्देश्य बताना चाहिए या किसी दूत को भेजना चाहिए। वह यहीं प्राप्त करता है।

II-4. अब आगे दिव्य शक्तियों से प्राप्त होने की लालसा। यदि कोई किसी पुरुष या स्त्री या पुरुष या स्त्री का प्रिय बनना चाहता है, तो इन दोनों में से किसी एक समय पर अग्नि जलाकर, ठीक उसी प्रकार घी की आहुति देता है, और कहता है, 'मैं तुम्हारी वाणी को अपने में आहुति देता हूँ, तुम फलां हो; जय हो! मैं तुम्हारी प्राणवायु को अपने में आहुति देता हूँ, तुम फलां हो; जय हो! मैं तुम्हारी आँख को अपने में आहुति देता हूँ, तुम फलां हो; जय हो! मैं तुम्हारे कान को अपने में आहुति देता हूँ, तुम फलां हो; जय हो!

मैं तुम्हारी बुद्धि को अपने में आहुति देता हूँ, तुम फलां हो; जय हो! फिर धुएँ की गंध को सूँघकर, अपने अंगों पर घी मलकर, चुपचाप आगे बढ़कर

पास जाकर स्पर्श करने की इच्छा करे या हवा की दिशा में खड़े होकर बातचीत करे। वह सचमुच प्रिय हो जाता है। सचमुच उसकी लालसा होती है।

II-5. अब आगे, प्रतर्दन या आंतरिक अग्निहोत्र के अनुसार आत्म-संयम। वास्तव में जब तक कोई व्यक्ति चरम पर है, तब तक वह सांस लेने में सक्षम नहीं है। तब वह वाणी में प्राण त्याग रहा है। जब तक कोई व्यक्ति सांस ले रहा है, तब तक वह बोलने में सक्षम नहीं है। तब वह सांस में वाणी का त्याग कर रहा है। ये दोनों अनंत अमर हवन हैं। जागते या सोते हुए, व्यक्ति निरंतर, निर्बाध रूप से इन्हें कर रहा है। अब जो भी अन्य हवन हैं, उनका अंत है, क्योंकि वे कर्मों से बने हैं। यही बात जानते हुए, वास्तव में, पूर्वजों ने अग्निहोत्र यज्ञ नहीं किया।

II-6. अब, ब्रह्म क्या है! उक्त (पाठ) ब्रह्म (पवित्र शब्द) है - ऐसा वास्तव में शुष्कभंगरा कहा करते थे। इसका ध्यान ऋग् (स्तुति का स्तोत्र) के रूप में करना चाहिए; वास्तव में सभी प्राणी उसकी महानता के लिए स्तुति गाते हैं। इसका ध्यान यजु (यज्ञ सूत्र) के रूप में करना चाहिए; उसकी महानता के कारण सभी प्राणी उसके प्रति एकरूप हो जाते हैं। इसका ध्यान समन (मंत्र) के रूप में करना चाहिए; उसकी महानता के कारण सभी प्राणी उसके प्रति नतमस्तक हो जाते हैं। इसका ध्यान श्री (सुंदरता) के रूप में करना चाहिए। इसका ध्यान यश (महिमा) के रूप में करना चाहिए; इसका ध्यान तेजस (वैभव) के रूप में करना चाहिए।

जैसे यह (उक्त) स्तुति (शास्त्रों) के आह्वानों में सबसे सुंदर, सबसे महिमावान, सबसे शानदार है, वैसे ही जो इसे जानता है वह सभी प्राणियों में सबसे सुंदर, सबसे शानदार, सबसे शानदार है। इस प्रकार अध्वर्यु पुजारी इस आत्मा को तैयार करता है जो यज्ञ से संबंधित है और जो कर्म से युक्त है। इसमें वह यजु का निर्माण करता है। जिसमें यजु का निर्माण होता है, उसमें होतीर पुजारी ऋग् का निर्माण करता है। ऋग् में जो कुछ है, उसमें उद्गति पुरोहित समण का ताना-बाना बुनता है। यह तीनों ज्ञानों की आत्मा है। और इस प्रकार जो इसे जानता है, वह इंद्र की आत्मा बन जाता है।

II-7. सर्वविजयी कौषीतकि वास्तव में उगते हुए सूर्य की पूजा करते थे, पवित्र धागे से अभिषेक करते थे, जल लाते थे, जलपात्र पर तीन बार छिड़कते थे और कहते थे, 'आप उद्धारक हैं, मेरा पाप दूर करें।' उसी तरह वे (सूर्य की पूजा करते थे) जब वह मन-स्वर्ग में था, तो कहते थे, 'आप

महान उद्धारक हैं, मेरा पाप दूर करें!' उसी तरह वे (सूर्य की पूजा करते थे) जब वह मन-स्वर्ग में था, तो कहते थे, 'आप महान उद्धारक हैं, मेरा पाप दूर करें!'जिस प्रकार वह अस्त होते समय सूर्य की पूजा करता था, कहता था, 'तू पूर्ण उद्धारक है, मेरा पाप पूर्णतः दूर कर दे।' दिन में या रात में उसने जो भी पाप किया हो, सूर्य उसे पूर्णतः दूर कर देता है। इसी प्रकार जो यह जानता है, वह भी इसी प्रकार सूर्य की पूजा करता है। दिन में या रात में जो भी पाप किया हो, सूर्य उसे पूर्णतः दूर कर देता है।

II-8. अब, महीने-दर-महीने अमावस्या के समय जब वह आती है, उसी प्रकार पश्चिम में चंद्रमा की पूजा करनी चाहिए या उसकी ओर घास की दो पत्तियां फेंकते हुए कहना चाहिए: वह मन का हृदय, सुंदर रूपरेखा वाला जो आकाश में चंद्रमा में विश्राम करता है, मुझे लगता है कि मैं उसे जानता हूं, मैं बच्चों की बीमारी के लिए नहीं रोऊंगा। वास्तव में उसके बच्चे उससे पहले नहीं मरते। ऐसा ही उस व्यक्ति के साथ होता है जिसके पुत्र का जन्म हुआ है। अब उस व्यक्ति के मामले में जिसके पुत्र का जन्म नहीं हुआ है। 'बढ़ो। (शक्ति) तुम्हारे अंदर प्रवेश करे। दूध और अन्न तुझमें एकत्रित हों, आदित्यों को आनन्द मिले।' इन तीन 'मैं' श्लोकों का उच्चारण करके वह कहता है: हमारे प्राणों से, हमारी सन्तानों से, हमारे पशुओं से तुम मत बढ़ो।

जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं, वह अपने प्राणों से, अपनी सन्तानों से, अपने पशुओं से बढ़ो। मैं इन्द्र की करवट से घूमता हूँ; मैं सूर्य की करवट से घूमता हूँ।' इस प्रकार वह अपने को दाहिनी भुजा की ओर घुमाता है।

II-9. इस प्रकार पूर्णिमा की रात्रि में पूर्व दिशा में चन्द्रमा के समान उसकी पूजा करनी चाहिए और कहना चाहिए: 'आप दूर तक चमकने वाले राजा सोम हैं, पाँच मुख वाले, सृष्टि के स्वामी हैं। ब्राह्मण आपका एक मुख है। उसी मुख से आप राजाओं को खाते हैं। उसी मुख से मुझे अन्न खानेवाला बनाओ। राजा आपका एक मुख है।

उसी मुख से आप प्रजा को खाते हैं। उसी मुख से मुझे अन्न खानेवाला बनाओ। बाज आपका एक मुख है। उसी मुख से आप पक्षियों को खाते हैं। उस मुख से मुझे अन्न खाने वाला बनाओ। अग्नि तुम्हारा एक मुख है। उसी मुख से तुम इस संसार को खाते हो। उसी मुख से मुझे अन्न खाने वाला बनाओ। तुम्हारे अन्दर पाँचवाँ मुख है। उसी मुख से तुम सभी प्राणियों को खाते हो। उसी मुख से मुझे अन्न खाने वाला बनाओ।'

II-10. अपनी प्राणवायु, अपनी सन्तान, या अपने पशुओं को नष्ट मत करो। जो हमसे घृणा करता है और जिससे हम घृणा करते हैं - अपनी प्राणवायु, अपनी सन्तान, अपने पशुओं को नष्ट करो।इस प्रकार मैं देवताओं की भाँति घूमता हूँ; मैं सूर्य की भाँति घूमता हूँ। तत्पश्चात वह दाहिनी भुजा की ओर घूमता है।अब जब पत्नी के साथ शयन करने वाला हो तो उसके हृदय को स्पर्श करके कहना चाहिए:

हे सुन्दरी, जो तुम्हारे हृदय में है - वह प्रजापति के अन्दर है।इसके साथ ही, हे अमरता की रानी, तुम बच्चों के रोग में मत पड़ो।उसके बच्चे उससे पहले नहीं मरते।

II-11. अब जब कोई दूर गया हो, तो लौटकर उसे अपने बेटे का सिर चूमना चाहिए और कहना चाहिए: मेरे हर अंग से तुम पैदा हुए हो। 'मेरे हृदय से तुम पैदा हुए हो; हे पुत्र, तुम वास्तव में मैं ही हो। तुम सौ शरद ऋतु तक जियो !' ऐसा-ऐसा, वह उसका नाम लेता है। 'एक पत्थर बन जाओ! एक कुल्हाड़ी बनो। अजेय सोना बनो। एक चमक, बेटा, तुम वास्तव में हो, इसलिए सौ शरद ऋतु तक जियो !' ऐसा-ऐसा, वह उसका नाम लेता है। फिर वह उसे गले लगाता है और कहता है, 'जिस तरह से प्रजापति ने अपने प्राणियों के कल्याण के लिए उन्हें गले लगाया, उसी तरह से मैं तुम्हें गले लगाता हूं, ऐसा-ऐसा।'

फिर वह अपने दाहिने कान में बुदबुदाता है: 'हे माघवन, हे दैत्यराज' और अपने बाएं (कान) में, 'हे इंद्र, इसे सबसे उत्तम संपत्ति प्रदान करें। (हमारी जाति की वंशावली को न काटें)। डरो मत; सौ शरद ऋतु जियो। बेटा मैं तुम्हारे नाम से तुम्हारा सिर चूमता हूं। तीन बार उसे अपना सिर चूमना चाहिए। 'मैं गायों की रंभा के साथ तुम्हारे ऊपर रंभाता हूँ।' तीन बार उसे अपने सिर पर रंभाना चाहिए।

II-12. अब, आगे देवताओं का मरना।यह ब्रह्म वास्तव में तब चमकता है जब अग्नि जलती है; इसी तरह यह तब मर जाता है जब यह नहीं जलती। इसका तेज सूर्य में जाता है; इसकी प्राणवायु वायु में जाती है। यह ब्रह्म वास्तव में तब चमकता है जब सूर्य दिखाई देता है; इसी तरह यह तब मर जाता है जब यह नहीं दिखाई देता। इसका तेज चंद्रमा में जाता है; इसकी प्राणवायु वायु में जाती है। यह ब्रह्म वास्तव में तब चमकता है जब बिजली चमकती है; इसी तरह यह तब मर जाता है जब यह नहीं चमकती।

इसका तेज अंतरिक्ष के क्षेत्रों में जाता है; इसकी प्राणवायु वायु में जाती है। ये सभी देवता, वास्तव में, वायु में प्रवेश कर गए हैं,जब वे हवा में मर जाते हैं तो नष्ट नहीं होते। वास्तव में, वे वहीं से फिर से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार देवताओं के संदर्भ में। \

II-13. अब, आत्मा के संदर्भ में। यह ब्रह्म, वास्तव में, तब चमकता है जब कोई वाणी से बोलता है; इसी तरह यह तब मर जाता है जब कोई नहीं बोलता। इसकी चमक आंख में जाती है; इसकी प्राणवायु प्राणवायु में जाती है। यह ब्रह्म वास्तव में तब चमकता है जब कोई आंख से देखता है; इसी तरह यह तब मर जाता है जब कोई नहीं देखता। इसकी चमक कान में जाती है; इसकी प्राणवायु प्राणवायु में जाती है। यह ब्रह्म वास्तव में तब चमकता है जब कोई कान से सुनता है; इसी तरह यह तब मर जाता है जब कोई नहीं सुनता। इसकी चमक मन में जाती है; प्राणवायु प्राणवायु में जाती है।

यह ब्रह्म, वास्तव में, तब चमकता है जब कोई मन से सोचता है; इसी तरह यह तब मर जाता है जब कोई नहीं सोचता। इसकी चमक प्राणवायु में जाती है; इसकी प्राणवायु प्राणवायु में जाती है। ये सभी देवता प्राण में प्रविष्ट हो गए हैं, प्राण में प्रविष्ट होने पर भी वे नष्ट नहीं होते। वे फिर वहीं से उत्पन्न होते हैं। अतः यदि ऐसा जानने वाले पर दक्षिण और उत्तर दोनों पर्वत भी टूट पड़ें और उसे कुचलने का प्रयत्न करें, तो भी वे उसे नहीं कुचलेंगे। परन्तु जो उससे द्वेष करते हैं और जिनसे वह स्वयं द्वेष करता है, वे सब उसके चारों ओर मर जाते हैं।

II-14. अब आगे श्रेष्ठता की धारणा। ये सभी देवता, स्वयं की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में आपस में विवाद करते हुए इस शरीर से निकले। यह श्वास नहीं लेता हुआ, लकड़ी के टुकड़े के समान सूखा पड़ा था। फिर वाणी इसमें प्रविष्ट हुई। यह वाणी से बोलता हुआ पड़ा रहा। फिर आंख इसमें प्रविष्ट हुई; यह वाणी से बोलता हुआ पड़ा रहा, आंख से देखता हुआ पड़ा रहा।

फिर कान इसमें प्रविष्ट हुआ; यह वाणी से बोलता हुआ पड़ा रहा, आंख से देखता हुआ पड़ा रहा, आंख से देखता हुआ पड़ा रहा। फिर मन इसमें प्रविष्ट हुआ; वह केवल वाणी से बोलता, आँख से देखता, कान से सुनता, मन से सोचता रहता। फिर प्राण उसमें प्रविष्ट हुआ और फिर, वास्तव में, वह तुरन्त उत्पन्न हो गया। ये सभी देवता प्राण की श्रेष्ठता को पहचानकर, प्राण को ही बुद्धि का स्वरूप समझकर, एक साथ इस शरीर से निकल

गए। वे वायु में प्रविष्ट होकर, अंतरिक्ष का स्वभाव रखते हुए, स्वर्गलोक में चले गए।

इसी प्रकार जो यह जानता है, प्राण की श्रेष्ठता को पहचानकर, प्राण को ही बुद्धि का स्वरूप समझते हुए, इन सबके साथ शरीर से निकल जाता है। वायु में प्रविष्ट होकर, अंतरिक्ष का स्वभाव रखते हुए, वह स्वर्ग में जाता है। वह वहाँ जाता है जहाँ ये देवता हैं। वहाँ पहुँचकर, जो यह जानता है, वह देवताओं के समान अमर हो जाता है।

II-15. अब, आगे पिता-पुत्र समारोह या जैसा कि वे इसे कहते हैं, संचरण। एक पिता, जो विदा होने वाला है, अपने पुत्र को बुलाता है। घर में नई घास बिछाकर, आग जलाकर, उसके पास पानी का बर्तन और सुराही रखकर, स्वयं को नए वस्त्र से ढककर पिता लेटा रहता है। आकर पुत्र उसके ऊपर लेट जाता है और अंगों को अंगों से स्पर्श करता है। अथवा (पिता) आमने-सामने बैठकर उसे संदेश देता है। फिर वह उसे (इस प्रकार) संदेश देता है: पिता: मैं अपनी वाणी तुझमें रखता हूँ। पुत्र: मैं तुम्हारी वाणी अपने में रखता हूँ। पिता: मैं अपनी सांस तुझमें रखता हूँ।

पुत्र: मैं तुम्हारी सांस अपने में रखता हूँ। पिता: मैं अपनी आंख तुझमें रखता हूँ। पुत्र: मैं अपनी आंख तुझमें रखता हूँ। पिता: मैं अपना कान तुझमें रखता हूँ। पुत्र: मैं तुम्हारा कान अपने में रखता हूँ। पिता: मैं अपने भोजन का स्वाद तुझमें रखता हूँ। पुत्र: मैं तुम्हारे भोजन का स्वाद अपने में रखता हूँ। पिता: मैं अपने कर्म तुझमें रखता हूँ। पुत्र: मैं तुम्हारे कर्म अपने में रखता हूँ। पिता: मैं अपने सुख और दुख तुझमें रखता हूँ। पुत्र: मैं तुम्हारे सुख और दुख अपने में रखता हूँ। पिता: मैं अपना आनंद, प्रसन्नता, संतानोत्पत्ति तुममें रखता हूँ।

पुत्र: मैं तुम्हारा आनंद, प्रसन्नता और संतानोत्पत्ति अपने में लेता हूँ।पिता: मैं अपनी गति को तुममें रखूँगा।पुत्र: मैं तुम्हारी गति को अपने में लेता हूँ।

पिता: मैं अपना मन तुममें रखता हूँ।

पुत्र: मैं तुम्हारा मन अपने में लेता हूँ।

पिता: मैं अपनी बुद्धि को तुममें रखता हूँ।

पुत्र: मैं तुम्हारी बुद्धि को अपने में लेता हूँ।

यदि, फिर भी, वह अधिक बोलने में असमर्थ हो, तो पिता को संक्षेप में कहना चाहिए, 'मैं अपनी प्राणवायु को तुममें रखता हूँ' और पुत्र (उत्तर देता है) 'मैं अपनी प्राणवायु को तुममें रखता हूँ'।

फिर वह दाहिनी ओर मुड़कर पूर्व की ओर जाता है। पिता उसके पीछे पुकारता है: 'मेरी महिमा, पवित्र वासना और प्रसिद्धि तुममें प्रसन्न हैं'। फिर दूसरा अपने बाएं कंधे पर देखता है। अपने हाथ से (अपना चेहरा) छिपाते हुए या अपने वस्त्र के किनारे से (उसे) ढकते हुए, वह कहता है: 'तुम्हें स्वर्गलोक और सभी इच्छाएँ प्राप्त हों'। यदि पिता स्वस्थ हो जाए तो उसे अपने पुत्र के आधिपत्य में रहना चाहिए; या, उसे (भिक्षु बनकर) भटकना चाहिए। यदि वह मर जाए तो उन्हें दाह संस्कार उसी प्रकार करना चाहिए जैसा किया जाना चाहिए।

तृतीय-१ दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन युद्ध और पराक्रम के बल पर इंद्र के प्रिय धाम में पहुंचा। तब इंद्र ने उससे कहा: प्रतर्दन, कोई वरदान चुनो। तब प्रतर्दन ने कहा: क्या तुम स्वयं मेरे लिए वह वरदान चुन सकते हो जो तुम मनुष्य के लिए सबसे अधिक लाभकारी समझते हो? तब इंद्र ने उससे कहा: श्रेष्ठ व्यक्ति हीन व्यक्ति के लिए नहीं चुनता। तुम स्वयं चुनो। प्रतर्दन ने कहा, 'तो फिर मेरे लिए कोई वरदान नहीं है।' लेकिन इंद्र सत्य से विमुख नहीं हुए, क्योंकि इंद्र स्वयं सत्य हैं। तब इंद्र ने उससे कहा: 'केवल मुझे समझो। मैं वास्तव में यही मानता हूं कि मनुष्य को मुझे समझना चाहिए।

मैंने तीन सिर वाले त्वष्टीर को मार डाला; मैंने अरुणमुखों, तपस्वियों को भेड़ियों को सौंप दिया। अनेक संधियों का उल्लंघन करके मैंने आकाश में प्रह्लादवंशियों को, वायुमण्डल में पौलोमास को तथा पृथ्वी पर कालकांजों को मार डाला। उस समय मैं जैसा था, मेरा एक भी बाल भी बाँका नहीं हुआ। अतः वह मुझे इस प्रकार जानता है - उसके किसी भी कर्म से उसका संसार आहत नहीं होता, न चोरी से, न भ्रूण की हत्या से, न माता की हत्या से, न पिता की हत्या से। यदि उसने कोई पाप किया हो, तो उसके चेहरे से काला रंग नहीं जाता।

तृतीय-2. तब उसने (इंद्र ने) कहा: मैं प्राण की आत्मा हूँ, बुद्धिमान आत्मा हूँ। इस प्रकार, मुझे जीवन के रूप में, अमरता के रूप में पूजो। जीवन प्राण है: प्राण ही जीवन है। जब तक प्राण शरीर में है, तब तक जीवन है। क्योंकि प्राण से ही इस संसार में अमरता प्राप्त होती है; बुद्धि से सत्य गर्भाधान होता है। अतः जो मुझे जीवन के रूप में, अमरता के रूप में पूजता है, वह

इस संसार में जीवन की पूर्ण अवधि को प्राप्त करता है; वह स्वर्गलोक में अमरता और अविनाशीता प्राप्त करता है।

अब, इस बिंदु पर कुछ लोग कहते हैं: प्राण, वास्तव में, एकता में जाते हैं: (अन्यथा) कोई एक साथ भाषण द्वारा नाम, आंख द्वारा रूप, कान द्वारा ध्वनि, मन द्वारा विचार नहीं बता सकता। प्राण, एकता के रूप में, वास्तव में, यहां सभी चीजों को एक-एक करके जानने का कारण बनते हैं। सभी प्राण जब बोलते हैं तो वाणी के साथ बोलते हैं। सभी प्राण जब आंख देखते हैं तो उसके साथ देखते हैं। सभी प्राण जब कान सुनते हैं तो उसके साथ सुनते हैं। सभी प्राण जब मन सोचते हैं तो उसके साथ सोचते हैं। सभी प्राण जब सांस लेते हैं तो सांस के साथ सांस लेते हैं। 'यह वास्तव में ऐसा है', इंद्र ने कहा। हालांकि प्राणों में एक श्रेष्ठ उत्कृष्टता है।

III-3। एक व्यक्ति वाणी के बिना जीता है, क्योंकि हम गूंगे को देखते हैं। एक व्यक्ति आंख के बिना जीता है, क्योंकि हम अंधे को देखते हैं। एक व्यक्ति कान के बिना जीता है, क्योंकि हम बहरे को देखते हैं। मनुष्य मन के बिना जीता है, क्योंकि हम बचपना देखते हैं। मनुष्य हाथ काटकर जीता है; मनुष्य पैर काटकर जीता है; क्योंकि हम ऐसा देखते हैं।

लेकिन अब प्राणवायु, बुद्धि का स्वरूप ही इस शरीर को पकड़ता है और ऊपर उठाता है। इसलिए, मनुष्य को इसे उक्ता के रूप में पूजना चाहिए। प्राणवायु में यही सर्व-प्राप्ति है। प्राणवायु वास्तव में बुद्धि है; बुद्धि वास्तव में प्राणवायु है। यही इसका दृष्टिकोण है, यही इसका बोध है। जब कोई व्यक्ति इतना सो जाता है कि उसे कोई स्वप्न नहीं दिखता, तब वह उस प्राणवायु के साथ एक हो जाता है।

फिर सब नामों सहित वाणी उसी के पास जाती है, सब रूपों सहित आंख उसी के पास जाती है, सब ध्वनियों सहित कान उसी के पास जाता है, सब विचारों सहित मन उसी के पास जाता है। जब वह जागता है, तो जैसे प्रज्वलित अग्नि से चिंगारियां सब ओर उड़ती हैं, वैसे ही इस आत्मा से प्राण अपने-अपने स्थान को जाते हैं; प्राण से देवता (इंद्रियां) और देवताओं से लोक। यही प्राण, बुद्धिरूपी आत्मा, शरीर को पकड़कर ऊपर उठाती है। इसलिए इसे उक्ता के रूप में पूजना चाहिए। प्राण में यही सर्वप्राप्ति है। प्राण ही बुद्धिरूपी आत्मा है; बुद्धि ही प्राण है। यही इसका प्रमाण है, यही इसका बोध है।

जब दुर्बल मनुष्य मरने के निकट होता है, इतनी दुर्बलता आ जाती है कि वह मूर्च्छा में पड़ जाता है, तो उसके विषय में कहा जाता है, 'उसके विचार चले गए हैं; वह सुन नहीं सकता; वह वाणी से बोल नहीं सकता; वह सोचता नहीं है। इस प्रकार वह केवल प्राणवायु के साथ एक हो जाता है। तब वाणी सभी नामों सहित उसमें चली जाती है; आंख सभी रूपों सहित उसमें चली जाती है; कान सभी ध्वनियों सहित उसमें चला जाता है; मन सभी विचारों सहित उसमें चला जाता है। जब वह अपने शरीर से विदा होता है, तो वह इन सबके साथ विदा होता है।

जब वह जागता है, तो जैसे धधकती हुई अग्नि से सभी दिशाओं में चिंगारियां उड़ती हैं, वैसे ही इस आत्मा से प्राणवायु अपने-अपने स्थानों को जाती है; प्राणवायु से देवता; देवताओं से लोक।

III-4. जब वह शरीर से विदा होता है, तो वाणी उसमें सभी नाम डाल देती है; वाणी से वह सभी नाम प्राप्त करता है। प्राणवायु उसमें सभी गंध डाल देती है; श्वास से वह सभी गंध प्राप्त करता है। आंख उसमें सभी रूप डाल देती है; आंख से वह सभी रूप प्राप्त करता है। कान उसमें सभी ध्वनियां डाल देता है; कान से वह सभी ध्वनियां प्राप्त करता है। मन उसमें सभी विचार डाल देता है। मन से वह सभी विचार प्राप्त करता है। प्राण में यही सब प्राप्त होता है। प्राण ही बुद्धि है। बुद्धि ही प्राण है; क्योंकि ये दोनों मिलकर इस शरीर में रहते हैं; दोनों मिलकर विदा होते हैं।

अब हम बताएंगे कि कैसे सभी प्राणी इस बुद्धि के साथ एक हो जाते हैं। वाणी इसका एक भाग है। नाम इसका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व है। श्वास इसका एक भाग है। गंध इसका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व है। आंख इसका एक भाग है। रूप इसका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व है। कान इसका एक भाग है। ध्वनि इसका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व है। जीभ इसका एक भाग है।

भोजन का स्वाद इसका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व है। दोनों हाथ इसका एक भाग है। काम उनका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व है। शरीर इसका एक भाग है। सुख और दुःख इसका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व है। जननेन्द्रिय इसका एक भाग है। आनन्द, प्रसन्नता और प्रजनन इसके बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व हैं। दोनों पैर इसका एक भाग हैं। क्रियाएँ इनका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व हैं। मन इसका एक भाग है। विचार और इच्छाएँ इसका बाह्य रूप से सहसम्बन्धित वस्तु तत्त्व हैं।

III-6. बुद्धि द्वारा आरूढ़ वाणी से सभी नाम प्राप्त होते हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ प्राण से सभी गंध प्राप्त होते हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ नेत्र से सभी रूप प्राप्त होते हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ कान से सभी ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ जिह्वा से सभी स्वाद प्राप्त होते हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ हाथों से सभी कार्य प्राप्त होते हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ शरीर से सुख और दुःख प्राप्त होते हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ जननेन्द्रिय से आनन्द, प्रसन्नता और प्रजनन प्राप्त होते हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ पैरों से सभी क्रियाएँ प्राप्त होती हैं। बुद्धि द्वारा आरूढ़ मन के द्वारा मनुष्य सभी विचारों को प्राप्त करता है, जो विचार और इच्छा द्वारा समझे जाने योग्य हैं।

III-7. क्योंकि वस्तुतः बुद्धि के बिना वाणी किसी भी नाम को ज्ञात नहीं कर सकती। 'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने उस नाम को नहीं पहचाना'। क्योंकि वस्तुतः बुद्धि के बिना श्वास किसी भी गंध को ज्ञात नहीं कर सकती। 'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने उस गंध को नहीं पहचाना'।क्योंकि बुद्धि के बिना आँख किसी भी ज्ञात रूप को नहीं बना सकती।'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने उस रूप को नहीं पहचाना'।

क्योंकि बुद्धि के बिना कान किसी भी ज्ञात ध्वनि को नहीं बना सकता।

'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने ध्वनि को नहीं पहचाना'।

क्योंकि बुद्धि के बिना जीभ किसी भी ज्ञात भोजन का स्वाद नहीं बना सकती।

'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने भोजन के उस स्वाद को नहीं पहचाना'।

क्योंकि बुद्धि के बिना दोनों हाथ किसी भी ज्ञात क्रिया को नहीं बना सकते।

'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने उस क्रिया को नहीं पहचाना'।

क्योंकि बुद्धि के बिना शरीर किसी भी सुख या दुख को नहीं जान सकता।

'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने उस सुख और दुख को नहीं पहचाना'।

क्योंकि बुद्धि के बिना जननेंद्रिय किसी भी ज्ञात आनंद, प्रसन्नता और प्रजनन को नहीं जान सकती। 'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने उस आनंद, प्रसन्नता और प्रजनन को नहीं पहचाना'।क्योंकि बुद्धि के बिना दोनों पैर किसी भी प्रकार की गतिविधि को नहीं जान सकते। 'मेरा मन कहीं और था' कोई कहता है, 'मैंने उस गतिविधि को नहीं पहचाना'।क्योंकि बुद्धि के बिना कोई भी विचार, चाहे जो भी हो, कुछ भी ज्ञात नहीं हो सकता।

III-8. ब्रह्म और आत्मा की एकता का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना होगा।वाणी वह नहीं है जिसे जानने की कोशिश करनी चाहिए; बोलने वाले को जानना चाहिए।गंध वह नहीं है जिसे जानने की कोशिश करनी चाहिए; सूंघने वाले को जानना चाहिए।
रूप वह नहीं है जिसे जानने की कोशिश करनी चाहिए; देखने वाले को जानना चाहिए।ध्वनि वह नहीं है जिसे जानने की कोशिश करनी चाहिए; सुनने वाले को जानना चाहिए।भोजन का स्वाद वह नहीं है जिसे जानने की कोशिश करनी चाहिए; भोजन के स्वाद के ज्ञाता को जानना चाहिए।कर्म वह नहीं है जिसे जानने की कोशिश करनी चाहिए; करने वाले को जानना चाहिए।

सुख और दुःख को जानने का प्रयास नहीं करना चाहिए; सुख और दुःख को जानने वाले को जानना चाहिए। आनन्द, प्रसन्नता और प्रजनन को जानने का प्रयास नहीं करना चाहिए; आनन्द, प्रसन्नता और प्रजनन को जानने वाले को जानना चाहिए। जाना वह नहीं है जिसे जानने का प्रयास करना चाहिए; जाने वाले को जानना चाहिए। मन वह नहीं है जिसे जानने का प्रयास करना चाहिए; विचारक को जानना चाहिए। ये दस आवश्यक तत्व वस्तुतः बुद्धि के संदर्भ में हैं। ये दस बुद्धिमान तत्व अस्तित्व के संदर्भ में हैं।

वस्तुतः यदि अस्तित्व के तत्व न होते, तो बुद्धि के तत्व भी न होते। वस्तुतः यदि बुद्धि के तत्व न होते, तो अस्तित्व के तत्व भी न होते। वस्तुतः दोनों में से किसी एक से भी कोई रूप संभव न होता। और यह (बुद्धि का स्व) भिन्न नहीं है। परन्तु जैसे रथ की तीलियाँ आरों पर स्थिर रहती हैं और आरे हब पर स्थिर रहते हैं, वैसे ही अस्तित्व के ये तत्व बुद्धि

के तत्वों पर स्थिर रहते हैं; बुद्धि के तत्त्व प्राण में स्थित हैं। यह प्राण ही बुद्धि की आत्मा है, यह आनन्दमय, अजर, अमर है।

यह न तो अच्छे कर्म से बड़ा होता है, न बुरे कर्म से छोटा। यह जिसे इस संसार से ऊपर ले जाना चाहता है, उसे अच्छे कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। यह जिसे नीचे ले जाना चाहता है, उसे बुरे कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। यह संसार का रक्षक है, यह संसार का स्वामी है, यह सबका स्वामी है। 'वह मैं हूँ' - यह जानना चाहिए। 'वह मेरा आत्मा है' - यह जानना चाहिए।

IV-1. अब वास्तव में गार्ग्य बालकी थे, जो एक प्रसिद्ध वैदिक विद्वान थे। वे उशीनर, सतवंश और मत्स्य, कुरुओं और पांचालों, काशी और विदेहों में रहते थे। काशी के अजातशत्रु के पास आकर उन्होंने कहा, 'मैं आपको ब्रह्म का वर्णन करता हूँ।' तब अजातशत्रु ने उससे कहा: ‘हम तुम्हें एक हजार (गाय) देते हैं।’ ऐसे शब्द सुनते ही लोग एक साथ दौड़ पड़ते और चिल्लाने लगते ‘ए जनक ! ए जनक !

चतुर्थ-2. सूर्य में महान, चन्द्रमा में अन्न, बिजली में सत्य, गड़गड़ाहट में ध्वनि, वायु में इन्द्र वैकुण्ठ, अन्तरिक्ष में पूर्ण, अग्नि में विजेता, जल में तेज - इस प्रकार देवताओं के सम्बन्ध में। अब, आत्मा के सम्बन्ध में; दर्पण में प्रतिबिम्ब; छाया में द्विगुण, प्रतिध्वनि में जीवन, ध्वनि में मृत्यु, निद्रा में यम (मृत्यु के देवता), शरीर में प्रजापति, दाहिनी आँख में वाणी, बायीं आँख में सत्य।

चतुर्थ-3. तब बलाकि ने कहा: जो सूर्य में यह पुरुष है, मैं उसी का ध्यान करता हूँ। अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उससे वार्तालाप न करने दो! महान, श्वेतवस्त्रधारी, सर्वोच्च, सभी प्राणियों के मुखिया के रूप में - इस प्रकार मैं उसका ध्यान करता हूँ। जो इस प्रकार उसका ध्यान करता है, वह वास्तव में सर्वोच्च, सभी प्राणियों का मुखिया बन जाता है।

चतुर्थ-4. तब बालाकी ने कहा: 'जो चंद्रमा में स्थित व्यक्ति है, मैं उसी का ध्यान करता हूं।' तब अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उससे बातचीत न करने दो! मैं सोम को भोजन के रूप में मांगते हुए उसका ध्यान करता हूं। जो उसका इस प्रकार ध्यान करता है, वह वास्तव में भोजन का आत्मा बन जाता है।

IV-5. तब बालाकी ने कहा: 'मैं उस व्यक्ति का ध्यान करता हूं, जो बिजली में स्थित व्यक्ति है'। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उससे बातचीत न करने दो! मैं उसका ध्यान सत्य के आत्मा के रूप में करता हूं। जो उसका इस प्रकार ध्यान करता है, वह वास्तव में सत्य (तेज) का आत्मा बन जाता है।

IV-6. तब बालाकी ने कहा: मैं वज्र में स्थित व्यक्ति का ध्यान करता हूं। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उससे बातचीत न करने दो! मैं उसका ध्यान ध्वनि के आत्मा के रूप में करता हूं। जो उसका इस प्रकार ध्यान करता है, वह वास्तव में ध्वनि का आत्मा बन जाता है।

IV-7. तब बालाकी ने कहा: मैं वायु में स्थित व्यक्ति का ध्यान करता हूँ। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उससे बातचीत न करने दीजिए! मैं उसका ध्यान इंद्र वैकुंठ या अजेय सेना के रूप में करता हूँ। जो उसका इस प्रकार ध्यान करता है, वह वास्तव में विजयी, अजेय, विरोधियों को जीतने वाला बन जाता है।

IV-8। तब बालाकी ने कहा: मैं अंतरिक्ष में स्थित व्यक्ति का ध्यान करता हूँ। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उससे बातचीत न करने दीजिए! मैं उसका ध्यान पूर्ण चंद्र-सक्रिय ब्रह्म के रूप में करता हूँ। जो उसका इस प्रकार ध्यान करता है, वह संतान, पशुधन, यश, पवित्रता की चमक और स्वर्गलोक से परिपूर्ण हो जाता है, वह जीवन की पूर्ण अवधि को प्राप्त करता है।

IV-9। तब बालाकी ने कहा: मैं अग्नि में स्थित व्यक्ति का ध्यान करता हूँ। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उससे बातचीत न करने दीजिए! मैं उसका ध्यान विजेता के रूप में करता हूँ। जो इस प्रकार उसका ध्यान करता है, वह सचमुच दूसरों को जीतने वाला बन जाता है।

IV-10. तब बालाकी ने कहा: मैं जल में स्थित व्यक्ति का ध्यान करता हूँ। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उस पर बातचीत न करने दो! मैं नाम के तेज की आत्मा के रूप में उसका ध्यान करता हूँ। इस प्रकार देवताओं के संदर्भ में...

IV-11. अब, स्वयं के संदर्भ में।तब बालाकी ने कहा: मैं वास्तव में दर्पण में स्थित व्यक्ति का ध्यान करता हूँ। उससे अजातशत्रु ने कहा: मुझे उस पर

बातचीत न करने दो! मैं उसका (प्रतिबिंबित) समानता के रूप में ध्यान करता हूँ। फिर, जो उसका इस प्रकार ध्यान करता है, उसकी संतान में उसकी समानता पैदा होती है, कोई असमानता नहीं।

IV-12. तब बालाकी ने कहा: मैं वास्तव में छाया में स्थित व्यक्ति का ध्यान करता हूँ। उससे अजातशत्रु ने कहा: मुझे उस पर बातचीत न करने दो! मैं उसका अविभाज्य दोहरे के रूप में ध्यान करता हूँ। फिर, जो इस प्रकार उसका ध्यान करता है, वह अपने दूसरे से प्राप्त करता है और अपने दोहरे स्वरूप को प्राप्त करता है।

IV-13. तब बालाकी ने कहा: मैं वास्तव में प्रतिध्वनि में व्यक्ति का ध्यान करता हूं'। उससे अजातशत्रु ने कहा: मुझे उस पर बातचीत न करने दें! मैं उसका ध्यान जीवन के रूप में करता हूं। फिर, जो उसका ध्यान इस प्रकार करता है, वह अपने समय से पहले बेहोश नहीं होता है।

IV-14. तब बालाकी ने कहा: मैं वास्तव में ध्वनि में व्यक्ति का ध्यान करता हूं'। उससे अजातशत्रु ने कहा: मुझे उस पर बातचीत न करने दें! मैं उसका ध्यान मृत्यु के रूप में करता हूं। फिर, जो उसका ध्यान इस प्रकार करता है, वह अपने समय से पहले नहीं मरता है।

IV-15. तब बालाकी ने कहा: मैं वास्तव में उस व्यक्ति का ध्यान करता हूं, जो सोते समय स्वप्न में घूमता है'। उससे अजातशत्रु ने कहा: मुझे उस पर बातचीत न करने दें! मैं उसका ध्यान राजा यम के रूप में करता हूं! जो इस प्रकार उनका ध्यान करता है, उसकी सर्वोच्चता के कारण यहाँ सब कुछ वश में हो जाता है।

तब बलकी ने कहा: मैं उस व्यक्ति का ध्यान करता हूँ जो इस शरीर में है। अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उस पर बातचीत करने से रोको! मैं उसका ध्यान प्रजापति के रूप में करता हूँ। जो इस प्रकार उसका ध्यान करता है, वह प्रजापति के रूप में उसका ध्यान करता है।संतान, पशुधन, यश, पवित्रता की चमक, स्वर्गीय दुनिया से संवर्धित होकर वह पूर्ण जीवन प्राप्त करता है।

IV-17. तब बालाकी ने कहा: मैं दाहिनी आंख वाले व्यक्ति का ध्यान करता हूं। अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उस पर बातचीत न करने दें! मैं उसे वाणी की आत्मा, अग्नि की आत्मा, प्रकाश की आत्मा के रूप में ध्यान करता हूं। फिर जो उसका ध्यान करता है, वह इन सभी की आत्मा बन जाता है।

IV-18. तब बालाकी ने कहा: मैं बाईं आंख वाले व्यक्ति का ध्यान करता हूं। अजातशत्रु ने उससे कहा: मुझे उस पर बातचीत न करने दें! मैं उसे सत्य की आत्मा, बिजली की आत्मा, चमक की आत्मा के रूप में ध्यान करता हूं। फिर जो उसका ध्यान करता है, वह इन सभी की आत्मा बन जाता है।

IV-19. इसके बाद बालाकी चुप हो गया। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: इतना ही बालाकी? 'इतना ही बालाकी' ने उत्तर दिया। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: वास्तव में, तुमने यह कहकर व्यर्थ ही बातचीत की कि 'मैं तुम्हें ब्रह्म का ज्ञान कराता हूँ'। वास्तव में, वह बलाकी, जो इन व्यक्तियों का निर्माता है, जिसका यह कार्य है, केवल उसे ही जानना चाहिए।

तब बलाकी, हाथ में ईंधन लेकर, यह कहते हुए आया कि 'मुझे अपना शिष्य बनाओ'। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: 'मैं इसे स्वभाव के विरुद्ध आचरण मानता हूँ कि एक क्षत्रिय ब्राह्मण को अपना शिष्य बनाए। (लेकिन आओ)। मैं तुम्हें समझा दूँगा'। फिर वह उसका हाथ पकड़कर आगे चला गया। फिर वे दोनों एक सोए हुए व्यक्ति के पास पहुँचे। अजातशत्रु ने उसे पुकारा (कहते हुए) 'हे महान, श्वेतवस्त्रधारी राजा, सोम!' लेकिन वह चुपचाप लेटा रहा। फिर उसने उसे एक छड़ी से धक्का दिया।

वह तुरंत उठ खड़ा हुआ। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: हे बलाकी, यह व्यक्ति कहाँ पड़ा है? यहाँ उसका क्या हुआ? वह कहाँ से लौटा है? तब बालकी को कुछ समझ में नहीं आया। तब अजातशत्रु ने उससे कहा: हे बालकी, इस स्थिति में यह व्यक्ति कहाँ पड़ा है, इसे यहाँ क्या हुआ है, जहाँ से यह मेरे प्रश्न के अनुसार लौटा है, यह हित (उपकारी) नामक व्यक्ति (हृदय) की धमनियाँ हैं। हृदय से वे पेरीकार्डियम तक फैलती हैं। अब वे एक हजार गुना विभाजित बाल के समान सूक्ष्म हैं। वे एक सूक्ष्म सार से मिलकर बने हैं, लाल-भूरा, सफेद, काला, पीला और लाल। इनमें व्यक्ति सोते समय रहता है; वह कोई स्वप्न नहीं देखता।

IV-20। तब वह इस प्राणमय श्वास में एक हो जाता है। तब वाणी सभी नामों के साथ उसमें चली जाती है; आँख सभी रूपों के साथ उसमें चली जाती है; कान सभी ध्वनियों के साथ उसमें चली जाती है; मन सभी विचारों के साथ उसमें चली जाती है। जब वह जागता है, तो जैसे प्रज्वलित अग्नि से चिंगारियाँ सब ओर फैलती हैं, वैसे ही इस आत्मा से प्राण अपने-अपने स्थान को जाते हैं; प्राण से देवता (इन्द्रियाँ) और इन्द्रियों से लोक आते हैं। यह प्राणमयी बुद्धिरूपी आत्मा इस देहरूपी आत्मा में केश और नख तक

प्रविष्ट है। जैसे उस्तरा छुरे की डिब्बी में या अग्नि को अग्नि में छिपाया जा सकता है, वैसे ही यह बुद्धिरूपी आत्मा इस देहरूपी आत्मा में केश और नख तक प्रविष्ट है।

उस आत्मा पर ये अन्य आत्माएँ उसी प्रकार निर्भर हैं, जैसे किसी सरदार पर उसके अपने (लोग) निर्भर होते हैं या जैसे किसी सरदार के अपने (लोग) सेवा करते हैं, उसी प्रकार ये अन्य आत्माएँ उस (बुद्धिमान आत्मा) की सेवा करती हैं। जब तक इन्द्र ने इस आत्मा को नहीं समझा, तब तक असुरों ने उस पर विजय प्राप्त की। जब उन्होंने यह समझ लिया, तो असुरों को मारकर और जीतकर उन्होंने सभी देवताओं और सभी प्राणियों में श्रेष्ठता, प्रभुता और आधिपत्य प्राप्त किया। इसी प्रकार जो यह जानता है, वह सभी बुराइयों को नष्ट करके सभी प्राणियों में श्रेष्ठता, प्रभुता और आधिपत्य प्राप्त करता है - जो यह जानता है, हाँ, जो यह जानता है।

ॐ! मेरी वाणी मन पर आधारित हो; मेरा मन वाणी पर आधारित हो। हे आत्म-तेजस्वी, मुझे अपना दर्शन दीजिए। आप दोनों (वाणी और मन) मेरे लिए वेद के वाहक बनें। मैंने जो कुछ सुना है, वह मुझसे दूर न हो। मैं इस अध्ययन के द्वारा दिन और रात को एक साथ जोड़ दूंगा (अर्थात् मिट जाएगा)। मैं मौखिक रूप से जो सत्य है, उसे बोलूंगा; मैं मानसिक रूप से जो सत्य है, उसे बोलूंगा।वह (ब्रह्म) मेरी रक्षा करें;वह वक्ता (अर्थात शिक्षक) की रक्षा करें, वह मेरी रक्षा करें;वह वक्ता की रक्षा करें - वह वक्ता की रक्षा करें।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ ऋग्वेद में निहित कौशीतकी-ब्राह्मण उपनिषद समाप्त होता है

026 - बृहद जाबाल उपनिषद

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रभु इन्द्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ॐ ! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

सबसे पहले ब्राह्मण बसुंडा ने कालाग्नि रुद्र (रुद्र की तरह अग्नि और मृत्यु) के पास जाकर उनसे पूछा, "कृपया मुझे विभूति (पवित्र राख - विभूति आमतौर पर शुभ समय पर गाय के गोबर को जलाकर तैयार की जाती है। पझानी मंदिर की विभूति कैक्टस के पौधों को जलाकर तैयार की जाती है) की महानता के बारे में बताएं। कालाग्नि रुद्र ने उत्तर दिया, "इसमें बताने लायक क्या है?"।

तब बसुंडा ने पूछा, "कृपया मुझे विभूति और रुद्राक्ष पहनने का महत्व बताएं।" कालाग्नि रुद्र ने उत्तर दिया, "यह पहले से ही ऋषि पैप्पलाद द्वारा फल श्रुति (परिणामी प्रभाव) के साथ संबंधित है। उन्होंने जो कहा है, उससे अधिक बताने के लिए कुछ भी नहीं है"। तब बसुंडा ने पूछा, "मुझे महान जाबाला (बृहत जाबाला) में बताए गए मोक्ष के मार्ग के बारे में बताएं।" कालाग्नि रुद्र सहमत हुए और उपदेश देने लगे।

1 भगवान शिव के साध्योजाथा चेहरे (उनके पांच चेहरे हैं) से पृथ्वी का जन्म हुआ। उससे निवृति उत्पन्न हुई। उससे नंदा नामक स्वर्ण रंग की दिव्य गाय उत्पन्न हुई। नंदा के गोबर से विभूति उत्पन्न हुई।

2 वामन देव के मुख से जल उत्पन्न हुआ। उससे प्रतिष्ठा नामक शक्ति उत्पन्न हुई। उससे भद्रा नामक काली गाय उत्पन्न हुई। उसके गोबर से भसिता (विभूति का दूसरा नाम) उत्पन्न हुई।

3 अघोर के मुख से अग्नि उत्पन्न हुई। उससे ज्ञान की शक्ति उत्पन्न हुई। उससे सुरभि नामक लाल गाय उत्पन्न हुई। उसके गोबर से भस्म (शाब्दिक अर्थ राख लेकिन विभूति का दूसरा नाम) उत्पन्न हुई।

4 ततपुरुष के मुख से वायु उत्पन्न हुई। उससे शांति की शक्ति उत्पन्न हुई। उससे सुशीला नामक श्वेत गाय उत्पन्न हुई। उसके गोबर से क्षार (राख का दूसरा नाम) उत्पन्न हुआ।

5 ईशान के मुख से आकाश उत्पन्न हुआ। उससे संध्यातीथ (जो भोर और शाम से परे है) की शक्ति उत्पन्न हुई। उससे सुमना नामक बहुरंगी गाय उत्पन्न हुई। इसके गोबर से रक्षा (शाब्दिक अर्थ ढाल) उत्पन्न हुई।

6 विभूति, भसिथम, भस्मम, क्षरम और रक्षा पवित्र राख के पांच अलग-अलग नाम हैं। ये सभी कारण नाम हैं। विभूति - क्योंकि यह बहुत सारी संपत्ति को जन्म देती है, भस्मम - क्योंकि यह सभी पापों को खा जाती है, भसिथा - क्योंकि यह पदार्थों को चमकदार बनाती है (पोटाश सभी धातुओं की सफाई करने वाला एजेंट है),क्षर - क्योंकि यह खतरों से बचाता है और रक्षा - क्योंकि यह भूत, शैतान, पिशाच, ब्रह्म राक्षस, मिर्गी और जन्मजात बीमारियों के डर के मामले में एक ढाल की तरह काम करता है।

7 दूसरा ब्राह्मण तब बसुंडा कालाग्नि रुद्र के पास गए और उनसे भस्म (राख) स्नान (स्नान) की प्रक्रिया के बारे में पूछा "जिस प्रकार 'अग्नि' वस्तु के स्वरूप के अनुसार अनेक रूप धारण करती है, उसी प्रकार 'राख' जो सभी वस्तुओं के लिए आत्मा के समान है, वह भी प्राणी के स्वरूप के अनुसार तथा उससे परे भी रूप धारण करती है। अग्नि को अग्नि और चन्द्रमा का जगत बताया गया है। अग्नि बहुत गर्म और भयंकर है। यह क्रूर है। चन्द्रमा की शक्ति अमृत के समान है। यद्यपि इसका आधार अमृत है, तथापि यह ज्ञान का गर्म पहलू भी है। बड़ी और छोटी वस्तुओं में यह एकमात्र ऐसी वस्तु है जो स्वाद और प्रकाश में अमृत के समान है और बहुत गर्म भी है", उन्होंने बताया।

1 "शक्ति का चमकीला पहलू दो प्रकार का है - सूर्य पहलू और अग्नि पहलू। इसी प्रकार अमृत जैसी शक्ति भी प्रकाश और ऊष्मा से भरपूर है", उन्होंने बताया।

2 प्रकाश बिजली जैसे पहलुओं में रहता है। अर्क के स्वाद में मिठास व्याप्त है। और औसत दुनिया प्रकाश और स्वाद के भीतर काम करती है।

3 अमृत अग्नि का एक हिस्सा है। अमृत के कारण अग्नि बढ़ती है। इसीलिए अग्नि और चन्द्रमा का स्वरूप वाला यह संसार हविष्य से बनी अग्नि के समान है।

4 चन्द्रमा की शक्ति ऊपर है। अग्नि की शक्ति नीचे है। इन दोनों के सम्मिलित होने से ही यह संसार निरन्तर चल रहा है।

5 [मंत्र 6-8 उपलब्ध नहीं हैं।] जो शक्ति (शक्ति, प्रबल प्रभाव, स्त्री तत्व) ऊपर उठती है, वही शिव है। जो शिव ऊपर उठता है, वही शक्ति है। इस संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो शिव और शक्ति से प्रभावित न हो।

9 अग्नि द्वारा अनेक बार जलाया गया संसार भस्म से व्याप्त हो जाता है। यह अग्नि की शक्ति है। उस शक्ति में भस्म अभिन्न अंग बन जाती है।
10 इस प्रकार जो भस्म की शक्ति को समझकर अग्निरीति आदि मंत्रों द्वारा भस्म स्नान करता है, वह अपने सभी पापों को जलाकर मोक्ष प्राप्त करता है।

11 [मंत्र 12 और 13 उपलब्ध नहीं हैं।] मृत्यु पर विजय पाने के लिए अमृत स्नान का उपदेश दिया गया है। शिव और शक्ति के अमृत से स्पर्श हो जाने वाले के लिए मृत्यु का प्रश्न ही कहां है?

14 जो इस पवित्र गुप्त विधि को जानता है, वह चंद्रमा और अग्नि को शुद्ध कर देता है और फिर कभी जन्म नहीं लेता।

15 जिसका शरीर शिव की अग्नि से जल जाता है और चंद्रमा के अमृत से भीग जाता है और योग मार्ग में प्रवेश करता है, वह अमरत्व को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।

16 तीसरा ब्राह्मण अब भस्म बनाने की चार विधि बताई जा रही है। पहली अनुकल्प, दूसरी उपकल्प, तीसरी उपकल्प और चौथी अकल्प। अग्निहोत्र

(अग्निकुंड से राख एकत्रित करना) में विराज होम मंत्रों के प्रयोग से अनुकल्प बनाया जाता है। जंगल में पड़े सूखे गोबर को एकत्रित करके कल्प में बताई विधि के अनुसार उसे तैयार करना उपकल्प है।

सूखे गोबर को एकत्रित करके, उसका चूर्ण बनाकर, गोमूत्र में मिलाकर गोलियाँ बनाकर कल्प में बताई विधि के अनुसार तैयार करना उपकल्प है। शिव के मंदिरों में जो मिलता है वह अकल्प है। यह एक सौ कल्प के बराबर है। इन चारों विधियों में से किसी भी विधि से तैयार की गई सभी भस्म मोक्ष की ओर ले जाती है, ऐसा भगवान कालाग्नि रुद्र ने कहा है।

चौथा ब्राह्मण बाद में बसुंडा ने भगवान कालाग्नि रुद्र से तीन पंक्तियों में विभूति पहनने के बारे में पूछा।उन्होंने जो कहा वह यह था:माथे पर, आपको मंत्र के साथ लगाना होगा, "ब्रह्मणे नमः! (ब्रह्मा को नमस्कार)"।छाती पर, आपको मंत्र के साथ लगाना होगा, "हव्यवाहनाय नमः! (घोड़े पर सवार को नमस्कार)"।पेट पर, आपको मंत्र के साथ लगाना होगा, "स्कंदाय नमः! (सुब्रह्मण्य को नमस्कार)"।गर्दन पर, आपको मंत्र के साथ लगाना होगा, "विष्णवे नमज! (भगवान विष्णु को नमस्कार)"।बीच में, आपको मंत्र के साथ लगाना होगा, "प्रपंचनाय नमः! (उसको नमस्कार जो पूरे संसार में व्याप्त है)"।

कलाइयों पर, आपको मंत्र के साथ लगाना होगा, "वसुभ्यो नमः! (जो अमृत के समान है उसे नमस्कार है)"पीठ पर आपको मंत्र के साथ लगाना है, "हरये नमः! (भगवान हरि को नमस्कार)"।ऊपर आपको मंत्र के साथ लगाना है, "शम्भवे नमः! (भगवान शिव को नमस्कार)"।सिर पर आपको मंत्र के साथ लगाना है, "परमात्माने नमः! (सभी प्राणियों में मौजूद महान आत्मा को नमस्कार)"।

इनमें से प्रत्येक स्थान पर आपको तीन पंक्तियों के सेट में लगाना है। जब हम माथे पर विभूति धारण करते हैं, तो उस महान भगवान का ध्यान करें, जिनके तीन नेत्र हैं, जो तीन गुणों का आधार हैं और जो हर चीज़ को "नमः शिवाय!" के रूप में सेट में दृश्यमान बनाते हैं। अग्रबाहु के नीचे "पितृभ्यो नमः!" का जाप करते हुए विभूति लगाएँ। उसके ऊपर "ईशानभ्यो नमः!" का जाप करते हुए लगाएँ और बगलों पर "ईशाभ्य नमः!" का जाप करते हुए लगाएँ और अग्रबाहुओं पर "स्वच्छाभ्यं नमः!" का जाप करते हुए लगाएँ। और पीठ पर भीमाय नमः का जाप करें।

पेट के दोनों किनारों पर शिवाय नमः का जाप करते हुए विभूति लगाएं और सिर पर नीला कांताय सर्वथ्मने नमः का जाप करें। इससे पिछले जन्मों में किए गए पापों का प्रभाव दूर हो जाएगा। पांचवां ब्राह्मण जो लोग विभूति की तीन पंक्तियों का अपमान करते हैं, वे स्वयं भगवान शिव का अपमान करते हैं। जो लोग इसे भक्ति के साथ पहनते हैं, वे स्वयं भगवान शिव को धारण करते हैं। जिस प्रकार भगवान शिव के मंदिर के बिना एक गाँव रेगिस्तान की तरह है, जिस प्रकार जो लोग अपने माथे पर विभूति नहीं पहनते हैं, उनका माथा सूना होता है।

भगवान शिव की पूजा के बिना जीवन एक सूना जीवन है। जिस शिक्षा में भगवान शिव शामिल नहीं हैं, वह एक बेकार शिक्षा है। रुद्र की अग्नि की सबसे बड़ी शक्ति पवित्र भस्म है। इसलिए जो कोई भी पवित्र भस्म हमेशा धारण करता है वह हमेशा शक्तिशाली होता है। अग्नि से उत्पन्न पवित्र भस्म सभी भस्म निष्ठाओं के पापों को जला देती है। भस्मनिष्ठ वह होता है जो पवित्र भस्म धारण करता है और स्वच्छ आचरण रखता है। छठा ब्राह्मण महर्षि गौतम के विवाह के समय, सभी देवता अहिल्या को देखकर अपने मन में कामातुर हो गए। इस कारण, वे अपना ज्ञान खो बैठे और ऋषि दुर्वासा के पास गए और उनसे इस बारे में पूछा।

उन्होंने उन्हें वचन दिया कि वे इस कारण से उनके द्वारा किए गए पाप से उन्हें मुक्ति दिलाएंगे और उनसे कहा, "एक बार रुद्र मंत्र का सौ बार जाप करने के बाद पवित्र भस्म देने से ब्रहमहत्या (ब्राहमण की हत्या से प्राप्त पाप) जैसे पाप भी धुल गए थे"। इसके बाद उन्होंने उन्हें बहुत ही पवित्र भस्म दी। उन्होंने उनसे यह भी कहा, "क्योंकि तुमने मेरे वचन सुने हैं, तुम पहले से भी अधिक तेजस्वी हो जाओगे"।

ऐसा कहा जाता है कि यह पवित्र भस्म सभी प्रकार की संपत्ति को जन्म दे सकती है। इसके आगे वसु हैं, दाहिनी ओर रुद्र हैं, पीठ पर अधिष्ठ्य (सूर्य) हैं, बाईं ओर विश्वदेव हैं, बीच में ब्रहमा, विष्णु और शिव हैं तथा दोनों ओर सूर्य और चंद्रमा हैं। ऋग्वेद के मंत्र में इसके बारे में इस प्रकार बताया गया है, "जिस व्यक्ति को वह बात समझ में नहीं आती, जिसके आकाश में सभी देवता और लोक रहते हैं, उसे वेदों से क्या प्रयोजन?

जो उस महान् पदार्थ को समझ लेता है, वही वह व्यक्ति है जिसने वह प्राप्त कर लिया है जो प्राप्त किया जाना चाहिए।" सातवें ब्राह्मण विदेह के राजा ने ऋषि याज्ञवल्क्य के पास जाकर पूछा, "हे ऋषिवर, कृपया मुझे पवित्र भस्म धारण करने की विधि समझाइए।" याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया,

"सत्योजातम् से आरंभ करते हुए पाँच ब्रह्म मंत्रों का प्रयोग करते हुए विभूति लें, "अग्निरिथियो बस्मा (राख अग्नि है)" का जाप करें।

"मनस्थोके" से शुरू करें। इसे "त्रययुषम" मंत्र का उपयोग करके पानी में मिलाएं और फिर इसे "त्रयम्बकम" मंत्र का जाप करते हुए सिर, माथे, छाती और कंधों पर लगाएं। यदि इसका पालन किया जाता है तो व्यक्ति शुद्ध हो जाता है और मोक्ष प्राप्त करने के लिए उपयुक्त हो जाता है। उसे रुद्र का एक सौ बार जाप करने के समान प्रभाव मिलेगा। इसे भस्म ज्योति कहा जाता है।" उन्होंने आगे कहा, "संवर्थक, आरूणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, रूपु, निधग, भरत, दथत्रेय, रैवतक, बसुंडा आदि जैसे महान ऋषि विभूति धारण करके मुक्त हो गए।" सनत्कुमार भगवान कालाग्नि रुद्र के पास गए और उनसे पूछा, "भगवान, कृपया मुझे रुद्राक्ष पहनने की विधि समझाएँ।"

उन्होंने उन्हें जो बताया वह यह था, "रुद्राक्ष उस नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि शुरू में, यह रुद्र की आँखों से उत्पन्न हुआ था। विनाश के समय और विनाश के पश्चात जब रुद्र ने विनाश की अपनी आँख बंद की, तो उस आँख से रुद्राक्ष उत्पन्न हुआ। यही रुद्राक्ष का गुण है। इस रुद्राक्ष को छूने और धारण करने मात्र से एक हजार गायों के दान के समान फल प्राप्त होता है। आठवाँ ब्राह्मण जो इस बृहत् जाबालोपनिषद् का नित्य पाठ करता है, वह अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र द्वारा प्रदत्त पवित्रता को प्राप्त करता है।

जो बृहत् जाबालोपनिषद् का जाप करता है, वह उस लोक को प्राप्त करता है जहाँ सूर्य नहीं सूखता, जहाँ हवा नहीं चलती, जहाँ चन्द्रमा नहीं चमकता, जहाँ तारे नहीं टिमटिमाते, जहाँ अग्नि नहीं जलती, जहाँ यम (मृत्यु के देवता) प्रवेश नहीं करते, जहाँ कोई दुःख नहीं है, जो शान्ति और शुद्ध तथा विशुद्ध सुख से परिपूर्ण है, जिसकी स्तुति ब्रह्मा जैसे देवता करते हैं, जिसका ध्यान महान योगी करते हैं और जहाँ पहुँचने के बाद महान योगी वापस नहीं लौटते। यह उपनिषद "ॐ सत्य" (सत्य अमर रहे) के आशीर्वाद के साथ समाप्त होता है।

ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें! हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!प्रभु इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ अथर्ववेद में निहित बृहद-जाबालोपनिषद समाप्त होता है

027 - नृसिंह पूर्व तपनिय उपनिषद

ओम! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें;

हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें!

देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें,

अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें!

प्रसिद्ध इंद्र हमें आशीर्वाद दें!

सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!

बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!

बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!

ओम! मुझमें शांति हो!

मेरे वातावरण में शांति हो!

मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

पहला उपनिषद भगवान नरसिंह जो आंशिक रूप से मानव और आंशिक रूप से सिंह हैं, वे रूठ (दृश्य जगत का अनुशासन) और सत्य (मूल सत्य) के साथ परब्रह्म के रूप में चमकते हैं। वे दो रंगों में प्रकट होते हैं, काला और सुनहरा लाल।

उनका स्वभाव ऊपर की ओर जाने का है और उनकी निगाह बहुत भयानक और डरावनी है, लेकिन वे लोगों का भला करने वाले "शंकर" हैं। उन्हें "नीला लोहिता (वह जो लाल और काला है)" कहा जाता है क्योंकि उनकी गर्दन काली है और उसका ऊपरी भाग लाल है। अपने दूसरे स्वरूप में वे उमापति (उमा के पति) और पशुपति (सभी प्राणियों के स्वामी) हैं। वे "पिनाक" नामक धनुष धारण करते हैं और उनमें बहुत तेज है। वे सभी ज्ञान के देवता हैं। वे सभी प्राणियों के देवता हैं। वे सभी वेदों के स्वामी हैं। वे ब्रह्मा के स्वामी हैं और यजुर्वेद में उनकी स्तुति की गई है।

सामवेद में उनकी स्तुति जाननी चाहिए। जो लोग इसे जानते हैं, वे अमर अवस्था को प्राप्त करेंगे। दूसरे उपनिषद देवता मृत्यु, पापों और पारिवारिक जीवन से डरते थे। वे प्रजापति के पास गए। उन्होंने उन्हें नरसिंह मंत्र के बारे में बताया जो "सभी मंत्रों का राजा" था, जो अनुष्टुप छंद में लिखा गया था। इस वजह सेउन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त की। उन्होंने सभी पापों पर विजय प्राप्त की और पारिवारिक जीवन की समस्याओं को भी नष्ट कर दिया।

इसलिए जो लोग मृत्यु, पापों और पारिवारिक जीवन से डरते हैं, उन्हें "नरसिंह मंत्र" की शिक्षा लेनी चाहिए, जिसे "मंत्रों का राजा" कहा जाता है और जो अनुष्टुप छंद में लिखा गया है। वे सभी मृत्यु पर विजय प्राप्त करेंगे और पाप के साथ-साथ पारिवारिक जीवन की समस्याओं पर भी विजय प्राप्त करेंगे। मंत्रों का राजा: [निम्नलिखित भगवान नरसिंह के मंत्रों के राजा का एक सरल अनुवाद है और इसके बाद प्रत्येक विवरण की व्याख्या और औचित्य है।) उन नृसिंह को मेरा नमस्कार, जो भयंकर हैं, जो वीर हैं, जो महाविष्णु हैं, जो जलते हैं, जिनके हर जगह चेहरे हैं, जो आधे सिंह और आधे मनुष्य हैं, जो भयभीत हैं, जो सुरक्षित हैं, जो मृत्यु और अमरता हैं।

उन्हें "उग्र [भयंकर]" कहा जाता है क्योंकि उनकी शक्ति से वे बिना किसी रुकावट के सृजन करते हैं, देखभाल करते हैं, संहार करते हैं और उत्थान करते हैं और सभी देवताओं, सभी प्राणियों, सभी भूतों को आकर्षित भी करते हैं। हे भगवान नरसिंह, आप जिनकी मैं स्तुति कर रहा हूँ, कृपया मुझे इस शरीर में रहते हुए भी चिरस्थायी सुख प्रदान करें, जो कि स्थायी नहीं है। आपके सैनिक मेरे उन सभी शत्रुओं का वध करें जो मुझसे भिन्न हैं।

1 उन्हें "वीर [वीर]" कहा जाता है क्योंकि उनकी शक्ति से वे सभी लोकों, सभी देवताओं, सभी प्राणियों और सभी भूतों को क्रीड़ा कराते हैं, और उन्हें

विश्राम करने देते हैं और बिना किसी रुकावट के इन लोकों, देवताओं, प्राणियों और भूतों को सृजन, विकास और आकर्षित भी करते हैं। वे प्रत्येक कार्य के पीछे हैं

2 वे महाविष्णु हैं, क्योंकि वे सभी लोकों में व्याप्त हैं और सभी जगत को व्याप्त करते हैं, जैसे सभी मांस में चर्बीदार गोंद इस ओर से उस ओर तथा उस ओर से इस ओर फैलती है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उनसे भिन्न हो। वे संसार की सभी वस्तुओं में व्याप्त हैं। वे सभी आत्माओं के नेता हैं। आत्माओं की पूजा ही उनकी पूजा है। वे तीनों चमकती हुई चीजों अर्थात चंद्रमा, सूर्य और अग्नि में विद्‌यमान हैं।

3 उन्हें "ज्वलंतम [जलना]" कहा जाता है, क्योंकि वे सभी देवताओं, सभी प्राणियों और सभी भूतों सहित संपूर्ण संसार को अपने तेज से चमकाते हैं और उनमें चमकते हैं और उनसे ज्वालाएँ छोड़ते हैं। वे ही संसार को बनाने वाले और उसे तेजी से बढ़ाने वाले हैं। वे ही अपने तेज से चमकते हैं और दूसरों को भी चमकाते हैं। वे संसार भर में गर्मी फैलाते हैं और संसार को तपाते हैं। वे अपनी किरणों को सर्वत्र फैलाते हैं और उनसे किरणें छोड़ते हैं। उसका व्यक्तित्व ऐसा है जो केवल अच्छाई करता है। वह केवल वही देता है जो अच्छा है और वह स्वयं अच्छा है।

4 उसे "सर्वतो मुखम" कहा जाता है क्योंकि वह बिना किसी अंग के भी सब जगह देखता है, वह सब कुछ सुन सकता है, वह सब जगह जा सकता है, वह सब कुछ आकर्षित कर सकता है, और इसलिए भी क्योंकि वह सब जगह फैला हुआ है और हर जगह मौजूद है। शुरुआत में वह अकेला था और अब वह ये सब बन गया है। जो लोग दुनिया पर राज करते हैं वे उससे आए हैं। अंत में सब कुछ वापस चला जाता है और उसमें विलीन हो जाता है। मैं उसे सलाम करता हूँ जिसके सब जगह चेहरे हैं।

5 सभी जानवरों में सबसे ज़्यादा डरने वाला और सबसे ख़ास जानवर शेर है। इसीलिए ब्रह्मांड के भगवान ने नरसिंह के रूप में जन्म लिया। वह अमर रूप पूरे संसार का कल्याण करने वाला बन गया। इसीलिए उन्हें "नरसिंहम [आधा मनुष्य और आधा शेर]" कहा जाता है। वह महाविष्णु जिसका यह भयानक रूप है, अपने भक्तों में भय पैदा नहीं करता। वे उनकी पूजा और स्तुति करते हैं। वे पूरी पृथ्वी पर भ्रमण करने वाले और पहाड़ की चोटी पर रहने वाले भी हैं। अपने त्रिविक्रम रूप में उन्होंने तीन पग में सारे लोक नाप लिए।

6 उसे "भीषणम [भयभीत]" इसलिए कहा जाता है क्योंकि देवता, मनुष्य, भूत और सभी लोक उसके डर से भाग जाते हैं; लेकिन वह किसी से नहीं डरता। हवा चलती है क्योंकि वह उससे डरती है। सूर्य ऊपर उठता है क्योंकि वह उससे डरता है। उसके डर के कारण ही अग्निदेव, इंद्र और मृत्यु के देवता अपना काम करते हैं।

7 उसे "भद्रम [सुरक्षित]" इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह अच्छी चीजों का साक्षात् रूप है, क्योंकि वह हमेशा अच्छी चीजें देकर चमकता है, क्योंकि वह दूसरों को चमकाता है, क्योंकि वह श्रेष्ठ है और क्योंकि वह बहुत अच्छे काम करता है। हे देवो, हमें इस "भद्रम" के बारे में अपने कानों से सुनना होगा। हे, तुममें से जो लोग पूजा करने के योग्य हैं, हमें अपनी आँखों से उस "भद्रम" को देखना होगा। आइए हम स्वस्थ अंगों और स्वस्थ शरीर के साथ देवताओं की तरह जिएँ और उनकी स्तुति और गायन करें।

8 उसे "मृत्यु-मृत्युम [मृत्यु और मृत्यु]" कहा जाता है। भगवान शिव को भगवान शिव कहते हैं, क्योंकि वे अपने भक्तों के स्मरण मात्र से ही अकाल मृत्यु का नाश कर देते हैं। वे आत्मा का ज्ञान देने वाले हैं, तथा शक्ति भी प्रदान करने वाले हैं। सभी देवता उनके चरणों में सिर झुकाकर उनकी स्तुति करते हैं। उन्हें हविष्य-भोजन देकर हम उन्हें तृप्त करें, क्योंकि उनकी छाया भी अमृत है, तथा वे ही मृत्यु का नाश करने वाले हैं।

9. उनकी पूजा "नमामि" के जाप से की जाती है, क्योंकि सभी देवता, उनके लोक को त्यागने वाले तथा ब्रह्म की शपथ लेने वाले सभी लोग उनकी पूजा करते हैं, तथा इसलिए भी कि वेदों के स्वामी भी इन शब्दों को कहकर उनकी पूजा करते हैं। इंद्र, मित्र (सूर्य), अर्यमा तथा अन्य सभी देवता उनमें विद्यमान हैं।

10. मैं इस सुंदर तथा व्यवस्थित संसार से भी पहले उत्पन्न हुआ था। मैं देवताओं से भी पहले से विद्यमान हूँ। मैं उस शक्ति का केंद्र हूँ, जो कभी नष्ट नहीं होती। जो मुझे (लोगों के लिए भोजन के रूप में) दान देता है, वह आत्मा की रक्षा करने वाला होता है। यदि इसे समझे बिना दिया जाए, तो मैं जो अन्न हूँ, खाने वाले को खा जाता हूँ। मैं ही सारा जगत् बन जाता हूँ और उसका नाश करता हूँ। मेरा प्रकाश सूर्य के समान है, जो अकेला खड़ा होकर सारे जगत् को प्रकाश देता है। यह उपनिषद् कहता है कि जो इसे समझ लेता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

11 तीसरा उपनिषद् देवताओं ने ब्रह्मा से अनुष्टुप मंत्र राज (अनुष्टुप छंद में निबद्ध मंत्रों का राजा) की शक्ति और उसका मूल भी सिखाने के लिए अनुरोध किया। ब्रह्मा ने उनसे कहा: यह माया जो नरसिंह की शक्ति है (जो ईम है) वही सबका सृजन करती है, उनकी रक्षा करती है और उनका नाश करती है। इसलिए तुम्हें यह समझना होगा कि यह माया ही शक्ति है। जो इस माया की शक्ति को समझ लेता है, वह सभी पापों से पार हो जाता है और मृत्यु को भी प्राप्त होता है। वह यश के साथ धन का भोग करता है।

ब्रह्म के विशेषज्ञ आपस में बहस करते हैं कि यह लघु है, दीर्घ है या अति दीर्घ (उच्चारण?)। जो इसका उच्चारण लघु अंत में करेगा, उसके सारे पाप जल जाएँगे और वह अमर हो जाएगा। जो इसका उच्चारण दीर्घ अंत में करेगा, उसे धन के साथ यश भी मिलेगा और अमर भी हो जाएगा। जो इसका उच्चारण अति दीर्घ अंत में करेगा, उसे दिव्य ज्ञान और अमरता भी प्राप्त होगी। ऋषियों द्वारा दी गई व्याख्या इस प्रकार है:

“हे ईम के पीछे की शक्ति जो माया की शक्ति का मूर्त रूप है, कृपया हमारी रक्षा करें। कृपया हमें आशीर्वाद दें ताकि हम जन्म और मृत्यु के इस सागर को सरलता से पार कर सकें। जो लोग आपको जानते हैं, वे आपको श्रीदेवी, लक्ष्मी, पार्वती, भूदेवी (पृथ्वी की देवी), षष्ठी देवी, श्रीविद्या और इंद्र सेना के नाम से भी पुकारते हैं। आपसे मुझे दीर्घायु प्रदान करने की प्रार्थना करते हुए, मैं स्वयं को आपके चरणों में समर्पित करता हूँ जो सभी वेदों की माता हैं। संसार के सभी प्राणी और वस्तुएँ आकाश (ईथर) से उत्पन्न हुई हैं। सभी जीवित वस्तुएँ आकाश से बनी हैं। वे आकाश में रहते हैं।

वे आकाश की ओर जाते हैं और वहाँ प्रवेश करते हैं और लुप्त हो जाते हैं। इसलिए हमें यह समझना होगा कि आकाश मूल है (आकाश का मूल शब्द हैम है)।” ऋषियों द्वारा दी गई व्याख्या इस प्रकार है: "वह मूल 'हं' सूर्य देव है जो शुद्ध आकाश में, वायुमण्डल में, अग्नि में, अग्नि-यज्ञों में तथा घरों में अतिथि के रूप में भ्रमण करता है। यही एक ऐसी वस्तु है जो देवताओं के साथ भी है और मनुष्यों के साथ भी। यही सत्य है।

यही वह वस्तु है जो आकाश, जल, पृथ्वी, यज्ञ और पर्वतों से उत्पन्न होती है। यही महान सत्य है। उपनिषद् में कहा गया है कि "जो इसे जानता है, वही मंत्र के गुप्त अर्थ को जानता है।" चौथा उपनिषद् देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर नरसिंह मंत्र राजा के शाखा मंत्रों के बारे में बताने के लिए कहा। ब्रह्मा ने उनसे कहा कि उन्हें यह जानना चाहिए कि प्रणव, सावित्री, यजुर्

लक्ष्मी और नरसिंह गायत्री नरसिंह मंत्र के चार भाग (शाखाएं) हैं और यह भी कि जो इसे जानता है, वह अमर हो जाता है।

1. प्रणवम और कुछ नहीं बल्कि "ॐ" है।

2. सावित्री मंत्र जो जपने वालों की रक्षा करता है, यजुर्वेद में बताया गया है। यह पूरे विश्व में फैल गया है। सावित्री अष्टाक्षर (आठ अक्षर) में दो अक्षर "गृणि", तीन अक्षर "सूर्य" और तीन अक्षर "आधिथ्य" हैं। यह एक ऐसा जप है जो आपके कद और आपके धन को बढ़ाता है। जो इसे जानता है, उसके पास बहुत धन आता है।

3. यजुर महालक्ष्मी मंत्र है "ॐ भूर लक्ष्मी, भुवर लक्ष्मी, सुवा कला करणी, थन्नो लक्ष्मी प्रचोदयाथ"। इसमें 24 अक्षर हैं। यह सारा ब्रह्मांड इस गायत्री के रूप में है। इसलिए जो इस यजुर महा लक्ष्मी मंत्र को जानता है, वह बहुत धन और प्रसिद्धि का आनंद उठाएगा।

4. नरसिंह गायत्री है, "ॐ नृसिंहाय विद्महे वज्र नखय दीमहि। तन्नाह सिंह प्रचोदयात"। यह वह मंत्र है जिसमें सभी वेद और देवता निवास करते हैं। जो इसे जानता है, वह वह है जिसके साथ देवता और वेद हमेशा के लिए रहेंगे। देवता ब्रह्मा के पास गए और उनसे पूछा, "कौन सा मंत्र जपने से भगवान हम पर बड़ी दया करेंगे और हमें अपने स्वरूप के दर्शन देंगे। कृपया हमें उसके बारे में बताएं।" तब ब्रह्मा ने उन्हें इस प्रकार बताया: "ओम, उम, ओम। यो वै निरुसिंहो देवो भगवान यशश्च ब्रह्मा तस्मै वो नमो नमः। ओम क्रम ओम। यो वै नृसिंहो देवो भगवान यशश्च विष्णु तस्मै वै नमो नमः। ओम वीम ओम। यो वै नृसिंहो देवो भगवान यशश्च महेश्वर तस्मै वै नमो नमः।" [32 देवता जिनके लिए उम-क्रम-वीम-राम के साथ समान मंत्र की प्रार्थना की जानी है, वे हैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर पुरुष, ईश्वर, सरस्वती, श्री गौरी, प्रकुथी, विद्या, ओंकार, अर्ध माथरा, वेधा, पंचाख्य, सप्त व्यहरुदय, लोक पाल, वासव, रुद्र, अधित्या, अष्टौ गृह, महा भूत, काल, मनु, मृत्यु, यम, कंधक, पराना, सूर्य, सोम, विराट पुरुष और जीव और अंत में "ओम हं, ओम, यो वै नृसिंहो देवो भगवान यश सर्वं तस्मै वै नमो नमः" का जाप करें।)

ब्रह्मा ने कहा, "यदि कोई व्यक्ति इन 32 मंत्रों का उपयोग करके प्रतिदिन भगवान की प्रार्थना करता है, तो भगवान बहुत प्रसन्न होंगे और स्वयं प्रकट होंगे। इसलिए जो कोई भी व्यक्ति इन मंत्रों का उपयोग करके भगवान नरसिंह की प्रार्थना करता है, वे उसे स्वयं प्रकट होंगे। वह भक्त भी

सब कुछ देखेगा और अमरता प्राप्त करेगा। ऐसा महान उपनिषद कहता है।”

पांचवां उपनिषद देवता ब्रह्मा के पास गए और उनसे अनुरोध किया, “भगवान, कृपया हमें महा चक्र नामक प्रसिद्ध चक्र के बारे में बताएं। ऋषि बताते हैं कि “यह सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला है और मोक्ष का प्रवेश द्वार है”। भगवान ब्रह्मा ने उनसे कहा: "सुदर्शन (भगवान विष्णु का पवित्र चक्र) वह महान चक्र है। इसके मध्य में तारक मंत्र (ॐ) और नरसिंह (क्ष्रुम) का एक अक्षर लिखा है, सुदर्शन की छह पंखुड़ियों पर छह अक्षर (सहस्रार हुं फट) लिखे हैं, इसकी आठ पंखुड़ियों पर आठ अक्षर (ॐ नमो नारायणाय) लिखे हैं, इसकी बारह पंखुड़ियों पर बारह पवित्र अक्षर (ॐ नमो वासुदेवाय) लिखे हैं, इसकी सोलह पंखुड़ियों पर मातृका (मॉडल) सोलह अक्षर उनकी जड़ों के साथ (अम आम, एम, ईम... अह) लिखे हैं और इसकी 32 पंखुड़ियों पर "नरसिंह अनुष्टुप मंत्र राजा" के अक्षर लिखे हैं। यह सुदर्शन चक्र है, यह सभी इच्छाओं को पूरा करता है और मोक्ष का द्वार है। यह यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, ब्रह्म और अमृत का एक रूप है।

जो व्यक्ति प्रतिदिन इस "नरसिंह अनुष्टुप मंत्र राजा" का जाप करता है, वह अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, जल, सभी देव, सभी ग्रह तथा विष को नियंत्रित कर सकता है। ऋग्वेद में इस बारे में बताया गया है, "जो भक्त इसका अभ्यास करते हैं, वे भगवान विष्णु को आकाश में देख सकते हैं, जैसे एक साधारण व्यक्ति आकाश में सूर्य को देख सकता है। जो भक्त ब्राह्मण हैं, वे प्रकाशित विष्णु के रूप की स्तुति कर सकते हैं। उपनिषदों में कहा गया है कि यह केवल उसी को प्राप्त होता है, जो निष्काम भाव से पूजा करता है।" ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें! हम देवों द्वारा निर्धारित जीवन अवधि का आनंद लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर रखते हुए उनकी स्तुति करें! हम पर भगवान इंद्र की कृपा हो! हम पर भगवान सूर्य की कृपा हो! बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें! बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें! ओम! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो! अथर्ववेद में निहित नृसिंह पूर्व तपनियोपनिषद यहीं समाप्त होता है। नृसिंह तपनीय उपनिषद, हमारे संस्करण में 108 उपनिषदों में से एक के रूप में सूचीबद्ध है मुक्तिका उपनिषद के दूसरे संस्करण में दो उपनिषदों (नृसिंह पूर्व तपनिय उपनिषद और नृसिंह उत्तर तपनिय उपनिषद) के रूप में दर्शाया गया है।

इसलिए उनके अनुवाद यहाँ अलग से दिए जा रहे हैं।] नृसिंह उत्तर तपनिय उपनिषद पी.आर. रामचंदर द्वारा अनुवादित celextel.org द्वारा प्रकाशित ॐ ! हे देवो, हम अपने कानों से शुभ सुनें; हे पूज्य देवो, हम अपनी आँखों से शुभ देखें! हम देवों द्वारा आवंटित जीवन की अवधि का आनंद लें, अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें! यशस्वी इंद्र हमें आशीर्वाद दें! सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें! बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें! बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें! ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

पहला अध्याय देवता भगवान ब्रह्मा के पास गए और उनसे प्रार्थना की, “कृपया हमें आत्मा के बारे में बताएं जो परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म है और साथ ही “ॐ” अक्षर के बारे में भी बताएं। उन्होंने कहा, “ऐसा ही हो” और उन्होंने जो कहा वह था:

“यह सब “ॐ” अक्षर है। जो अतीत है, जो वर्तमान है और जो भविष्य में होगा, वे इसकी व्याख्याएं हैं। ये सभी ॐ हैं। ये सभी ब्रहम हैं। यह आत्मा भी ब्रहम है। इस आत्मा को ॐ नामक ब्रहम के साथ जोड़ना और ब्रहम और आत्मा को एक साथ जोड़ना और यह जानना कि जन्महीन, मृत्युहीन, अमृत से सराबोर और निर्भय ब्रहम कुछ और नहीं बल्कि ॐ है और फिर तीनों प्रकार के शरीर और इन सभी को इसमें शामिल करना और फिर इसे अपना बनाना ताकि हम इसके साथ एक हो जाएं और फिर इसे नष्ट कर दें। उस ॐ का ध्यान करते रहो जो तीन प्रकार के शरीरों वाला आत्मा है और तीन प्रकार के शरीरों वाला परब्रहम भी है। यह आत्मा जो स्थूल है और महासुखों को भोगती है, जो अतिसूक्ष्म है और सूक्ष्मतम सुखों को भी भोगती है तथा जो एक होकर सुखों का भोग करती है, उसके चार पैर (शाखाएँ) हैं।

जब यह जाग्रत होती है तो इसके भाव स्थूल होते हैं। यह अपने सात अंगों और 19 मुखों (दस ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, मस्तिष्क, इन्द्रिय और अहंकार) से स्थूल भावों का भोग करती है। इसका नाम है, चतुरात्मा विश्वान (सम्पूर्ण) और वैश्वानरन (आंशिक)। यह इसका पहला पैर है। स्वप्न की अवस्था में इसके भाव अतिसूक्ष्म होते हैं। यह अपने सात अंगों और उन्नीस मुखों से इस सूक्ष्म इन्द्रिय का भोग करेगी। इसका नाम है, चतुरात्मा तैजसन (सम्पूर्ण) और हिरण्यगर्भन (आंशिक)। यह इसका दूसरा पैर है। जहाँ कोई कामना नहीं है और जहाँ कोई स्वप्न भी नहीं है, उस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। उस अवस्था में व्यक्ति एकाकार,

ज्ञानस्वरूप, अनंत स्वरूप वाला, सुख भोगने वाला तथा केवल ज्ञान पर ही ध्यान लगाने वाला होता है।

उसका नाम चतुरात्मा प्रज्ञान है। यह तीसरा चरण है। वही सब प्राणियों का स्वामी है, जो सब कुछ जानता है, जो सबमें निवास करता है, जो सबका मूल कारण है तथा जहाँ जन्म लेने वाले सभी प्राणी अपना अंत पाते हैं। सुषुप्ति और स्वप्न ये तीनों ही भ्रम मात्र हैं। आत्मा ही एकमात्र रूप है जो सब कुछ जानता है, सब कुछ जानता है, सब कुछ जानता है, सबका मूल कारण है तथा जहाँ जन्म लेने वाले सभी प्राणी अपना अंत पाते हैं।

वास्तविक है। इस चार गुना आत्मा का चौथा पैर (पहलू) थुरैया है। यह कुछ ऐसा है जो अन्य सभी को कार्य करने के लिए प्रेरित करता है, कुछ ऐसा जो हर चीज के भीतर है और यह जाग्रत (जागृति), सुषुप्ति (नींद) और स्वप्न (स्वप्न) से परे सक्रिय सार है। इसके बारे में कुछ इस प्रकार है: यह स्थूल चेतना के बिना है। यह सूक्ष्म चेतना के बिना है। यह मध्यम चेतना के बिना है। यह चेतना का मानवीकरण है। यह कुछ स्थिर नहीं है और यह स्थिर चेतना नहीं है। इसे देखा नहीं जा सकता। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसे समझा नहीं जा सकता।

यह बिना किसी पहचान के कुछ है। यह कुछ ऐसा है जो अकल्पनीय है। यह कुछ ऐसा है जिसे इंगित नहीं किया जा सकता। यह कुछ ऐसा है जिसे केवल इस दृढ़ विश्वास के साथ माना जा सकता है कि केवल एक ही आत्मा है। यह पंचभूतों (पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और आकाश) का वह पहलू है, जिसमें संपूर्ण ब्रह्मांड समाया हुआ है। इसे शिव (शांति), शांति (किसी भी नकारात्मक गतिविधि के बिना आंतरिक शांति) और अद्वैत (गैर द्वैतवाद की अवधारणा) के बाद चौथी अवस्था माना जाता है। यह आत्मा है। यह वह चीज है जिसे समझना है।

यह ईश्वर का वह पहलू है, जो सभी ज्ञान से परे ज्ञान है और इसे थुरिय थुरियम् कहा जाता है। दूसरा अध्याय ब्रह्म की चार शाखाएँ, जो अच्छी तरह से चमक रही हैं, खुशी के एक ही सार से भरी हुई हैं, कभी बूढ़ा नहीं होता, कभी नहीं मरता, अमृत से भरा हुआ है और जो सुरक्षा प्रदान करता है, उसे ओम के चार अक्षरों (शाखाओं) के साथ मिलाना चाहिए। जो यह जानता है कि चतुरात्मा विश्वान (समग्र रूप से) और वैश्वानरन (आंशिक रूप से) जो जागृत हैं और चार आकार (अक्षर आ) के समान हैं, स्थूल,

सूक्ष्म, भीज और साक्षी के रूप में हर चीज के अंदर फैले हुए हैं और हर चीज में प्रथम हैं, वह अपनी सभी इच्छाओं को पूरा करेगा।

वह हर किसी में प्रथम होगा। चतुरात्मा तैजसन (समग्र रूप से) और हिरण्य गर्भन (आंशिक रूप से) जो स्वप्न की स्थिति में मौजूद हैं, वे चार अक्षर उउ के समान हैं। यह उउ स्थूल, सूक्ष्म, जड़ और साक्षी का रूप है। इसकी महानता और इसके दोहरे संबंध के कारण, जो इसे स्थूल, सूक्ष्म, जड़ और साक्षी पहलुओं के माध्यम से जानता है, उसके ज्ञान का ज्वार बढ़ जाएगा। वह सुख और दुख के साथ समता प्राप्त करेगा। चतुरात्मा प्रज्ञान (समग्र रूप से) और ईश्वरन (आंशिक रूप से) जो सुषुप्ति अवस्था में हैं, वे चार निर्मित अक्षर म के समान हैं।

इस म अक्षर में भी स्थूल, सूक्ष्म, मूल और साक्षी रूप हैं। जो इसे इसके मापनीयता के पहलू में तथा स्थूल, सूक्ष्म, मूल और साक्षी गुणों द्वारा अपने में छिपाने की क्षमता में जानता है, वह अपनी बुद्धि से संपूर्ण जगत को मापने में समर्थ हो जाएगा और अपने भीतर सब कुछ छिपाने में समर्थ हो जाएगा। इसी प्रकार हमें जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न अवस्थाओं पर ॐ के आ, ऊ और म अक्षरों से प्रार्थना करनी है। चौथा अक्षर वह है जिसके भीतर ईश्वर है। यह वह है जो अपने आप शासन कर सकता है, यह स्वयं ईश्वर है और इसमें स्वयं की चमक है।

यह आत्मा जो चौथा है, सभी प्राणियों में ज्ञात और अज्ञात रूप में विद्यमान है। इसका प्रकाश अंतिम प्रलय के समय कालाग्नि सूर्य (मृत्यु देने वाली अग्नि के समान सूर्य) के समान है। यह सबको देता है, स्वयं आत्मा है और सब कुछ अपने में बना लेता है। जैसे सूर्य अंधकार को निगल जाता है, यह आत्मा जो एकीकृत शक्ति है, अग्नि की तरह विद्यमान है जो ईंधन को जलाने के बाद भी पृथक रहती है, शब्द और मन से परे है और पवित्र दिव्य रूप है और थूरिया है।

यह ओम है। यह हर उस चीज़ के भीतर है जिसका नाम और रूप है, और यह ज्ञान और ज्ञाता है। क्योंकि यह थूरिया के रूप में मौजूद है और इसका एक दिव्य रूप है और यह ज्ञान और ज्ञाता के रूप में हर चीज़ के भीतर है और पृथक और निराकार है, इसके भीतर कोई अंतर नहीं है। और इसलिए इसके बारे में शिक्षा इस प्रकार है क्योंकि यह अक्षर रहित है, यह शांति (शिव) है, यह वह स्थान है जहाँ ब्रह्मांड का अंत मिलता है, यह अवर्णनीय है, इसका एक अद्वैत रूप है और इसे चौथे स्थान पर रखा गया है, और यह

स्वयं "ओम" है। जो आत्मा इसे इस तरह से समझती है, वह स्वयं आत्मा को प्राप्त करेगी।

यह वीर नायक नरसिंह अनुष्टुप मंत्र राजा का उपयोग करके थूरिया को समझेगा। इससे आत्मा चमक उठेगी। उसे ब्रह्म का गहन ध्यान करना चाहिए क्योंकि वह सब कुछ नष्ट कर देगा, जिसे कोई भी जीत नहीं सकता, जो हर जगह है, जो हमेशा चमकता है, जो अज्ञान से रहित है, जो अपने स्वयं के बंधन को काटने में सक्षम है, जो अद्वैत है, जो खुशी का व्यक्तित्व है, जो सबका आधार है, जो हमेशा के लिए मौजूद है और जो अज्ञान, जुनून और नीच गुणों से रहित है।

तीसरा अध्याय चिदग्नि (अंदर की अग्नि) के रूप में प्रणव (ओम) का गहन ध्यान करें जो मूलाधार के अग्नि मंडल (अग्नि की कक्षा) में, महापीठ (जिसमें 4, 7 और 32 पंखुड़ियों वाला कमल है) में अपने चार लोकों (पृथ्वी, वायुमंडल, स्वर्ग और चंद्र लोक) और सात आत्माओं (लोक-वेद देवता-गण-चंडा-अग्नि-व्याहृति) के परिवार के साथ स्थित है। फिर अक्षर 'आ' का ध्यान करें जो कि चतुरात्मा (चार आत्माएं) है और सप्तात्मा (सात आत्माएं) पेट (मणि पूरक) में ब्रह्मा के रूप में, अक्षर 'उ' का ध्यान करें जो कि हृदय (अनहत्था) में विष्णु के रूप में है, अक्षर 'मा' का ध्यान करें जो कि पलकों के बीच (आग्ना) में रुद्र के रूप में है, बिंदु का ध्यान करें जो कि द्वादसंत (आंखों के ठीक ऊपर) में ओंकार (ओम की ध्वनि) की आत्मा का सुखद अमृत रूप है और षोडसंत में ध्वनि के रूप में आत्मा (आत्मा) का ध्यान करें।

इस प्रकार अमृत (आनंद अमृत) से चारों ब्रह्म (देवता, गुरु, मंत्र और आत्मा), विष्णु, रुद्र को अलग-अलग तथा फिर एक साथ लिंग रूप में अर्पण करके तथा फिर लिंग रूपों को आत्म ज्योति (आत्मा की ज्योति) में एकीकृत करके तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को इस ज्योति से भरकर हमें आत्म ज्योति को जो उनका आधार है, स्थूल, सूक्ष्म, जड़ और साक्षी गुणों से एकीकृत करना है। तत्पश्चात अति स्थूल विराट रूप को अति सूक्ष्म हिरण्यगर्भ रूप में तथा इस सूक्ष्म रूप को महाकारण ईश्वर रूप में समायोजित करके तथा मंत्रों को इसी प्रकार व्यवस्थित करके तथा "ओथ-अनुज-ज्ञात्रु-अनुग्न अविकलप" अवस्थाओं का ध्यान करके तथा इन सबको थूरिया में ओंकार (ओम की ध्वनि) में विलीन करके हमें निर्विकल्प परमात्मा (निराकार महान सत्य) तक पहुंचना है।

चौथा अध्याय इस प्रकार आत्मा का ध्यान परब्रह्म के ओंकार रूप में थुरीय प्रणव ध्वनि के साथ नौ बार करना चाहिए। सदा प्रसन्न रहने वाले पूर्ण आत्मा के रूप में अनुष्टुप मंत्र का प्रयोग करते हुए "ॐ उग्रम, सचिदानंद पूर्ण-प्रथ्याग-सदात्मनं, नृसिंहं प्रथ्यामणं परम ब्रह्म चिन्तयामि" मंत्र से शुरू करके "ॐ मृत्युम् मृत्युम्...." से समाप्त करना चाहिए। फिर वही प्रार्थना नौ बार सदात्मनम के स्थान पर चिदात्मनम से करें।

फिर वही प्रार्थना नौ बार सदात्मनम के स्थान पर आनन्दत्मनम से करें। फिर वही प्रार्थना नौ बार सदात्मनम के स्थान पर पूर्णत्मनम से करें और फिर वही प्रार्थना सदात्मनम के स्थान पर प्रत्यात्मनम से करें। सत्, चित्, आनन्द, पूर्ण और आत्मा के पाँच स्वरूपों का भली-भाँति ध्यान करते हुए नवात्मक मंत्रों से प्रार्थना करें और फिर "अहम्" का प्रयोग करते हुए आत्मा का ध्यान करें, फिर नमस्कार करें और फिर ब्रह्म में एकाकार हो जाएँ। [नमस्कार के मंत्रों का उदाहरण "ॐ उग्रम् सचिदानंद पूर्ण प्रथ्याग सदात्मनम् (इसके स्थान पर चिदात्मनम् आदि) नृसिंहं परमात्माम् परम ब्रह्म अहम् नमामि।"]

दूसरा विकल्प है अनुष्टुप मंत्र का प्रयोग करते हुए भगवान नरसिंह की प्रार्थना करना। वे (नरसिंह) जो ईश्वर हैं, मनुष्य रूप में भी विद्यमान हैं और सभी की आत्मा के रूप में भी, सभी समयों और सभी स्थानों पर, आसक्ति को नष्ट करने वाले और ब्रह्मांड के ईश्वर के रूप में भी। वे थूरिया की आत्मा हैं। योगाभ्यास करने वाले को यह मानकर कि वे स्वयं हैं, ओंकार ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए।

वह भगवान की सेवा करने वाला महान ऋषि है, जो वेद के बैल कहे गए प्रणव के साथ आत्मा के पुत्रों के समान विश्व, तैजस और प्रज्ञा को परस्पर आकर्षित करके, उन्हें पृथक पहचान रहित करके साक्षी चैतन्य में समाप्त करके सिंह की कीर्ति से अज्ञान के अंधकार का नाश करता है। वह भक्त जो प्रणव के सींगों में जुड़े हुए विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर को नमस्कार करके उन्हें एक ही परमात्मा तत्व में एक कर देता है और फिर ऊपर वर्णित नरसिंह को नमस्कार करके उग्र (अत्यंत क्रोधित) और वीर (महान नायक) जैसी विधियों से उन्हें साक्षात् उपस्थित कर देता है, वह नरसिंह के समान रूप में विद्यमान होता है।

पांचवां अध्याय उस प्रकार के साधक को सांसारिक वस्तुओं में कोई इच्छा नहीं होगी, उसकी सभी पूर्व इच्छाएं पूरी हो जाएंगी और केवल आत्मा में ही

उसकी इच्छा होगी। उसके प्राण (आत्माएँ) कहीं से भी प्रारंभ होकर नहीं जातीं, बल्कि यहीं ब्रह्म में ही अपने परम स्वरूप को प्राप्त कर लेती हैं। वह ब्रह्म रूप में विद्यमान है और ब्रह्म को प्राप्त करता है। जो ओंकार (ॐ अक्षर) में स्थित परम आत्मा की आराधना करता है, वह नरसिंह रूप में ब्रह्म को प्राप्त करता है। जो आ, ऊ और म रूप में परम ईश्वर का ध्यान और वंदन करता है, जो अतुलनीय है, जो पवित्र आत्मा है, जो सब कुछ देखती है, जो सबका साक्षी है, जो सब कुछ को निगल जाती है, जो सबका प्रिय है, जो सब से पहले है और जो सब कुछ को प्रकाशित करती है, वह परब्रह्म को समझेगा और जान लेगा।

जो इस प्रकार जानता है, वह भगवान परब्रह्म नरसिंह के रूप में प्रकाशित होगा। छठा अध्याय देवता इस आत्मा (आत्मा) को समझना चाहते थे। असुर गुणों ने उन्हें पकड़ लिया। उस प्रभाव से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने अनुष्टुप मंत्र का उपयोग करके नरसिंह की पूजा की, जो ओंकार के शिखर पर स्थित थुरीय आत्मा है। तब पाप रूपी असुर गुण ही ज्ञान रूपी महान ज्योति बन गए जो परम सुख है (जैसे विष औषधि बन जाता है)।

वे देव मानसिक रूप से शांत हो गए, उनकी इंद्रियां वश में हो गईं, वे लोग बन गए जो सांसारिक इच्छाओं से आकर्षित नहीं हुए, वे लोग बन गए जो धैर्यवान हो गए, वे लोग बन गए जिनका आचरण स्थिर हो गया, वे लोग बन गए जो आत्मा से आकर्षित हो गए, वे लोग बन गए जो चंचल, एकता और प्रसन्नता से युक्त हो गए और वे लोग बन गए जिन्होंने यह अनुभव किया कि "ॐ" "आत्मा का प्रकाश है जो परब्रह्म है", और यह अनुभव किया कि अन्य सभी स्थान शून्य हैं और "ॐ" में विलीन हैं।

इसलिए साधक को देवों की तरह तप करना चाहिए, अपने मन को ओंकार परब्रह्म में स्थिर करना चाहिए और अन्य लोगों को अपनी आत्मा को परब्रह्म के रूप में देखना चाहिए। इस बारे में एक पवित्र श्लोक है। "प्रणव के विभिन्न भाग सींगों पर ध्यान करने के पश्चात तथा आगे थूरिया परमात्मा पर ध्यान करने के पश्चात जो सींग है किन्तु भाग नहीं है, प्रणव के विभिन्न भागों में नृसिंह राज मंत्र जोड़ दें।" तीन प्रकार के देव (सात्विक, राजस और तमसा) प्रणव की सेवा करते हैं, जिसमें प्रथम दो अक्षर (आ और उ) तीसरे अक्षर म में विलीन होकर स्थिर हो जाते हैं तथा स्वयं को उच्च बना लेते हैं।

सातवाँ अध्याय उ के प्रथम आधे भाग को आ अक्षर से जोड़कर उसे भगवान नरसिंह का रूप बना लें तथा फिर उ के दूसरे आधे भाग को नरसिंह

ब्रह्मा पर प्रयोग करें क्योंकि यह स्थूल है, क्योंकि यह चमकीला है, क्योंकि यह प्रसिद्ध है, क्योंकि यह महादेव (महान भगवान) है, क्योंकि यह महेश्वर (सबसे महान भगवान) है, क्योंकि यह सर्वश्रेष्ठ सात्व (सात्विक गुण) है, क्योंकि यह सबसे महान ज्ञान है, क्योंकि यह सबसे महान सुख है, तथा क्योंकि यह सबसे महान भगवान है, तब इसे आत्मा के साथ जोड़ो जो इसका अर्थ है अक्षर मा।

जो इसे जानता है, वह शरीर से रहित, इन्द्रियों से रहित, आत्मा से रहित, अज्ञान से रहित, सत् चित् आनन्द स्वरूप हो जाता है और वह मोक्ष प्राप्त करने वाला (स्वराज्य प्राप्त करने वाला) हो जाता है। इसलिए उसे अक्षर आ से परब्रह्म का ध्यान करना चाहिए, मन को अक्षर मा से पार करना चाहिए और उस स्थिति की खोज करनी चाहिए जहाँ वह मन का साक्षी हो। जब कोई सब कुछ बाहर धकेलता है, तो सब कुछ अंदर आ जाता है और जब वह ज्ञान की जागृति प्राप्त करता है, तो सब कुछ उससे ऊपर उठता है। इस प्रकार यदि कोई ध्यान करे, उसे पकड़े, आग लगाए और निगल जाए, तो वह नरसिंह बन जाएगा जो आत्मा का रूप है और खुद को अपनी शक्ति में स्थापित कर लेगा।

इसके बारे में एक पवित्र श्लोक है। इसका अर्थ इस प्रकार है: प्रणव के प्रथम अक्षर आ को उसके दूसरे अक्षर उ के प्रथम भाग से मिलाओ और इनको म अक्षर से जोड़ो और थूरिया ब्रह्म में मिला दो जो प्रणव का अर्थ है और जो जाग्रत निद्रा और स्वप्न की अवस्थाओं से परे साक्षी है। आठवाँ अध्याय उसकी आत्मा थूरिया के साथ पूरी तरह से गुंथी हुई है। यह अपने नरसिंह रूप के साथ, और जिसमें सब कुछ व्याप्त है और जो सबकी आत्मा है, सब कुछ समाहित करती है।

यही रहस्य है और बिना आकार या बीज का है। यह आत्मा अद्वैतवादी है और बिना आकार या बीज का है। “ओम” शब्द अद्वैतवादी है और ज्ञान से भरा है। (नरसिंह, थूरिया की आत्मा और ओंकार का अर्थ सभी एक ही हैं। वे सब कुछ निगल जाते हैं)। यह परमेश्वर (प्रत्येक वस्तु का स्वामी) का अद्वितीय शरीर है। यह बिना आकार या बीज का है। यह जिसका कोई रूप या बीज नहीं है, उसके भीतर कोई भेद नहीं है। जो इन दोनों में भेद समझता है, वह सौ टुकड़ों में टूट जाता है, हजार टुकड़ों में टूट जाता है और मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है।

यह द्विगुणरहित, स्वयं प्रकाशमान और महान आनन्दमय है। वह आत्मा ही परम आधार है। वह ब्रह्म है। ब्रह्म ही परम आधार है। जो इसे जानता

है, वह ब्रह्म ही हो जाता है, जो परम आधार है। नौवां अध्याय देवताओं ने प्रजापति के पास जाकर प्रार्थना की, "हे भगवान, कृपया हमें ओंकारात्मा (ओम अक्षर जो आत्मा है) के बारे में बताएं।" उन्होंने सहमति व्यक्त की और उनसे कहा: आत्मा पीछे खड़ी है और देख रही है और आपके साथ साक्षी के रूप में है।

यह सिंह है, विचार से परे एक रूप है, भावनाओं से रहित एक रूप है और ऐसा कुछ है जिसे हर जगह से प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा कुछ भी दूसरा नहीं है, जो इससे अलग है। यह आत्मा है जो हर जगह तैयार है। भ्रम के कारण यह आत्मा कुछ अलग दिखाई देती है। प्रज्ञा से, अज्ञान के आवरण के कारण, दुनिया उत्पन्न होती है। जीवात्मा के लिए आत्मा ही तेजोमय परमात्मा है। क्योंकि इन्द्रियाँ उसे अनुभव नहीं कर पातीं, इसलिए उसे जाना नहीं जाता, भले ही वह जाना जाता हो। प्रजापति ने देवताओं से कहा, “उस आत्मा को देखो जो तेजोमय और अद्वितीय है, जो तुम्हारे सामने है, जैसे कि, “मैं ही हूँ और वह मैं ही हूँ”।

क्या उसे देखा गया है?” देवताओं ने उत्तर दिया, “हाँ, उसे देखा गया है। वह ज्ञात और अज्ञात वस्तुओं से परे है। अब भ्रम कहाँ चला गया? भ्रम कैसे गायब हो गया?” प्रजापति ने उनसे कहा, “इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि भ्रम गायब हो गया है। क्योंकि तुम सभी लोग अद्भुत रूप वाले लोग हो। इसमें भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आत्मा का वह रूप तुम सभी के लिए स्वाभाविक है। समझो कि वह “ॐ” का रूप है। अब तुम मुझे बताओ कि तुमने क्या समझा है।” उन्होंने कहा, “ऐसा लगता है कि हमने इसे समझ लिया है और ऐसा भी लगता है कि हमने इसे नहीं समझा है।

ऐसा भी प्रतीत होता है कि यह सभी वर्णनों से परे है। प्रजापति ने उनसे कहा, “अब आपको आत्मा के बारे में ज्ञान हो गया है”। उन्होंने उससे कहा, “हे भगवान, हम इसे देख रहे हैं लेकिन हम इसे नहीं देख रहे हैं, जैसे हम अन्य चीजों को देखते हैं। हमारे पास इसका वर्णन करने की क्षमता नहीं है। हे भगवान आपको नमस्कार है। कृपया हम पर अपनी कृपा बरसाएँ।” प्रजापति ने उनसे कहा, “यदि आप कुछ और जानना चाहते हैं, तो कृपया मुझसे पूछें। बिना किसी डर के पूछें।” उन्होंने कहा, “आत्मा के बारे में यह ज्ञान एक महान आशीर्वाद है। हमारा आपको नमस्कार है।” इस प्रकार प्रजापति ने उन्हें सिखाया।

इसके बारे में एक श्लोक है: "उस आत्मा को समझो जो ओम के अभ्यास से हर जगह फैली हुई है। यह समझो कि, आत्मा जिसमें कुछ भी अलग नहीं है और जो ज्ञाता के रूप में आपके भीतर है, वह आपके भीतर ही है। यह समझकर स्थिर हो जाओ वहां, एक साक्षी के रूप में जो सलाह देता है"।
ओम! हे देवो, हम अपने कानों से सुनें कि शुभ क्या है;हम अपनी आँखों से देखें कि शुभ क्या है, हे पूज्य!हम देवों द्वारा आवंटित जीवन की अवधि का आनंद लें,अपने शरीर और अंगों को स्थिर करके उनकी स्तुति करें!

महान इंद्र हमें आशीर्वाद दें!सर्वज्ञ सूर्य हमें आशीर्वाद दें!बुराई के लिए वज्र गरुड़ हमें आशीर्वाद दें!बृहस्पति हमें कल्याण प्रदान करें!ओम! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

यहाँ नृसिंह उत्तर तपनियोपनिषद समाप्त होता है, जैसा कि अथर्ववेद में निहित है।
: नृसिंह तपनियोपनिषद, हमारे 108 उपनिषदों में से एक के रूप में सूचीबद्ध है मुक्तिका उपनिषद के दूसरे संस्करण में दो उपनिषदों (नृसिंह पूर्व तपनिया उपनिषद और नृसिंह उत्तर तपनिया उपनिषद) के रूप में दर्शाया गया है। इसलिए उनके अनुवाद यहाँ अलग से दिए जा रहे हैं।]

028 - कालाग्नि रुद्र उपनिषद

ॐ! वे हम दोनों की रक्षा करें; वे हम दोनों का पोषण करें;हम दोनों मिलकर महान ऊर्जा के साथ काम करें,हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो;हम एक दूसरे से विवाद न करें (या हम किसी से घृणा न करें)।ॐ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!ॐ! ब्रह्म हम दोनों (गुरु और शिष्य) की रक्षा करें! वे हम दोनों को आनंद लेने के लिए (पर्याप्त) दें!हम दोनों दक्षता प्राप्त करें! हमारा अध्ययन प्रभावी साबित हो! हम (एक दूसरे से) बिल्कुल भी घृणा न करें!ॐ शांति! शांति! शांति!

एक बार ऐसा हुआ कि सनत कुमार ने महापुरुष कालाग्निरुद्र से पूछा: “हे महापुरुष! मुझे शिक्षा दीजिए! त्रिपुण्ड्र (तीन धारियों वाला संप्रदाय चिह्न) के नियम के संबंध में सत्य क्या है और कौन-सी सामग्री, कौन-सा स्थान, कितना, किस सीमा तक तथा कौन-सी धारियाँ, कौन-सी दिव्यता, कौन-सा सूत्र, कौन-सी शक्तियाँ तथा कौन-सा पुरस्कार है? महात्मा ने उससे कहा, "सामग्री अग्नि की राख होनी चाहिए। उसे पाँच ब्रह्म-सूत्रों (सत्योजातम्, वामदेवम्, अगोरम्, रुद्रम्, ईसानम्) से ग्रहण करना चाहिए। उसे "अग्निर इति भस्म" आदि सूत्र से पवित्र करना चाहिए, "मा नास तोके तनये" सूत्र से निकालना चाहिए तथा (पवित्र करने के पश्चात) "त्रयम्बकं यजामहे" सूत्र से उसे त्रयौष सूत्रों, त्रयम्बक सूत्रों तथा त्रिशक्ति सूत्रों के अंतर्गत मस्तक, ललाट, वक्षस्थल तथा कंधों पर तीन रेखाओं के रूप में लगाना चाहिए। यह शम्भुव्रत है, जो वेदों में पारंगत पुरुषों द्वारा सभी वेदों में सिखाया गया है।

इसलिए मोक्ष की इच्छा रखने वाले को इसका अभ्यास करना चाहिए, ताकि वह फिर से जन्म न ले। और यह हे सनत्कुमार, इसका (चिह्नित) विस्तार है; यह माथे से आँखों तक तीन गुना फैला हुआ है और एक भौं के मध्य से दूसरी भौं तक जाता है। इसकी पहली रेखा ग्रहपत्य अग्नि, अ-ध्वनि (ओम की), रजस (बलवान लक्षण), पार्थिव जगत, बाह्य आत्मा, क्रिया शक्ति, ऋग्वेद, प्रातःकालीन दबाव (सोम रस की) और महेश्वर इसकी दिव्यता है। इसकी दूसरी रेखा दक्षिणा अग्नि, उ-ध्वनि, सत्त्व (शांतिपूर्ण लक्षण), वायुमंडल है।

आंतरिक आत्मा, इच्छा शक्ति, यजुर्वेद, सोम और सदाशिव का मध्याह्न दबाव इसकी दिव्यता है। इसकी तीसरी पंक्ति आहवनीय अग्नि, म-ध्वनि, तम (आलसी लक्षण), स्वर्ग, सर्वोच्च आत्मा, बोध शक्ति, सामवेद, सोम और शिव का सायंकालीन दबाव इसकी दिव्यता है। इसलिए वह राख से त्रिपुंडम बनाता है। जो इसे जानता है, वह चाहे ब्राह्मण छात्र हो, गृहस्थ हो, वनवासी हो या तपस्वी हो, वह सभी बड़े पापों और छोटे पापों से शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार वह सभी देवताओं का ध्यान करता है, वह सभी देवताओं द्वारा जाना जाता है, वह एक ऐसा व्यक्ति बन जाता है जिसने सभी पवित्र स्नान स्थलों में स्नान किया है, जिसने हर समय रुद्र प्रार्थना की है। और सभी सुखों का आनंद लेने के बाद वह शरीर को त्याग कर शिव के साथ एकता में प्रवेश करता है और वापस नहीं लौटता - और वापस नहीं आता।

इस प्रकार महान कालाग्नि रुद्र बोले। जो इसे यहाँ पढ़ता है, वह भी ऐसी ही अवस्था को प्राप्त करता है। ॐ सत्यम्। - इस प्रकार उपनिषद पढ़ता है। ॐ! ब्रह्म हम दोनों (गुरु और शिष्य) की रक्षा करें! वह हम दोनों को आनंद लेने के लिए (पर्याप्त) दे! हम दोनों दक्षता प्राप्त करें! हमारा अध्ययन प्रभावी साबित हो! हम एक दूसरे से बिल्कुल भी नफरत न करें! ॐ शांति! शांति! शांति! ॐ! वह हम दोनों की रक्षा करें; वह हम दोनों का पोषण करें; हम महान ऊर्जा के साथ मिलकर काम करें, हमारा अध्ययन जोरदार और प्रभावी हो; हम परस्पर विवाद न करें (या हम किसी से नफरत न करें)। ॐ! मुझमें शांति हो! मेरे वातावरण में शांति हो! मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

कृष्ण-यजुर्वेद से संबंधित कालाग्नि-रुद्रोपनिषद यहीं समाप्त होता है

029 - मैत्रेय उपनिषद

ॐ ! मेरे अंग-प्रत्यंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों।समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म का खंडन न करूँ, न ब्रह्म मेरा खंडन करे।कोई खंडन न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई खंडन न हो।उपनिषदों में जो गुण बताए गए हैं, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!

I-1. राजा बृहद्रथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाया और शरीर को अनित्य मानकर (सांसारिक जीवन से विरक्त) होकर (तपस्या) वन में चले गए। वहाँ उन्होंने सर्वोच्च प्रकार की तपस्या की और सूर्य की ओर मुख करके अपनी भुजा ऊपर उठाए खड़े रहे। एक हजार वर्ष के पश्चात सूर्यदेव (ऋषि शाक्यण्य का रूप धारण करके) ऋषि के पास आए। धुएँ से रहित अग्नि के समान तथा अपने तेज से सब कुछ जला देने वाले, आत्मज्ञानी ऋषि शाक्यण्य ने राजा से कहाः 'उठो, उठो, कोई वर चुनो'। राजा ने उन्हें प्रणाम करके कहाः 'पूज्यवर, मैं आत्मा को नहीं जानता।

परन्तु हमने सुना है कि आप सत्य के ज्ञाता हैं। मुझे उसका अर्थ बताइए'। 'आपका यह अनुरोध तो प्रथमतः असंभव है। मुझसे यह प्रश्न मत पूछिए। हे इक्ष्वाकुवंशी, अन्य कामनाओं का चुनाव करो'। राजा ने ऋषि शाक्यण्य के चरणों को आदरपूर्वक स्पर्श करके निम्नलिखित धार्मिक ग्रन्थ (गाथा) कहा।

I-2. अब अन्य बातों की चर्चा क्यों करें? समुद्रों का सूख जाना, पर्वतों का गिरना, ध्रुवतारे या वृक्षों का हिलना, पृथ्वी का जलमग्न होना तथा देवताओं का पदच्युत होना। इस सांसारिक जीवन में जो 'वह' और 'मैं' के भेद वाला है, कामनाओं का भोग करने से क्या लाभ, क्योंकि उनका सहारा लेने से बार-बार (अद्भुत संसार में) लौटना पड़ता है? इसलिए आपका यह कर्तव्य है कि आप मेरा उद्धार करें। मैं इस संसार में कुएँ के मेंढक के समान हूँ।सांसारिक जीवन में रहते हुए, हे पूज्य महाराज, आप ही मेरे शरण हैं। इस प्रकार (राजा ने कहा)।

I-3. हे पूज्य महाराज, यह शरीर केवल मैथुन से उत्पन्न हुआ है, चेतना से रहित है और वास्तव में नरक है क्योंकि यह मूत्र मार्ग से निकला है, हड्डियों से भरा है, मांस से सना हुआ है और त्वचा से ढका हुआ है; यह मल, मूत्र, वायु, पित्त, कफ, मज्जा, चर्बी, चर्बीयुक्त स्राव और अन्य बहुत सी गंदी चीजों से भरा हुआ है। हे पूज्य महाराज, इस प्रकार के शरीर में रहते हुए, आप ही मेरे शरण हैं। इस प्रकार (उसने प्रार्थना की)।

I-4. तब पूज्य ऋषि शाक्यण्य ने प्रसन्न होकर राजा से कहा: 'महान् राजा बृहद्रथ, आप इक्ष्वाकु वंश में प्रमुख हैं, आत्मा के ज्ञाता हैं, आपने अपना कर्तव्य अच्छी तरह से किया है और आप मरुत नाम से प्रसिद्ध हैं। ऐसा आपका स्वरूप है। हे पूज्य महाराज, किसका वर्णन किया जाए? और उसने राजा से कहा:

1-5. शब्द और स्पर्श द्वारा दर्शाए गए विषय स्पष्ट रूप से खतरे के स्रोत हैं; क्योंकि वैयक्तिक आत्मा (पांच तत्वों में संलग्न) उनमें आसक्त होने पर सर्वोच्च लक्ष्य को याद नहीं रख सकती है।

1-6. तप से व्यक्ति जन्मजात स्वभाव (सत्व) को जान लेता है; सत्व से मन की स्थिरता प्राप्त होती है; मन से आत्मा का साक्षात्कार होता है; आत्मा का साक्षात्कार करने से सांसारिक जीवन का निवारण होता है।

1-7. जैसे ईंधन समाप्त होने पर अग्नि अपने आप में शांत हो जाती है, वैसे ही मन भी जब अपनी क्रिया समाप्त हो जाती है, तो अपने स्रोत (अर्थात आत्मा में) में शांत हो जाता है।

1-8. जब मन अपने स्रोत में शांत हो जाता है और सच्चे मार्ग पर चलता है, तो क्रियाओं पर निर्भर परिणाम अवास्तविक होते हैं क्योंकि इंद्रियों के विषय भ्रमित हो जाते हैं (अर्थात किए गए कार्य उसे प्रभावित नहीं करते हैं क्योंकि वह आसक्ति रहित है)।

1-9. मन ही संसार का निर्माण करता है, इसे शुद्ध करना चाहिए। जैसा मन होता है, वैसे ही पदार्थ उससे रंगे हुए दिखाई देते हैं, यही शाश्वत रहस्य है।

1-10. मन की शुद्धि से अच्छे-बुरे कर्मों का नाश होता है। शुद्ध मन से आत्मा में स्थित होने पर अक्षय आनंद का भोग होता है।

1-11. यदि इन्द्रिय-विषयों के क्षेत्र में आसक्त मनुष्य का मन ब्रह्म की ओर लगा दिया जाए, तो कौन बंधन से मुक्त नहीं हो सकता ?

1-12-14. मनुष्य को चाहिए कि वह अपने हृदय कमल के मध्य में भगवान को बुद्धि के नृत्य का दर्शक, परम प्रेम का धाम, मन और वाणी की सीमा से परे, संसार के समुद्र में डूबते हुए लोगों की सारी चिंताओं को दूर करने वाले बचाव जहाज के समान, एकमात्र तेजोमय सत्ता के स्वरूप, विचार से परे, अपरिहार्य, (क्रियाशील) मन द्वारा समझे न जा सकने वाले, असाधारण गुणों से युक्त, अचल, स्थिर और गहन, न प्रकाश न अंधकार, सभी संदेहों और दिखावट से मुक्त, तथा परम आनंद से युक्त चेतना के रूप में अनुभव करे।

1-15. जो शाश्वत, शुद्ध, सदा सजग, (भ्रम की प्रकृति से मुक्त), सत्य, सूक्ष्म, परम शक्तिशाली, अद्वितीय, आनंद का सागर और पारलौकिक है, वही मैं हूँ, (सबका) अंतरतम सार; इसमें कोई संदेह नहीं है। 1-16. जो पुरुष कामनारूपी भूत का तिरस्कार करता है, जो इस जगत् को माया के समान देखता है और जो उससे अनासक्त है, वह मुझ पर कैसे संकट आ सकता है?

1-17. जो अज्ञानी मनुष्य वर्ण और धर्म में लगे रहते हैं, वे अपने-अपने कर्मों का फल व्यर्थ ही पाते हैं। जो लोग वर्ण आदि का परित्याग कर देते हैं और आत्मा के सुख में सुखी रहते हैं, वे ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

1-18. नाना अंगों से युक्त तथा वर्ण और धर्म के नियमों का पालन करने वाले शरीर का आदि और अन्त है, यह केवल महान क्लेश है। सन्तान आदि और शरीर से आसक्ति रहित होकर अनन्त परम सुख में रहना चाहिए।

2-1. तब पूज्य मैत्रेय मुनि कैलाश को गए। उनके पास जाकर उन्होंने कहाः 'हे प्रभु, मुझे परम सत्य का रहस्य बताइए।' महान भगवान ने उससे कहा:
II-2. शरीर को मंदिर कहा गया है; व्यक्तिगत आत्मा (जीव) ही शिव है। हमें आध्यात्मिक अज्ञानता के रूप में मुरझाए हुए फूलों को त्याग देना चाहिए और भगवान की पूजा करनी चाहिए (इस विश्वास के साथ) कि 'वह और मैं एक हैं 'एक'।

II-3. सच्चा ज्ञान सभी में अभेद देखना है; गहन ध्यान में इन्द्रिय विषयों के बारे में सोचने से मुक्त मन शामिल है; स्नान मन की अशुद्धियों को दूर करना है और शुद्धि में इन्द्रियों को नियंत्रित करना शामिल है।

II-4. उसे अमृत ब्रह्म को ग्रहण करना चाहिए, शरीर की रक्षा के लिए भिक्षा मांगनी चाहिए और एक (ब्रह्म) के प्रति समर्पित होकर द्वैत से मुक्त एकान्त स्थान में रहना चाहिए। इस प्रकार एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए; वह ही मोक्ष प्राप्त करेगा।

II-5. यह शरीर जन्म लेता है और मरता है; यह माता और पिता के अशुद्ध स्राव से उत्पन्न हुआ है; यह सुख और दुःख का निवास है और यह अशुद्ध है। जब कोई इसे इस भावना से छूता है कि यह मेरा है, तो इसमें आसक्ति को त्यागने के रूप में स्नान करना निर्धारित है।

II-6. यह मूल द्रवों से निर्मित है, भयंकर रोगों से ग्रस्त है, पाप कर्मों का निवास है, क्षणभंगुर है तथा क्षुब्ध भावनाओं से युक्त है। इस शरीर को स्पर्श करके स्नान करना (पूर्वोक्त) विहित है।

II-7. यह स्वाभाविक रूप से उचित समय पर नौ छिद्रों (आंख, कान आदि) से अशुद्ध स्राव करता है। अशुद्ध पदार्थ होने के कारण इसमें दुर्गंध आती है। इसे स्पर्श करके स्नान करना (पूर्वोक्त) विहित है।

II-8. यह जन्म के समय माता के साथ अशुद्धता से जुड़ा हुआ है तथा बच्चे के जन्म से होने वाली अशुद्धता के साथ पैदा होता है; क्योंकि यह मृत्यु (समय आने पर) तथा बच्चे के जन्म से होने वाली अशुद्धता से जुड़ा हुआ है, अतः इस शरीर को स्पर्श करके स्नान करना (पूर्वोक्त) विहित है।

II-9. शरीर को 'मैं' तथा मेरा मानना, प्रसाधनों के स्थान पर मल-मूत्र से अपने को लिप्त करना है। इस प्रकार (उपर्युक्त श्लोकों में) शुद्ध शुद्धि की बात कही गई है। मिट्टी और जल से शरीर को शुद्ध करना संसार में बाह्य रूप से किया जाने वाला कार्य है।

II-10. मन को शुद्ध करने वाली शुद्धि में तीन जन्मजात प्रवृत्तियों (लोकवासना, शास्त्रवासना और देहवासना) का नाश होता है; (वास्तविक) शुद्धि मिट्टी और ज्ञान तथा वैराग्य रूपी जल से धोने को कहते हैं।

II-11. अद्वैत की भावना ही भिक्षा है (जिसे खाया जाता है) और द्वैत की भावना ही खाने योग्य नहीं है। भिक्षुक द्वारा भिक्षा ग्रहण करना गुरु और शास्त्र के निर्देशानुसार निर्धारित है।

II-12. अपनी इच्छा से संन्यास ग्रहण करने के पश्चात बुद्धिमान व्यक्ति अपने मूल स्थान से दूर चला जाएगा और जेल से छूटे हुए चोर की तरह दूर जाकर रहने लगेगा।

II-13. अहंकार के पुत्र, धन के भाई, मोह के घर और कामनाओं की पत्नी से दूर हटते ही वह मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

II-14-15. जब मोह की माता मर चुकी है और सत्य जागृति का पुत्र उत्पन्न हुआ है, जिससे दोहरी अशुद्धि हो रही है, तो मैं संध्यावंदन कैसे करूँ?

जब चेतना का उज्ज्वल सूर्य हृदय के आकाश में सदैव चमकता रहता है और वह कभी अस्त नहीं होता, न उदय होता है, तब मैं संध्यावंदन कैसे करूँ? (अर्थात् संध्यावंदन होता ही नहीं, अतः पूजा की कोई गुंजाइश ही नहीं है)।

II-16. गुरु के वचनों से जो यह विश्वास विद्यमान है कि केवल एक ही (वास्तविकता) है, दूसरा नहीं है, वही एकान्त (ध्यान के लिए आवश्यक) है, न कि मठ या वन का अन्तरिक्ष।

II-17. जो संशय से मुक्त हैं, उनके लिए मोक्ष है; जिनके मन में (आत्मा की अद्वैतता के विषय में) संशय व्याप्त है, उनके लिए बार-बार जन्म लेने पर भी मोक्ष नहीं है। इसलिए श्रद्धा रखनी चाहिए।

II-18. कर्मों को त्यागने से या स्तुति के मंत्रों के उच्चारण से (त्याग के औपचारिक समारोह में) कोई त्याग नहीं होता। त्याग को वैयक्तिक आत्मा (जीव) और विश्वात्मा (आत्मा) की एकता कहा गया है।

II-19. जिसे स्त्री, धन और संतान आदि सभी मूल इच्छाएँ उल्टी के समान लगती हैं और जिसने अपने शरीर के अभिमान को त्याग दिया है, वह त्याग का अधिकारी है।

II-20. बुद्धिमान व्यक्ति को त्याग को तभी अपनाना चाहिए, जब उसके मन में सभी सांसारिक चीजों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाए; अन्यथा वह पतित है।

II-21. जो व्यक्ति धन-संपत्ति (धनवान शिष्यों द्वारा दिया गया योगदान) या (सुनिश्चित) भोजन और वस्त्र या स्थिर पद (मठ के प्रमुख के रूप में) के लिए सांसारिक जीवन का त्याग करता है, वह दोगुना पतित होता है।(अर्थात् उसे न तो सांसारिक जीवन का पूर्ण सुख प्राप्त होता है, न मोक्ष); वह परम सुख का अधिकारी नहीं होता।

II-22. बुद्धिमान लोग ब्रह्म की वास्तविकता का चिंतन करते हैं; मध्यम लोग शास्त्र का चिंतन करते हैं; निम्न लोग मंत्रों का चिंतन करते हैं; निम्नतम लोग तीर्थों के (प्रभावकारिता) से भ्रमित होते हैं।

II-23. मूर्ख व्यक्ति व्यर्थ ही ब्रह्म में (सैद्धांतिक) आनंद लेता है, बिना उसका व्यावहारिक अनुभव किए (क्योंकि मैं ब्रह्म हूँ), जैसे वृक्ष की शाखा में लगे फलों को चखने का आनंद (झील में) प्रतिबिम्बित होता है।

II-24. यदि कोई मुनि विभिन्न घरों से भिक्षा लेने में आंतरिक (अद्वैत का विश्वास) का त्याग नहीं करता, जैसे मधुमक्खी फूलों से शहद, वैराग्य रूपी

पिता, श्रद्धा रूपी पत्नी और सत्य ज्ञान रूपी पुत्र का त्याग नहीं करता, तो वह मुक्त हो जाता है।

II-25. धनवान, वृद्ध तथा ज्ञानवान - ये सब बुद्धिवान शिष्यों के सेवक हैं।

II-26. विद्वान् लोग भी मेरे द्वारा रचित माया से मोहित हो जाते हैं और मुझ आत्मा को, जो सर्वव्यापी है, न जानकर, केवल गायों की भाँति अपना पेट भरने के लिए भटकते रहते हैं।

II-27. मोक्ष चाहने वाले को पत्थर, धातु, मणि तथा मिट्टी की मूर्तियों की पूजा करने से पुनर्जन्म का ही अनुभव होता है; इसलिए मुनि को केवल अपने हृदय की पूजा करनी चाहिए (अर्थात् आत्मा से अभिन्न हृदय में स्थित ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए)। पुनर्जन्म से बचने के लिए उसे बाह्य पूजा (मूर्ति पूजा) से बचना चाहिए।

II-28. जो भीतर से तथा बाहर से भरा हुआ है, वह समुद्र में भरे हुए घड़े के समान है; जो भीतर से खाली है तथा बाहर से खाली है, वह आकाश में खाली घड़े के समान है।

II-29. विषयों का भोग करने वाला मत बनो, इन्द्रियों पर विश्वास करने वाला भी मत बनो। समस्त धारणाओं को त्यागकर, जो शेष है वही बन जाओ।

II-30. द्रष्टा, दर्शन और जो दिखाई देता है, इन सब को तथा आन्तरिक प्रवृत्तियों को त्यागकर, तुम केवल उस आत्मा का आश्रय लो, जो समस्त घटनाओं का मूल है।

II-31. समस्त धारणाओं सहित स्थिर और जाग्रत-निद्रित अवस्था से मुक्त रहने की वह अवस्था आत्मा की परम अवस्था है। इस प्रकार (भगवान शिव द्वारा दिया गया उपदेश और दूसरा अध्याय समाप्त होता है)।

III-1. मैं हूँ, मैं दूसरा (परम) हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं (सबका) मूल हूँ, मैं ही समस्त लोकों का गुरु हूँ, मैं ही समस्त लोक हूँ, वह मैं हूँ।

III-2. मैं ही हूँ, मैंने सिद्धि प्राप्त कर ली है, मैं शुद्ध हूँ, मैं ही परम हूँ, मैं ही सदा रहता हूँ, मैं ही वह हूँ, मैं ही नित्य हूँ, मैं ही शुद्ध हूँ।

III-3. मैं ही सच्चा ज्ञान (विज्ञान) हूँ, मैं ही विशेष हूँ, मैं ही सोम हूँ, मैं ही सब हूँ। मैं ही शुभ हूँ, मैं ही दुःख से मुक्त हूँ, मैं ही चेतना हूँ, मैं ही निष्पक्ष हूँ।

III-4. मैं ही मान-अपमान से रहित हूँ, मैं ही गुण रहित हूँ, मैं ही शिव हूँ, मैं ही द्वैत और अद्वैत से मुक्त हूँ, मैं ही विपरीत युग्मों से मुक्त हूँ, मैं ही वह हूँ।

III-5. मैं ही सत्ता और असत्ता से रहित हूँ, मैं ही वाणी से परे हूँ, मैं ही तेज हूँ, मैं ही शून्य और अशून्य की शक्ति हूँ और मैं ही शुभ और अशुभ हूँ (अर्थात् उन दोनों से परे हूँ)।

III-6. मैं ही समान और असमान से रहित हूँ, नित्य हूँ, शुद्ध हूँ, सदा शुभ हूँ; मैं सब से मुक्त हूँ, मैं धर्मात्मा हूँ और सदा ही रहता हूँ।

III-7. मैं प्रथम से भी परे हूँ, तथा द्वितीय से भी परे हूँ। मैं अच्छे-बुरे के भेद से परे हूँ, तथा मैं विचार-शून्य हूँ।

III-8. मैं अनेक आत्माओं के भेद से मुक्त हूँ, क्योंकि मैं शुद्ध आनन्दस्वरूप हूँ। मैं (अस्तित्व के रूप में विद्यमान नहीं हूँ), मैं दूसरा नहीं हूँ, मैं शरीर आदि से रहित हूँ।
III-9. मैं आधार तथा उस पर स्थित वस्तु की अवधारणा से मुक्त हूँ, मैं आधार से रहित हूँ। मैं बंधन तथा मुक्ति से परे हूँ, मैं शुद्ध ब्रह्म हूँ, मैं वही हूँ।

III-10. मैं मन आदि सभी चीजों से रहित हूँ, मैं सर्वोच्च हूँ, महान से भी महान हूँ। मैं सदैव अन्वेषण के रूप में हूँ, मैं अन्वेषण से मुक्त हूँ। मैं वही हूँ।

III-11. मैं 'अ' और 'उ' अक्षर का स्वरूप हूँ और मैं 'म' अक्षर हूँ जो (ॐ के रूप में) शाश्वत है। मैं ध्यान से मुक्त हूँ और ध्यानी होने के कारण मैं ध्यान के विषय से परे हूँ, मैं वही हूँ।

III-12. मैं उस स्वरूप का हूँ जो सब कुछ भरता है, अस्तित्व की विशेषताओं को धारण करता है,
चेतना और आनंद। मैं सभी तीर्थों का स्वरूप हूँ, मैं परम आत्मा हूँ, मैं शिव हूँ।

III-13. मैं लक्ष्य और अलक्ष्य से रहित हूँ और मैं आनंद रस हूँ जिसका कभी नाश नहीं होता। मैं मापने वाले, नापने वाले और नापी गई वस्तु से परे हूँ; मैं शिव हूँ।

III-14. मैं संसार नहीं हूँ, मैं सबका साक्षी हूँ और मैं नेत्रों आदि से रहित हूँ, मैं अपार हूँ, मैं जागृत हूँ, मैं शांत हूँ और मैं हर (शिव) हूँ।

III-15. मैं सभी इन्द्रियों से रहित हूँ और सभी कर्म करता हूँ। मैं सभी उपनिषदों की तृप्ति का (विषय) हूँ, मैं (भक्तों के लिए) सदैव सुलभ हूँ।

III-16. मैं (भक्तों के लिए) आनंद और (प्रमाणहीनों के लिए) दुःख हूँ, मैं सभी मौन का मित्र हूँ। मैं हमेशा चेतना का रूप हूँ और मैं हमेशा अस्तित्व और चेतना का रूप हूँ।
III-17. मैं अल्प से भी रहित नहीं हूँ, न ही मैं थोड़ा हूँ। मैं हृदय की गाँठ से रहित हूँ (अर्थात स्नेह के कारण पक्षपात से रहित हूँ) और हृदय कमल के मध्य में निवास करता हूँ।

III-18. मैं छह परिवर्तनों (जन्म आदि) से रहित हूँ, मैं छह कोशों (स्थूल भौतिक शरीर आदि) से रहित हूँ; मैं छह (आंतरिक) शत्रुओं (वासनाओं आदि) के समूह से मुक्त हूँ और मैं सर्वोच्च ईश्वर होने के कारण साक्षी हूँ।

III-19. मैं देश और काल से मुक्त हूँ, मैं प्रमुख निर्विकार ऋषियों का आनंद हूँ, मैं 'वहाँ है' और 'वहाँ नहीं है' से परे हूँ और मैं सभी निषेधों से रहित हूँ (अर्थात मैं प्रतिरूप के बिना शुद्ध अस्तित्व हूँ)।

III-20. मैं अखंड आकाश का रूप हूँ और मैं सर्वव्यापी रूप हूँ। मैं भवसागर से मुक्त मन (चित्त) हूँ और भवसागर से रहित हूँ।

III-21. मैं समस्त तेजस्वरूप हूँ, मैं शुद्ध चेतना का तेज हूँ। मैं तीनों काल (भूत, वर्तमान और भविष्य) से परे हूँ और मैं वासना आदि से मुक्त हूँ।

III-22. मैं शरीर और उसके वासी से ऊपर हूँ और मैं अद्वितीय हूँ, गुणों से रहित हूँ। मैं मुक्ति से परे हूँ, मैं मुक्त हूँ और मैं हमेशा अंतिम मुक्ति से रहित हूँ।

III-23. मैं सत्य और असत्य से ऊपर हूँ, मैं हमेशा शुद्ध अस्तित्व के अलावा कुछ नहीं हूँ। मैं गति आदि से मुक्त होने के कारण किसी स्थान पर जाने के लिए बाध्य नहीं हूँ।

III-24. मैं हमेशा सम हूँ, मैं शांति हूँ, सबसे बड़ा प्राणी (पुरुषोत्तम) हूँ; जो इस प्रकार अपना अनुभव करता है, वह निस्संदेह मैं हूँ। जो इस (अनुभव) को एक बार भी (परम श्रद्धा के साथ) सुन लेता है, वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है (अर्थात ब्रह्म में विलीन हो जाता है)। इस प्रकार उपनिषद समाप्त होता है।
ॐ ! मेरे अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, प्राण और सभी इन्द्रियाँ बलवान हों। समस्त अस्तित्व उपनिषदों का ब्रह्म है।मैं कभी ब्रह्म का इन्कार न करूँ, न ब्रह्म मेरा इन्कार करे।किसी भी प्रकार का इन्कार न हो:कम से कम मेरी ओर से तो कोई इन्कार न हो।उपनिषदों में जिन सद्गुणों की घोषणा की गई है, वे मुझमें हों,जो आत्मा के प्रति समर्पित हैं; वे मुझमें निवास करें।
ॐ ! मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!
सामवेद में सम्मिलित मैत्रेयोपनिषद यहीं समाप्त होता है

030 - सुबल उपनिषद

ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से ही निकलता है।(फिर) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए,यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता है।ओम!

मुझमें शांति हो!मेरे वातावरण में शांति हो!मेरे ऊपर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो!पाठ एक: ब्रह्मांड का अस्तित्व और

प्रलय1-3. अपरिभाषित ब्रह्म: वे कहते हैं - 'क्या अस्तित्व में था?' उन्होंने उत्तर दिया 'न तो अस्तित्व में और न ही अस्तित्वहीन। उससे तमस् उत्पन्न हुआ; तमस् से भितादि (प्रकृति - पदार्थ) उत्पन्न हुआ, उससे अंतरिक्ष, अंतरिक्ष से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी।यह अंडा बन गया; जो केवल एक वर्ष तक अस्तित्व में रहा, वह दो गुना हो गया - नीचे पृथ्वी और ऊपर आकाश।बीच में एक हजार सिर, आंख, पैर और भुजाओं वाला दिव्य पुरुष (विराट-पुरुष) था।

4-6. उसने सबसे पहले सभी प्राणियों की मृत्यु की रचना की, जिसके तीन नेत्र, सिर और पैर थे, और वह एक कुल्हाड़ी से लैस था।ब्रह्मा डर गए - उन्होंने स्वयं ब्रह्मा में प्रवेश किया, उन्होंने सात मानसिक पुत्रों की रचना की - उन्होंने सात विराट, सृष्टिकर्ता बनाए।उसका मुख ब्राह्मण था, भुजाएँ क्षत्रिय बनीं, जाँघें वैश्य बनीं, पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए, उसके कान से वायु और प्राण उत्पन्न हुए, यह सब उसके हृदय से है।

इस प्रकार प्रथम खण्ड;
1. अपान से निषाद, यक्ष आदि उत्पन्न हुए, हड्डियों से पर्वत, बालों से पौधे और वृक्ष, माथे से रुद्र (क्रोध का)।

2. इस महान प्राणी की सांस ऋक् और अन्य वेद, ध्वनि विज्ञान, कल्प (अनुष्ठान की नियमावली), व्याकरण, व्युत्पत्ति, छन्द, तर्क, खगोल विज्ञान, व्याख्या, कानून, टिप्पणियाँ, व्याख्याएँ आदि बन गईं।

3. जिस स्वर्णिम प्रकाश में आत्मा निवास करती है, उससे सभी लोक दो बन गए - स्त्री और पुरुष। देव बनने से देवों की रचना हुई, ऋषि बनने से ऋषियों की रचना हुई, यक्ष आदि की भी रचना हुई, साथ ही जंगली और दैत्यों की भी रचना हुई।जंगली और पालतू पशु, बैल और गाय, घोड़ा और घोड़ी, नर और मादा गधा, पृथ्वी और सूअर।

4. अंत में, वैश्वानर (अग्नि) बनकर, उन्होंने सभी प्राणियों को जला दिया (नष्ट कर दिया) - पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश इंद्रियों में, वे सूक्ष्म तत्वों में, वे प्रकृति में, प्रकृति महत में, महत अव्यक्त में, अव्यक्त अक्षर में, अक्षर तम में, वह ईश्वर में। तब न तो अस्तित्व है और न ही अस्तित्वहीन। यह वेदों में दिए गए विघटन का सिद्धांत है।
इस प्रकार दूसरा खंड पाठ दो: चौथा सिद्धांत;

1. शुरुआत में, यह अस्तित्वहीन था। ज्ञानी पुरुष आत्मा का ध्यान करते हुए बढ़ता है जिसका न तो जन्म है, न उदय, न अस्त, अस्थापित, न शब्द, स्पर्श, रूप, स्वाद, गंध, क्षय या इससे बड़ी कोई चीज नहीं है।

2. प्राण, मुख, कान, वाणी, मन, तेज, नेत्र, नाम, वंश, सिर, हाथ या पैर, चिकनाई, रक्त, मापनीयता, न दीर्घ, न लघु, न स्थूल, न अणु, तटहीन, वर्णन से परे, न खुला, न प्रकाशमान, न बंद, न भीतर, न बाहर; न खाता है, न खाया जाता है।

3. सत्य, दान, अमर तप, ब्रह्मचर्य, छः अंगों वाले वैराग्य के द्वारा ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। वह संयम, दान और दया इन तीनों का पालन करेगा। उसके प्राण यहीं ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार तीसरा खंड
1. हृदय के मध्य में लाल मांस का पिंड है, जिसमें कमल का दहार है, जो कमल के समान अनेक प्रकार से खिलता है - हृदय में दस छिद्र हैं, जहाँ प्राण स्थित हैं।

2. जब जीव प्राण से जुड़ता है, तब वह अनेक प्रकार की नदियों और नगरों को देखता है; व्यान से देवों और ऋषियों को देखता है; अपान से यक्षों आदि को देखता है; उदान से देवलोक, देवता, स्कंद और जयंत को देखता है; समान से धन-संपत्ति को भी देखता है; वैरम्भ (प्राण) से जो देखा, सुना, खाया और न खाया, दृश्य और अदृश्य को देखता है।

3. तब ये नाड़ियाँ सौ हो जाती हैं; इनसे बहत्तर हजार नाड़ियाँ निकलती हैं, जिनमें आत्मा सोती है और शोर करती है, दूसरे कोश में वह सोता है और इस लोक और उस लोक को देखता है, सभी ध्वनियों को सुनता है - इसे वे स्पष्टता कहते हैं। प्राण शरीर की रक्षा करता है। नाड़ियाँ हरे, नीले, पीले, लाल और सफेद रक्त से भरी हुई हैं।

4. यह दहार कमल कुमुदिनी और बालों की तरह अनेक प्रकार से खिल रहा है, इसी प्रकार नाड़ियाँ हृदय में स्थित हैं। जब कोई कामना नहीं रहती, निद्रा भी नहीं रहती, देवता या लोक नहीं रहते, यज्ञ नहीं रहते, माता, पिता, बंधु-बांधव नहीं रहते, चोर या ब्रह्म-हत्यारा नहीं रहता, तब परमात्मा महाकोश में सोता है। यह सब जल है - पुनः उसी मार्ग से वह जाग्रत अवस्था में लौटता है, यह सम्राज। इस प्रकार चतुर्थ खण्ड

1. परमात्मा उनके स्वामियों को स्थान प्रदान करता है - नाड़ी उनकी कड़ी है। शरीर में तत्वों के बीच नेत्र स्वामी है - देवत्व में जो दिखाई देता है -

धमनी कड़ी है। जो नेत्र में है, सूर्य में है, धमनी में है, प्राणवायु में है, ज्ञान में है, आनन्द में है, हृदय के आकाश में है - इन सबके भीतर जो गति करता है, वह आत्मा है। उस आत्मा का ध्यान करो जो अजर, अमर, निर्भय, अनन्त है।

2. शरीर में तत्वों के बीच कान स्वामी है, दिशाएँ देवता हैं, धमनी कड़ी है। जो कान, सुनने योग्य पदार्थ, दिशा आदि में है -- वह सबके अन्दर विचरण करता है, वह आत्मा है। उस आत्मा का ध्यान करो जो अजर, अमर, निर्भय, पीड़ारहित, अनंत है।

3. नाक शरीर का स्वामी है, गंधनीय पदार्थ तत्व है। पृथ्वी देवता है, धमनी कड़ी है। जो नाक आदि में है -- उसका ध्यान करो।

4. जिह्वा शरीर का स्वामी है, स्वादनीय पदार्थ तत्व है। वरुण देवता है, धमनी कड़ी है। जो जिह्वा आदि में है -- उसका ध्यान करो।

5. त्वचा शरीर का स्वामी है, स्पर्शनीय पदार्थ तत्व है, वायु देवता है, धमनी कड़ी है। जो त्वचा आदि में है -- उसका ध्यान करो।

6. मन स्वामी है, विचारनीय पदार्थ तत्व हैं, चन्द्रमा देवता है, धमनी कड़ी है।
लिंक. जो मन आदि में है, उसका ध्यान करो.

7. बुद्धि स्वामी है, ज्ञेय तत्व है. ब्रह्मा देवता आदि. जो बुद्धि आदि में है, उसका ध्यान करो.

8. अहंकार स्वामी है - 'मैं' अवधारणा का विषय तत्व है, रुद्र देवता - जो अहंकार है - उसका ध्यान करो.

9. वाणी स्वामी है, उच्चारण तत्व है, अग्नि देवता - जो है - उसका ध्यान करो.

10. मन पदार्थ स्वामी है, बोधगम्य तत्व है, जीव देवता है - उसका ध्यान करो.

11. हाथ स्वामी हैं, जो पकड़ा जाता है वह तत्व है, इंद्र देवता - जो हाथों में है - उसका ध्यान करो.

12. चरण स्वामी हैं, गन्तव्य तत्व है, विष्णु देवता हैं - जो चरणों में हैं, इत्यादि - उनका ध्यान करो।

13. पुरुषेन्द्रिय स्वामी है, रमणीय तत्व है, प्रजापति देवता हैं - जो पुरुषेन्द्रिय में हैं, इत्यादि - उनका ध्यान करो।

14. वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अन्तर्यामी, सबका मूलस्रोत हैं, सभी आनन्द उनकी प्रतीक्षा करते हैं, किन्तु आनन्द उनकी प्रतीक्षा नहीं करते; वेद और शास्त्र उनकी प्रतीक्षा करते हैं, किन्तु आनन्द उनकी प्रतीक्षा नहीं करते; ये सब जिनका भोजन हैं, किन्तु जो कभी भोजन नहीं हैं; सभी दिशाओं के कारक और शासक, अन्न से बने हैं - तत्वों की आत्मा, प्राण से बने हैं - इन्द्रियों की आत्मा, मन से बने हैं; विचार की आत्मा, ज्ञान से बने हैं - काल की आत्मा, आनन्द से बने हैं - प्रलय की आत्मा।

15. एकत्व है - द्वैत कैसे हो सकता है - नश्वरता नहीं - अमरता कैसी ? न तो भीतर से, न बाहर से, न दोनों तरह से - ज्ञान का कोई पुंज नहीं, न जानने वाला, न न जानने वाला। इस प्रकार पाँचवाँ खंड पाठ तीन

1. आरंभ में यहाँ कुछ भी नहीं था - ये जीव जड़ और आधार के बिना पैदा होते हैं।

2-3. नारायण आँख भी हैं और दृश्य भी, कान भी हैं और श्रव्य भी, नाक भी है और गंध भी, जीभ भी है और स्वाद भी, त्वचा भी है और स्पर्श भी, मन भी है और विचार करने योग्य भी, बुद्धि भी है और उसके विषय भी, अहंकार भी है और उसका क्षेत्र भी, वाणी भी है और उसके विषय भी, हाथ, पैर, उनके क्षेत्र भी, गुदा और जननांग भी - सभी नारायण हैं। पालनकर्ता, आदेशकर्ता, रूपांतरक - सब कुछ वही हैं।

4. आदित्य, रुद्र, मरुत, वसु, अश्विन, ऋक्, यजु, साम, मन्त्र, अग्नि, हवन - सभी नारायण हैं, माता, पिता आदि भी नारायण हैं।

5. विराज, सुदर्शन, जित, सौम्य, अमोघ, कुमार, अमृत, सत्य, मध्यमा, नासिर, शिशु, असुर, सूर्य, भास्वती ये नाम हैं।

6. दहाड़ता है, गाता है, फूंकता है, बरसता है - वरुण, अर्यमा, चन्द्र, काल, कवि, धाता, ब्रह्मा, इन्द्र, दिन और अर्ध दिन, क्षण तथा युग - सभी वही हैं।

7. यह सब पुरुष ही है - भूत और भविष्य - विष्णु का वह उच्च स्थान - सूरि (मुनि) इसे आकाश में फैली हुई आँख की तरह सदैव देखते हैं। मानसिक संघर्ष से रहित मुनि इसकी महिमा को बढ़ाते हैं। वेदों के अनुसार यही मोक्ष का सिद्धान्त है। इस प्रकार छठा खंड पाठ चार: आंतरिक नियंत्रक की प्रकृति;

1. शरीर के अंदर अजन्मा, एकमात्र, अमर प्राणी, जिसका शरीर पृथ्वी है और जो पृथ्वी के लिए अज्ञात शरीर के अंदर घूमता है, जो पानी के अंदर घूमता है, जैसे शरीर उसके लिए अज्ञात है, जो अग्नि के अंदर घूमता है, जो हवा के अंदर घूमता है, वैसे ही मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त (मन का पदार्थ), अव्यक्त (अव्यक्त), अक्षर (अविनाशी), मृत्यु के अंदर भी - वह आंतरिक, पाप रहित, आत्म, दिव्य नारायण है।

2. इसे उन्होंने (आदिब्रह्मा ने) अपंतरातमास (विष्णु) में आयात किया, विष्णु ने ब्रह्मा को, उन्होंने घोरांगीरस को जिन्होंने इसे रैक्व को दिया जिन्होंने इसे राम को दिया। उन्होंने इसे सभी जीवित प्राणियों को दिया। वेदों के अनुसार निर्वाण का सिद्धांत ऐसा ही है पाँचवाँ पाठ: शरीर में आत्मा इस चर्बी, मांस, नमी से भरे शरीर में, गुफा के भीतर, यह सबकी शुद्ध आत्मा स्थित है। बुद्धिमान लोग इस गुफा में स्थित अमर, प्रकाशमान आनंद, अशरीरी और अकल्पनीय, सबका स्वामी, निराकार, एकत्रित वैभव, शुद्ध, निर्लिप्त, दिव्य प्रकाशमान, उस आत्मा को देखते हैं जो परे है और जिसका स्वरूप अकल्पनीय है। वे इसे इस शरीर में उदात्त करके देखते हैं जो पानी में बुलबुले की तरह चंचल है, केले के बीज की तरह खाली है, आकाश में एक शहर है, एक रंगी हुई दीवार है, बहुत अधिक सशर्त है।

इस प्रकार आठवाँ खंड;

1-14। तब रैक्वा ने पूछा, 'श्रीमान, सभी चीजें किसमें स्थापित होती हैं?' उसने उत्तर दिया 'दृश्य आँख में गायब हो जाता है, यह आँख में (स्वयं में) हल हो जाता है। दृश्य सूर्य में गायब हो जाता है, यह सूर्य में हल हो जाता है। जो विराट (ब्रह्मांडीय मनुष्य) में लुप्त हो जाता है, वह विराट में आत्मा में सुलझ जाता है। जो प्राण में लुप्त हो जाता है, वह प्राण में सुलझ जाता

है। जो विज्ञान (ज्ञान) में लुप्त हो जाता है, वह विज्ञान में (आत्मा में) सुलझ जाता है। जो आनंद में लुप्त हो जाता है, वह आनंद (आनंद) में सुलझ जाता है। जो तुरीय में लुप्त हो जाता है, वह तुरीय में सुलझ जाता है। वह आत्मा अमर, निर्भय, पीड़ारहित, अनंत बीजरहित है। (सभी चीजें) उस आत्मा में सुलझ जाती हैं' - ऐसा उन्होंने कहा।

15. जो इस बीजरहित (ब्रह्म) को जानता है, वह स्वयं बीजरहित हो जाता है। वह जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होता, न मोहित होता है, न छेदा जाता है, न जलाया जाता है; न कांपता है, न क्रोधित होता है - वे कहते हैं कि वह आत्मा है - सबको जलाने वाला।

16. यह आत्मा सैकड़ों व्याख्याओं से, महान विद्या से, बौद्धिक ज्ञान के सहारे से, स्मरण शक्ति, वेद, यज्ञ, तप, सांख्य या योग, आश्रम, व्याख्या, स्तुति और अभ्यास से प्राप्त नहीं होती। वैदिक विद्वान शांत, संयमी, एकाग्र, सहनशील और एकाग्र होकर इसे प्राप्त करते हैं। इस प्रकार नवम खण्ड तब रैक्व ने पूछा, 'महाराज, ये सब किसमें स्थापित हैं?' उन्होंने उत्तर दिया 'रसातलों में'। उन्होंने पूछा 'रसातलों को किसमें बुना जाता है, ताना-बाना किसमें?' 'भू क्षेत्रों में'। 'भू किसमें बुने जाते हैं?' 'सुवर में'। 'सुवर किसमें बुने जाते हैं?' 'महार में'। 'महार किसमें बुने जाते हैं?' 'जनों में'। 'जनों को किसमें बुना जाता है?' 'तपस में'। 'तप किसमें बुने हुए हैं?' 'प्रजापति के क्षेत्र में'। 'ये किसमें बुने हुए हैं?' 'ब्रह्मा के क्षेत्र में'। सभी लोक ब्रह्म में फैले हुए हैं, जैसे धागे में मणियाँ - ऐसा उन्होंने कहा। जो इन लोकों को आत्मा में फैला हुआ जानता है, वह वास्तव में आत्मा ही हो जाता है। यही वेदों का निर्वाण सिद्धांत है। इस प्रकार दसवाँ खंड पाठ छः: ऊर्ध्वगामी मार्ग तब रैक्व ने उनसे पूछा, 'महाराज, यह ज्ञान का पिंड ऊपर की ओर बढ़ते हुए, ऊपर की ओर प्रस्थान करते समय कौन सा स्थान छोड़ता है?' उन्होंने उत्तर दिया 'हृदय के मध्य में मांस का एक लाल पिंड है - इसमें एक छोटा सफेद कमल है, जो कई तरह से कुमुदिनी की तरह खिल रहा है।

इसके मध्य में एक समुद्र है जिसके बीच में एक चमकीला स्थान है। ये चार धमनियाँ हैं - राम, आराम, इच्छा, अपुनर्भव (सुखदायक, अप्रिय, इच्छा और पुनर्जन्म)। इनमें से राम पुण्य के द्वारा पुण्य की दुनिया में ले जाता है, आराम पाप के द्वारा पाप की दुनिया में ले जाता है। इच्छा के द्वारा, व्यक्ति जो सोचता है, उसे प्राप्त करता है। अपुनर्भव के द्वारा वह म्यान (कोश) को तोड़ता है, फिर कपाल, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, तत्व, महत, अव्यक्त, अक्षर, मृत्यु को। यह मृत्यु सर्वोच्च देवता के साथ

एक हो जाती है। उसके परे न तो कोई अस्तित्व है, न ही कोई अस्तित्व है, न ही उनका संयोजन है।

यह वेदों का निर्वाण सिद्धांत है सातवाँ पाठ: समाधि नारायण से कच्चा अन्न (आत्मा का अज्ञान) उत्पन्न हुआ (ब्रह्मा के दिन के प्रारम्भ में); दिन के अन्त में (प्रलय) आदित्य में पकता है। मांस आदि पुनः जठराग्नि में पकते हैं। जो ताजा हो, दूसरे के लिए न हो, वही खाओ - उसकी भीख मत मांगो।

इस प्रकार बारहवाँ भाग

1. मुनि को बालक के समान स्वभाव की इच्छा करनी चाहिए, जो अनासक्त, दोषरहित हो। मौन, विद्या, दायित्व से मुक्त होकर एकान्त प्राप्त होता है। प्रजापति ने कहा, 'महान स्थान को जानकर, मनुष्य को वृक्ष के नीचे, अनासक्त, मित्रहीन, अकेले समाधि में, केवल आत्मा की इच्छा करते हुए, सभी इच्छित वस्तुओं को जीतकर, इच्छारहित, कामनाओं से रहित रहना चाहिए। उसे हाथी, सिंह, मक्खी, नेवला, साँप आदि से डरना नहीं चाहिए, क्योंकि वे मृत्यु के रूप हैं। मनुष्य को वृक्ष के समान रहना चाहिए; वह पत्थर की तरह, आकाश की तरह, कट जाने पर भी क्रोधित नहीं होगा, या कांपेगा नहीं, वह सत्य के साथ रहेगा।

2. सभी गंधों का हृदय पृथ्वी है, स्वादों का जल, रूपों का अग्नि, स्पर्शरहित वायु, ध्वनियों का आकाश। अव्यक्त सभी गतिविधियों का हृदय है, सभी सत्वों (जीवों) का मृत्यु। मृत्यु वास्तव में सर्वोच्च देवता के साथ एक हो जाती है। इसके परे न तो अस्तित्व है, न ही अस्तित्व और न ही उनका संयोजन - यह वेदों का निर्वाण का सिद्धांत है। इस प्रकार तेरहवां खंड आठवां पाठ पृथ्वी वास्तव में भोजन है, पानी खाने वाला है; पानी भोजन है, अग्नि खाने वाला है; अग्नि भोजन है, वायु खाने वाला है; वायु भोजन है, आकाश खाने वाला है; मन भोजन है, बुद्धि खाने वाला है; बुद्धि भोजन है, अव्यक्त खाने वाला है; अव्यक्त अन्न, अक्षर (अविनाशी) भक्षक है, अक्षर अन्न, मृत्यु भक्षक है - यह उस परम देवता में एक हो जाता है जिसके आगे न तो अस्तित्व है और न ही अस्तित्वहीनता - यह मुक्ति का वैदिक सिद्धांत है।

इस प्रकार चौदहवाँ खंड पाठ नौ: सिद्धांतों (आधारों) को जलाना रैक्वा ने पूछा, 'श्रीमान्, यह ज्ञान का पुंज, आत्मा - जब वह चला जाता है, तो वह किसे जलाता है?' उत्तर मिला, 'वह प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान,

वैरम्भ, मुख्य, अन्तर्यामा, प्रभंज, कुमार, शयन, श्वेत, कृष्ण, नाग, पृथ्वी आदि को भी जला देता है, जागरिता से तुरीय तक; लोकालोक, धर्म और अधर्म; सूर्य रहित, सीमा रहित और प्रकाश रहित क्षेत्र - मृत्यु परम देवता के साथ एक हो जाती है - यह मुक्ति का वैदिक व्याख्यान है।' इस प्रकार पंद्रहवाँ खण्ड दसवाँ पाठ: ब्रह्मविद्या प्रदान करना सुबल का गुप्त सिद्धांत, उस व्यक्ति को नहीं सिखाया जाना चाहिए जो शांत नहीं है, जो पुत्र या शिष्य नहीं है, जो एक वर्ष से कम समय तक रहता है, जिसका परिवार और चरित्र अज्ञात है।

ईश्वर और गुरु के प्रति परम समर्पित व्यक्ति के लिए, ये विचार स्वयं प्रकट होते हैं, महान आत्मा के लिए!वेदों के अनुसार यही मुक्ति का सिद्धांत है।इस प्रकार सोलहवाँ खण्ड ओम! वह (ब्रह्म) अनंत है, और यह (ब्रह्मांड) अनंत है।अनंत अनंत से निकलता है।(तब) अनंत (ब्रह्मांड) की अनंतता को लेते हुए,यह केवल अनंत (ब्रह्म) के रूप में रहता हैॐ ! मुझमें शांति हो !
मेरे वातावरण में शांति हो !मुझ पर कार्य करने वाली शक्तियों में शांति हो !

यजुर्वेद के शुक्ल पक्ष से संबंधित उपलोपनिषद् यहीं समाप्त होता है।

पहला भाग - समाप्त